भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला का उद्देश्य

प्राकृत संस्कृत आदि में निबद्ध दि० जैनागम, दर्शन,
साहित्य, पुराण आदिका यथा सम्भव
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन करना



सञ्चालक

भा० दि० जैनसंघ

ग्रंथाङ्क १-२

प्राप्तिस्थान

मैनेजर

भा० दि० जैन संघ

चौरासी, मथुरा

मुद्रक—शिवनारायण उपाध्याय, नया संसार प्रेस, काशी।

स्थापनाब्द]   प्रति ८००   [वी० नि० सं० २४६८

Sri Dig. Jain Sangha Granthmala No. 1-III

KASĀYA-PĀHUDAM

III

(THIDI VIHATTI)

BY

GUNABHADRACHARYA

WITH

CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHACHARYA

AND

THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF

VIRASENACHARYA THERE-UPON

EDITED BY

Pandit Phulachandra Siddhantashastri,

EDITEOR MAHABANDHA
JOINT EDITOR DHAVALA,

Pandit Kailashachandra, Siddhantashastri

Nyayatirtha, Siddhantaratna,
Pradhanadhyapak, Syadvada Digambara Jain
Vidyalaya, Banaras.

PUBLISHED BY

THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT,

THE ALL-INDIA DIGMBAR JAIN SANGHA

CHAURASI, MATHURA,

VIRA-SAMVAT 2481]   VIKRAMA S. 2012   [1955 A. C.

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala

Foundation year—] [—Vira Niravan Samvat 2468

Aim of the Series:—

Publication of Digambara Jain Siddhanta, Darsana, Purana, Sahitya and other Works in Prakrit, Samskrit etc. Possibly with Hindi Commentary and Translation.

DIRECTOR:—

SRI BHARATAVARSIYA DIGAMBARA JAIN SANGHA

NO. 1. VOL. III.

To be had from:—

THE MANAGER

SRI DIG. JAIN SANGHA.

CHAURASI, MATHURA,

U. P. (INDIA)

Printed by—S. N. UPADHYAYA,

AT THE NAYA SANSAR PRESS, BANARAS.

800Copies,

Fifteen

Price Rs. ~~Twelve~~ only

प्रकाशककी ओर से

आज सात वर्षके पश्चात् कसायपाहुड (जयधवला) के तीसरे भाग (स्थिति विभक्ति) को प्रकाशित करते हुए हमें जहाँ हर्ष है वहाँ अपने पर खेद भी है। दूसरा भाग प्रकाशित करते समय ही उत्तम कागज दुष्प्राप्य था और प्रेस सम्बन्धी कठिनाइयाँ भी थीं। उसके पश्चात् आर्थिक कठिनाई भी उपस्थित होगई और प्रयत्न करनेपर भी छपाईका कार्य प्रारम्भ न हो सका।

इसी बीचमें संघके प्रधानमंत्री पं० राजेन्द्रकुमारजीने प्रधानमंत्रित्वके कार्य-भारसे मुक्ति ले ली और पं० जगमोहनलालजी शास्त्रीको प्रधानमंत्रित्वका भार सौंपा गया। आपके कार्यकालमे कुण्डलपुर (मध्यप्रदेश) मे संघका वार्षिक अधिवेशन हुआ और उसका सभापतिपद डोंगरगढ़ (मध्यप्रदेश) के प्रसिद्ध उदारमना दानवीर सेठ भागचन्द्रजीने सुशोभित किया।

उस अवसर पर आपने कसायपाहुड (जयधवला) के प्रकाशनको चालू रखनेके लिये ग्यारह हजार रुपयोंके दानकी उदार घोषणा की और यह भी आश्वासन दिया कि द्रव्यकी कमीके कारण यह सत्कार्य बन्द नहीं होगा। इससे सभीको हर्ष हुआ और कागज तथा प्रेसकी व्यवस्था होते ही तीसरा भाग प्रेसमे दे दिया गया जो एक वर्षके पश्चात् प्रकाशित हो रहा है। तथा चौथे भागके भी कुछ फार्म छप चुके हैं और पाँचवाँ भाग भी प्रेसमे दिया जानेवाला है।

यह सब दानवीर सेठ भागचन्द्रजीकी उदार दानशीलताका ही सुफल है। उन्होंने अपनी लक्ष्मीका विनियोग ऐसे सत्कार्यमे करके धनिको और दानियो के सन्मुख एक आदर्श उपस्थित करनेके साथ साथ अक्षय पुण्यलाभ लिया है। क्योकि शास्त्रकारोंने कहा है—

ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या ते यजन्तेऽञ्जसा जिनम्।
न किञ्चिदन्तरं प्राहुराप्ता हि श्रुतदेवयोः॥

'जो भक्तिपूर्वक श्रुतकी पूजा करते हैं वे यथार्थसे जिनेन्द्रदेवकी ही पूजा करते हैं, क्योंकि सर्वज्ञदेवने श्रुत और जिनदेवमे कुछ भी भेद नहीं बतलाया है।'

अतः कसायपाहुड जैसे ग्रन्थराजके प्रकाशनमे द्रव्यका विनियोग करके सेठ भागचन्द्रजीने प्रकारान्तरसे गजरथ महोत्सवको ही सम्पन्न किया है; क्योकि जिनबिम्ब प्रतिष्ठासे जिनवाणी प्रतिष्ठा किसी भी अंशमें कम नहीं है।

हम सेठ भागचन्द्रजीको उनकी इस उदारताके लिये शतशः धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि अब यह सत्कार्य अवश्य ही निर्विघ्न पूर्ण होगा।

इस भागके अनुवादादि समस्त कार्य पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीने निष्पन्न किये हैं। मूल व अनुवाद आदिका संशोधन व पाठ मिलान आदि कार्यमें मैंने भी पंडितजीके साथ सहयोग किया है। पण्डितजी आगेके खण्डोंका भी सब कार्य बड़ी तत्परतासे कर रहे हैं। उक्त दानमे भी उनकी प्रेरणा विशेषतः रही है। इसलिये वे भी धन्यवादके पात्र हैं।

इस भागमें स्थितिविभक्ति नामक अधिकार आया है, जो अपूर्ण है, वह चौथे भागमें पूर्ण होगा। इसलिये उसके सम्बन्धमें सम्पादकीय वक्तव्य वगैरह चौथे अधिकारमे दिया जायेगा।

काशीमे गङ्गातट पर स्थित स्व० बाबू छेदीलालजीके जिनमन्दिरके नीचेके भागमें जयधवला कार्यालय अपने जन्मकालसे ही स्थित है। और यह स्व० बाबू सा० के सुपुत्र धर्मप्रेमी बाबू गणेशदासजी और पौत्र बा० सालिगरामजी तथा ऋषभचन्दजीके सौजन्य और धर्मप्रेमका परिचायक है, अतः मै उन सज्जनोंका भी आभारी हूँ।

सहारनपुरके स्व० लाला जम्बूप्रसादजीके सुपुत्र रायसाहिब लाला प्रद्युम्नकुमारजीने अपने जिन-मन्दिरजीकी श्री जयधवलाजीकी प्रति मिलानके लिये प्रदान की। श्री स्याद्वाद महाविद्यालय काशीके अकलङ्क सरस्वती भवनके ग्रन्थोंका उपयोग विद्यालयके व्यवस्थापकोंके सौजन्यसे जयधवलाके सम्पादनमें हो सका है। तथा जैन सिद्धान्त भवन आराके पुस्तकाध्यक्ष श्री पं० नेमिचन्दजी ज्योतिषाचार्यके सौहार्दसे भवनसे सिद्धान्त ग्रन्थोंकी प्रतियां आदि प्राप्त होती रहती हैं, अतः उक्त सभी सज्जनोंका भी मैं आभारी हूँ।

नया संसार प्रेसके व्यवस्थापक पं० शिवनारायणजी उपाध्याय तथा उनके कर्मचारी भी धन्यवादके पात्र हैं जिन्होंने इस ग्रंथके मुद्रण में पूर्ण सहयोग दिया।

जयधवला कार्यालय
भदैनी, काशी
भाद्रपद कृष्णा १
वी० नि० सं० २४८१

कैलाशचन्द्र शास्त्री
मंत्री साहित्य विभाग
भा० दि० जैनसंघ



दानवीर सेठ भागचन्द्रजी डोंगरगढ़

चित्र परिचय

देशी बोलीमे 'भाग्य' को 'भाग' कहते हैं और जिनका भाग सराहने योग्य होता है उन्हें भागचन्द्र कहते हैं। डोंगरगढ़निवासी दानवीर सेठ भागचन्द्रजी ऐसे ही व्यक्तियोंमेंसे एक हैं। यह इसलिए नहीं कि वे आधुनिक साजसज्जावाले सुन्दर मकानमें रहते हैं, उनके यहाँ निरंतर दस-पाँच नौकर लगे रहते हैं और वहाँकी परिस्थितिके अनुरूप वे साधनसम्पन्न हैं बल्कि इसलिये कि उन्हे पुराने और नये जो भी साधन मिले हैं, अपनी परिस्थितिके अनुरूप वे उनका उपयोग लोकसेवा व सांस्कृतिक और सामाजिक कार्योंमें करना जानते हैं।

लगभग दस वर्ष पूर्व सेठ सा० से हमारी प्रथम भेंट हुई थी। उस समय वे मोटर अपघातसे पीड़ित हो अस्पतालमे पड़े हुए थे। सेठ सा०की छाती व सिरमें मुदी चोट आई थी, इसलिए उनके दाएँ-बाएँ कई परिचारक परिचर्यामे लगे हुए थे, डाक्टर कुरसी डालकर सिरहाने बैठा हुआ था और दस-पाँच नाते रिश्तेदार व मित्र दौड़धूप कर रहे थे। किसीको मिलने नहीं दिया जाता था। बात-चीत करना तो दूरकी बात थी। हमें केवल दूरसे देखनेभरका अवसर मिला था। हम चाहते भी नहीं थे कि ऐसी परिस्थितिमें उनसे किसी प्रकारकी बातचीत की जाय। किन्तु उनकी सतर्क आंखोंने हमें पहिचान लिया और डाक्टरके लाख मना करनेपर भी वे बोलनेसे अपने आपको न रोक सके। पासमें बुलाकर कहने लगे—'पण्डितजी आप आगये, अच्छा हुआ। हमारी सेवा स्वीकार किये बिना आप जा नहीं सकते। सिर्फ दो दिन रुकें। इतनेमें ही हम इस लायक हो जायँगे कि आपसे चन्द मिनट बातचीत कर सकें और आपके मुखसे धर्मके दो शब्द सुन सकें।'

सेठ सा० एक भावनाप्रधान उत्साही व्यापारकुशल व्यक्ति हैं। वे किसी विद्वान्, त्यागी या अतिथिको अपने घर आया हुआ देखकर खिल उठते हैं और सपत्नीक हर तरहसे उसका आदर-सत्कार करनेमे जुट जाते हैं। कभी कभी तो ऐसा भी देखा गया है कि वे इस आवभगतमे लगे रहनेके कारण उस दिन करने योग्य अन्य आवश्यक कार्योंको भी भूल जाते हैं। इस कारण उन्हें काफी क्षति भी उठानी पड़ती है।

सेठ सा० की मुख्य रुचिका विषय शिक्षा है। संस्कृत शिक्षा और छात्रवृत्ति पर गुप्त और प्रकाशरूपमे आप निरन्तर खर्च करते रहते हैं। रामटेक गुरुकुलके आप प्रधान आलम्बन हैं। एक मात्र इसीकी सेवाके उपलक्ष्यमे समाज द्वारा आप 'दानवीर' पदसे अलंकृत किये गये हैं। आप अपने गाँवमें एक हाइस्कूल खोलना चाहते थे। किन्तु हमारे यह कहने पर कि इस शिक्षापर खर्च करनेवाले बहुत हैं, आपको सांस्कृतिक और सामाजिक कार्योंकी ओर ही मुख्य रूपसे ध्यान देना चाहिये, सेठ सा० ने यह विचार त्याग दिया है।

इधर आपका ध्यान साहित्यिक सेवाकी ओर भी गया है। श्री ग० वर्णी जैन ग्रंथमालाको आप निरंतर सहायता करते रहते हैं। हम जब भी डोंगरगढ़ जाते हैं, खाली हाथ नहीं लौटते। यह भी नहीं कि हमे माँगना पड़ता हो। चलते समय हजार-पाँचसौ जो भी देना होता है, स्वेच्छासे उपस्थित कर देते हैं। यह पूछने पर कि इसे किस मदमें खर्च किया जाय, एक मात्र यही उत्तर मिलता है कि आपकी इच्छा।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैनसंघ एक पुरानी संस्था है। मुख्यरूपसे इसके सञ्चालक विद्वान् हैं। अब तक इस संस्थाने साहित्यसेवा और धर्मप्रचारके क्षेत्रमें जो सेवा की है और कर रही है वह किसीसे छिपी हुई नहीं है। शास्त्रार्थके वे दिन हमे आज भी याद आते हैं जब आर्यसमाजका

जोर था और जैनियोंको शास्त्रार्थके लिये सार्वजनिक रूपसे ललकारा जाता था। उस समय यही एक ऐसी संस्था थी जिसने आर्यसमाजियोंसे न केवल टक्कर ली, अपि तु अपने प्रचार और शास्त्रार्थके बलपर उनका सदाके लिये मुँह बन्द कर दिया और बल तोड़ दिया। ऐसी प्रसिद्ध संस्थाके वर्तमान स्थायी अध्यक्ष सेठ सा० ही है। आप इस पदका बड़ी सुन्दरतासे निर्वाह कर रहे हैं। इसके साथ आप श्री जयधवलाजीके प्रकाशनका भार भी सम्हाल रहे हैं। उसीके परिणामस्वरूप प्रस्तुत ग्रन्थका प्रकाशन हो रहा है।

सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रमें आपकी जो विशेषता है वह राजनैतिक और सार्वजनिक क्षेत्रमे भी देखनेको मिलती है। आप अपने क्षेत्रमें इतने अधिक लोकप्रिय हैं कि गरीब अमीर सभी आपकी सलाह लेने तथा उचित सहायता प्राप्त करनेके लिये आपके पास आते रहते हैं। कई वर्ष पूर्व आपकी इस लोकप्रियता और परोपकारी स्वभावके कारण आप खैरागढ़ राज्य और जनता द्वारा **'राज्यरत्न'** जैसी सम्मानित उपाधिसे विभूषित किये गये थे। जनता और सरकारमें आज भी आपका वही सम्मान है।

संयोगवश आपको जीवनसाथी भी आपके अनुरूप ही मिला है। बहिन नर्मदाबाई अपने ढंगकी एक ही महिलारत्न हैं। इनकी टक्करकी बहुत ही कम महिलाएँ समाजमें देखनेको मिलेंगी। आपके मुखपर प्रसन्नता और बोलीमें मिठास है। समय निकालकर धर्मशास्त्रके स्वाध्यायद्वारा आत्म-कल्याणमें लगे रहना आपका दैनंदिनका कार्य है। सेठ सा० जो भी लोकोपकारी कार्य करते हैं उन सबमें आपका पूरा सहयोग रहता है। फिर भी आपकी रुचिका मुख्य विषय आयुर्वेदिक औषधियोंका संग्रह कर और जो सम्भव हैं उन्हें स्वयं तैयार कर गरीब अमीर सबको समान भावसे वितरित करना है। चिकित्साशास्त्रका आपने सविधि अध्ययन किया है, अतएव आप स्वयं रोगियोंको देखने जाती हैं और आवश्यकता पड़ने पर दूसरे वैद्य वा डाक्टरकी भी सहायता लेती हैं। इनके इस कार्यमें सेठ सा० भी बड़ी रुचि रखते हैं और बहिन नर्मदाबाईको उत्साहित करते रहते हैं। तथा कभी कभी स्वयं भी इस कार्यमें जुट जाते हैं।

वर्तमान देश और समाजके लिये ऐसे सेवाभावी महानुभावोंकी बड़ी आवश्यकता है। हमारी मङ्गलकामना है कि यह दम्पति युगल चिरंजीवी हो और परोपकार जैसे महान् लोकोपकारी कार्यको करते हुए पुण्य और यशके भागी बने।

फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

विषय-सूची

स्थितिविभक्ति पु० १

शुद्धि

पृष्ठ २२७ के मूलकी ७ वीं पंक्ति इस पृष्ठकी प्रथम पंक्ति है।



कसायपाहुडस्स

ट्ठि दि वि ह त्ती

तदियो अत्थाहियारो



सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं

कसायपाहुडं

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

जयधवला

तत्थ

ट्ठिदिविहत्ती णाम विदिओ अत्थाहियारो



अंताइ-मज्झरहिया जाइ-जरा-मरणणंतपोरड्ढा।
संसारलया तमहं जेण च्छिण्णा जिणं वंदे ॥

जिन्होने आदि, मध्य और अन्तसे रहित तथा जाति, जरा और मरणरूपी अनन्त पोरोंसे व्याप्त संसाररूपी वेलको छेद दिया है उन जिनदेवको मैं (वीरसेन स्वामी) नमस्कार करता हूँ।

विशेषार्थ—यहां संसारको वेलकी उपमा दी है। वेलका आदि भी है, मध्य भी है और

❀ ट्ठिदिविहत्ती दुविहा, मूलपयडिट्ठिदिविहत्ती चेव उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्ती चेव ।

§ १. ट्ठिदिविहत्ति त्ति अहियारो किमट्ठमागओ ? पुव्वं पयडिविहत्तीए जाणाविदअट्ठावीसमोहकम्मसहावस्स सिस्सस्स तेसिं चेव अट्ठावीसमोहकम्माणं पवाहसरूवेण आदिविवज्जियाणमेगेगसमयपबद्धविसेसप्पणाए सादिसपज्जवसाणाणं जहण्णुक्कस्सट्ठिदीओ चोद्दस-मग्गण-ट्ठाणाणि अस्सिदूण परूवणट्ठं ट्ठिदिविहत्ती आगया । सा दुविहा मूलपयडिट्ठिदिविहत्तीउत्तरपयडिट्ठिदिविहत्तीभेदेण । तिविहा किण्ण होदि ? ण, मूलुत्तरपयडिट्ठिदिवदिरित्ताए अण्णिस्से पयडिट्ठिदीए अभावादो । णोकम्मपयडिरूव-रसादीणं ट्ठिदीणं ट्ठिदीओ अत्थि, ताओ एत्थ किण्ण उच्चंति ?

अन्त भी है तथा उसकी पोरें भी स्वल्प होती हैं, पर यह संसार ऐसी बेल है जो सन्तानक्रमसे अनादि कालसे चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा, अतः उसके आदि, मध्य और अन्तका निर्णय नहीं किया जा सकता है । तथा उसमें अनन्त जन्म, जरा और मरण होते रहते हैं । ऐसी संसाररूपी बेलको जिन जिनेन्द्रदेवने छेद दिया उन्हें मैं (वीरसेन स्वामी) नमस्कार करता हूँ । यहां प्रश्न होता है कि जिसके आदि, मध्य और अन्तका पता नहीं उसका छेद कैसे किया जा सकता है । समाधान यह है कि यद्यपि नाना जीवोंकी सन्तानकी अपेक्षा संसार आदि, मध्य और अन्तसे रहित है फिर भी कोई एक भव्य जीव उसका अन्त कर सकता है । इस प्रकार उक्त मंगल गाथामें वीरसेन स्वामीने दोनों प्रकारके संसारके स्वरूपका निर्देश कर दिया है ।

❀ स्थितिविभक्ति दो प्रकारकी है—मूलप्रकृति स्थितिविभक्ति और उत्तरप्रकृति स्थितिविभक्ति ।

§ १. शंका—स्थितिविभक्ति यह अधिकार किसलिये आया है ?

समाधान—पहले जिस शिष्यको प्रकृतिविभक्ति नामक अधिकारके द्वारा मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके स्वभावका ज्ञान करा दिया है उसे प्रवाहकी अपेक्षा आदिरहित और प्रत्येक समयमें बंधनेवाले एक एक समयप्रबद्धविशेषकी अपेक्षा सादि तथा सान्त उन्हीं मोहनीयकी अट्ठाईस कर्मप्रकृतियोंकी चौदह मार्गणाओंके आश्रयसे जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिका कथन करनेके लिये यह स्थितिविभक्ति नामक अधिकार आया है ।

वह स्थितिविभक्ति मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिके भेदसे दो प्रकारकी है ।

शंका—वह तीन प्रकारकी क्यों नहीं होती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि; मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिको छोड़कर प्रकृतियोंकी अन्य स्थिति नहीं पाई जाती है, अतः स्थितिविभक्ति तीन प्रकारकी नहीं होती ।

शंका—नोकर्म प्रकृतियोंके रूप और रसादिककी स्थितियाँ पाई जाती हैं, उनका यहाँ

ण, कम्मपयडिट्ठिदिपरूवणाए पंकताए णोकम्मट्ठिदिपरूवणाए असंभवादो।

§ २. का मूलपयडिट्ठिदी णाम ? अट्ठावीसपयडीणं पयडिसमाणत्तणेण एयत्तमुवगयाणं ट्ठिदिविसेसा मूलपयडिट्ठिदी। कथं पुधभूदट्ठिदीणमेयत्तं ? सरिसत्तणेण पयडीए। ण च पयडिसरिसत्तमसिद्धं, उप्पण्णमोहपयडीए पढमसमयप्पहुडि अविणासादो मोहपयडीसरूवेणेव अवट्ठाणुवलंभादो। मोहपयडिट्ठिदीए सामण्णाए आदिविवज्जियाए कथं परूवणा कीरदे ? ण, पवाहसरूवेण अणादिमोहपयडिट्ठिदिं मोत्तूण एगसमयम्मि ढुक्कमोहासेसपयडीणं मोहपयडित्तणेण एयत्तमुवगयाणं ट्ठिदीए परूवणा कीरदि त्ति दोसाभावादो। एवं संते मूलपयडिट्ठिदि त्ति कथं जुज्जदे ? ण, सव्वेसिं समयपबद्धाणं पयडिसमूहस्स मूलपयडित्तब्भुवगमाभावादो। का पुण

कथन क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कर्मप्रकृतियोंकी स्थितिकी प्ररूपणा करते समय नोकर्मकी स्थितिकी प्ररूपणा करना असंभव है, अतः यहाँ नोकर्मप्रकृतियोंकी स्थितियोंका ग्रहण नहीं किया है।

§ २. **शंका**—मूलप्रकृतिस्थिति किसे कहते हैं ?

समाधान—प्रकृति सामान्यकी अपेक्षा एकत्वको प्राप्त हुई अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जो स्थितिविशेष है उसे मूलप्रकृतिस्थिति कहते हैं।

शंका—जब कि सब प्रकृतियोंकी स्थितियाँ अलग अलग हैं, तब उनमें एकत्व कैसे हो सकता है ?

समाधान—प्रकृतिसामान्यकी अपेक्षा सभी प्रकृतियाँ एक हैं, अतः उनकी स्थितियोंमे एकत्व माननेमे कोई बाधा नहीं आती।

यदि कहा जाय कि प्रकृतियोंकी सदृशता असिद्ध है सो भी बात नहीं है, क्योंकि मोहप्रकृतिके उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर जब तक उसका विनाश नहीं होता तब तक उसका मोहप्रकृतिरूपसे ही अवस्थान पाया जाता है, इसलिये उनमें सदृशता माननेमे कोई बाधा नहीं आती है।

शंका—मोहकर्मकी सामान्य स्थिति आदिरहित अर्थात् अनादि है, अतः उसकी प्ररूपणा कैसे की जा सकती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रवाहरूपसे अनादिकालीन मोहकर्मकी स्थितिको छोड़कर एक समयमे जो मोहनीय कर्मकी समस्त प्रकृतियां बन्धको प्राप्त होती हैं जो कि मोहप्रकृति सामान्यकी अपेक्षा एक हैं, उनकी स्थितिकी यहाँ प्ररूपणा की गई है, इसलिये कोई दोष नहीं है।

शंका—यदि ऐसा है तो मूलप्रकृतिस्थिति कैसे बन सकती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि संपूर्ण समयप्रबद्धोंका जो प्रकृतिसमूह है उसे यहां मूलप्रकृतिरूपसे स्वीकार नहीं किया है।

शंका—तो फिर यहां मूलप्रकृति पदसे किसका ग्रहण किया है ?

एत्थ मूलपयडी ? एगसमयम्मि बद्धासेसमोहकम्मक्खंधाणं पयडिसमूहो मूलपयडी णाम। तिस्से ट्ठिदी मूलपयडिट्ठिदी। पुध पुध अट्ठावीसमोहपयडीणं ट्ठिदीओ उत्तर-पयडिट्ठिदी णाम। एवं ट्ठिदिविहत्ती दुविहा चेव होदि।

§ ३. उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्तीए परूविदाए मूलपयडिट्ठिदिविहत्ती णियमेणेव जाणिज्जदि तेण उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्ती चेव वत्तव्वा ण मूलपयडिट्ठिदिविहत्ती, तत्थ फलाभावादो। ण, दव्वट्ठियपज्जवट्ठियणयाणुग्गहट्ठं तप्परूवणादो। एत्थतण वे वि 'च' सद्दा समुच्चए दट्ठव्वा। एगेणेव 'च' सद्देण समुच्चयट्ठावगमादो विदिय 'च' सद्दो अणत्थओ त्ति णावणेदुं सक्किज्जदे। अप्पिदेगणयं पडुच्च परूवणाए कीरमाणाए मूलपयडिट्ठिदिविहत्ती उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्ती च उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्ती मूलपयडिट्ठिदिविहत्ती चेदि एग'च'सद्दुच्चारणं मोत्तूण विदिय (च) सद्दुच्चा-रणाए अभावेण पुणरुत्तदोसाभावादो। 'एव'सद्दो इदिसद्दत्थे दट्ठव्वो; अवहार-णत्थस्स एत्थासंभवादो।

समाधान—एक समयमें बंधे हुए संपूर्ण मोहनीय कर्मके स्कन्धोंके प्रकृतिसमूहका यहां मूलप्रकृतिरूपसे ग्रहण किया है। उस मूलप्रकृतिकी स्थितिको मूलप्रकृतिस्थिति कहते हैं। तथा मोहनीयकी पृथक् पृथक् अट्ठाईस प्रकृतियोकी स्थितियोंको उत्तरप्रकृतिस्थिति कहते हैं। इस प्रकार स्थितिविभक्ति दो प्रकारकी ही होती है।

§ ३. शंका—उत्तर प्रकृतिस्थितिविभक्तिका कथन करनेपर मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिका नियमसे ज्ञान हो जाता है, अतः उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिका ही कथन करना चाहिये, मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिका नहीं, क्योंकि मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिका कथन करनेमें कोई फल नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयका अर्थात् द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयवाले शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिये दोनों स्थितियोंका कथन किया है।

उपर्युक्त सूत्रमें आये हुए दोनो ही 'च' शब्द समुच्चयरूप अर्थमें जानना चाहिये। एक ही 'च' शब्दसे समुच्चयरूप अर्थका ज्ञान हो जाता है, अतः दूसरा 'च' शब्द अनर्थक है इसलिये उसे निकाला नहीं जा सकता है क्योकि अर्पित एक नयकी अपेक्षा कथन करनेपर द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा 'मूलपयडिट्ठिदिविहत्ती उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्ती च' इस प्रकार और पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा 'उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्ती मूलपयडिट्ठिदिविहत्ती च' इस प्रकार प्राप्त होता है अतः एक 'च' शब्द के उच्चारणके सिवाय दूसरे 'च' शब्दका उच्चारण नहीं रहता, अतः पुनरुक्त दोष नहीं प्राप्त होता है। सूत्रमें जो 'एव' शब्द आया है वह 'इति' शब्दके अर्थमें जानना चाहिये, क्योकि यहां उसका अवधारणरूप अर्थ नहीं हो सकता है।

विशेषार्थ—यहां स्थितिविभक्तिके दो भेद किये गये है—मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्ति। 'मूलप्रकृति' पदसे अवान्तर भेदोंकी गणना न कर सामान्य मोहनीय कर्मका ग्रहण किया है और 'उत्तरप्रकृति' पदसे मोहनीयके प्रत्येक भेदका पृथक् पृथक्

❀ तत्थ अट्ठपदं एगा ट्ठिदी ट्ठिदिविहत्ती, अणेगाओ ट्ठिदीओ ट्ठिदिविहत्ती।

§ ४. तत्थ दोण्हं पि ट्ठिदिविहत्तीणं पुव्वुत्ताणमेदमट्ठपदं उच्चदे। तं जहा, एगा ट्ठिदी ट्ठिदिविहत्ती। विहत्ती भेदो पुधभावो त्ति एयट्ठो। ट्ठिदीए विहत्ती ट्ठिदिविहत्ती जेणेवं[1] ट्ठिदिविहत्तीसद्दो ट्ठिदिभेदपरूवओ, तेण मूलपयडिट्ठिदीए विहत्तित्तं णत्थि, एक्किस्से भेदाभावादो। भावे वा ण सा मूलपयडिट्ठिदी, एक्किस्से पयडीए ट्ठिदिबहुत्तविरोहादो त्ति उत्ते एगा ट्ठिदी ट्ठिदिविहत्ति त्ति परिहारो परूविदो। कधमेक्किस्से ट्ठिदीए णाणत्तं? ण, एक्किस्से वि ट्ठिदीए पदेसभेदेण पयडिभेदेण च णाणत्तुवलंभादो। ण च पयडिपदेसभेदो ट्ठिदिभेदस्स कारणं ण होदि; भिण्ण-

ग्रहण किया है। यद्यपि प्रवाह रूपसे मोहनीय कर्म अनादि है पर यहां प्रत्येक समयमें जो समयप्रबद्ध प्राप्त होता है उसकी स्थिति ली गई है इसलिए स्थितिविभक्तिकी अवधि बन जाती है। उसमें जो प्रत्येक भेदकी विवक्षा किये बिना सामान्य रूपसे मोहनीयकी स्थिति प्राप्त होती है वह मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति है और प्रत्येक भेदकी जो स्थिति प्राप्त होती है वह उत्तरप्रकृति-स्थितिविभक्ति है। यहां सामान्य और विशेषरूपसे मोहनीयकी स्थितिका ही ग्रहण किया है इसलिए वह दो प्रकारकी बतलाई है। नोकर्मका प्रकरण न होनेसे वहां उसकी स्थितिका ग्रहण नहीं किया है। सूत्रमें दो 'च' शब्द आये हैं सो वे दोनो ही समुच्चयार्थक जानने चाहिए। प्रथम 'च' शब्द द्वारा मुख्यरूपसे मूलप्रकृति स्थितिविभक्तिका और गौणरूपसे उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्ति-का समुच्चय होता है। तथा दूसरे 'च' शब्द द्वारा मुख्यरूपसे उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिका और गौणरूपसे मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिका समुच्चय होता है। शेष विवेचन स्पष्ट ही है।

❀ अब उन दोनों स्थितिविभक्तियोंके अर्थपद्को कहते हैं—एक स्थिति स्थितिविभक्ति है और अनेक स्थितियाँ स्थितिविभक्ति हैं।

§ ४. अब पूर्वोक्त दोनों ही स्थितिविभक्तियोंके इस अर्थपदका खुलासा करते हैं। जो इस प्रकार है—एक स्थिति स्थितिविभक्ति है। विभक्ति, भेद और पृथग्भाव ये तीनों एकार्थवाची शब्द हैं। और स्थितिकी विभक्ति स्थितिविभक्ति कही जाती है। यतः स्थितिविभक्ति शब्द स्थितिभेदका कथन करता है, और इसलिये मूलप्रकृतिकी स्थितिमें विभक्तियां नहीं बनती है, क्योंकि एकमें भेद नहीं हो सकता। यदि एकमें भेद माना जाय तो वह मूलप्रकृतिस्थिति नहीं ठहरती, क्योंकि एक प्रकृतिकी अनेक स्थितियां माननेमें विरोध आता है इस प्रकार आक्षेप करने पर 'एगा ट्ठिदी ट्ठिदिविहत्ती' इस प्रकार कहकर उस आक्षेपका परिहार किया है।

शंका—एक स्थितिमें नानात्व कैसे हो सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि एक स्थितिमें भी प्रदेशभेद और प्रकृतिभेदकी अपेक्षा नानात्व पाया जाता है।

यदि कहा जाय कि प्रकृतिभेद और प्रदेशभेद स्थितिभेदका कारण नहीं है सो भी बात नहीं है, क्योंकि भिन्न भिन्न प्रकृति और प्रदेशोंमें पाई जानेवाली स्थितिको एक माननेमें विरोध

१ जेणेवं

पयडिपदेसट्ठिदट्ठिदीणमेयत्तविरोहादो । ण च मूलपयडिट्ठिदीए पयडिभेदो असिद्धो, सगंतोलीणसयलुत्तरपयडिभेदाए तिस्से तदविरोहादो विवक्खियमोह० मूलपयडिट्ठिदीए सेसणाणावरणादिमूलपयडिट्ठिदीहिंतो भेदोववत्तीदो वा पयदत्थसमत्थणा कायव्वा ।

§ ५. अथवा ण एत्थ मूलपयडिट्ठिदीए एयत्तमत्थि, जहण्णट्ठिदिप्पहुडि जाव उक्कस्सट्ठिदि त्ति सव्वासिं ट्ठिदीणं मूलपयडिट्ठिदि त्ति गहणादो । एवं घेप्पदि त्ति कधं णव्वदे ? उवरि उक्कस्साणुक्कस्सजहण्णाजहण्णट्ठिदीणं सामित्तपरूवणादो मूलपयडिट्ठिदिट्ठाणपरूवणादो च । तेण पयडिसरूवेण एगा ट्ठिदी सगट्ठिदीभेदं पडुच्च ट्ठिदिविहत्ती होदि त्ति सिद्धं । जदि मूलपयडीए ट्ठिदिविहत्ती अत्थि तो उत्तरपयडिट्ठिदीणं णत्थि विहत्ती मूलुत्तरपयडीणं परोप्परविरोहादो त्ति वुत्ते अणेगाओ ट्ठिदीओ ट्ठिदिविहत्ती इदि परिहारो वुत्तो । जदि एक्किस्से पयडीए ट्ठिदीणं सगट्ठिदिविसेसं पडुच्च भेदो होदि तो उत्तरपयडिट्ठिदीणं सगपरपयडीट्ठिदिभेदं पडुच्च ट्ठिदिभेदो किण्ण जायदे विरोहादो ।

आता है । यदि कहा जाय कि मूलप्रकृतिस्थितिमें प्रकृतिभेद असिद्ध है, सो भी बात नहीं है, क्योंकि मूलप्रकृतिस्थितिके भीतर सब उत्तर प्रकृतियोंके भेद गर्भित हैं, अतः उसमें प्रकृतिभेदके माननेमें कोई विरोध नहीं आता । अथवा, विवक्षित मोहनीयकी मूलप्रकृतिस्थितिका शेष ज्ञानावरणादि मूलप्रकृतिस्थितियोंसे भेद पाया जाता है, इसलिये इस दृष्टिसे भी प्रकृत अर्थका समर्थन कर लेना चाहिये ।

§ ५. अथवा प्रकृतमें मूलप्रकृतिस्थितिका एकत्व नहीं लिया है, क्योंकि जघन्य स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थिति तक सभी स्थितियोंका 'मूलप्रकृतिस्थिति' पदके द्वारा ग्रहण किया है इसलिये मूलप्रकृतिके साथ विभक्ति शब्दका प्रयोग बन जाता है ।

शंका–मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति पदके द्वारा जघन्य स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थिति तक सभी स्थितियोका ग्रहण किया है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान–आगे उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितियोंके स्वामीका कथन किया है और मूलप्रकृतिके स्थितिस्थानोंका भी कथन किया है, इससे जाना जाता है कि यहां मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति पदके द्वारा जघन्य स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थिति तक सभी स्थितियोंका ग्रहण किया है ।

इसलिये प्रकृतिरूपसे एक स्थिति अपने स्थितिभेदोंकी अपेक्षा स्थितिविभक्ति होती है यह सिद्ध होता है ।

यदि मूलप्रकृतिमें स्थितिविभक्ति है तो उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितियोंमें भेद नहीं रह सकता है क्योंकि मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतियोंमें परस्पर विरोध है इस प्रकारका आक्षेप करने पर 'अणेगाओ ट्ठिदिओ ट्ठिदिविहत्ती' इस प्रकार परिहार कहा है ।

यदि एक प्रकृतिकी स्थितियोंमें अपने स्थितिविशेषकी अपेक्षा भेद हो सकता है तो उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितियोंमें अपने स्थितिभेदकी अपेक्षा और अपनेसे भिन्न अन्य प्रकृतियोंकी

❀ तत्थ अणियोगद्दाराणि।

§ ६ तत्थ मूलपयडिट्ठिदिविहत्तीए अणियोगद्दाराणि वत्तव्वाणि अण्णहा परूवणाणुववत्तीदो। किमणिओगद्दारं णाम? अहियारो भण्णमाणत्थस्स अवगमोवाओ।

❀ सव्वविहत्ती णोसव्वविहत्ती उक्कस्सविहत्ती अणुक्कस्सविहत्ती जहण्णविहत्ती अजहण्णविहत्ती सादियविहत्ती अणादियविहत्ती धुवविहत्ती अद्धुवविहत्ती एयजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंग-

स्थितियोंके भेदकी अपेक्षा स्थितिभेद क्यों नहीं हो सकता है अर्थात् हो सकता है क्योंकि एक प्रकृतिमें अपने स्थितिविशेषकी अपेक्षा भेद मानते हुए उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितियोंमें अपने स्थिति भेदकी अपेक्षा और अपनेसे भिन्न अन्य प्रकृतियोकी स्थितियोके भेदकी अपेक्षा यदि स्थिति भेद न माना जाय तो विरोध आता है।

विशेषार्थ—प्रश्न यह है कि एक स्थितिको स्थितिविभक्ति पदके द्वारा कैसे सम्बोधित कर सकते हैं, क्योंकि जो स्थिति स्वरूपतः एक है उसमें भेदकी कल्पना नहीं की जा सकती है। इसका कई प्रकारसे समाधान किया है। प्रथम तो यह बतलाया है कि स्थिति एक हो कर भी उसमे प्रकृति और प्रदेशोंकी अपेक्षा भेद सम्भव है, इसलिए एक स्थितिको भी स्थितिविभक्ति कहा है। फिर भी यह समाधान स्थितिकी मुख्यतासे नहीं हुआ इसलिए अन्य प्रकारसे इस प्रश्नका समाधान किया गया है। इसमे बतलाया है कि कर्म आठ हैं और उनमेसे यहां मोहनीयकी मूलप्रकृतिस्थिति विवक्षित है। यतः वह अन्य ज्ञानावरणादिकी मूलप्रकृतिस्थितिसे भिन्न है इसलिए यहां मूलप्रकृतिस्थितिके साथ विभक्ति पद जोड़ा गया है। इस प्रकार यह शंकाका उत्तर तो हो जाता है पर इससे एक स्थितिका स्वरूपगत भेद समझमे नहीं आता। इसलिए आगे इसे प्रकट करनेके लिए चौथे प्रकारसे समाधान किया गया है। इसमें बतलाया है कि जब मूलप्रकृतिस्थितिमे उत्कृष्ट आदि भेद सम्भव हैं तब उसके साथ विभक्ति पद जोड़नेमें क्या बाधा है। इस प्रकार एक स्थिति स्थितिविभक्ति है और अनेक स्थिति स्थितिविभक्ति है यह सिद्ध होता है।

❀ अब मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिके विषयमें अनुयोगद्वार कहते हैं।

§ ६. मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिके विषयमे अनुयोगद्वार कहना चाहिये, अन्यथा उसकी प्ररूपणा नहीं हो सकती है।

शंका—अनुयोगद्वार किसे कहते हैं?

समाधान—कहे जानेवाले अर्थके जाननेके उपायभूत अधिकारको अनुयोगद्वार कहते हैं।

❀ यथा—सर्वविभक्ति, नोसर्वविभक्ति, उत्कृष्टविभक्ति, अनुत्कृष्टविभक्ति, जघन्यविभक्ति, अजघन्यविभक्ति, सादिविभक्ति, अनादिविभक्ति, ध्रुवविभक्ति, अध्रुवविभक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, और अन्तर तथा नाना जीवों

विचओ परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं सण्णियासो अप्पाबहुअं च भुजगारो पदणिक्खेवो वड्ढी च।

§ ७. एदाणि मूलपयडिट्ठिदिविहत्तीए अणियोगद्दाराणि। एत्थ अंतिल्लो 'च'सद्दो उत्तसमुच्चयट्ठो। अप्पाबहुअअंते ट्ठिदो 'च'सद्दो अवुत्तसमुच्चयट्ठो। तेण एदेसु अणियोगद्दारेसु अवुत्तस्स अद्धाछेदाणिओगद्दारस्स भागाभागभावाणिओगद्दाराणं च गहणं कदं। एत्थ मूलपयडिट्ठिदिविहत्तीए जदि वि सण्णियासो ण संभवइ तो वि उत्तो; उत्तरपयडीसु तस्स संभवदंसणादो। एत्थ मोत्तूण तत्थेव किण्ण वुच्चदे? सच्चं, तत्थ चेव वुत्तो ण एत्थ। जदि एवं, तो किण्णावणिज्जदे? ण, मूलुत्तरपयडिट्ठिदिविहत्तीणं साहारणभावेण परूविदाणिओगद्दारेसु ट्ठिदसण्णियासस्स अवणयणुवायाभावादो।

❀ एदाणि चेव उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्तीए कादव्वाणि।

§ ८. सुगममेदं;अणूणाहियाणमेदेसिं तत्थ संभवादो? संपहि एदेसिमणियोगद्दारेहि मूलपयडिट्ठिदिविहत्ती वुच्चदे। तं जहा,अद्धाच्छेदो दुविहो–जहण्णओ उक्कस्सओ

की अपेक्षा भंगविचय, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, सन्निकर्ष और अल्पबहुत्व तथा भुजगार, पदनिक्षेप और वृद्धि।

§ ७. ये मूलप्रकृति स्थिति विभक्तिके विषयमें अनुयोगद्वार होते हैं। इस सूत्रमें जो अन्तमें 'च' शब्द आया है वह उक्त अर्थके समुच्चयके लिए आया है। तथा अल्पबहुत्व पदके अन्तमें जो 'च' शब्द स्थित है वह अनुक्त अर्थके समुच्चयके लिए आया है, इसलिए इस 'च' शब्दके द्वारा इन उपर्युक्त अनुयोगद्वारोंमें अनुक्त अद्धाच्छेद अनुयोगद्वार तथा भागाभाग और भाव अनुयोग द्वारोंका ग्रहण किया गया है।

यद्यपि यहाँ मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिमें सन्निकर्ष अनुयोगद्वार सम्भव नहीं है तो भी वह यहाँ पर कहा गया है, क्योंकि उत्तर प्रकृतियोंमें उसकी सम्भावना देखी जाती है।

शंका–सन्निकर्ष अनुयोगद्वारको यहाँ न कह कर वहीं उत्तर प्रकृतियों के प्रकरणमें क्यों नहीं कहा है?

समाधान–यह ठीक है, क्योंकि सन्निकर्ष अनुयोगद्वारको वहीं उत्तर प्रकृतियोंके प्रकरणमें ही कहा है यहाँ मूल प्रकृतिके प्रकरणमें नहीं।

शंका–यदि ऐसा है तो यहाँसे उसे क्यों नहीं अलग कर दिया जाता है?

समाधान–नहीं, क्योंकि मूलप्रकृतिस्थितिविभक्ति और उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्ति इन दोनोंके विषयमें साधारणरूपसे ये अनुयोगद्वार कहे गये हैं, इसलिये इनमें स्थित सन्निकर्षको अलग करनेका कोई कारण नहीं है।

❀ उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्तिके विषयमें ये ही अनुयोगद्वार कहने चाहिये।

§ ८. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि न्यूनता और अधिकतासे रहित ये सभी अनुयोगद्वार उत्तर प्रकृतिस्थितिविभक्तिके विषयमें संभव हैं।

अब इन अनुयोगद्वारोंके द्वारा मूलप्रकृतिस्थितिविभक्तिका कथन करते हैं। यथा—जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे अद्धाच्छेद दो प्रकारका है।

च। बहुसु अणिओगद्दारेसु संतेसु अद्धाछेदो चेव पढमं किमट्ठं वुच्चदे ? ण, अद्धाछेदे अणवगए संते उवरिमअहियारपरूविज्जमाणत्थाणमवगमाणुववत्तीदो।

§ ९. उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोहणीयउक्कस्सट्ठिदिविहत्ती केत्तिया ? सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ पडिवुण्णाओ। कुदो ? अकम्मसरूवेण ट्ठिदा कम्मइयवग्गणक्खंधा मिच्छत्तादिपच्चएण मिच्छत्तकम्मसरूवेण परिणदसमए चेव जीवेण सह बंधमागदा सत्तवाससहस्साबाधं मोत्तूण सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीसु जहाकमेण णिसित्ता सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्तकालं कम्मभावेणच्छिय पुणो तेसिमकम्मभावेण गमणुवलंभादो। एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय-मणुस्सतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालिय०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद-चत्तारि-कसाय-मदिसुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचलेस्सा०-भवसिद्धि०-अभव०-मिच्छाइट्ठि०-सण्णि-आहारि त्ति।

शंका—बहुतसे अनुयोगद्वारोंके रहते हुए सबसे पहले अद्धाच्छेदका ही कथन क्यों किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अद्धाच्छेदके अज्ञात रहनेपर आगेके अधिकारोंके द्वारा कहे जानेवाले अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है। अतः सबसे पहले अद्धाच्छेदका कथन किया जा रहा है।

§ ९. उत्कृष्ट अद्धाच्छेदका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति कितनी है ? पूरी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है; क्योंकि जो कार्मणवर्गणाओंके स्कन्ध अकर्मरूपसे स्थित हैं वे मिथ्यात्व आदिके निमित्तसे मिथ्यात्व कर्मरूपसे परिणत होनेके समयमें ही जीवके साथ बन्धको प्राप्त होकर सात हजार वर्षप्रमाण आबाधा कालसे कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोंके समयोंमें यथाक्रमसे निषेकभावको प्राप्त हो जाते हैं और सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर कालतक कर्मरूपसे रहकर पुनः वे अकर्म भावको प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, योनिमती तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यिणी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि पाँच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—बन्धकालमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तरकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण प्राप्त होती है, अतः ओघसे मिथ्यात्वकी स्थितिका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर कहा है। आगे और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं वे सब संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त अवस्थाके रहते हुए सम्भव हैं और उनके मिथ्यात्व गुणस्थानके सद्भावमें मिथ्यात्वका यह उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव है इसीलिये इनके कथनको ओघके समान कहा है। शुक्ललेश्यामें संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त अवस्था और मिथ्यात्व गुणस्थान भी होता है परन्तु शुक्ललेश्यामें अन्तःकोटाकोटीसे अधिक

§ १० पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० मोह० उक्क० सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ अंतोमुहुत्तूणाओ । एवं मणुसअपज्ज०–बादरेइंदियअपज्जत्त–सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त–सव्वविगलिंदिय-पंचि०अपज्ज०–बादरपुढवि०अपज्ज०–बादरआउ०अपज्ज०-बादरवणप्फदि०पत्तेयअपज्ज०–तेउ-वाउ०-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदि०-पज्जत्तापज्जत्त-सव्वणिगोद-तसअपज्ज०-आभिणि०–सुद०-ओहि०-ओहिदंस०--सुक्क–सम्मादिट्ठि-वेदग०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति ।

§ ११ आणदादि जाव सव्वट्ठ त्ति मोह० उक्क० अद्धच्छेदो अंतोकोडाकोडीए । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०–अकसा०-मणपज्ज०-संजद०–सामाइयच्छेदो०–

स्थिति नहीं बंधती अतः उसको यहाँपर नहीं ग्रहण किया है और इसी कारण आनतादि उपरिम विमानोंको भी छोड़ दिया है।

§१०. पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके मोहनीय कर्मकी स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त. अग्निकायिक, वायुकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सब निगोद, त्रस अपर्याप्त, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जिस मनुष्य या तिर्यंचने सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिका बन्ध किया वह यदि मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होता है तो अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् ही उत्पन्न हो सकता है इसके पहले नहीं, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तके मोहनीयकी स्थितिका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर ही प्राप्त होता है अधिक नहीं। इसके सिवा और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी मोहनीयका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद इसी प्रकार जानना चाहिए, क्योंकि मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव अन्तर्मुहूर्तके पहले उस उस मार्गणास्थानको नहीं प्राप्त होता है। सादि मिथ्यादृष्टि सात प्रकृतिकी सत्तावाले जिसने मोहनीयका उत्कृष्ट बंध किया है वह स्थिति कांडक घात किये बिना वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है अतः उस सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टिके मोहनीयका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर पाया जाता है। इसी प्रकार मिश्र गुणस्थानमें भी जानना चाहिए।

§११. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके मोहनीयकी स्थितिका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-

परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-खइय०-उवसम०-सासणसम्मादिट्ठि त्ति।

§ १२ एइंदिएसु मोह० उक्क० अद्धच्छेदो० सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ समयूणाओ। एवं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्ज०-बादरपुढवि०-बादरपुढविपज्ज०-बादरआउ०--बादरआउपज्ज०--बादरवणप्फदिपत्तेय०--बादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज०--ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०--कम्मइय०-असण्णि-अणाहारि त्ति।

एवमुक्कस्सओ अद्धाच्छेदो समत्तो।

विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत, यथाख्यातसयत, संयतासंयत, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोके जानना चाहिए।

विशेषार्थ--नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर,विमानोमें तो सकलसंयमी सम्यग्दृष्टि ही पैदा होता है। किन्तु आनतादि चार कल्पोंमें और नौ ग्रैवयकमें मिथ्यादृष्टि जीव भी उत्पन्न हो सकता है। पर ऐसा जीव द्रव्यलिंगी मुनि संयतासंयत अवश्य होगा और ऐसे जीवके कर्मोंकी स्थिति अन्तः कोड़ीकोड़ी सागरसे अधिक नहीं पाई जाती है। तथा आनतादिकमें उत्पन्न होनेके पश्चात् भी इसके स्थितिसत्त्वसे कम स्थितिवाले कर्मका ही बन्ध होता है, अतः आनतादिकमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अद्धाच्छेद अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर कहा है। इनके सिवा और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अद्धाच्छेद अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर घटित कर लेना चाहिए। यद्यपि इनमे कई ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिबन्ध नहीं होता पर प्राक्तन सत्त्वकी अपेक्षा वहां भी यह अद्धाच्छेद उपलब्ध हो जाता है।

§१२. एकेन्द्रियोमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अद्धाच्छेद एक समय कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर पृथ्वी कायिक, बादर पृथिवी कायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, असंज्ञी और अनाहारक जीवोके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—जो देव मोहनीयकी सत्तर कोड़ाकोड़ी प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके और दूसरे समयमे मरकर एकेन्द्रियादिकमे उत्पन्न होते हैं उन एकेन्द्रियादिकके मोहनीयकी स्थितिका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद एक समय कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर पाया जाता है। इसी प्रकार इस अपेक्षासे असंज्ञियोके मोहनीयकी स्थितिका एक समय कम सत्तर कोड़ाकोड़ी प्रमाण अद्धाच्छेद कहना चाहिये। किन्तु औदारिकमिश्रकाययोगियोमें उत्कृष्ट अद्धाच्छेदका कथन करते समय देव और नरक पर्यायसे तिर्यंचोमे उत्पन्न कराकर कहना चाहिये। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमें उत्कृष्ट अद्धाच्छेदका कथन करते समय मनुष्य और तिर्यंच पर्यायसे नारकियोमें उत्पन्न कराकर कहना चाहिये। कार्मणकाययोगी और अनाहारकोंमे उत्कृष्ट अद्धाच्छेदका कथन करते समय चारो गतिके जीवोकी अपेक्षा कहना चाहिये, क्योकि जब विवक्षित गतिके जीव भवके अन्तमे मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके और मरकर औदारिकमिश्रकाययोगी आदि होते हैं तब उनके मोहनीयकी स्थितिका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद एक समय कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर देखा जाता है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अद्धाच्छेद समाप्त हुआ।

§ १३ जहण्णअद्धाछेदाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० जहण्णिया अद्धा केत्तिया ? एगा ट्ठिदी एगसमइया। एवं मणुसतिय-पंचिंदिय०-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०--पंचवचि०--कायजोगि--ओरालि०-अवगद०-लोभक०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-सुहुमसांपरा०-संजद-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक्क०-भवसिद्धि०-सम्मादि०-खइय०-सण्णि०-आहारि त्ति।

§ १४ आदेसेण णेरइएसु मोह० सागरोवमसहस्सस्स सत्तसत्तभागा पलिदो-वमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणया। एवं पढमाए पुढवीए पंचिंदियतिरिक्ख०-पंचि०-तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणी-पंचि०तिरि०अपज्ज-मणुसअपज्ज० [देव-] भवण०-वाण०-पंचिंदियअपज्ज० वत्तव्वं।

§ १५. विदियादि जाव सत्तमि त्ति मोह० अंतोकोडाकोडीए। एवं

§१३. जघन्य अद्धाच्छेदानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयका जघन्यकाल कितना है ? एक समयवाली एक स्थितिप्रमाण जघन्यकाल है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, अपगतवेदी, लोभकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी सूक्ष्म-सांपरायिक संयत, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्य-ग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—जो जीव क्षपकश्रेणीपर आरोहणकर सूक्ष्मसांपरायके अन्तिम समयमें स्थित रहता है उसके मोहनीयका एक समयवाला एक स्थितिप्रमाण अद्धाच्छेद उपलब्ध होता है यहां अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें क्षपकश्रेणीकी प्राप्ति सम्भव है इसलिये इनमें मोहनीयका अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है।

§१४. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमें से पल्योपमके संख्यातवें भाग कम सात भागप्रमाण होती है। इसी प्रकार पहली पृथ्वीके जीवोंके तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त, मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, देव, भवनवासी व्यन्तर और पंचेन्द्रिय लब्ध्य-पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—असंज्ञी पंचेन्द्रियके मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पल्यके संख्यातवें भाग कम हजार सागर प्रमाण होता है और यह जीव सामान्यसे नारकियोंमें, प्रथम पृथ्वीके नारकियोंमें, देवोंमें, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें तथा मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मरकर उत्पन्न हो सकता है इसलिए तो इन मार्गणाओंमें मोहनीयका जघन्य अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है। मात्र ऐसे असंज्ञी जीवको इनमें उत्पन्न करानेके पहले प्राक्तन सत्त्व इससे अधिक नहीं रखना चाहिए। तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च आदि चार अवस्थावाला असंज्ञी पंचेन्द्रिय भी होता है इसलिए इनमें भी मोहनीयका जघन्य अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है।

§१५. दूसरी पृथ्वीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति

जोदिसियादि जाव सव्वह० वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-अकसाय०-विहंग०-परिहार०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-तेउ०-पम्म०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० वक्तव्वं ।

§ १६. तिरिक्ख० मोह० जह० सागरोवम सत्तसत्तभागा पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणया । एवं सव्वएइंदिय-पंचकाय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण०-असंजद-तिण्णिले०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारि त्ति । सव्वविगलिंदिय० मोह० जह० सागरोवमपणुवीसाए सागरोवमपण्णासाए सागरोवमसदस्स सत्त सत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणया । तसअपज्ज० बेइंदियअपज्जत्तभंगो ।

§ १७. वेदाणुवादेण इत्थि०-णवुंस० मोह० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर होती है । इसी प्रकार ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी आहारकमिश्र काययोगी अकषायी, विभंगज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—यहाँ जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें स्थितिबन्ध और प्राक्तन सत्त्व अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण भी सम्भव होनेसे इनमें मोहनीयका जघन्य अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है ।

§१६. तिर्यञ्चोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम सात भागप्रमाण है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पाँचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिए । सभी विकलेन्द्रिय जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्रमसे पच्चीस, पचास और सौ सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भाग कम सात भाग प्रमाण है । त्रस लब्ध्यपर्याप्तकोंके द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान जघन्य स्थिति जाननी चाहिए ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व पल्यका असंख्यातवां भाग कम एक सागर प्रमाण प्राप्त होता है और एकेन्द्रिय तिर्यञ्च ही होते हैं, इसलिए इनमें मोहनीयका जघन्य अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है । यहाँ अन्य एकेन्द्रिय आदि जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उन मार्गणावाले जीव भी एकेन्द्रिय हो सकते हैं इसलिए उनका कथन उक्त प्रमाण कहा है । इसी प्रकार द्वीन्द्रिय आदिकके जघन्य स्थितिसत्त्वको ध्यानमें रखकर उनमें मोहनीयका जघन्य अद्धाच्छेद पल्यका संख्यातवाँ भाग कम क्रमसे पचीस, पचास और सौ सागर कहा है ।

§१७. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंके मोहनीय कर्मकी जघन्य स्थिति संख्यात हजार वर्ष है । पुरुषवेदी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति संख्यात

पुरिस० मोह० जह० संखेज्जाणि। कोह-माण-माय० मोह० जह० चत्तारि-बे-एकवस्साणि पडिवुण्णाणि। सामाइय-छेदो० मोह० जह० अंतोमु०।

एवमद्धाछेदो समत्तो।

§ १८. सव्वविहत्ती-णोसव्वविहत्तीअणुगमेण दुविहो णिद्देसो--ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वाओ ट्ठिदीओ सव्वविहत्ती, तदूणं णोसव्वविहत्ती। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणाहारि त्ति।

§ १९. उक्कस्स-अणुक्कस्स० दुविहो णिद्देसो--ओघेण आदसेण य। तत्थ ओघेण सव्वुक्कस्सिया ट्ठिदी उक्कस्सविहत्ती। तदूणा अणुक्कस्सविहत्ती। एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति।

§ २० जहण्णाजहण्ण० दुविहो णिद्देसो--ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वजहण्णट्ठिदी जहण्णट्ठिदिविहत्ती। तदुवरिमाओ अजहण्णट्ठिदिविहत्ती। एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति। सव्वट्ठिदीए अद्धाछेदम्मि भणिदउक्कस्सट्ठिदीए च को

वर्ष है। तथा क्रोधी, मानी और माया कषायवाले जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्रमसे परिपूर्ण चार, दो और एक वर्ष है। सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंके मोहनीय कर्मकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—उक्त तीन वेदवाले और क्रोधादि तीन कषायवाले जीवोंके मोहनीयकी यह स्थिति क्षपकश्रेणिमें अपने अपने उदयके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, इसलिए इन मार्गणाओं-मे मोहनीयका जघन्य अद्धाच्छेद उक्त प्रमाण कहा है।

इस प्रकार अद्धाच्छेद समाप्त हुआ।

§१८. सर्वविभक्ति और नोसर्वविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा सर्व स्थितियाँ सर्वविभक्ति है और उससे न्यून नोसर्वविभक्ति है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानकर कथन करना चाहिये।

§१९. उत्कृष्टविभक्ति और अनुत्कृष्टविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा सबसे उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्टविभक्ति है और उससे न्यून स्थिति अनुत्कृष्टविभक्ति है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक कथन करना चाहिए।

§२०. जघन्यविभक्ति और अजघन्यविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा सबसे जघन्य स्थिति जघन्यस्थिति विभक्ति है और उससे ऊपरकी सब स्थितियाँ अजघन्य स्थितिविभक्ति है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गण तक ले जाना चाहिए।

शंका—सर्वस्थिति और अद्धाच्छेदमें कही गई उत्कृष्ट स्थितिमें क्या भेद है?

भेदो ? वुच्चदे--चरिमणिसेयस्स जो कालो सो उक्कस्सअद्धाछेदम्मि भणिदउक्कस्सट्ठिदी णाम। तत्थतणसव्वणिसेयाणं समूहो सव्वट्ठिदी णाम । तेण दोण्हमत्थि भेदो। उक्कस्सविहत्तीए उक्कस्सअद्धाछेदस्स च को भेदो ? वुच्चदे--चरिमणिसेयस्स कालो उक्कस्सअद्धाछेदो णाम। उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती पुण सव्वणिसेयाणं सव्वणिसेयपदेसाणं वा कालो । तेण एदेसिं पि अत्थि भेदो। एवं संते सव्वुक्कस्सविहत्तीणं णत्थि भेदो त्ति णासंकणिज्जं । ताणं पि णयविसेसवसेण कथंचि भेदुवलंभादो । तं जहा--समुदायपहाणा उक्कस्सविहत्ती। अवयवपहाणा सव्वविहत्ति त्ति ।

§ २१. सादि०४ दुविहो णिद्देसो--ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० उक्क० अणुक्क० जह० किं सादि०४ ? सादि० अद्धुव०। अजह० किं सादि०४ ?

समाधान—अन्तिम निषेकका जो काल है वह उत्कृष्ट अद्धाच्छेदमें कही गई उत्कृष्ट स्थिति है। तथा वहाँ पर रहनेवाले सम्पूर्ण निषेकोंका जो समूह है वह सर्वस्थिति है, इसलिए इन दोनोंमें भेद है।

शंका—उत्कृष्ट विभक्ति और उत्कृष्ट अद्धाच्छेदमें क्या भेद है ?

समाधान—अन्तिम निषेकके कालको उत्कृष्ट अद्धाच्छेद कहते हैं और समस्त निषेकोंके या समस्त निषेकोके प्रदेशोंके कालको उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति कहते हैं,इसलिए इन दोनोंमे भी भेद है।

ऐसा होते हुए सर्वविभक्ति और उत्कृष्टविभक्ति इन दोनोंमें भेद नहीं है ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि नय विशेषकी अपेक्षा उन दोनोमें भी कथंचित् भेद पाया जाता है। वह इस प्रकार है—उत्कृष्ट विभक्ति समुदायप्रधान होती है और सर्वविभक्ति अवयवप्रधान होती है।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट अद्धाच्छेद, सर्वस्थितिविभक्ति और उत्कृष्टस्थितिविभक्ति ये शब्द प्रयोगमें आते हैं, इतना ही नहीं; इन नामवाले स्वतन्त्र अधिकार भी हैं, इसलिए इनमें क्या भेद है यही यहां बतलाया गया है। खुलासा इस प्रकार है—मान लो किसी जीवने मिथ्यात्वका सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया। ऐसी अवस्थामे सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरके अन्तिम समयमे स्थित जो निषेक है उसका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण हुआ, क्योंकि इतने काल तक इसके सत्तामे रहनेकी योग्यता है। यह तो उत्कृष्ट अद्धाच्छेदका उदाहरण है। तथा इस उत्कृष्ट स्थितिबन्धके होने पर जो प्रथम निषेकसे लेकर अन्तिम निषेक तक निषेक रचना होती है वह सर्वस्थितिविभक्ति है, क्योंकि यहां सर्व पद द्वारा सब निषेक लिए गए हैं। अब रही उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सो इसमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होने पर प्रथम निषेकसे लेकर अन्तिम निषेक तककी सब स्थितियोंका ग्रहण किया है। यहां सत्ताका प्रकरण होनेसे सत्ताकी अपेक्षा इस अन्तरको घटित कर लेना चाहिए। इतना विशेष जानना चाहिए कि यह सब जहां ओघ उत्कृष्ट सम्भव हो वहां ओघ उत्कृष्ट कहना चाहिए और जहां ओघ उत्कृष्ट सम्भव न हो वहां आदेश उत्कृष्ट प्राप्त कर लेना चाहिए।

§२१. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्टविभक्ति, अनुत्कृष्टविभक्ति

अणादिय० धुवा वा अद्धुवा वा। एवमचक्खु०-भवसिद्धि०। णवरि भवसि० धुवं णत्थि। सेसासु मग्गणासु उक्क० अणुक्क० जह० अजह० सादि-अद्धुवाओ।

एवं सादि-अद्धुवाणुगमो समत्तो।

§ २२. सामित्तं दुविधं–जहण्णं उक्कस्सं च। तत्थ उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण उक्कस्सट्ठिदी कस्स? अण्णदरस्स, जो चउट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि अंतोकोडाकोडिं बंधंतो अच्छिदो उक्कस्ससंकिलेसं गदो। तदो उक्कस्सट्ठिदी पबद्धा तस्स उक्कस्सयं होदि।

एवमोघपरूवणा गदा।

और जघन्यविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है? सादि और अध्रुव है। अजघन्य विभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है? अनादि ध्रुव और अद्ध्रुव है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि भव्यजीवोंके ध्रुव यह विकल्प नहीं है। शेष मार्गणाओंमें उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये चारों सादि और अध्रुव हैं।

विशेषार्थ—मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति कादाचित्क है और जघन्य स्थितिविभक्ति क्षपकश्रेणिके सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें होती है इसलिए ये तीनों सादि और अध्रुव कही हैं। किन्तु अजघन्य स्थितिविभक्तिका विचार इससे कुछ भिन्न है। बात यह है कि जघन्य स्थितिविभक्तिके प्राप्त होनेके पूर्व तक अनादि कालसे अजघन्य स्थितिविभक्ति होती है इसलिए तो यह अनादि कही है और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव तथा अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव कही है। इसमें सादि विकल्प सम्भव नहीं है, क्योंकि एक बार इसका अन्त होने पर पुनः इसकी उत्पत्ति नहीं होती। अचक्षुदर्शन और भव्य ये दो मार्गणाएँ क्रमसे क्षीणमोह गुणस्थानके अन्त तक और अयोगिकेवली गुणस्थान तक निरन्तर बनी रहती हैं इसलिए इनमें ओघप्ररूपणा अविकल घटित होनेके कारण वह उक्त प्रकार कही है। मात्र भव्य मार्गणामें अजघन्य स्थितिविभक्तिका ध्रुवपना सम्भव न होनेसे उसका निषेध किया है। शेष मार्गणाएँ कादाचित्क हैं इसलिए उनमें चारों स्थितिविभक्तियोंके सादि और अध्रुव ये दो विकल्प कहे हैं। केवल अभव्य मार्गणा रह जाती है क्योंकि यह कादाचित्क नहीं है पर इसमें ओघके अनुसार जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्ति सम्भव नहीं है इसलिए इसमें भी चारों स्थितिविभक्तियां सादि और अध्रुव कही हैं।

इस प्रकार सादि-अध्रुवानुगम समाप्त हुआ।

§२२. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे पहले उत्कृष्ट स्वामित्वका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है? जो चतुःस्थानीय यवमध्यके ऊपर अन्तःकोडाकोड़ीप्रमाण स्थितिको बांधता हुआ स्थित है और अनन्तर उत्कृष्ट सक्लेशको प्राप्त होकर जिसने उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है ऐसे किसी भी जीवके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है।

इस प्रकार ओघप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ २३. एवं सत्तपुढविणेरइय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय०-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-मदिसुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-अचक्खु०-चक्खुदं०-पंचले०-भवसिद्धि०-अभवसिद्धि०-मिच्छादि०-सण्णि०-आहारि त्ति ।

§ २४. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णदरस्स सण्णि-पंचिं०तिरिक्खो वा मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिभग्गो होदूण ट्ठिदिघादमका-ऊण पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववण्णो तस्स पढमसमयउववण्णल्लयस्स उक्कस्सिया ट्ठिदी । एवं मणुस्सअपज्ज०-बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-बादरपुढवीअपज्ज०-बादरआउ०अपज्ज०-बादरवण-प्फदिअपज्ज०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमआउ०पज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदिपज्ज त्तापज्जत्त-सव्वणिगोद०-सव्ववाउ०-सव्वतेउ०-तसअपज्जत्ते त्ति ।

§ २५. आणदादि जाव उवरिमगेवज्ज० उक्क० कस्स ? जो दव्वलिंगी उक्कस्स-ट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमयउववण्णो तस्स । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति मोह०

§ २३. इसी प्रकार अर्थात् ओघप्ररूपणाके समान सातो पृथिवियोंके नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, योनिमती तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी ,सामान्य देव, भवनवासियोसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचे-न्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचो वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाय-योगी, वैक्रियिककाययोगी,तीनों प्रकारके वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभङ्गज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, चक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि पांच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

§२४. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च या मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिका बंध करके और वहांसे च्युत होकर स्थितिका घात न करके पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोंमे उत्पन्न हुआ है, उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, बादर एके-न्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा उसके पर्याप्त और अपर्याप्त, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक तथा उसके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक व उसके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और उसके पर्याप्त और अपर्याप्त, सभी निगोद, सभी वायुकायिक, सभी अग्निकायिक और त्रस लब्ध्यपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५. आनत स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंसे उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जिसके मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्ता है ऐसा जो द्रव्यलिंगी जीव आनतादि स्वर्गोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । अनुदिशसे

उक्क० कस्स० ? अण्णदरस्स जो वेदयसम्माइट्ठी तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमए उववण्णो तस्स ।

§ २६. एइंदिय-बादरेइंदियपज्ज० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णदरस्स जो देवो उक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणो मदो पढमसमए जादो तस्स उक्कस्सट्ठिदी । एवं पुढवि०-आउ०-वणप्फदि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविपज्ज०-बादरआउ०-बादरआउ-पज्ज०-बादरवणप्फदि०-बादरवणप्फदिपज्जत्तो त्ति वत्तव्वं ।

§ २७. ओरालियमिस्स० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० देवो णेरइओ वा उक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणो मदो तिरिक्खेसु उववण्णो पढमसमयओरालियमिस्सो जादो तस्स उक्कस्सिया ट्ठिदी । वेउव्वियमिस्स० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणो मदो णेरइएसु उववण्णो पढमसमए वेउव्वियमिस्सो जादो तस्स उक्कस्सिया ट्ठिदी । आहार० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० वेदयसम्मादिट्ठी तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमए आहारओ जादो तस्स उक्कस्सिया ट्ठिदी । आहारमिस्स० मोह० उक्क० कस्स ? वेदग० उक्क० पढमसमयजादस्स । कम्मइय० उक्क० कस्स ? अण्णद० चउगइओ उक्कस्सट्ठिदिं बंधिदूण मदो तिरिक्खेसु

लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? मोहनीयकी तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अनुदिश आदिमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§२६. एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो देव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर मरा और उक्त जीवोंमे उत्पन्न हुआ उसके एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रियमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक और बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २७. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो कोई एक देव या नारकी जीव मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर मरा और तिर्यंचोमें उत्पन्न होकर पहले समयमें औदारिकमिश्रकाययोगी हो गया उसके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ? वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट किसके होती है ? जो कोई एक मनुष्य या तिर्यंच मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति बांध कर मरा और नारकियोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें वैक्रियिकमिश्रकाययोगी होगया उसके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । आहारकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जिसके तत्प्रायोग्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विद्यमान है ऐसा कोई एक वेदकसम्यग्दृष्टि जीव आहारकाययोगी होगया उसके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव आहारक-

णेरइएसु वा उववण्णो तस्स पढमसमयउववण्णल्लयस्स उक्कस्सिया ट्ठिदी ।

§ २८. अवगद० मोह० उक्क० कस्स ? जो चउव्वीसविहत्तिओ तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेण पढमसमयअवगदवेदो जादो तस्स उक्कस्सिया ट्ठिदी। एवमकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद० वत्तव्वं ।

§ २९. आभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेण तप्पाओग्गेण ट्ठिदिघादमकाऊण सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स पढमसमयवेदयसम्माइट्ठिस्स उक्कस्सयट्ठिदिसंतकम्मं । एवमोहिदंस०-सम्मादि०-वेदय० वत्तव्वं । मणपज्ज० उक्क० कस्स ? अण्णद० वेदयसम्मादिट्ठी संजदो तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मो पढमसमयमणपज्जवणाणी जादो तस्स उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मं । एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद० वत्तव्वं ।

§ ३०. सुक्क० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ ट्ठिदिघादमकदवेलाए चेव परावत्तिदपढमसमयसुक्कलेस्सा तस्स उक्कस्सिया ट्ठिदी।

मिश्रकाययोगी हो गया उसके पहले समयमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । कार्मणकाययोगी जीवोंमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? कोई एक चारों गतिका जीव मोहनीयकी स्थिति बांधकर मरा और तिर्यंच या नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है ।

§ २८. अपगतवेदी जीवोंमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? अनन्तानुबन्धी चतुष्कके विना जो चौबीस प्रकृतियोकी सत्तावाला जीव अपगतवेदी जीवोंके योग्य उत्कृष्ट स्थितिकी सत्ताके साथ अपगतवेदी हुआ उसके पहले समयमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इसी प्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिक संयत और यथाख्यातसयत जीवोके कहना चाहिये ।

§ २९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जिसके तत्प्रायोग्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विद्यमान है और जो स्थितिघात न करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उस मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है? मनःपर्ययज्ञानके योग्य उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक संयत वेदकसम्यग्दृष्टि जीव मनःपर्ययज्ञानी हुआ उसके पहले समयमे मोहनीयका उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व पाया जाता है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोके कहना चाहिये ।

§ ३०. शुक्ललेश्यावाले जीवोंमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जिसके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विद्यमान है और जिसने स्थिति घात करके उसी समय शुक्ललेश्याको प्राप्त कर लिया है ऐसे किसी भी शुक्ललेश्यावाले जीवके पहले समयमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है।

§ ३१. खइय० उक्क० कस्स ? अण्णद० पढमसमयखइयसम्मादिट्ठिस्स तस्स उक्कस्सिया ट्ठिदी। उवसम० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० पढमसमय-उवसामिदर्दंसणमोहस्स उवसमसम्मादिट्ठिस्स तस्स उक्कस्सिया ट्ठिदी। सासण० मोह० उक्क० कस्स ? अण्णद० पढमसमयसासणसम्मादिट्ठिस्स। सम्मामि० मोह० उक्क० कस्स ? ट्ठिदिसंतकम्मघादमकाऊण पढमसमयसम्मामिच्छाइट्ठी जादो तस्स। असण्णि० एइंदियभंगो। अणाहारि० कम्मइयभंगो।

एवमुक्कस्ससामित्तं समत्तं।

§ ३२. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० जह० ट्ठिदी कस्स ? अण्णद० खवगस्स चरिमसमयसकसायस्स जहण्णट्ठिदी। एवं मणुसतिय-पंचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि-कायजोगि०-

---

§ ३१. क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? किसी भी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जिसने दर्शनमोहनीय कर्मकी उपशामना की है ऐसे किसी भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? किसी भी सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति किसके होती है ? जो कोई एक जीव स्थितिसत्त्वका घात न करके सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो गया है उसके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। असंज्ञी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये। तथा अनाहारक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति कार्मणकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिये।

विशेषार्थ–यहां पर क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके क्रमसे क्षायिकसम्यक्त्व, उपशमसम्यक्त्व और सासादनसम्यक्त्वके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कहा गया है। सो इसका कारण यह है कि एक तो इन मार्गणाओंमें पूर्व मार्गणासे आनेपर जितना अधिक स्थितिसत्त्व सम्भव है उतना स्थितिबन्ध नहीं होता। दूसरे प्रथम समयके बाद उत्तरोत्तर स्थितिसत्त्व हीन होता जाता है, अतएव इन मार्गणाओंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका स्वामी प्रथम समयवाले जीवको कहा है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके तथा उसका घात न करके आना सम्भव है और ऐसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके सबसे अधिक स्थितिसत्त्व सम्भव है, इसलिए इसके भी उक्त प्रकारसे आनेपर उत्कृष्ट स्थिति कही है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

§ ३२. अब जघन्य स्वामित्व प्रकृत है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्यस्थिति किसके होती है ? किसी भी क्षपक जीवके सकषाय अवस्थाके अन्तिम समयमें अर्थात् क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य,

ओरालि०-अवगद०--लोभक०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०--सुहुम०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक्क०-भवसि०-सम्मादि०-खइय०-सण्णि-आहारि त्ति ।

§ ३३. आदेसेण णेरइएसु मोह० जह० कस्स ? अण्णद० असण्णिपच्छायदस्स विदियसमयविग्गहे वट्टमाणस्स तस्स जहण्णिया ट्ठिदी । एवं पढमपुढवि०–देव-भवण०-वाण० वत्तव्वं । विदियादि जाव छट्टि त्ति मोह० जह० कस्स ? अण्णद० जो उक्क० आउअट्ठिदीए उववण्णो अप्पिदपुढविसु अंतोमुहुत्तेण पढमसमत्तं पडिवज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तेण अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय चरिमसमयणिप्पिदमागओ तस्स जहण्णिया ट्ठिदी । एवं जोइसि० ।

§ ३४. सत्तमाए पुढवीए मोह० जह० कस्स ? अण्णद० जो उक्क० आउट्ठिदीए उववण्णो अंतोमुहुत्तेण पढमसम्मत्तं पडिवण्णो पुणो अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय

पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके तथा पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, अपगतवेदी, लोभकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी, और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३३. आदेशकी अपेक्षा नरकियोंमें मोहनीय की जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो असंज्ञियोंमेंसे नरकमें आया है और जो विग्रहगतिके दूसरे समयमें विद्यमान है ऐसे नारकीके मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी जीवोंके तथा सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—असंज्ञी जीव नरकमें उत्पन्न हो सकता है और उसके विग्रहगतिमें असंज्ञीके योग्य स्थितिबन्ध होता है इसलिए यहां असंज्ञियोंमेंसे आए हुए नारकी जीवके द्वितीय विग्रहमें जघन्य स्थिति कही है । मात्र ऐसे असंज्ञी जीवके प्राक्तन सत्त्व तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिबन्धसे अधिक नहीं होना चाहिए । यह असंज्ञी प्रथम नरकके समान भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें भी उत्पन्न होता है इसलिए प्रथम नरक, सामान्य देव, भवनवासी देव और व्यन्तर देवोंमें यह स्वामित्व इसी प्रकार दिया है ।

दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है । जो कोई एक जीव दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक अपनी अपनी पृथिवीके अनुसार उत्कृष्ट आयुको लेकर उत्पन्न हुआ है, तथा जिसने उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त कालके बाद प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तर अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है उस जीवके नरकसे निकलनेके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है । इसी प्रकार ज्योतिषी देवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति जाननी चाहिये ।

§ ३४. सातवीं पृथिवीमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो उत्कृष्ट आयुको लेकर सातवें नरकमें उत्पन्न हुआ तथा अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् जिसने प्रथमोपशम सम्यक्त्व

अंतोमुहुत्तं जीवियमत्थि त्ति मिच्छत्तं गदो जावदि सक्का ताव संतकम्मस्स हेट्ठा बंधिय से काले समट्ठिदिं बंधिय वोलेहदि त्ति तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं ।

§ ३५. तिरिक्खगइ० मोह० जह० कस्स ? अण्णदरस्स जो एइंदिओ हदसमुप्पत्तियं काऊण जाव सक्का ताव संतकम्मस्स हेट्ठा बंधिय से काले समट्ठिदिं वोलेहदि त्ति तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं । एवं सव्वएइंदिय-पंचकाय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-तिण्णि लेस्सा०-अभव्व०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ ३६. पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि मोह० जह० कस्स ? जो एइंदियपच्छायदो ट्ठिदीए कयहदसमुप्पत्तिओ पढमविदियविग्गहे वट्टमाणो तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं । एवं पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचि०अपज्ज०-तस अपज्जत्तो त्ति वत्तव्वं । णवरि विगलिंदिएसु सत्थाणे वि सामित्तमविरुद्धं दट्ठव्वं ।

§ ३७. सोहम्मीसाणादि जाव सव्वट्ठ० मोह० जह० ? अण्णद० दो वारे

प्राप्त किया है, पुनः अनन्तानुवन्धी चतुष्कको विसंयोजना करके वहां रहा और जब जीवनमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रह जाय तब मिथ्यात्वको प्राप्त होकर जहां तक शक्य हो वहां तक सत्तामें स्थित मोहनीय कर्मकी स्थितिसे कम स्थितिवाले कर्मका बन्ध करके तदनन्तर कालमें जो सत्तामें स्थित मोहनीय कर्मकी स्थितिके समान स्थितिवाले कर्मका बन्ध करेगा उसके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ३५. तिर्यंचगतिमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो कोई एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिकको करके जब तक शक्य हो तब तक सत्तामें स्थित मोहनीयकी स्थितिसे कम स्थितिवाले कर्मका बन्ध करके तदनन्तर कालमें सत्तामें स्थित मोहनीयकी स्थितिके समान स्थितिवाले कर्मका बन्ध करेगा उसके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पांचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३६. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त और योनिनी इन तीन प्रकारके तिर्यंचोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो एकेन्द्रियोंमेंसे लौटकर आया है, जिसने स्थितिका हतसमुत्पत्तिक किया है और जो पहले या दूसरे विग्रहमें स्थित है उस पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त या योनिनी तिर्यंचके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक, मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक और त्रस लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि विकलेन्द्रिय जीवोंमें स्वस्थानकी अपेक्षा भी स्वामित्वके कथन करनेमें कोई विरोध नहीं आता । अर्थात् जो विकलेन्द्रियोंमेंसे भी विकलेन्द्रियोंमें लौटकर आया है उसके भी जघन्य स्थितिसत्त्व हो सकता है ।

§ ३७. सौधर्म और ऐशान स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकी जघन्य

उवसमसेढिमारूढो पच्छा दंसणमोहं खविय अप्पप्पणो उक्कस्साउट्ठिदीए उववण्णो तस्स चरिमसमयणिप्फिदमाणयस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं ।

§ ३८. वेउव्विय० मोह० जह० कस्स ? अण्णद० सव्वट्ठ० देवस्स खइय-सम्मादिट्ठिस्स उवसंतकसायपच्छायदस्स सगसगुक्कस्साउट्ठिदिचरिमसमए वेउव्विय-कायजोगे वट्टमाणस्स तस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं । वेउव्वियमिस्स० मोह० जह० कस्स ? अण्ण० खइयसम्मा० उवसंत० पच्छायदस्स चरिमसमयवेउव्वियमिस्स-कायजोगिस्स जहण्णयं ट्ठिदिसंतकम्मं । आहार० मोह० जह० कस्स ? अण्ण० खइयसम्माइट्ठिस्स से काले मूलसरीरं पविसंतस्स जह० ट्ठिदिसंतकम्मं । आहारमिस्स० मोह० जह० कस्स ? अण्ण० खइयसम्मा० से काले सरीरपज्जत्तिं कोहदि (काहदि) त्ति तस्स जह० ट्ठिदिसंतकम्मं ।

§ ३९. वेदाणुवादेण इत्थिवेद० मोह० जह० कस्स ? अण्णद० अणियट्टिखवओ चरिमसमए इत्थिवेदओ तस्स जह० ट्ठिदिसंतकम्मं । एवं पुरिस०-णवुंस० वत्तव्वं ।

§ ४०. कोह०-माण०-माय० जह० कस्स ? अण्णद० अणियट्टिखवओ

स्थिति किसके होती है ? जो कोई एक जीव उपशमश्रेणी पर दो बार चढ़ा है अनन्तर दर्शनमोह-नीयका क्षय करके आयुकर्मकी अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिको लेकर सौधर्मादिमें उत्पन्न हुआ है उसके वहांसे निकलनेके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ३८. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशान्तकषाय गुणस्थानसे सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुआ तथा जो अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुके अन्तिम समयमें वैक्रियिककाययोगमें विद्यमान है उस सर्वार्थसिद्धिमें रहनेवाले वैक्रियिककाययोगी जीवके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । वैक्रियिक-मिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति किसके होती है ? जो क्षायिक-सम्यग्दृष्टि जीव उपशान्तकषाय गुणस्थानसे आकर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके वैक्रियिकमिश्रकाययोगके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितसत्त्व होता है । आहारककाययोगी जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि आहारक काययोगी जीव तदनन्तर समयमें मूल शरीरमें प्रवेश करेगा उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि आहारकमिश्रकाययोगी जीव तदनन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त करेगा उसके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है ।

§ ३९. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो स्त्रीवेदी अनिवृत्तिक्षपक जीव है उसके स्त्रीवेदके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है । इसी प्रकार पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व कहना चाहिये ।

§ ४०. क्रोध, मान और मायाकषायवाले जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके

अप्पप्पणो चरिमसमए वट्टमाणो तस्स जह० हिदिसंतकम्मं । अकसा० मोह० जह० क० ? अण्ण० खइयसम्मा० चरिमसमयअकसायस्स जहण्णयं हिदिसंतकम्मं । विहंग० मोह० जह० क० ? अण्ण० जो उवरिमगेवज्जदेवो चउवीससंतकम्मिओ अवसाणे मिच्छत्तं गंतूण चरिमसमयविहंगणाणी जादो तस्स० जह० हिदिसंतकम्मं ।

§ ४१. सामाइय-छेदो० जह० कस्स ? अण्ण० अणियट्टिखवओ चरिमसमय-सामाइय-छेदोवट्ठावण० संजमो तस्स जह० हिदिसंतकम्मं । परिहार० मोह० जह० क० ? अण्ण० खइयसम्मा० जो दो वारे उवसमसेढिं चढिय पच्छा खविददंसण-मोहणीओ देवेसु तेत्तीससागरोवममेत्ताउहिदिमणुपालिय मणुस्सेसुववज्जिय समया-विरोहेण पडिवण्णपरिहारसुद्धिसंजमो तस्स चरिमसमयपरिहारसुद्धिसंजदस्स जह० हिदिसंतकम्मं । संजदासंजद० मोह० जह० कस्स ? अण्णद० जो खइयसम्मा० परिहारस्स भणिदविहाणेणागंतूण चरिमसमयसंजदासंजदो जादो तस्स जह० हिदिसंतकम्मं ।

§ ४२. तेउ०-पम्म० परिहार०भंगो । णवरि चरिमसमयतेउपम्मलेस्सालावो कायव्वो ।

होता है ? जो अनिवृत्तिक्षपक क्रोध, मान और मायाकषायके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है। अकषायी जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि अकषायी जीव है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है। विभंगज्ञानी जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपरिम ग्रैवेयकका देव आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर विभंगज्ञानी हो गया है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है।

§ ४१. सामायिक और छेदोपस्थापना संयत जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो अन्तिम समयवर्ती अनिवृत्ति क्षपक है उस सामायिकसंयत और छेदो-पस्थापना संयत जीवके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है। परिहारविशुद्धि संयत जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? दो वार उपशमश्रेणीपर चढ़कर अनन्तर जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय किया है ऐसा जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव देवोंमें उत्पन्न होकर और वहां तेतीस सागर प्रमाण आयुको समाप्त करके अनन्तर मनुष्योंमे उत्पन्न होकर जिस प्रकार आगममें वताया है उसके अनुसार परिहारविशुद्धि संयमको प्राप्त हुआ है उस परिहारविशुद्धि संयतके अन्तिम समयमे मोहनीयकी जघन्य स्थितिसत्त्व होता है। संयतासंयत जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि परिहारविशुद्धि संयत जीव आगममे जिस प्रकार विधि वताई है उसके अनुसार परिहारविशुद्धि संयमको त्यागकर संयतासंयत हो गया है उस संयतासंयतके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है।

§ ४२. पीतलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीवोंके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व परिहार

§ ४३. वेदग० मोह० जह० क० ? अण्णद० चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स जह० ट्ठिदिसंतकम्मं। उवसम० मोह० जह० क० ? अण्ण० उवसमसेढीए ट्ठिदिघादं कादूण अधट्ठिदिगलणाए च गालिय से काले वेदयसम्मादिट्ठी होहिदि त्ति जो ट्ठिदो तस्स जह० ट्ठिदिसंतकम्मं। सासण० मोह० ज० कस्स ? अण्णद० चरिमसमय० सासण० तस्स जह० ट्ठिदिसंतकम्मं। सम्मामि० मोह० ज० क० ? अण्णद० चउवीससंतकम्मिओ जो चरिमसमयसम्मामिच्छादिट्ठी तस्स जह० ट्ठिदिसंतकम्मं।

एवं सामित्तं समत्तं।

§ ४४. कालो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। तत्थ उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० उक्कस्सट्ठिदी केवचिरं कालादो होदि ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। अणुक्क० केवचिरं ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। एवं मदि-सुदअण्णाण०-असंजद०-अचक्खु०-भव०-अभव०-मिच्छादि० त्ति वत्तव्वं।

विशुद्धिसंयत जीवोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि पीतलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीवके मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व कहते समय अन्तिम समयमें पीतलेश्या और पद्मलेश्या प्राप्त कराके उसका कथन करना चाहिये।

§ ४३. वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जिसके दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं हुआ है ऐसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है। उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीमें स्थितिघात करके और अधस्तनस्थिति गलनाके द्वारा स्थितिको गला कर तदनन्तर समयमें वेदकसम्यग्दृष्टि होगा उसके मोहनीयका जघन्य-स्थितिसत्त्व होता है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है ? जो सासादनसम्यग्दृष्टि हुआ है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व किसके होता है। चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि हुआ है उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसत्त्व होता है।

इस प्रकार स्वामित्वानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ४४. काल दो प्रकारका है—जघन्यकाल और उत्कृष्ट काल। उनमेंसे पहले उत्कृष्ट कालका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उसमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका काल कितना है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थिति सत्त्वका काल कितना है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है जिसका प्रमाण अनन्तकाल है। इसी प्रकार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये।

§ ४५. आदेसेण णिरयगईए णेरइएसु मोह० उक्क० केवचि० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० केवचिरं० ? जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीस सागरोवमाणि । पढमादि जाव सत्तमि त्ति मोह० उक्क० केवचिरं० ? जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुक्क० जह० एयसमओ, उक्क० एक्क० तिण्णि० सत्त० दस० सत्तारस० बावीस० तेत्तीससागरोवमाणि ।

§ ४६. तिरिक्ख० मोह० उक्क० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । एवं कायजोगि०-णवुंस० वत्तव्वं ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त होनेसे उत्कृष्ट स्थिति सत्त्वका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। उत्कृष्ट स्थिति बन्धकी व्युच्छित्ति होने पर पुनः उसका बन्ध कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालके बाद ही होता है। इस बीच अनुत्कृष्ट स्थितिबन्ध होने लगता है और सत्त्व भी अधःस्तन स्थिति गलनाके द्वारा उत्तरोत्तर न्यून होता जाता है इसलिए अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त पर्यायका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल होनेसे इस कालमें अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्व रहता है, इसलिए अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका उत्कृष्ट काल अनन्तकाल कहा है। यहाँ अन्य जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें ओघ प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, इसलिए इनकी प्ररूपणा ओघके समान कही है।

§ ४५. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तेतीस सागर है। पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके प्रत्येक नरकमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल क्रमशः एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस और तेतीस सागर हैं।

विशेषार्थ—यहां सर्वत्र मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल क्रमशः एक समय और अन्तर्मुहूर्त ओघके समान घटित कर लेना चाहिए। नरकमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय निम्न प्रकार होता है—जिस नारकीने भवके उपान्त्य समयमें उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर अन्तिम समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको बांधा है और तीसरे समयमें मरकर जो अन्य पर्यायको प्राप्त हो गया उसके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ ४६. तिर्यंचोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। इसी प्रकार काययोगी और नपुंसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये।

§ ४७. पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि मोह० उक्क० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। अणुक्क० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी। एवं मणुसतियस्स।

§ ४८. पंचिं०तिरिक्खअपज्ज० मोह० उक्क० केव० ? जहण्णुक्क० एगसमओ। अणुक्क० केव० ? जह० खुद्दाभवग्गहणं समऊणं, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं मणुसअपज्ज०।

विशेषार्थ—तिर्यंचोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय नारकियोंके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल ओघके समान घटित कर लेना चाहिये। जब कोई जीव असंख्यात पुद्गल परिवर्तनकाल तक एकेन्द्रिय पर्यायमें निरन्तर रहता है तब उसके काययोग और नपुंसकवेद ही होता है अतः काययोग और नपुंसकवेदमें भी मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल तिर्यंचोंके समान बन जाता है। शेष कथन सुगम है।

§ ४७. पंचेन्द्रिय तिर्यँच, पंचेन्द्रिय तिर्यँच पर्याप्त और योनिमती तिर्यँचोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—उक्त तीन प्रकारके तिर्यँचोंमें उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एकसमय नारकियोंके समान घटित कर लेना चाहिये। इनका खुलासा हम पहले कर ही आये हैं। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि किसी भी तिर्यँचके अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिके भीतर मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध न हो यह सम्भव है। यहां स्थितिसे कायस्थिति का ग्रहण करना चाहिये। इसी प्रकार अन्यत्र भी जहां भवस्थितिसे कायस्थिति अधिक हो वहां भी स्थिति पदसे कायस्थितिका ही ग्रहण करना चाहिये। उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंकी कायस्थिति क्रमसे पंचानवे पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य, सैंतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य और पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य होती है। सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनीके भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इनकी कायस्थिति क्रमशः सैंतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य, तेईस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य और सात पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य होती है।

§ ४८. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय है। मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोंके बन्धसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती नहीं। हां जिसने संज्ञी पर्याप्त अवस्थामें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया और वह स्थिति घात न करके अन्तर्मुहूर्त कालके होनेपर मरकर उक्त जीवोंमें उत्पन्न हो गया तो उसके

§ ४९. देवाणं णारगभंगो । भवणादि जाव सहस्सार त्ति उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदी । आणदादि जाव सव्वट्ठ० मोह० उक्क० केव० ? जहण्णुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० जहण्णट्ठिदी० समऊणा, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी संपुण्णा ।

§ ५० एइंदिएसु मोह० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० एगस० । अणुक्क० जह० खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । एवं बादरेइंदिय० । णवरि अणुक्कस्सट्ठिदीए उक्कस्सकालो बादरट्ठिदी । बादरेइंदियपज्ज० उक्कस्सट्ठिदीए एइंदियभंगो । अणुक्क० केव० ? जह० अंतोमुहुत्तं (एगसमयूणं), उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि ।

उत्पन्न होनेके पहले समयमें अपनी पर्यायमें सम्भव स्थितिकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है अतः इनके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा इस एक समयको कम कर देनेपर अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कम खुद्दाभव-ग्रहण प्रमाण प्राप्त होता है। तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंञ्च लब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकोंके भी इसी प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल घटित कर लेना चाहिए ।

§ ४९. देवोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल नारकियोंके समान जानना चाहिये । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रारस्वर्ग तकके देवोंके उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों सत्त्वकाल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण है और उत्कृष्ट अपनी अपनी सम्पूर्ण उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है ।

विशेषार्थ—आनतसे सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति भवके पहले समयमें ही सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । तथा इस एक समयको कम कर देनेपर अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कम अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण प्राप्त होता है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य और उत्कृष्ट आयु नहीं होती अतः वहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कम तेतीस सागर और उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर होगा । शेष कथन सुगम है ।

§ ५०. एकेन्द्रियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय जीवोंके कहना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल बादर स्थिति प्रमाण है । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल एकेन्द्रियोंके समान है । तथा इनके

§ ५१. बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियअपज्ज०-विगलिंदियअपज्ज०-पंचिंदिय-अपज्ज०-पंचकाय०बादरअपज्ज०-तेसिं सुहुमअपज्ज०-तसअपज्ज० पंचिंदियतिरिक्ख अपज्जत्तभंगो ।

§ ५२. सुहुमेइंदिय० उक्क० केव० ? जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ । अणुक्क० जह० खुद्दाभवग्गहणं समऊणं, उक्क० असंखेज्जा लोगा । एवं पंचकायसुहुमाणं पज्जत्ताणं ।

§ ५३. सुहमइंदियपज्ज० केव० ? जहण्णुक्कस्सेणेगसमओ । अणुक्क० जह० अंतोमुहुत्तं समयूणं, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं पंचकायसुहम० ।

अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति भवके पहले समयमें ही प्राप्त होती है अतः इनके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । साथ ही यह उत्कृष्ट स्थिति लब्ध्यपर्याप्तक एकेन्द्रिय और सूक्ष्म जीवोके नहीं प्राप्त होती, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल पूरा खुद्दाभवग्रहण प्रमाण कहा । एकेन्द्रियोकी कायस्थिति असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण होनेसे इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोकी कायस्थिति क्रमशः अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण अर्थात् असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल प्रमाण व संख्यात हजार वर्ष काल प्रमाण होनेसे इनके केवल अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालमें एकेन्द्रियोसे अन्तर है । बाकी सब एकेन्द्रियोंके समान है । सो इसका उल्लेख पहले किया ही है ।

§ ५१. बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, विकलेन्द्रिय लब्ध्य-पर्याप्तक, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, पांचों स्थावरकाय बादर लब्ध्यपर्याप्तक, पांचों स्थावर काय सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक और त्रस लब्ध्यपर्याप्तक जीवोके पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि सभी लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समान होता है, अतः उक्त सब लब्ध्यपर्याप्तक जीवोकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये ।

§ ५२. सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम खुद्दाभव-ग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल असंख्यात लोक प्रमाण है । इसी प्रकार पांचों सूक्ष्म स्थावर-कायिक जीवोके कहना चाहिये ।

§ ५३. सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार पांचों सूक्ष्म स्थावरकायिक पर्याप्तकोंके जानना चाहिये ।

§ ५४. विगलिंदिय० मोह० उक्क० केव० ? जहण्णुक्क० एयसमओ। अणुक्क० जह० खुद्दाभवग्गहणं समऊणं, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि। एवं विगलिंदियपज्जत्ताणं पि। णवरि अणुक्कस्सजहण्णकालो अंतोमुहुत्तं समऊणं।

§ ५५. पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मोह० उक्क० ओघभंगो। अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी।

§ ५६. पुढवि०-बादरपुढवि०-आउ०-बादरआउ० उक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० एगसमओ। अणुक्क०-जह० खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी। बादरपुढविपज्ज०-बादरआउ०पज्ज० उक्क० के० ? जह० एगसमओ,

---

§ ५४. विकलेन्द्रिय जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष है। इसी प्रकार विकलेन्द्रिय पर्याप्तकोंके भी जानना चाहिये। पर इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—सूक्ष्म एकेन्द्रियसे लेकर आगे जितनी मार्गणाओंमें काल कहा है उन सबके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति भवके पहले समयमें ही प्राप्त हो सकती है, अतः सबके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। पर अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य कालका कथन करते समय जहां खुद्दाभवग्रहण प्रमाण जघन्य स्थिति सम्भव है वहां एक समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण जघन्य काल कहा और जहां अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जघन्य स्थिति सम्भव है वहां एक समय कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जघन्य काल कहा। तथा जहां जो उत्कृष्ट काल सम्भव है वहां अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल तत्प्रमाण कहा।

§ ५५. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पूर्व कोटि पृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागर, पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति सौ सागरपृथक्त्व, त्रसकायिकोंकी उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागर और त्रसकायिक, पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो हजार सागर बतलाई है अतः इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त स्थिति प्रमाण जानना चाहिये। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार नारकियोंके घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहां भी घटित कर लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ ५६. पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, जलकायिक और बादर जलकायिक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है? जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और बादर जलकायिक पर्याप्त

उक्क० एगसमओ। अणुक्क० जह० अंतोमुहुत्तमेगसमऊणं, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि।

§ ५७ तेउ०--बादरतेउ०--बादरतेउपज्ज०--वाउ०-बादरवाउ०--बादरवाउपज्ज० उक्क० जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ, अणुक्क० जह० खुद्दाभवग्गहणं समऊणं। णवरि पज्जत्ताणमंतोमुहुत्तं समऊणं। सव्वेसिमणुक्कस्सुक्कस्सं सगसगुक्कस्सट्ठिदी।.

§ ५८. वणप्फदिकाइयाणमेइंदियभंगो। बादरवणप्फदिकाइयाणं बादरेइंदिय-

जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है। और उत्कृष्ट सत्त्वकाल सख्यात हजार वर्ष है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहां पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक और बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त आदि जीवोके जानना चाहिये। किन्तु इनके अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है जिसका निर्देश मूलमें किया ही है। पृथिवीकायिक और जलकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात लोक प्रमाण कही है। बादर पृथिवीकायिक और बादर जलकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति उत्कृष्ट कर्मस्थिति प्रमाण कही है। तथा बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और बादर जलकायिक पर्याप्त जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष प्रमाण कही है सो इस क्रमसे उक्त जीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिये।

§ ५७. अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक और बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि पर्याप्तकोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है। तथा उपर्युक्त सभी जीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है।

विशेषार्थ—उक्त कायवाले जीवोंके भवके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना सम्भव है अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। पर्याप्त जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और शेषका खुद्दाभवग्रहण प्रमाण है अतः इस जघन्य कालमेंसे उत्कृष्ट स्थितिके कालके एक समय घटा देने पर जो एक समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और एक समय कम अन्तर्मुहूर्त काल बचता है वह इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल है। इनमेंसे कौन किसका काल है यह खुलासा मूलमें ही किया है। तथा अग्निकायिक और वायुकायिकका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है। बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिकका उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है और बादर अग्निकायिक पर्याप्त तथा बादर वायुकायिक पर्याप्तका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। इस प्रकार इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल ऊपर कही गई अपनी अपनी कास्थिति प्रमाण जानना।

§ ५८. वनस्पतिकायिक जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान, बादर वनस्पतिकायिक जीवोंके बादर

भंगो। बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्ताणं बादरेइंदियपज्जत्तभंगो।

§ ५९. पंचमण०-पंचवचि० मोह० उक्क० अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं वेउव्वियकाय० वत्तव्वं। ओरालि० मोह० उक्क० ओघभंगो। अणुक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० बावीसवाससहस्साणि देसूणाणि। ओरालियमिस्स० मोह० उक्क० के० ? जहण्णुक्क० एगसमओ। अणुक्क० ज० खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्क० अंतोमु०।

§ ६०. वेउव्वियमिस्स० मोह० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ, अणुक्क० जह० अंतोमुहुत्तं समऊणं, उक्क० अंतोमु०। एवमाहारमिस्स०-उवसम०-सम्मामि० वत्तव्वं। आहार० मोह० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ। (अणुक्क०) ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवमवगद०-अकसा०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद० वत्तव्वं। कम्मइय० मोह० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०, अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया।

एकेन्द्रिय जीवोंके समान और बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त जीवोंके बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके समान काल जानना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इनके सब प्रकारसे एकेन्द्रिय और उनके भेद-प्रभेदोंके समान उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल बन जाता है।

§ ५९. पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार वैक्रियिककाययोगी जीवोंके कहना चाहिये। औदारिककाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वका ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट दोनों एक समय हैं। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल तीन समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ६०. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये। आहारककाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये। कार्मणकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तीन समय है।

विशेषार्थ—पांचों मनोयोग और पांचों वचनयोगोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक

§ ६१. इत्थि० मोह० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । एवं पुरिस० ।

समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है । यही बात वैक्रियिक काययोगमें जानना चाहिये । औदारिक काययोगमें अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्टकालमें कुछ विशेषता है । बातयह है कि औदारिककाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्षप्रमाण है और इतने काल तक जीवके इसमें मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है, अतः औदारिककाययोगमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । औदारिक मिश्रकाययोगके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति हो सकती है अतः औदारिकमिश्रकाययोगमें उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा । पर ऐसा जीव निर्वृत्यपर्याप्त होगा । इससे सिद्ध हुआ कि लब्ध्यपर्याप्तक औदारिक मिश्रकाययोगीके अनुत्कृष्ट स्थिति ही होती है । अब यदि कोई जीव तीन मोड़ा लेकर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हो तो उसके खुद्दाभवग्रहणप्रमाण कालमें से तीन समय और कम हो जायँगे अतः औदारिकमिश्रकाययोगमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल तीन समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण कहा। तथा इसके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त होता है यह स्पष्ट ही है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति हो सकती है,अतः इसके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा उत्कृष्ट स्थितिके इस एक समयको कम कर देने पर जो वैक्रियिकमिश्रका एक समय कम अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहता है वह अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त होता है यह स्पष्ट ही है । आहारकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये क्योंकि इनके भी पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बन जाता है। तथा इस एक समयको कम कर देने पर उक्त मार्गणाओंका जो एक समय कम अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काल शेष बचता है वह उनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल है और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर्मुहूर्त होता है यह स्पष्ट ही है। आहारककाययोगके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः इसमें उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। जो जीव एक समय तक आहारक काययोगके साथ रहकर दूसरे समयमें मरणादि निमित्तोंसे अन्य योगको प्राप्त हो जाते हैं उनके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है अतः आहारक काययोगमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा। तथा उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त आहारक काययोगके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे कहा। अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिक संयत और यथाख्यातसंयत इन मार्गणाओंकी स्थिति आहारक काययोगके समान है अतः इनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल आहारककाय योगके समान कहा। कार्मणकाय योगके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः इसमें भी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा कार्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है अतः इसमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है ।

§ ६१. स्त्रीवेदी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ६२. चत्तारिकसाय० मोह० उक्क० अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० ।

§ ६३. विहंग० सत्तमपुढविभंगो । णवरि अणुक्क० उक्क० तेत्तीस सागरो० अंतोमुहुत्तूणाणि । आभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० उक्क० केव०[1] ? जहण्णुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि । एवमोहिदंस०-सम्मादि०-वेदयसम्मादि० । णवरि वेदयसम्मत्तम्मि अणुक्क० छावट्ठि-सागरोवमाणि । मणपज्ज० मोह० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ, अणुक्क० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । एवं संजद०-परिहार०-संजदासंजद० । सामाइय-छेदो० एवं चेव । णवरि अणुक्क० जह० एगसमओ । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त ओघके समान घटित कर लेना चाहिये । जो स्त्रीवेदसे अपगतवेदको प्राप्त हुआ जीव उपशमश्रेणीसे उतरते हुए एक समयके लिये स्त्रीवेदी हुआ और दूसरे समयमें मरकर अन्य-वेदी हो गया उस स्त्रीवेदीके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । या जिस स्त्रीवेदी या पुरुषवेदी जीवने उत्कृष्ट स्थितिके पश्चात् एक समयके लिये अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त किया और दूसरे समयमें वह मर कर अन्यवेदी हो गया उस स्त्रीवेदी या पुरुषवेदीके अनु-त्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी पल्योपमशतपृथक्त्व व सागरोपमशतपृथक्त्व स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।

§ ६२. चारों कषायवाले जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । तात्पर्य यह है कि चारों कषायोका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनमे उक्त प्रमाण काल बन जाता है ।

§ ६३. विभंगज्ञानी जीवोंके सातवीं पृथिवीके समान जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर है । आभिनि-बोधिकज्ञानी श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल साधिक छयासठ सागर है । इसी प्रकार अवधि-दर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेद-कसम्यक्त्वमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल पूरा छयासठ सागर है । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । इसी प्रकार संयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोके जानना चाहिये । तथा सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोके भी इसी प्रकार जानना चाहिए । पर

---

१. केव० जह० उक्क० केव० जहण्णु० इति पाठः ।

§ ६४. किण्ह०--णील०--काउ०--तेउ०--पम्म० मोह० उक्क० ओघभंगो। अणुक्क० जह० अंतोमु० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी। सुक्क० मोह० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ। अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीस सागरोव-

इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय होता है। चक्षुदर्शनी जीवोंमें त्रसपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये।

विशेषार्थ–विभंगज्ञान पर्याप्त अवस्थामें ही होता है अतः इसके अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालको अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर कहा। शेष कथन सुगम है। आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतिज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोके उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना पहले समयमें ही सम्भव है, अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा। जो जीव अन्तर्मुहूर्त तक सम्यग्दृष्टि रहा पश्चात् सम्यक्त्वसे च्युत हो गया या सम्यक्त्व प्राप्तिके बाद जिसने अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त कर लिया उसके उक्त तीन ज्ञानोंके रहते हुए अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। तथा आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानका उत्कृष्टकाल चार पूर्वकोटि अधिक छयासठ सागर है अतः इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर कहा। यहाँ पर अधिकसे चार पूर्वकोटियोंका ग्रहण करना चाहिये। अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके भी इसी प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल कहना चाहिये। किन्तु वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल पूरा छयासठ सागर है, अतः इसके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पूरा छयासठ सागर होगा। जो जीव मनःपर्ययज्ञानको प्राप्त होता है उसके प्रथम समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः मनःपर्ययज्ञानीके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा मनःपर्ययज्ञानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है, अतः इसके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण कहा। यहां कुछ कमसे आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त लिया है। पूर्वकोटिमेंसे इतना काल कम कर देना चाहिये। संयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयतकी स्थिति मनःपर्ययज्ञानके समान है अतः इनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके कालको मनःपर्ययज्ञानके समान कहा। परन्तु इतनी विशेषता है कि परिहारविशुद्धिसंयतका उत्कृष्ट काल ३८ वर्ष कम एक पूर्वकोटि वर्ष है और संयतासंयतका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि वर्ष है। जो जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर और एक समय तक नौवें गुणस्थानमें रह कर मर जाता है उसके सामायिक और छेदोपस्थापना संयतका जघन्य काल एक समय पाया जाता है, अतः इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय बन जाता है। शेष कथन मनःपर्ययज्ञानके समान है। त्रसपर्याप्तसे चक्षुदर्शनीकी स्थितिमें अन्तर नहीं है अतः चक्षुदर्शनीके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल त्रसपर्याप्तके समान कहा।

§ ६४. कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल प्रारंभकी तीन लेश्यावालोंके अन्तर्मुहूर्त और पीत तथा पद्मलेश्यावालोके एक समय है। तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। शुक्ललेश्यावाले जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है।

माणि सादिरेयाणि । एवं खइय० वत्तव्वं ।

§ ६५. सासण० मोह० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क छ आवलियाओ । सण्णि० पुरिसभंगो । असण्णि० एइंदियभंगो । आहारि० मोह० उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो ।

तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल साधिक तेतीस सागर है । इसी प्रकार क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—मरते समय यदि अशुभ लेश्या हो तो दूसरी पर्यायमें उत्पन्न होने पर अन्तर्मुहूर्त काल तक वही लेश्या बनी रहती है पर पीत और पद्म लेश्याकी यह बात नहीं, क्योंकि उक्त लेश्यावाला यदि कोई देव तिर्यंचोंमे उत्पन्न होता है तो उसके तिर्यंच पर्यायमें कापोत लेश्या हो जाती है, अतः तीन अशुभ लेश्याओंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है । तथा पीत और पद्म लेश्यामें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय भी प्राप्त हो जाता है । जैसे किसी पीत या पद्म लेश्यावाले देवने आयुके उपान्त्य समयमे मोहनीयका उत्कृष्ट बंध किया और अन्तके एक समयमे पीत तथा पद्म लेश्याके साथ अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला हो गया । फिर मरकर तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेसे लेश्या पलट गई । इस प्रकार पीत व पद्मलेश्यामें अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिका जघन्य काल एक समय होता है । शुक्ल लेश्याके तो पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः इसके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । लेश्याओंमें शेष कथन सुगम है । क्षायिकसम्यक्त्व की स्थिति शुक्ल लेश्याके समान है, अतः इसके कथनको शुक्ल लेश्याके समान कहा । इतनी विशेषता है कि शुक्ल लेश्याका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है और क्षायिक सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है । अतः इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपना अपना काल कहना चाहिये ।

§ ६५. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल छह आवली है । संज्ञी जीवोके पुरुषवेदी जीवोंके समान जानना चाहिये । असंज्ञी जीवोके एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिए । आहारक जीवोके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी स्थितिप्रमाण है । अनाहारक जीवोंके कार्मण काययोगियोंके समान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सासादनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि है, अतः इसके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण प्राप्त होता है । किन्तु सासादनसम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट स्थिति पहले समयमें ही प्राप्त हो सकती है । अतः इसके उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । जो आहारक उपान्त्य समयमे उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करके अन्त समयमे अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है और तीसरे

§ ६६. जहण्णए पयदं दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० जह० के० ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। अजहण्ण० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो वा। एवमचक्खु०-भवसि०। सादिसपज्जवसिदभंगो अजहण्णस्स णत्थि; जहण्णट्ठिदीदो चरिमसमयसुहुमसांपराइयखवयस्स अजहण्णट्ठिदीए णिवायाभावादो। उवसंतकसाए मोहोदयवज्जिदे हेट्ठा णिवदिदे अजहण्णट्ठिदीए सादित्तं किण्ण घेप्पदे ? ण, उवसंतकसाए वि मोह० अजहण्णट्ठिदीए सब्भावुवलंभादो।

§ ६७. आदेसेण णिरय० मोह० जह० जहण्णुक्क० एगसमओ। अजहण्ण०

समयमें मरकर अनाहारक हो जाता है उसके आहारकके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है और उत्कृष्टकाल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी प्रमाण है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ।

§ ६६. अब जघन्य कालानुगम प्रकरण प्राप्त है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिका कितना सत्त्वकाल है ? जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका सत्त्वकाल अनादि अनन्त और अनादि-सान्त है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिये। अजघन्य स्थितिका सादि-सान्त भंग नहीं है, क्योंकि क्षपक सूक्ष्मसांपरायिक जीवके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है और उससे जीवका अजघन्य स्थितिमें पतन नहीं होता। अर्थात् सामान्यसे मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्षपक सूक्ष्मसांपरायिक जीवके अन्तिम समयमें होती है और वह जीव तदनन्तर क्षीणमोह हो जाता है पुनः वह अजघन्य स्थितिमें लौटकर नहीं जाता है, अतः अजघन्य स्थितिका सादि-सान्त भंग नही है।

शंका–मोहनीय कर्मके उदयसे रहित उपशान्तकषाय जीव जब नीचे दसवें गुणस्थानमें आता है तब उसके अजघन्य स्थितिका सादिपना क्यों नहीं लिया जाता है ?

समाधान–नहीं, क्योंकि उपशान्तकषायमें भी मोहनीयकी अजघन्य स्थितिका सद्भाव पाया जाता है, अतः सामान्यकी अपेक्षा मोहनीयकी अजघन्य स्थितिमें सादि-सान्त भंग नहीं बनता।

विशेषार्थ–क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें सूक्ष्म लोभका उदयरूप निषेक शेष रहता है जो उसी समय फल देकर निर्जीर्ण हो जाता है, अतः ओघसे मोहकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा पूरे मोहनीयका अभाव होकर पुनः उसका सद्भाव नहीं होता, अतः ओघसे मोहकी अजघन्य स्थितिका काल अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त ही होता है, सादि-सान्त नहीं। इनमेंसे अनादि-अनन्त काल अभव्योंकी अपेक्षा कहा और अनादि-सान्त काल भव्योंकी अपेक्षा कहा। यह ओघप्ररूपणा अचक्षुदर्शनवाले और भव्योंके अविकल बन जाती है, अतः इनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा। यहां इतना विशेष जानना चाहिये कि भव्योंके मोहकी अजघन्य स्थितिका अनादि-अनन्त विकल्प नहीं बनता। अथवा जो भव्य अभव्योंके समान हैं उनकी अपेक्षा यह विकल्प भव्योंके भी बन जाता है।

§ ६७. आदेशसे नरकगतिमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट

जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । पढमाए ज० जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० जह० एगसमओ, उक्क० सागरोवमं । विदियादि जाव छट्ठि त्ति मोह० ज० जहण्णुक्क० एगसमओ । अजहण्ण० जहण्णेण जहण्णट्ठिदी, उक्कस्सेण उक्कस्सट्ठिदी । सत्तमाए पुढवीए मोह० जहण्णट्ठिदी जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अजहण्ण० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि ।

सत्त्वकाल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। पहले नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक सागर है। दूसरे नरकसे लेकर छठे नरक तक प्रत्येक नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सातवें नरकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव हजार सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबंधमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भाग प्रमाण कम जघन्य स्थिति सत्कर्मको प्राप्त करके पुनः जघन्य स्थिति सत्त्व होनेके समय ही जघन्य स्थिति सत्त्वके समान स्थितिको बांधकर दो समय विग्रह करके नरकगति में उत्पन्न होता है और विग्रहमें असंज्ञी पंचेन्द्रियके जघन्य स्थिति सत्त्वसे हीन स्थितिका बंध करता है उसके दूसरे विग्रहके समय मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः नरकमें जघन्यस्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा। तथा ऐसे नारकीके पहले समयमें अजघन्य स्थिति रहती है अतः नरकमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा। तथा नरकमें अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है। सामान्य नारकियोंके समान पहले नरकमें भी मोहकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिये। पहले नरककी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर है अतः यहां अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल एक सागर कहा। दूसरे नरकसे लेकर छठे नरक तकके नारकियोंके मोहकी जघन्य स्थितिका प्राप्त होना भवके अन्तिम समयमें ही सम्भव है अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। किन्तु यह जघन्य स्थिति अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवके ही प्राप्त हो सकती है सो भी सबके नहीं, अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अपने अपने नरककी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्टकाल अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा। सातवें नरकमें उत्कृष्ट आयुवाला जो नारकी पर्याप्ति पूर्ण करके अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर दूसरे अन्तर्मुहूर्तके द्वारा अनन्तानुबन्धी स्थितिसत्कर्मकी विसंयोजना कर जीवन भर सम्यक्त्वके साथ रहा और अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ पुनः मिथ्यात्वमें जितने काल तक शक्य हो उतने काल तक स्थिति सत्कर्मसे हीन बंध करके अगले समयमें सत्त्व स्थितिसे अधिक स्थिति बंध करेगा, उस जीवके जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है और जो सत्तामें स्थित स्थितिके समान स्थितिवाले कर्मका बंध करता रहता है उसके जघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्त-

§ ६८. तिरिक्ख० मोह० जहण्णट्ठिदी ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज-हण्ण० ज० एगसमओ, उक्क० असंखेज्जा लोगा । एवं मदि-सुदअण्णाण०-असंजद०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णि त्ति वत्तव्वं । णवरि असण्णिवज्जिएसु अज० ज० अंतोमु० ।

§ ६९. पंचिंदियतिरिक्खचउक्कम्मि मोह० जहण्णट्ठिदी जह० एगसमओ, उक्क० बे समया । अजहण्ण० जह० खुद्दाभवग्गहणं विसमऊणं, अंतोमुहुत्तं विसमऊणं । एत्थ

मुहूर्त होता है। तथा जघन्य स्थितिके बाद जो अन्तर्मुहूर्त काल शेष रह जाता है वह अजघन्य स्थितिका जघन्यकाल है। तथा अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल सातवें नरककी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है, यह स्पष्ट ही है।

§ ६८. तिर्यंच गतिमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल असंख्यात लोकप्रमाण है। इसी प्रकार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि असंज्ञियोंको छोड़कर शेष मत्यज्ञानी आदि जीवोंके अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—तिर्यंचोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रियोंके प्राप्त होती है और वह कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक रहती है; क्योंकि प्रत्येक स्थिति-का जघन्य बन्धकाल एक समय और उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है। अतः इनके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। तथा जो तिर्यंच जघन्य स्थितिके बाद एक समय तक अजघन्य स्थितिके साथ रहा और मरकर दूसरे समयमें अन्य गतिको प्राप्त हो गया उसके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। तथा तिर्यंच पर्यायमें मोहनीयकी अजघन्य स्थितिके साथ रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक-प्रमाण है, अतः इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण कहा। यह जो ऊपर सामान्य तिर्यंचोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल कहा वह एकेन्द्रियोंकी प्रधानतासे कहा है और एकेन्द्रिय पर्यायके रहते हुए मत्यज्ञान, श्रुताज्ञान, असंयम, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी ये मार्गणाएँ सम्भव हैं ही अतः इनका कथन तिर्यंचोंके समान जानना। किंतु ऊपर अजघन्य स्थितिका जघन्यकाल जो एक समय कहा है वह असंज्ञी अवस्थामें ही प्राप्त होता है शेष मार्गणाओंमें नहीं, क्योंकि जो जीव जघन्य स्थितिके बाद एक समय तक अजघन्य स्थितिको प्राप्त हुआ और तदनन्तर मरकर अन्य गतिको प्राप्त हो जाता है इसके असंज्ञी मार्गणा तो बदल जाती है पर ऊपर कहीं हुई मार्गणाएँ नहीं बदलतीं अतः मत्यज्ञानी आदि उपर्युक्त शेष मार्गणाओंमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिये।

§ ६९. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, योनिमती और लब्ध्यपर्याप्त इन चार प्रकारके तिर्यंचोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल दो समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल पंचेन्द्रिय तियंच और लब्ध्यपर्याप्त पंचे-न्द्रियतिर्यंचोंमें दो समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और शेष दो प्रकारके तिर्यंचोंमें दो समय कम अन्तर्मुहूर्त है। यहां मूलोच्चारणाका पाठ है कि उक्त चारों प्रकारके तिर्यंचोंके अजघन्य

मूलुच्चारणापाठो जह० एयसमओ त्ति । तत्थायमहिप्पाओ एइंदिएसु समयुत्तरमसण्णिट्ठिदिं सण्णिट्ठिदिघादवसेण कादूण गदस्स पढमविग्गहे तदुवलंभसंभवो त्ति । उक्कस्सेण सगट्ठिदी ।

§ ७० मणुसतिय० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० जह०

स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है । इसका यह अभिप्राय है कि जो संज्ञी एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ उसने संज्ञीकी स्थितिका घात किया । अनंतर वह मरकर एक समय अधिक असंज्ञीके योग्य स्थितिके साथ उक्त चार प्रकारके तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ तो उसके पहले विग्रहमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा उक्त चारों प्रकारके तिर्यंचोके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—जो एकेन्द्रिय दो मोड़ा लेकर पंचेन्द्रिय तिर्यंचचतुष्कमें उत्पन्न होते हैं उनके पहले और दूसरे समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति सम्भव है अतः इनके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा । तथा इन दो समयोंको खुद्दाभवग्रहणप्रमाण अन्तर्मुहूर्त कालमें घटा देने पर जो दो समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण काल शेष रहता है वह पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है । तथा जो दो समय कम अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहता है वह पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है । इन चार प्रकारके तिर्यंचोंके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय होता है ऐसा मूलोच्चारणामें पाठ पाया जाता है सो उसका यह तात्पर्य है कि पहले कोई एक संज्ञी जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर उस एकेन्द्रियने संज्ञीकी स्थितिका घात किया और ऐसा करते हुए जब उसके असंज्ञीकी जघन्य स्थितिसे एक समय अधिक स्थिति शेष रह गई तब वह मरकर उक्त चार प्रकारके तिर्यंचोंमें उत्पन्न हो गया, इस प्रकार इन चारों प्रकारके तिर्यंचोंके पहले मोड़ेके समय अजघन्य स्थिति प्राप्त हो गई और स प्रकार अजघन्य स्थितिका भी एक समय काल बन जाता है । बात यह है कि एकेन्द्रियोंसे लेकर असंज्ञी तक जो जीव मर कर संज्ञियोंमे उत्पन्न होते हैं उनके अनाहारक अवस्थामें असंज्ञीके योग्य स्थितिका ही बन्ध होता है । हाँ ऐसे जीवोंके शरीर ग्रहण करनेके समयसे लेकर संज्ञियोके योग्य स्थितिका बन्ध होने लगता है । अतः ऐसे संज्ञी जीवोके पहले और दूसरे मोड़ेमें असंज्ञियोंकी जघन्य स्थिति भी पाई जाती है और यही इनकी जघन्य स्थिति हो जाती है । अब यदि कोई जीव एक समय अधिक असंज्ञियोंकी जघन्य, स्थितिके साथ संज्ञियोंमें उत्पन्न हुआ तो उसके पहले मोड़ेमें अजघन्य स्थिति ही कही जायगी । यही सबब है कि मूलोच्चारणामें उक्त चार प्रकारके तिर्यंचोके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी माना है । तथा उक्त चार प्रकारके तिर्यंचोंमें जिसके जितनी कायस्थिति हो उतनी उनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिये । किसके कितनी कायस्थिति है यह अन्यत्रसे जान लेना चाहिये ।

§ ७०. सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंमे मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य

खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी । मणुसअपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खअप-ज्जत्तभंगो ।

§ ७१. देव० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अजह० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । भवण०-वाण० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एयसमओ । अजह० जह० एयसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी । जोदिसियादि जाव सव्वट्ठ० त्ति जह०ट्ठिदि० जहण्णुक्क० एगसमओ । अजहण्ण० जहण्णुक्क० जहण्णुक्कस्सट्ठिदी ।

स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल सामान्य मनुष्योंके खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और शेष दोके अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योके जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल पंचेन्द्रियतिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान जानना ।

विशेषार्थ–सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जो एक समय बतलाया है सो इसका खुलासा जिस प्रकार ओघप्ररूपणाके समय कर आये हैं उस प्रकार कर लेना चाहिये । तथा सामान्य मनुष्यका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और शेष दो प्रकारके मनुष्योंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल उक्त प्रमाण कहा । तथा अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट कायस्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है । इस विषयमें लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यकी स्थिति लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचके समान है, अतः इसके जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचके समान कहा ।

§ ७१. देवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी स्थिति-प्रमाण है । भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल क्रमसे अपनी अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ–जिस प्रकार सामान्य नारकियोके मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार सामान्य देवोंके घटित कर लेना चाहिए । तथा भवनवासी और व्यन्तर देवोंके भी इसी प्रकार जानना । विशेष बात इतनी है कि इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है, क्योंकि इतने काल तक उनके मोहकी अजघन्य स्थिति पाई जा सकती है । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थ-सिद्धि तकके देवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति भवके अन्तिम समयमें ही सम्भव है, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । पर यह जघन्य स्थिति उत्कृष्ट आयुवालेके होती है और वह भी सबके नहीं अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा ।

§ ७२. एइंदिय० मोह० जह० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अज० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० असंखेज्जा लोगा । एवं सुहुमेइंदिय० । बादरेइंदिय०–बादरेइंदियपज्ज० मोह० जहण्णट्ठिदि० के० ? ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अजहण्ण० के० ? ज० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । बादरेइंदियअपज्ज० सुहुमपज्ज०–सुहुमअपज्ज० मोह जहण्णाजहण्णट्ठिदी ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवं विगलिंदियअपज्ज० पंचकायाणं बादरअपज्ज०-सुहुमपज्जत्तापज्जत्त-ओरालियमिस्स० वत्तव्वं ।

§ ७३. विगलिंदिय-विगलिंदियपज्ज० मोह० जहण्णट्ठिदी जह० एयसमओ, उक्क० वे समया; परत्थाणसामित्तावलंबणादो । अजहण्ण० जह० खुद्दाभवग्गहणं विसमऊणं अंतोमुहुत्तं विसमऊणं एगसमओ वा, उक्क० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

---

§ ७२. एकेन्द्रिय जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल असंख्यात लोकप्रमाण है । इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय, जीवोंके जानना चाहिए । बादरएकेन्द्रिय और बादरएकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है । तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार विकलेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, पांचों स्थावरकाय बादर लब्ध्यपर्याप्तक, पांचों स्थावरकाय सूक्ष्मपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक तथा औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—सामान्य एकेन्द्रिय और उनके जितने भेद प्रभेद हैं उनमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल सामान्य तिर्यंचोंके समान घटित कर लेना चाहिये । किन्तु अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण जानना चाहिये, क्योंकि जिसकी जितनी कायस्थिति बतलाई हैं उसके उतने काल तक मोहनीयकी अजघन्य स्थिति पाई जा सकती है । किन्तु एकेन्द्रिय जीवोंके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण ही होता है । तथा विकलत्रय अपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय बादर अपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त तथा औदारिकमिश्र-काययोगी जीवोंके भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये । किन्तु इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है, क्योंकि इनका उत्कृष्ट काल इससे अधिक नहीं है ।

§ ७३. विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें मोनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल दो समय है । यह काल परस्थान स्वामित्वका अवलम्बन करनेसे प्राप्त होता है । तथा मोहनीयकी अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल

§ ७४ पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस०-तसपज्ज० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एगसमओ। अजहण्ण० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमु०, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी।

§ ७५. पंचकायसुहुमाणं सुहुमेइंदियभंगो। बादरपुढवि०-बादरआउ०-बादरतेउ०-बादरवाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेय० तेसिं पज्जत्त० जहण्णट्ठिदी ज० एयसमओ, उक्क० अंतोमु०। अजहण्ण० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। वणप्फदि०-णिगोद०

क्रमसे दो समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और दो समय कम अन्तर्मुहूर्त है या एक समय है, और उत्कृष्ट सत्त्वकाल संख्यात हजार वर्ष है।

विशेषार्थ—जिस एकेन्द्रियने हतसमुत्पत्ति क्रमसे विकलत्रयके योग्य जघन्य स्थिति प्राप्त की अनन्तर वह मरा और दो मोड़ोंके साथ विकलत्रयोंमें उत्पन्न हुआ तो उसके पहले और दूसरे मोड़ेमें जघन्य स्थिति पाई जाती है, अतः विकलत्रयके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा। यहां यह जो जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय बतलाया है सो जो जीव एकेन्द्रियोंमेंसे आकर विकलत्रयोंमें उत्पन्न होता है उसकी अपेक्षासे बतलाया है यही यहां परस्थान स्वामित्वका अवलम्बन है। तथा इन दो समयोंको खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त कालमेंसे घटा देने पर जो दो समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण काल शेष रहता है वह सामान्य विकलत्रयोंके मोहनीयकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है। तथा जो दो समय कम अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहता है वह पर्याप्त विकलत्रयोंके मोहनीयकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है। तथा इन दोनों प्रकारके विकलत्रयोंके अजघन्य स्थितिका जो जघन्यकाल एक समय बतलाया है सो यह मूलोच्चारणाके पाठके अनुसार बतलाया है और इसका खुलासा जिस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच चतुष्कके कर आये हैं उसी प्रकार यहां भी कर लेना चाहिये। उक्त दोनों प्रकारके विकलत्रयोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्ष है और इतने कालतक इनके मोहनीयकी अजघन्य स्थिति प्राप्त होनेमें बाधा नहीं आती है, अतः इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहा है।

§ ७४. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्तक जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति दशवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ७५. पांचों स्थावरकाय तथा उनके सूक्ष्म जीवोंके सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके समान है। बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक और बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर जीवोंके तथा इन सब पर्याप्त जीवोंके जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। वनस्पतिकायिक और

एइंदियभंगो । पंचिंदियअप०-तस०अप० पंचिं०तिरिक्खअपज्जत्तभंगो ।

§ ७६. पंचमण०-पंचवचि० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एयसमओ । अजहण्ण० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवमवगद०-अकसा०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद० वत्तव्वं ।

§ ७७. ओरालिय० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अजहण्ण० ज० एगसमओ, उक्क० वावीस वाससहस्साणि देसूणाणि । वेउव्विय० मणजोगिभंगो । वेउव्वियमिस्स० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अजहण्ण० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं । कायजोगि० मोह० जहण्णट्ठिदी० जहण्णुक्क० एगसमओ । अजहण्ण० जह० एगसमओ, जहण्णविहत्तियदुचरिमसमए कायजोगेण परिणदम्मि तदुवलंभादो । उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । एवं णवुंस० वत्तव्वं । आहार०मणजोगिभंगो । आहारमिस्स० वेउव्वियमिस्सभंगो । कम्मइय० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया ।

निगोद जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान है । पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक और त्रस लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान है ।

§ ७६. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्मुहूर्त है । इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिए ।

§ ७७. औदारिक काययोगी जीवोंमे मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल कुछ कम बाइस हजार वर्ष है । वैक्रियिककाययोगी जीवोंके मनोयोगी जीवोंके समान जानना चाहिये । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । काययोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है । वो जघन्य स्थिति विभक्तिके द्विचरम समयमें काययोगके होनेपर पाया जाता है । तथा उत्कृष्ट सत्त्वकाल अनन्त कालप्रमाण है जिसका प्रमाण असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है । इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये । आहारक काययोगी जीवोंके मनोयोगी जीवोंके समान जानना चाहिये । आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिये । तथा कार्मणकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल तीन समय है ।

विशेषार्थ—पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके दशवें गुणस्थानके अन्तमें जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय

§ ७८. वेदाणुवादेण इत्थिवेदे० मोह० जह० जहण्णुक्क० एगसमओ। अज० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। पुरिस० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एग-समओ। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी।

कहा। तथा पांचों मनोयोग और पांचों वचनयोगोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। औदारिककाययोगमें अजघन्य स्थितिके उत्कृष्टकालमें विशेषता है। बात यह है कि औदारिककाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष है अतः इसमें अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है। शेष कथन मनोयोगियोंके समान है। वैक्रियिककाययोगमें भी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल मनोयोगके समान जानना। किन्तु जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे सर्वार्थसिद्धिमें जाता है उसके भवके अन्तिम समयमें यदि वैक्रियिककाययोग हो तो वैक्रियिककाययोगमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः वैक्रि-यिककाययोगमें इस प्रकार जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय घटित करके कहना चाहिये। वैक्रियिकमिश्रकाययोगके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका प्राप्त होना सम्भव है, अतः इसमें जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कहा। तथा वैक्रियिकमिश्र-काययोगका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इसमें अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। काययोगमें जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल मनोयोगके समान घटित कर लेना चाहिये। काययोगमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय होता है। इसका कारण यह बतलाया है कि जिस समय जघन्य स्थिति हुई उसके उपान्त्य समयमें यदि काय-योग हो तो काययोगमें अजघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है। उदाहरणार्थ दशवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति होती है। वह यदि अन्तिम दो समयके लिये काययोगी हो जाय तो काययोगमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है। काययोगका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है, अतः इसमें अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा। काययोगियोंके समान नपुंसकोंके कथन करना चाहिये। किन्तु क्षपक नपुंसकके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है इतना विशेष जानना। आहारक काययोगमें मनोयोगीके समान जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल पाया जाता है। किन्तु इतना विशेष है कि आहारक काययोगके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है। शेष कथन सुगम है।

§ ७८. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। पुरुषवेदी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल अन्त-र्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—क्षपकके स्त्रीवेदके उदयके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी अपेक्षा जानना चाहिए, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। उपशम श्रेणीसे उतर कर जो जीव एक समयके लिये स्त्रीवेदी हुआ और दूसरे समयमें मरकर देव हो गया उसके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता

§ ७६. चत्तारिकसाय० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एगसमओ। अजह० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०।

§ ८०. आभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एगसमओ। अजह० जहण्णुक्कस्सेण जहण्णुक्कस्सट्ठिदी। एवं मणपज्जव०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०--संजदासंजद०--ओहिदंस०-सुक्कले०-सम्मादि-खइय०-वेदग० वत्तव्वं। विहंग० जह० जहण्णुक्क० एयसमओ। अजह० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। चक्खु० तसपज्जत्तभंगो।

है। तथा पुरुषवेदका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः पुरुषवेदमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ७६. चारों कषायवाले जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—क्षपक जीवके अपनी अपनी कषायके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा प्रत्येक कषायका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा।

§ ८०. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल क्रमसे अपनी अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये। विभंगज्ञानी जीवोंके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। चक्षुदर्शनी जीवोंके त्रसपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी क्षपक जीवके दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। शेष कथन सुगम है। मूलमें और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी जघन्य स्थितिके स्वामित्वका विचार करके जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समयका कथन करना चाहिये। जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपरिम ग्रैवेयकवासी देव आयुके अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया उसके अन्तिम समयमें विभंगज्ञानमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय पाया जाता है। तथा जो अवधिज्ञानी शेष देव या नारकी अन्तिम समयमें मिथ्यादृष्टि हो जाता है उसके विभंगज्ञानमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। तथा अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल विभंगज्ञानके उत्कृष्ट काल

§ ८१. किण्ह०-णील०-काउ० मोह० जहण्णट्ठिदी ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। अज० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। तेउ० सोहम्मभंगो। पम्म० सहस्सारभंगो।

§ ८२. उवसम०-सम्मामि० आहारमिस्सभंगो। सासण० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एगसमओ। अजह० जह० एगसमओ, उक्क० छ आवलियाओ। सण्णि० पुरिसभंगो। आहार० मोह० जहण्णट्ठिदी जहण्णुक्क० एगसमओ। अज० जं० खुद्दा-भवग्गहणं तिसमऊणं। उक्क० सगट्ठिदी। अणाहार० कम्मइयभंगो।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

§ ८३. अंतराणुगमो दुविहो— जहण्णमुक्कस्सं चेदि। उक्कस्से पयदं।

प्रमाण है यह स्पष्ट ही है। चक्षुदर्शनवालोंमें त्रस पर्याप्त मुख्य हैं, अतः चक्षुदर्शनके कथनको त्रसपर्याप्तकोंके समान कहा।

§ ८१. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। पीतलेश्या-वाले जीवोंके सौधर्मस्वर्गके समान जानना चाहिए। पद्मलेश्यावाले जीवोंके सहस्रारस्वर्गके समान जानना चाहिये।

§ ८२. उपशम सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और काल छह आवली है। संज्ञी जीवोंके पुरुषवेदियोंके समान जानना चाहिये। आहारक जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अनाहारक जीवोंके कार्मणकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिये।

विशेषार्थ—कृष्णादि तीन लेश्याओंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सामान्य तिर्यंचोंके समान घटित कर लेना चाहिये। किन्तु इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण जानना चाहिये, क्योंकि अपने अपने उत्कृष्ट काल तक अज-घन्य स्थितिके निरन्तर रहनेमें कोई बाधा नहीं आती है। आहारकके दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है अतः इनके जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा जो तीन मोड़ेसे लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होता है उसके आहारककाल तीन समयकम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण पाया जाता है, अतः आहारकके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल तीन समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण कहा। अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। शेष कथन सुगम है।

§ ८३. अन्तरानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे उत्कृष्ट अन्तरानुगमका

१. प्रतौ ज० एगसमओ खुद्दा-इति पाठः।

दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण उक्कस्सट्ठिदीअंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणुक्क० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं तिरिक्ख०-कायजोगि०-णवुंस०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-अचक्खु०-भवसिद्धि-अभवसिद्धि-मिच्छादिट्ठि त्ति वत्तव्वं।

§ ८४. आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्क० अंतरं जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीस सागरो० देसूणाणि। अणुक्कस्स० ओघभंगो। पढमादि जाव सत्तमि त्ति मोह० उक्क० अंतरं केवचिरं० ? ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा। अणुक्क० ओघभंगो।

प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेश निर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अंतरकाल अनंतकाल प्रमाण है। जिसका प्रमाण असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है। अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अंतरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंतर्मुहूर्त है। इसी प्रकार तिर्यंच, काययोगी, नपुंसकवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ—ऐसा नियम है कि जिसने कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है वह यदि अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने लगे तो कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कालके पहले उस जीवमें उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध करनेकी योग्यता नहीं आ सकती अतः मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। तथा किसी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तने मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति बांधी अनन्तर वह अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने लगा और मर कर एकेन्द्रियादिमें उत्पन्न होकर अनन्त काल तक वहां घूमता रहा। पुनः एकेन्द्रियोंमें अनन्त कालके पूरे हो जाने पर वह संज्ञी पंचेन्द्रिय हुआ और पर्याप्त होनेके पश्चात् उसने मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया। इस प्रकार इस जीवके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण प्राप्त होता है अतः ओघसे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा। ऐसा नियम है कि उत्कृष्ट स्थितिका बंध एक समय तक भी होता है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अंतर एक समय प्राप्त हो जाता है। तथा उत्कृष्ट स्थितिका निरन्तर बन्ध अंतर्मुहूर्त काल तक होता है अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है। मूलमें सामान्य तिर्यंच आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें ही यह ओघ प्ररूपणा घटित होती है, अतः इनके कथनको ओघके समान कहा।

§ ८४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अंतरकाल अंतर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अंतरकाल ओघके समान है। पहले नरकसे लेकर सातवें नरक तक प्रत्येक नरकमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अंतर काल कितना है ? जघन्य अंतरकाल अंतर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अंतरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है।

§ ८५. पंचिंदियतिरिक्खतिय० मोह० उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०,उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। अणुक्क० ओघभंगो। एवं मणुसतिय०। पंचिं०तिरि०अपज्ज० मोह० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं। एवं मणुसअपज्ज०-आणदादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-पंचकाय-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-कम्मइय०-अवगद०-अकसाय-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो०-परिहा०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-ओहिदंस०-सुक्कलेस्स०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति वत्तव्वं।

§ ८६. देव० मोह० उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०,उक्क० अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि। अणुक्क० ओघभंगो। भवणादि जाव सहस्सारे त्ति उक्क० अंतरं केव० ? ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुक्क० ओघभंगो।

§ ८७. पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस०-तसपज्ज०मोह०उक्क० अंतरं जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुक्क० ओघं। एवमित्थि०-पुरिस०-चक्खु०-पंचलेस्सा०-

---

§ ८५. पंचेन्द्रियतिर्यंच,पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अंतरकाल अंतर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अंतरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके जानना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, आनत स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, पांचों स्थावरकाय, त्रस लब्ध्यपर्याप्तक, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी,मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले,सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि,वेदकसम्यग्दृष्टि,उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये।

§ ८६. देवगतिमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है। भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंके उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरलाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है।

§ ८७. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, त्रस और त्रस पर्याप्तक जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है। इसी प्रकार

सण्णि०-आहारि० त्ति।

§ ८८. पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्विय०-चत्तारिक० मोह०उक्क०णत्थि अंतरं। अणुक्क० ओघं। विहंग०सत्तमपुढविभंगो। एवमुक्कस्स-हिदिअंतराणुगमो समत्तो।

स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि पांच लेश्यावाले, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

§ ८८. पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और क्रोधादि चारों कषायवाले जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान है। विभंगज्ञानी जीवोंके अन्तरकाल सातवीं पृथिवीमें कहे गये अन्तरकालके समान है।

विशेषार्थ—आदेशसे अन्तरकालका खुलासा करते समय जहां जो विशेषता होगी उसीका स्पष्टीकरण करेंगे शेषका खुलासा ओघके समान जानना। सामान्यसे नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है, अतः यहां उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होगा। इसी प्रकार प्रथमादि नरकोंमें भी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण घटित कर लेना चाहिये। सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तानवे पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति सेतालिस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य है और योनिमती तिर्यंचोंकी उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य है। किन्तु भोगभूमिमें उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती अतः प्रत्येकके कालमेंसे तीन पल्य कम कर देना चाहिये और इस प्रकार जो प्रत्येकका पूर्वकोटिपृथक्त्व प्रमाण काल शेष रहता है वही उनके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये। इसमें भी प्रारम्भका पर्याप्त होने तकका काल और कम कर देना चाहिये। जिसका मूलमें निर्देश नहीं किया। इसी प्रकार मनुष्य त्रिकके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व प्रमाण लेना चाहिये। यहाँ सामान्य मनुष्यकी सेंतालिस, पर्याप्त मनुष्यकी तेईस और मनुष्यनीकी सात पूर्वकोटियाँ लेनी चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्धपर्याप्तकोंके उत्कृष्ट स्थिति उत्पन्न होनेके प्रथम समय में ही होती है जो संज्ञी पंचेन्द्रिय से मरकर उत्पन्न हुआ है। इनके बन्धकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट इनमेंसे किसी भी स्थितिका अन्तरकाल नहीं होता ऐसा कहा है। मूलमें लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंसे लेकर अनाहारक तक और भी जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनके भी इसी प्रकार समझना चाहिए। देवोंमें बारहवें स्वर्गतक ही मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है और बारहवें स्वर्गकी उत्कृष्ट स्थिति साधिक अठारह सागर है, अतः सामान्यसे देवोंके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर कहा। इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंमें जिसकी जितनी उत्कृष्ट स्थिति हो उसमेंसे कुछ कम प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल जानना चाहिये। आगे और जितनी मार्गणाएं बतलाई हैं उनमें भी इसी प्रकार विचारकर खुलासा कर लेना चाहिए। हां पांचों मनोयोग, पांचो वचनयोग, काययोग, औदारिककाययोग, वैक्रियिककाययोग और चारो कषायोंमें उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं होता, क्योंकि इनका काल इतना कम है जिससे इनके कालके भीतर दोबार उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती। किन्तु जिसनें अनुत्कृष्ट स्थितिके साथ इन मार्गणाओंको प्राप्त किया और मध्यमें एक समय

§ ८६. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो-ओघेण-ओदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जहण्णाजहण्णट्ठिदीणं णत्थि अंतरं । एवं विदियादि जाव छट्ठी पुढवी० सव्व पंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-जोदिसियादि जाव सव्वट्ठ-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स-इत्थि०-पुरिस०-णवुंसय-अवगद०-चत्तारिकसाय-अकसाय-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-संजद०-सामाइय०-छेदो०-परिहार०-सुहुम० जहाक्खाद०-संजदासंजद-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंसण-तिण्णिले०-भवसि०-सम्मादि०-खइय०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि०-आहारि त्ति ।

तक या अन्तमुहूर्त कालतक उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हुआ तो उसके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त प्रमाण बन जाता है। अतः उक्त मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल ओघके समान कहा। यद्यपि काययोग और औदारिक काययोगका काल बहुत अधिक है पर यह काल एकेन्द्रिय और पृथिवीकायिक जीवोंके ही प्राप्त होता है अतः इनमें भी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ ८६. अब जघन्य स्थिति अन्तरानुगम प्रकृत है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितियोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सभी मनुष्य, ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारक काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, अपगतवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अकषायी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, तीन लेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्षपक जीवके दसवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें होती है अतः ओघसे जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं बनता। इसी प्रकार मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, अपगतवेदी, लोभकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ल लेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारकके जानना चाहिये, क्योंकि इनमें भी क्षपकका दसवाँ गुणस्थान पाया जाता है। दूसरे नरकसे छठे नरक तक नारकी, ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी अकषायी, परिहारविशुद्धि

§ ६०. आदेसेण णिरयगईए मोह० जहण्ण० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक्क० एगसमओ । एवं पढमपुढवि-देव-भवण०-वाण०-कम्मइय-अणाहारि त्ति । सत्तमाए मोह० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§ ६१. तिरिक्ख० मोह० जह०ज० अंतोमुहुत्तं, उक० असंखेज्जा लोगा । अज० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-अभवसि०-

संयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टिके अपने अपने उत्कृष्ट आयुके अन्तिम समयमें ही मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है अतः इनके जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं होता। सभी पंचेन्द्रियतिर्यंच, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, और त्रस अपर्याप्तकोंके उत्पन्न होते समय ही जघन्य स्थिति होती है अतः इनके भी अन्तर नहीं होता। स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, क्रोध, मान और माया कषायवाले जीवोंके नौवें गुणस्थानमें अपने अपने क्षयके अन्तिम समयमें और सामायिक संयत व छेदोपस्थापनावाले जीवोंके क्षपणाके नौवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें ही मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है अतः इनके भी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं होता। विभंगज्ञानमें उपरिम ग्रैवेयकके देवके आयुके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है, अतः अन्तर नहीं होता। पीत लेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले परिहारविशुद्धि संयतके समान जानना।

§ ६०. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी देव, व्यन्तर देव, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये। सातवीं पृथिवीमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—जो असंज्ञी जीव नरकमें दो विग्रहसे उत्पन्न होता है उसके दूसरे विग्रहके समय जघन्य स्थिति सम्भव है अतः सामान्यसे नारकियोंके अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा। क्योंकि ऐसे नारकीके प्रथम और तृतीयादि समयोंमें अजघन्य स्थिति हुई और दूसरे समयमें जघन्य स्थिति रही, अतः अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल एक समय प्राप्त हो गया। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके अजघन्य स्थितिके जघन्य अन्तरकाल एक समयको घटित कर लेना चाहिये। सातवें नरकमें जब आयुमें अन्तर्मुहूर्तकाल शेष रह जाता है तब कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक जघन्य स्थितिका प्राप्त होना सम्भव है। तथा इस नारकीके इस जघन्य स्थितिके पश्चात् पुनः अजघन्य स्थिति हो जाती है, अतः यहां अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। तथा जघन्य स्थिति दो बार नहीं प्राप्त होती इसलिये उसका अन्तरकाल नहीं बनता।

§ ६१. तिर्यंचगतिमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोक है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अभव्य,

मिच्छादिट्ठी०-असण्णि त्ति। एइंदिय० तिरिक्खभंगो। बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्ज०-बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्ज०-सुहुमेइंदियअपज्ज० मोह० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अज० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं चत्तारि काय०। णवरि सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा। वणप्फदि० एइंदियभंगो।

§ ९२. ओरालियमिस्स० मोह० जह० ज० अंतोमु०, उक्क० अंतोमु०। अज० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। किण्ह-णील-काउ० सत्तमपुढविभंगो।

एवमंतराणुगमो समत्तो।

मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोके कहना चाहिये। एकेन्द्रियोके तिर्यंचोके समान जानना चाहिये। बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रियपर्याप्तक, बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकायिक जीवोके जानना चाहिये। पर इतनी विशेषता है कि इनके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। वनस्पतिकायिक जीवोके एकेन्द्रियोके समान जानना चाहिये।

§ ९२. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंके सातवीं पृथिवीके समान है।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट स्थितिके समान आदेशसे जघन्य स्थितिके सम्बन्धमे भी यह नियम समझना चाहिये कि जिसके जघन्य स्थितिके पश्चात् अजघन्य स्थिति हो जाती है उसे पुनः जघन्य स्थितिको प्राप्त करनेमे कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल अवश्य लगता है तथा जिसने तिर्यंच पर्यायमे जघन्य स्थितिको प्राप्त किया पुनः वह अजघन्य स्थितिको प्राप्त करके यदि निरन्तर उसीके साथ रहे तो उसे पुन. जघन्य स्थितिके प्राप्त करनेमे अधिकसे अधिक असंख्यात लोकप्रमाण काल लगता है अतः तिर्यंचोंमे जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण प्राप्त होता है यह सिद्ध हुआ। तथा जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त होता है अतः तिर्यंचोमें अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा। मूलमें गिनाई गई मत्यज्ञानी आदि मार्गणाओंमें अन्तरकाल प्राप्त करनेकी यही विधि जानना, अतः इनमे जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तर कालको सामान्य तिर्यंचोंके समान कहा। तथा आगे जो बादर एकेन्द्रियादिकोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल कहा उसमें केवल जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट अन्तरकालमे ही विशेषता है। शेष सब कथन सामान्य तिर्यंचोके समान है। बात यह है कि इन बादर एकेन्द्रियादिककी उत्कृष्ट कायस्थिति भिन्न भिन्न है अतः इनमे जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी कायस्थितिप्रमाण ही कहना चाहिये। औदारिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमे जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। कृष्ण, नील व कापोतलेश्या-

§ ९३. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण भण्णमाणे तत्थ णाणाजीवेहि उक्कस्सभंगविचए इदमट्ठपदं—जे उक्कस्सस्स विहत्तिया ते अणुक्कस्सस्स अविहत्तिया। जे अणुक्कस्सस्स विहत्तिया ते उक्कस्सस्स अविहत्तिया। एदेण अट्ठपदेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० उक्कस्सट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च। एवं तिण्णि भंगा ३। अणुक्क० ट्ठिदीए सिया सव्वे विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च। एवं सव्वणिरय-सव्वतिरिक्ख-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव सव्वट्ठ० -सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-छक्काय-पंचमण०-पंचवचि०--कायजोगि०-ओरालिय०--वेउव्विय०--ओरालियमिस्स०--कम्मइय०-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मण-

वाले एकेन्द्रिय जीवोंके मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है। एकेन्द्रियोंमें उक्त लेश्याओंका काल अन्तर्मुहूर्त है जो अजघन्य स्थितिके जघन्यकालसे छोटा है अतः जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है परन्तु उक्त लेश्याओंका काल जघन्य स्थितिके कालसे बड़ा है अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त घटित हो जाता है जो सातवीं पृथिवीके समान है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ ९३. अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमका कथन करते हैं। उसमें भी नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट भंगविचयके कथनमें यह अर्थपद है—जो उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं वे अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले नहीं हैं। जो अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं वे उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले नहीं हैं। इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा कदाचित् सभी जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे रहित हैं। कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे रहित हैं और एक जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला है। कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे रहित हैं और बहुतसे जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं। इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा कदाचित् सभी जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं। कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं और एक जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे रहित है, कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले हैं और बहुतसे जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे रहित हैं ये तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार सभी नारकी, सभी तिर्यँच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, छहों कायवाले, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, वैक्रियिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी,

पज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहि०-छलेस्सा०-भव०-अभव-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-मिच्छा०-सण्णि०-असण्णि० आहारि०-अणाहारि त्ति ।

§ ६४. मणुसअपज्ज०-उक्कस्सविहत्तिपुव्वा अट्ठभंगा । अणुक्कस्सविहत्तिपुव्वा वि अट्ठभंगा । एवं वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० ।

एवमुक्कस्सभंगविचओ समत्तो ।

मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, छहों लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ६४. लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति पूर्वक आठ भंग होते हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिपूर्वक भी आठ भंग होते हैं। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—निश्चित सिद्धान्तके अनुसार व्यवस्थाके द्योतक वाक्यको अर्थपद कहते हैं। यहाँ निश्चित सिद्धान्त यह है कि जो उत्कृष्ट स्थितिवाले होते है वे अनुत्कृष्ट स्थितिवाले नहीं होते और जो अनुत्कृष्ट स्थितिवाले होते हैं वे उत्कृष्ट स्थितिवाले नहीं होते। इससे यह व्यवस्था फलित हुई कि उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोसे अनुत्कृष्ट स्थितिअविभक्तिवाले जीव भिन्न नहीं और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंसे उत्कृष्ट स्थिति अविभक्तिवाले जीव भिन्न नहीं। फिर भी एकवार उत्कृष्ट स्थितिवालोंको और दूसरी वार अनुत्कृष्ट स्थितिवालोको मुख्य करके भंगोंका संग्रह किया जाय तो प्रत्येककी अपेक्षा तीन तीन भङ्ग प्राप्त होते हैं। जो मूलमें गिनाये ही हैं। बात यह है कि उत्कृष्ट स्थितिवाला जीव कदाचित् एक भी नही रहता, तथा कदाचित् एक होता है और कदाचित् अनेक होते हैं। अब यदि इन तीन विकल्पोंको मुख्य करके भंग कहे जाते हैं तो उनकी सूरत निम्न होती है—(१) कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट स्थिति-अविभक्तिवाले होते हैं। (२) बहुत जीव उत्कृष्ट स्थितिअविभक्तिवाले होते हैं और एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला होता है। (३) कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट स्थिति-अविभक्तिवाले होते हैं और बहुत जीव उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले होते हैं। यह तो उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा कथन हुआ। अब यदि इसके स्थानमे अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंको मुख्य कर देते हैं और उत्कृष्ट स्थितिवालोको गौण तो उन्हीं भंगोंकी शकल निम्न हो जाती है—(१) कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले होते हैं। (२) कदाचित् बहुत जीव अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले होते हैं और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति अविभक्तिवाला होता है। (३) कदाचित् बहुत जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले और बहुत जीव अनुत्कृष्ट स्थिति-अविभक्तिवाले होते हैं। सब नारकियोंसे लेकर अनाहारको तक मूलमें जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं। उनमें यह ओघप्ररूपणा बन जाती है अर्थात् उन मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंकी अपेक्षा तीन तीन भंग बन जाते हैं, अतः इनकी प्ररूपणाको ओघके

§ ९५. जहण्णयम्मि अट्ठपदं। तं जहा—जे जहण्णस्स विहत्तिया ते अजहण्णस्स अविहत्तिया, जे अजहण्णस्स विहत्तिया ते जहण्णस्स अविहत्तिया। एदेण अट्ठपदेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह०-जहण्ण-ट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च, एवं तिण्णि भंगा। एवमजह०। णवरि विहत्तिया पुव्वं भाणियव्वं। एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसतिय-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-बादरपुढवि०पज्ज०-बादरआउ० पज्जत्त०-बादरतेउ०-पज्ज०-बादरवाउ०पज्ज०-बादरवणप्फदि०पत्तेय०पज्ज०-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-

---

समान कहा। किन्तु लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य यह सान्तर मार्गणा है अतः इसकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंमेंसे प्रत्येकके आठ आठ भंग हो जाते हैं। इसी प्रकार और जितनी सान्तर मार्गणाएँ हैं उनमें तथा अपगतवेदी, अकषायी और यथाख्यातसंयत इन तीन मार्गणाओंमें भी आठ आठ भंग प्राप्त होते हैं।

वह आठ भंग इस प्रकार हैं:—एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (१), अनेक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (२), एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (३), अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (४) एक जीव उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (५), एक जीव उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला और अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले (६), अनेक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला (७), अनेक जीव उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले और अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले (८)।

इस प्रकार उत्कृष्ट भंगविचय समाप्त हुआ।

§ ९५. नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य भंगविचयके कथनमें जो अर्थपद है वह इस प्रकार है— जो जघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं वे अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं। जो अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं वे जघन्य स्थितिविभक्तिवाले नहीं हैं। इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेसे ओघकी अपेक्षा कदाचित् सभी जीव मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले नहीं हैं। कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले नहीं हैं और एक जीव मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाला है। कदाचित् बहुतसे जीव मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले नहीं हैं और बहुतसे जीव मोहनीयकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवाले हैं इस प्रकार जघन्य स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार मोहनीयकी अजघन्य स्थितिविभक्तिकी अपेक्षासे भी तीन भंग होते हैं। इतनी विशेषता है कि अजघन्य स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा कथन करते समय 'विहत्तिया' का पहले कथन करना चाहिये। अर्थात् जिस प्रकार जघन्य स्थितिकी अपेक्षा कथन करते समय तीन भंगोंमें अविभक्तिवालोंका पहले कथन किया है उसी प्रकार अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा कथन करते समय तीन भंगोंमे पहले विभक्तिवालोंका कथन करना चाहिये। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादरजलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादरवायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी,

कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिकसाय-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-तिण्णिलेस्सा०-भवसिद्धि०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-सण्णि-आहारि त्ति।

§ ९६. तिरिक्ख० मोह० ज० अज० णियमा अत्थि । एवं सव्वएइंदिय-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादर-आउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-पज्जत्ता पज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०अपज्ज-वणप्फदि-णिगोद०-ओरालियमिस्स०-कम्म-इय०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-तिण्णिले०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ ९७. मणुसअपज्ज० उक्कस्सभंगो । एवं वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहार-मिस्स-(अवगद-) अकसाय-सुहुम०-जहक्खाद०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचओ समत्तो ।

पांचों वचनयोग,काययोगी, औदारिककाययोगी,वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले,विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी,अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी,संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थानासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले अवधिदर्शनवाले, पीत आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ९६. तिर्यंचोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त,जलकायिक,बादर जलकायिक,बादरजलकायिक अपर्याप्त,सूक्ष्म जलकायिक,सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त,सूक्ष्म अग्निकायिक,सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त,सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त,वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादरवायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ ९७. लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके समान यहां भी आठ आठ भंग हैं । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ९८. भागाभागाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। तत्थ उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० उक्कस्सट्ठिदि-विहत्तिया जीवा सव्वजीवाणं केवडिओ भागो? अणंतिमभागो। अणुक्क० सव्वजी० के० भागो? अणंता भागा। एवं तिरिक्ख०-सव्वएइंदिय-वणप्फदि०-णिगोद०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स-कम्मइय-णवुंस०-चत्तारिकसाय-मदि-सुद-अण्णाण-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिलेस्सा-भवसिद्धि०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि-आहारि०-अणाहारि त्ति।

§ ९९ आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्क० सव्वजी० के० भागो? असंखे० भागो। अणुक्क० सव्वजी० केवडिओ भागो? असंखेज्जा भागा। एवं सव्वपुढवि०-सव्वपंचि०तिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइद०-सव्वविग-लिंदिय-सव्वपंचिंदिय-सव्वपुढवि०-सव्वआउ०-सव्वतेउ०-सव्ववाउ०-बादरवणप्फदि०

विशेषार्थ—उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा भंगविचयका कथन करते समय ओघ और आदेशसे जिन भंगोंको पहले बतला आये हैं वे भंग यहां जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी उसी प्रकार बन जाते हैं। किन्तु सामान्यतिर्यंच और एकेन्द्रियोंसे लेकर अनाहारक तक मूलमें गिनाई हुई कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें जघन्य स्थितिवाले बहुत जीव और अजघन्य स्थितिवाले बहुत जीव नियमसे पाये जाते हैं, अतः यहां (१) मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले और अविभक्तिवाले नाना जीव नियमसे हैं। (२) मोहनीयकी अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले और अविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं ये दो भंग ही प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम समाप्त हुआ।

§ ९८. भागाभागानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे उत्कृष्ट भागाभागानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं? अनन्तवें भाग हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं? अनन्त बहुभाग हैं। इसी प्रकार तिर्यंच, सभी एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ ९९. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं? असंख्यातवें भाग हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं? असंख्यात बहुभाग हैं। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रियतिर्यंच, सामान्य मनुष्य, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी पृथिवीकायिक, सभी जलकायिक, सभी अग्निकायिक, सभी वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर,

पत्तेय०-पज्जत्तापज्जत्त—सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०—वेउव्वियमिस्स०—इत्थि०-पुरिस०—विहंग०-आभिणि०—सुद०-ओहि०-संजदासंजद-चक्खु०-ओहिदंस०-तिण्णिले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि त्ति।

§ १००. मणुसपज्ज०-मणुसि० मोह० उक्क० सव्वजी० के० भागो ? संखे०-भागो। अणुक्क० सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा। एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहार—मिस्स०-अवगद०-अकसाय-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद०।

एवमुक्कस्सभागाभागो समत्तो।

§ १०१. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त,बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त,सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी,वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये।

§ १००. मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—भागाभागमें कौन किसके कितने भागप्रमाण हैं इसका विचार किया जाता है। प्रकृतमें सामान्यरूपसे और विशेषरूपसे उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव किसके कितने भाग हैं यह बतलाया गया है। लोकमें जितने उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव हैं उनमें अनन्तवें भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाले हैं और अनन्त बहुभाग अनुत्कृष्ट स्थितिवाले हैं। मार्गणाओंकी अपेक्षा उनकी प्ररूपणा तीन प्रकारसे हो जाती है। कुछ मार्गणाओंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंकी प्ररूपणा ओघके समान है। कुछ मार्गणाओंमें असंख्यातवें भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाले और असंख्यात बहुभाग अनुत्कृष्ट स्थितिवाले हैं। तथा कुछ मार्गणाओंमें संख्यातवें भागप्रमाण जीव उत्कृष्ट स्थितिवाले और संख्यात बहुभागप्रमाण जीव अनुत्कृष्ट स्थितिवाले है। इन सब मार्गणाओंके नाम मूलमें गिनाये ही है। इसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीवोंके भागाभागका खुलासा समझना चाहिये।

इस प्रकार उत्कृष्ट भागाभाग समाप्त हुआ।

§ १०१. अब जघन्य भागाभागका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थिति-

मोह० ज० सव्वजीवा० केवडि० ? अणंतिमभागो। अज० सव्वजी० के० ? अणंता भागा। एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसिद्धिय-आहारि त्ति।

§ १०२. आदेसेण णेरइएसु मोह० ज० सव्वजी० के० ? असंखे०भागो। अज० सव्वजी० के० ? असंखेज्जा भागा। एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख-मणुस — मणुसअपज्ज०-देव०-भवणादि जाव अवराइद०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-छकाय-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालियमिस्स-वेउव्विय०-वेउ०मिस्स०-कम्मइय०-इत्थि०-पुरिस०-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदा०-संजद०-असंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-छलेस्सा-अभव०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-मिच्छादि०-सण्णि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति।

§ १०३. मणुसपज्ज०-मणुसिणी० मोह० जह० सव्वजी० के० ? संखे०भागो। अज० सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा। एवं सव्वट्ठ० आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद०।

एवं भागाभागाणुगमो समत्तो।

विभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं? अनन्तवें भाग हैं। मोहनीयकी अजघन्य स्थिति-वाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं? अनन्त बहुभाग हैं। इसी प्रकार काययोगी, औदारिक काययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवों के कहना चाहिये।

§ १०२. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव विवक्षित जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले नारकी जीवोंके कितने भाग हैं? असंख्यातवें भाग हैं। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले नारकी जीव कितने भाग हैं? असंख्यात बहुभाग हैं। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, छहों कायवाले, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, छहों लेश्यावाले, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशम-सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ १०३. मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनियोंके कितने भाग हैं? संख्यातवें भाग हैं। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने भाग हैं? संख्यात बहुभाग हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी,

§ १०४. परिमाणाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो--ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिया जीवा केत्तिया ? असंखेज्जा। अणुक्क० केत्तिया ? अणंता। एवं तिरिक्ख-सव्वएइंदिय०-वणप्फदि०-णिगोद०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय०-मदि-सुदअण्णाण०-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति।

§ १०५. आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्क० अणुक्क० केत्तिया ? असंखेज्जा। एवं सत्तपुढवि०-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-चत्तारिकाय-सव्वतस-पंचमण-पंचवचि०--वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद-चक्खु० ओहिदंस०-तिण्णिले०-सम्मादि०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि त्ति।

§ १०६. मणुस० मोह० उक्क० के० ? संखेज्जा। अणुक्क० असंखेज्जा।

मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिये।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ।

§ १०४ परिमाणानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे उत्कृष्ट परिमाणानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इसी प्रकार तिर्यंच, सभी एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ १०५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रियतिर्यंच, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पृथिवीकायिक आदि चार कायवाले, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

§ १०६. मनुष्योंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार आनतसे लेकर अपराजित

एवमाणदादि जाव अवराइद० खइय०दिट्ठि त्ति। मणुसपज्ज०-मणुसिणी० उक्क० अणुक्क० केत्ति०? संखेज्जा। एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-समाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०।

एवमुक्कस्सओ परिमाणाणुगमो समत्तो।

§ १०७. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० ज० के०? संखेज्जा। अज० के०? अणंता। एव कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिकसाय- अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति।

§ १०८. आदेसेण णेरइएसु मोह० ज० अज० केत्तिया? असंखेज्जा। एवं पढमपुढवि०-सव्वपचिंदिय—तिरिक्ख—मणुसअपज्ज०-देव०-भवण०-वाण०-सव्व—विगलिंदिय—पंचिंदियअपज्ज०-चत्तारिकाय-तसअपज्जत्ते त्ति।

तकके देव और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ—इसमें ओघ और आदेशसे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंकी संख्या बतलाई गई है। ओघसे उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव अनन्त हैं। तथा आदेशसे संख्याकी प्ररूपणा चार भागोंमें बट जाती है। कुछ मार्गणाएं अनन्त संख्यावाली हैं जिनमें ओघप्ररूपणा घटित हो जाती है। कुछ मार्गणाएं असंख्यात संख्यावाली हैं जिनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनो स्थितिवाले असंख्यात हैं। कुछ मार्गणाएं असंख्यात संख्यावाली हैं परन्तु उनमें उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव संख्यात हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात हैं। तथा कुछ मार्गणाएं संख्यात संख्यावाली हैं जिनमें उत्कृष्ट स्थितिवाले और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले दोनों संख्यात हैं। मार्गणाओंके नाम मूलमें गिनाये हैं।

इस प्रकार उत्कृष्ट परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

§ १०७. अब जघन्य परिमाणानुगमका प्रकरण है? उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं? अनन्त हैं। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारो कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ १०८. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, और त्रस लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका परिमाण जानना चाहिये।

§ १०९. विदियादि जाव छट्ठि त्ति मणुस०-जोदिसियादि जाव अवराइद-पंचिं०-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्वि०-वेउव्वियमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिण्णिले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि० मोह० ट्ठिदि० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा ।

§ ११०. सत्तमाइए मोह० ज० अज० केत्ति० ? असंखेज्जा । तिरिक्ख० मोह० ज० अज० के० ? अणंता । एवं सव्वएइंदिय-सव्ववणप्फदि०-सव्वणिगोद०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-तिण्णिले०—अभव०-मिच्छादिट्ठि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ १११. मणुसपज्ज०-मणुसिणी० मोह० ज० अज० केत्तिया ? संखेज्जा । एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खादसंजदा त्ति ।

एवं परिमाणाणुगमो समत्तो ।

---

§ १०९. दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकी, सामान्य मनुष्य, ज्योतिषियोंसे लेकर अपराजित तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ।

§ ११०. सातवीं पृथिवीमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । तिर्यंचोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १११. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे जघन्य स्थिति क्षपक जीवके दशवें गुणस्थानके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है । अतः ओघकी अपेक्षा जघन्य स्थितिवाले जीव संख्यात हैं । तथा इनके अतिरिक्त

§ ११२. खेत्ताणुगमो दुविहो जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्से पगदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० उक्क० केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखे०भागे । अणुक्क० के० खेत्ते ? सव्वलोए । एवं तिरिक्ख-सव्वएइंदिय०-पुढवि०—बादरपुढवि०—बादरपुढविअपज्ज०—सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त—आउ०-बादरआउअपज्ज-सुहुमआउ०-पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-सुहुम-तेउ-पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०—बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ-पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-सव्ववणप्फदि०-सव्वणिगोद०-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय—मदि—सुदअण्णाण०-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०भवसि०-अभवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति।

मोहनीयकर्मकी सत्तावाले शेष सब जीव अजघन्य स्थितिवाले हुए और उनका प्रमाण अनन्त है अतः ओघसे अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त कहे। तथा मार्गणाओंकी अपेक्षा विचार करने पर कहीं ओघ जघन्य स्थिति सम्भव है और कहीं आदेश जघन्य स्थिति सम्भव है। इसीप्रकार कहीं जघन्य स्थितिका काल एक समय है और कहीं अन्तर्मुहूर्त, अतः जहां जिस प्रकारसे जघन्य स्थितिवाले जीवोंका कम या अधिक संचय होता है वहां उसके अनुसार उनकी संख्या कही। किन्तु अजघन्य स्थितिवालोंकी संख्या सर्वत्र अपनी अपनी मार्गणाकी संख्याके अनुसार जानना चाहिये। अर्थात् जिस मार्गणामे अनन्त जीव हैं उस मार्गणामें अजघन्य स्थितिवाले जीवोंकी संख्या अनन्त जानना। तथा जिस मार्गणामें जीव असंख्यात या संख्यात हैं उसमे अजघन्य स्थितिवाले जीवोंकी संख्या असंख्यात या संख्यात जानना।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

§ ११२. क्षेत्रानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे उत्कृष्ट क्षेत्रानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमे रहते हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं। इसी प्रकार तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके कहना चाहिये।

§ ११३. आदेसेण णेरइएसु मोह० उक्क० अणुक्क० के० खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे । एवं सत्तपुढवि०-णेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख०-सव्वमणुस्स-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-बादरपुढविपज्ज०-बादरआउपज्ज०-बादरतेउ-पज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेय०पज्ज०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय-वेउ०मिस्स०-[आहार०-]आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसाय-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय०-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-चक्खु०-ओहिदंसण०-तिण्णिलेस्सा-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि त्ति ।

§ ११४. बादरवाउपज्ज० उक्क० के० खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे । अणुक्क० लोग० संखे०भागे ।

एवमुक्कस्सखेत्ताणुगमो समत्तो ।

---

§ ११३. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सभी मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, अपगतवेदवाले, अकषायी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ११४. बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

विशेषार्थ—ओघसे उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात हैं और मार्गणाओंमेंसे किसीमें असंख्यात हैं और किसीमें संख्यात । अतः उत्कृष्ट स्थितिवालोंका क्षेत्र सर्वत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा । किन्तु अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंमें ओघ या आदेशसे जिनका प्रमाण अनन्त है उनका क्षेत्र सब लोक कहा और जिनका प्रमाण असंख्यात है उनका क्षेत्र तीन प्रकारका है । किन्हीं मार्गणाओंका सब लोक क्षेत्र है, किन्हींका लोकका संख्यातवां भाग क्षेत्र है और किन्हींका लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है । तथा जिन मार्गणावालोंका प्रमाण संख्यात है उनका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग ही है । जिन मार्गणावालोंका जितना क्षेत्र है उनके नाम मूलमें गिनाये ही हैं ।

इस प्रकार उत्कृष्ट क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ ११५. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जह० अजह० उक्कस्सभंगो । एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति ।

§ ११६. आदेसेण णिरयगदीए मोह० जह० अजह० उक्कस्सभंगो । एवं सत्त-पुढवीसव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-सव्वतस०-बादरपुढविपज्ज०-बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज० बादरवाउपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेय-पज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउ०मिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसा०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मण०पज्ज०-संजद०-सामाइय०-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिण्णले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्माभि०-सण्णि त्ति । णवरि बादरवाउपज्ज० जह० अजह० लोगस्स संखे०भागे ।

§ ११७. तिरिक्ख० मोह० जह० अजह० के० खेत्ते ? सव्वलोए । एवं सव्व-एइंदिय-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादर-

---

§ ११५. अब जघन्य स्थितिविभक्ति क्षेत्रानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा क्षेत्रका कथन उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके समान है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ११६. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकगतिमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थिति-विभक्तिकी अपेक्षा क्षेत्र उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सभी मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी त्रस, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिकपर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायु-कायिक पर्याप्त,बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त,पांचो मनोयोगी,पांचों वचनयोगी, वैक्रि-यिककाययोगी,वैक्रियिकमिश्रकाययोगी,आहारककाययोगी,आहारकमिश्रकाययोगी,स्त्रीवेदी पुरुषवेदी, अपगतवेदी, अकषायी,विभंगज्ञानी, आभिनिवोधिकज्ञानी,श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत,सामायिक संयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथा-ख्यातसंयत,संयतासंयत, चक्षुदर्शनी,अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिक-सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्तक जीवोंमें जघन्य स्थिति विभक्तिवाले और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

§ ११७. तिर्यंचोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं । सब लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, बादरपृथिवीकायिक, बादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक

आउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ-पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-[बादरतेउ०-]बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०--पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदि०पत्तेय०-तेसिमपज्ज०-सव्ववणप्फदि०-सव्वणिगोद०ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-तिण्णिलेस्सा-अभवसि०-मिच्छादि०-असण्णि-अणाहारि त्ति ।

§ ११८. एत्थ मूलुच्चारणापाढो—तिरिक्ख० मोह० जह० लोग० संखे०भागे। अज० सव्वलोगे। एदस्साहिप्पाओ सत्थाणविसुद्धबादरेइंदियपज्जत्तएसु चेव जहण्णसामित्तं जावमिदि। एवमेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-वाउ-बादरवाउ०-तदपज्जत्ताणं च वत्तव्वं। एदम्मि अहिप्पाए चत्तारिकाय-तेसिं बादर-तदपज्जत्ताणं जह० लोग० असंखे० भागे। अज० सव्वलोगे। मदि-सुदअण्णाण०-असंजद०-तिण्णिले०-अभव०-मिच्छादिट्ठि-असण्णीणं बादरवाउभंगो। एतदणुसारेण च पोसणं णेदव्वमिदि एदमेत्थ पहाणं ।

एवं खेत्ताणुगमो समत्तो।

अपर्याप्त,जलकायिक,बादरजलकायिक बादरजलकायिक अपर्याप्त,सूक्ष्म जलकायिक,सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त,सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक,बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादरवायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ११८ यहां पर मूलोचारणाका पाठ है कि तिर्यंचोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव सब लोकमें रहते हैं। इसका यह अभिप्राय है कि स्वस्थान विशुद्ध बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें ही जहां तक जघन्य स्वामित्व है वहां तक उक्त क्षेत्र प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि तिर्यंचोमें जघन्य स्थिति बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोके ही प्राप्त होती है और उनका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागसे अधिक नहीं, इसलिये सामान्य तिर्यंचोमे जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र उक्त प्रमाण बतलाया है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक और बादर वायुकायिक अपर्याप्त जीवोके कहना चाहिये । तथा इस अभिप्रायानुसार पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, उनके बादर और उनके बादर अपर्याप्त जीवोंमें जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमे रहते हैं, तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव सब लोकमे रहते हैं। मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोके बादर वायुकायिक जीवोंके समान क्षेत्र है। तथा इसीके अनुसार स्पर्शनका कथन करना चाहिये। इस प्रकार यही विवक्षा यहां पर प्रधान है।

विशेषार्थ—ओघसे जघन्य स्थितिवाले जीव संख्यात हैं और मार्गणाओंकी अपेक्षा

§ ११६. पोसणाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० उक्क० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ-तेरहचोद्दस भागा वा देसूणा। अणुक्क० खेत्त-भंगो। एवं कायजोगि०-चत्तारिकसाय-मदिअण्णाण-सुदअण्णाण-असंजद०-अचक्खु०-भव०-अभव०-मिच्छादि०-आहारि त्ति।

किसीमें अनन्त हैं, किसीमें असंख्यात और किसीमें संख्यात हैं। इनमेंसे जिन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिवाले संख्यात जीव हैं उनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। जिन मार्गणाओंमें असंख्यात हैं उनमेंसे कुछ मार्गणाएं तो ऐसी हैं जिनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है। जैसे सातों नरकोंके नारकी आदि। तथा बादरवायुकायिक पर्याप्त यह मार्गणा ऐसी है जिसकी अपेक्षा जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भाग-प्रमाण है। इनके अतिरिक्त जो अनन्त संख्यावाली और असंख्यात संख्यावाली मार्गणाएं शेष रहती हैं उनकी अपेक्षा जघन्य स्थितिवाले जीवोंका वर्तमान क्षेत्र सब लोक प्राप्त होता है। जैसे सामान्य तिर्यंच, एकेन्द्रिय और पृथिवीकायिक आदि। पर इस विषयमें मूलोचारणामें जो पाठ पाया जाता है उसका यह अभिप्राय है कि मूलमें असंख्यात संख्यावाली और अनन्त संख्यावाली जिन मार्गणाओंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र सब लोक कहा है उनमेंसे पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, उनके बादर तथा बादर अपर्याप्त जघन्य स्थितिवाले जीवों का क्षेत्र तो लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है और इन्हें छोड़कर शेष सब जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। सो वीरसेन स्वामीने इस मतभेदका यह कारण बतलाया है कि ऊपर जो सब लोक क्षेत्र कहा है वह मारणान्तिकसमुद्घात आदिकी अपेक्षासे कहा है और मूलोच्चारणामें जो कुछका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछका लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र कहा है वह स्वस्थानस्वस्थानकी अपेक्षासे कहा है, अतः दोनों कथनोंमें कोई विरोध नहीं है। फिर भी वीरसेन स्वामी इन दोनोंमेंसे मूलोचारणाके अभिप्रायको प्रधान मानते हैं और उसके अनुसार स्पर्शनके कथन करनेकी सूचना भी करते हैं। अब रहा ओघ और आदेश से अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र सो ओघ या आदेशसे जिसका जितना क्षेत्र बतलाया है, अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी उसका उतना ही क्षेत्र जानना चाहिये। क्योंकि सर्वत्र यद्यपि जघन्य स्थितिवाले जीव कम हो जाते हैं फिर भी इससे अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा उनके क्षेत्रमें न्यूनता नहीं आती।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ।

§ ११६. स्पर्शानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे उत्कृष्ट स्पर्शनानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघ निर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार काययोगी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असं-यत, अचक्षुदर्शनी, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ—यहां मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका जो लोकके असंख्यात वें भाग प्रमाण

§ १२०. आदेसेण णिरय० मोह० उक्क० अणुक्क० के० खेत्तं पोसिद ? लोगस्स असंखे०भागो छचोद्दस भागा वा देसूणा । पढमाए खेतभंगो । विदियादि जाव सत्तमि त्ति मोह० उक्क० अणुक्क० के० खेत्तं पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो एक्क-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छचोद्दस भागा देसूणा ।

§ १२१. तिरिक्ख० मोह० उक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो छ चोद्दसभागा वा देसूणा । अणुक्क० के० खेत्तं पोसिदं ? सव्वलोगो । एवमोरालि०-णवुंस० वत्तव्वं ।

स्पर्श बतलाया है वह वर्तमान कालकी मुख्यतासे बतलाया है, क्योंकि मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति सातों नरकोंके नारकी, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पर्याप्त मनुष्य व बारहवें स्वर्ग तकके देवोंके ही सम्भव है । पर इन सबका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है । त्रसनालीके चौदह भागोमेंसे जो कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भाग प्रमाण स्पर्श बतलाया है वह अतीत कालकी अपेक्षासे बतलाया है क्योंकि विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदसे परिणत हुए मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंने कुछ कम आठ भाग स्पर्श किया है और मारणान्तिक समुद्घातसे परिणत हुए मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंने कुछ कम तेरह भाग स्पर्श किया है । मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए तैजस, आहारक और उपपाद ये तीन पद सम्भव नहीं । हां स्वस्थानस्वस्थानपद अवश्य होता है सो इसकी अपेक्षा स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण जानना चाहिये । तथा मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका क्षेत्र जब कि सब लोक है तब स्पर्श तो सब लोक होगा ही । कुछ मार्गणाएं भी ऐसी हैं जिनमें यह ओघ प्ररूपणा अविकल बन जाती है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा । जैसे काययोगी आदि ।

§ १२०. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक पृथिवीमें मोहनीय की उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम एक, दो, तीन, चार, पांच और छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंका वर्तमान कालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीत कालीन स्पर्श त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण बतलाया है । इसीसे यहां पर मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले नारकियोंके दोनों प्रकारका स्पर्श उक्तप्रमाण कहा । विशेषकी अपेक्षा जिस नरकका अतीत कालीन जितना स्पर्श बतलाया है उतना ही जान लेना चाहिये जो मूलमें बतलाया ही है । यहां हमने पदविशेषोंका उल्लेख नहीं किया है सो यह सब विशेषता जीवट्ठाणसे जान लेनी चाहिये ।

§ १२१. तिर्यंच गतिमें तिर्यंचोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने

§ १२२. पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि उक्क० तिरिक्खोघं। अणुक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखेभागो सव्वलोगो वा। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० मोह उक्क० लोग० असंखे० भागो। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। एवं मणुस-अपज्ज०।

क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार औदारिककाययोगी और नपुंसकवेदी जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ—तिर्यंचोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचोंके ही सम्भव है और इनका वर्तमान निवास लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, अतः तिर्यंचोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। तथा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यंचोंका अतीत कालीन स्पर्श कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण बतलानेका कारण यह है कि ऐसे तिर्यंचोंने मारणान्तिक समुद्घात द्वारा नीचे कुछ कम छह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। क्योंकि जिन तिर्यंचोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हो रहा है उनका संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, मनुष्य और नारकियोंमें ही मारणान्तिक समुद्घात करना सम्भव है। तथा मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थिति सब जातिके तिर्यंचोंके सम्भव है और वे सब लोकमें पाये जाते हैं अतः मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले तिर्यंचोंका सब लोक स्पर्श बतलाया है। औदारिककाययोग और नपुंसकवेदमें भी यह व्यवस्था बन जाती है, अतः इनके स्पर्शको सामान्य तिर्यंचोंके समान बतलाया है।

§ १२२. पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिमती इन तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यंचोंके समान है। तथा उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—सामान्य तिर्यंचोंमें जो उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवों का स्पर्श कहा है वह पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक की मुख्यतासे ही कहा है अतः इन तीन प्रकारके तिर्यंचोमें उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका स्पर्श सामान्य तिर्यंचोंके समान बतलाया है। किन्तु उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंके स्पर्शमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि इन तीन प्रकारके तिर्यंचोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीतकालीन स्पर्श सब लोक है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श उक्त प्रमाण बतलाया है। जो तिर्यंच या मनुष्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके और स्थितिघात किये बिना पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके पहले समयमें मोहनीयकी आदेश उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है। किन्तु इनके अतीतकालीन और वर्तमानकालीन क्षेत्रका विचार करते हैं तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, अतः यहां मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोंका दोनों प्रकारका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। वैसे पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत कालीन स्पर्श सब लोक बतलाया है जो इनके अनुत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए सम्भव है, अतः मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके दोनो प्रकारका स्पर्श

§ १२३. मणु०-मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु उक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा।

§ १२४. देवेसु मोह० उक्क० अणुक्क० के० खेत्त० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णव चोद्दसभागा वा देसूणा। एवं सोहम्मीसाण० वत्तव्वं। भवण०-वाण०-जोदिसि० मोह० उक्क० अणुक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे भागो अद्धुट्ठ-अट्ठ-णव चोद्दसभागा वा देसूणा। सणक्कुमारादि जाव सहस्सारे त्ति मोह० उक्क० अणुक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस भागा वा देसूणा। आणद-पाणद-आरणच्चुद० मोह० उक्क० खेत्तभंगो। अणुक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो

उक्त प्रमाण बतलाया है। इस विषयमें मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकोंकी स्थिति पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोंके समान है अतः मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकोंका स्पर्श पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान बतलाया है।

§ १२३. सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है।

विशेषार्थ–सामान्य आदि तीन प्रकारके मनुष्योंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग कहनेका कारण यह है कि ऐसे मनुष्य संख्यात ही होते हैं और इनका उत्कृष्ट स्थितिके साथ सर्वत्र मारणान्तिक समुद्घात करना सम्भव नहीं, अतः इनका दोनों प्रकारका स्पर्श इससे अधिक नहीं प्राप्त होता। किन्तु उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग और अतीतकालीन स्पर्श सब लोक बतलाया है जो मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिके साथ सम्भव है अतः अनुत्कृष्ट स्थितिवाले उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंका स्पर्श उक्त प्रमाण कहा।

§ १२४. देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंके कहना चाहिये। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन, आठ और नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सानत्कुमारसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पके देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान है। तथा उक्त देवोंमें मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया

छचोद्दस भागा वा देसूणा। उवरि खेत्तभंगो। एवं ओरालियमिस्स- वेउव्वियमिस्स-आहार-आहारमिस्स-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदे त्ति।

§ १२५. एइंदिय० मोह० उक्क० के० खे० पो०? लोग० असंखे०भागो णव चोद्दसभागा वा देसूणा। अणुक्क० सव्वलोगो। एवं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्ज०। सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-बादरेइंदियअपज्ज० मोह० उक्क० के० खे० पो०? लोगस्स असंखे०भागो सव्वलोगो वा। अणुक्क० सव्वलोगो। एवं पंचकाय-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्ताणं।

है। अच्युत स्वर्गके ऊपर देवोंके स्पर्श उनके क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार अर्थात् नौग्रैवेयक आदिके देवोंके समान औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—क्षेत्रानुगम आदिमें सामान्य देवोंका व भवनवासी आदि देवोंका जो वर्तमानकालीन व अतीतकालीन स्पर्श बतलाया है वही यहां उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट स्थितिवाले उक्त देवोंका स्पर्श जानना चाहिये जो मूलमें बतलाया ही है। अन्तर केवल आनतादिक चार कल्पोंके देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंके स्पर्शमें है। बात यह है कि आनतादिक चार कल्पोंमें जो द्रव्यलिंगी मुनि उत्पन्न होते हैं उन्हींके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है और इनके अतीतकालीन स्पर्श कुछ कम छह बटे चौदह राजु विहार आदिके समय प्राप्त होता है। इस प्रकार आनतादिकमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान व अतीत स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। मूलमें औदारिकमिश्र आदि मार्गणाओंमें इसी प्रकार है यह बतलाया है सो इसका भाव यह है कि इन मार्गणाओंमें भी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श अपने अपने क्षेत्रके समान जानना चाहिये। उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है।

§ १२५. एकेन्द्रियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार पांचों स्थावरकाय, पांचों स्थावरकाय सूक्ष्म, पांचों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्त और पांचों स्थावरकाय सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—जिन देवोंने मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अनन्तर समयमें मरकर एकेन्द्रिय पर्यायको प्राप्त किया उन्हीं एकेन्द्रियोंके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है, अतः इनका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीतकालीन स्पर्श

§ १२६. सव्वविगलिंदिय० मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। एवं पंचिंदियअपज्ज०-तसअपज्ज० वत्तव्वं।

§ १२७. पंचिंदिय-पंचिंदियपज्ज०-तस-तसपज्ज० मोह० उक्क० ओघं। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस भागा वा देसूणा सव्वलोगो वा। एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-सण्णि त्ति।

कुछ कम नौ बटे चौदह राजु बतलाया है। यहां तीसरी पृथिवीतक दो राजु और ऊपर सात राजु इस प्रकार नौ राजु लेना चाहिये। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवाले एकेन्द्रिय जीव सब लोकमें पाये जाते हैं,अतः इनका दोनों प्रकारका स्पर्श सब लोक कहा। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें यह व्यवस्था अविकल घटित हो जाती है इसलिये इनके स्पर्शको एकेन्द्रियोंके समान कहा। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनका सब लोक स्पर्श मारणान्तिक और उपपादपदकी अपेक्षा ही जानना चाहिये। जो संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त तथा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमे उत्पन्न होते हैं उन्हींके पहले समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। अब यदि इनके वर्तमान स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है और अतीत कालीन स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह सब लोक प्राप्त होता है। यही सबब है कि यहां उक्त मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीत कालीन स्पर्श सब लोक प्रमाण बतलाया जाना सम्भव है अतः उक्त मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक कहा। यहां बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका सब लोक स्पर्श उपपाद और मारणान्तिक पदकी अपेक्षा ही जानना चाहिये। पांचो सूक्ष्म स्थावरकाय आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें यह,व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको उक्त प्रमाण कहा।

§ १२६. सभी विकलेन्द्रिय जीवोंमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक और त्रस लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ–सब विकलेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट स्थिति उन्हींके होती है जो संज्ञी तिर्यंच और मनुष्योंमेंसे आकर वहाँ उत्पन्न होते हैं। अतः इनमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका दोनों प्रकारका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। तथा सब विकलेन्द्रियोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अतीतकालीन स्पर्श सब लोक है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका दोनों प्रकारका स्पर्श उक्तप्रमाण कहा है। यही व्यवस्था पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्तकोंमे बन जाती है अतः इनके कथनको सब विकलेन्द्रियोंके समान कहा।

§ १२७. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श लोकका असंख्यातवां भाग,त्रसनालीके चौदह भागोमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण और सब लोक है। इसी प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ–पंचेन्द्रियादि चार मार्गणाओंमे अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श तीन प्रकारका बतलाया है। लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्श वर्तमानकालकी अपेक्षासे बतलाया है, क्योंकि

§ १२८. कायाणुवादेण पुढवि-बादरपुढवि०-बादरपुढविपज्ज०-आउ०-बादर-आउ०—बादरआउपज्ज०—वणप्फदि-बादरवणप्फदि०-बादरवणप्फदिपत्तेय० तस्सेव पज्ज० मोह० उक्क० एइंदियभंगो। अणुक्क० सव्वलोगो। णवरि तिण्हं पज्जत्ताणं मोह० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। बादरपुढविअपज्ज०-बादर आउअपज्ज०—तेउ०—बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउ—अपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज० मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। णवरि बादरपुढविअपज्ज० [-बादरआउ०अपज्ज०-] बादरतेउ०अपज्ज०- [बादरवाउअपज्ज०-] बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्जत्ताणं सव्वलोगफोसणं णत्थि। अणुक्क० सव्वलोगो। बादरवाउ०पज्ज० मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। अणुक्क० लोग० संखे०भागो सव्वलोगो वा। बादरतेउ०पज्ज० मोह० उक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा।

जितने क्षेत्रमें उक्त मार्गणावाले जीव निवास करते हैं। उनके वर्तमान क्षेत्रका प्रमाण लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक प्राप्त नहीं होता। कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्श विहारवत् स्वस्थान आदिकी अपेक्षासे कहा है, क्योंकि इन जीवोंके ये पद दो राजु नीचे और छह राजु ऊपर इस प्रकार आठ राजु क्षेत्रमें ही पाये जाते हैं। तथा सब लोक प्रमाण स्पर्श मारणान्तिक और उपपाद पदकी अपेक्षासे कहा है। कुछ और मार्गणाएं हैं जिनमें उक्त व्यवस्था ही प्राप्त होती है। जैसे पांचों मनोयोगी आदि।

§ १२८. कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिकपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन एकेन्द्रियोंके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन सब लोक है। इतनी विशेषता है कि उक्त तीन प्रकारके पर्याप्त जीवोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन लोकका असंख्यातवां भाग और सब लोक है। बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। इतनी विशेषता है कि बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंके सर्वलोक स्पर्शन नहीं है। तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले उक्त जीवोंका स्पर्शन सब लोक है। बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग और सब लोकका स्पर्शन किया है। बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

§ १२९. वेउव्विय० उक्क० अणुक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ-तेरह चोद्दस भागा वा देसूणा० । कम्मइय० मोह० उक्क० लो० असं०भागो तेरह-चोद्दसभागा वा देसूणा । [अणुक्क० सव्वलोगो ।] आभिणि०-सुद०-ओहि० मोह० उक्क० अणुक्क० लो० असं०भागो अट्ठचोद्दस भागा वा देसूणा । एवमोहिदंस०सम्मादि०-वेदय०-उवसम०-सम्मामि० ।

विशेषार्थ—यहां पृथिवीकायिक आदिमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श एकेन्द्रियोंके समान बतलाकर भी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श अलगसे बतलाया है । उसका कारण यह है कि उपर्युक्त मार्गणाओंमेंसे कुछमें तो अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका दोनों प्रकारका स्पर्श सब लोक बन जाता है पर उनके पर्याप्तकोंमें वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है क्योंकि बादरपृथिवीकायिक पर्याप्तक आदि जीवोंने वर्तमानमें लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका ही स्पर्श किया है । बस इतनी विशेषताके लिये ही उक्त मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श अलगसे कहा है । बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त आदि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति उन्हीं जीवोंमे प्राप्त होती है जो संज्ञी तिर्यंच या मनुष्य उत्कृष्ट स्थिति बांधकर पश्चात् इनमें उत्पन्न होते हैं । अब यदि इनके वर्तमान और अतीत स्पर्शका विचार करते हैं तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है अतः यहां उक्त मार्गणाओंमें सब लोक प्रमाण स्पर्शका निषेध किया है । यद्यपि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीव लोकके संख्यातवें भागका और सब लोकका स्पर्श करते हैं किन्तु मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा जब विचार करते हैं तब उनका लोकके संख्यातवें भागके स्थानमें लोकका असंख्यातवां भागप्रमाण ही स्पर्श प्राप्त होता है, क्योंकि जो संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच या मनुष्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके पश्चात् बादर पर्याप्त वायुकायिकोंमें उत्पन्न होते हैं । उनके वर्तमान कालीन स्पर्शका योग लोकका असंख्यातवां भाग प्रमाण ही होता है । हां यदि अतीत कालीन उपपादकी अपेक्षा इसका विचार करते हैं तो वह सब लोक बन जाता है ।

§ १२९. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । कार्मणकाययोगियोंमें मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—वैक्रियिक काययोगमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श तीन प्रकार का बतलाया है । लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्श वर्तमानकालकी अपेक्षा बतलाया है, क्योंकि वैक्रियिककाययोगवालोंका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है । अतीतकालीन स्पर्श पदविशेषोंकी अपेक्षा दो प्रकारका है, कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु । इनमेंसे पहला विहारवत् स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक

§ १३०. संजदासंजद-संजद० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० लोग० असंखे०-भागो छचोद्दस भागा वा देसूणा । एवं सुक्कले० । तेउले० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्सारभंगो ।

§ १३१. किण्ह०-णील०-काउ० उक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो छ-चदु-बे-चोद्दसभागा देसूणा । अणु० सव्वलो० ।

§ १३२ खइय० मोह० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस भागा वा देसूणा ।

§ १३३. सासण० मोह० उक्क० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस भागा वा देसूणा । अणुक्क० अट्ठ-बारहचोद्दस भागा वा देसूणा । असण्णि० एइंदियभंगो ।

पदोकी अपेक्षा कहा है और दूसरा मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कहा है । कार्मणकाययोगियोका स्पर्श यद्यपि सब लोक है किन्तु यहां उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमानकालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग है और अतीतकालीन स्पर्श कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु है, क्योंकि मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति संज्ञी पर्याप्तके ही होती है। अब यदि ऐसे जीव दूसरे समयमें मरकर कार्मणकाययोगी होते हैं तो उनका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता, इसलिये यहां वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग कहा । तथा उत्कृष्ट स्थितिवाले कार्मणकाययोगियोंने अतीत कालमें नीचे कुछ कम छह राजु और ऊपर कुछ कम सात राजु क्षेत्रका स्पर्श किया है अतः इनका अतीतकालीन स्पर्श कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु कहा । आभिनिबोधिकज्ञानादि मार्गणाओंमें उस मार्गणाका जो स्पर्श है वही यहां उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा जानना चाहिये ।

§ १३०. संयतासंयत जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंका स्पर्श है । पीतलेश्यावाले जीवोंका स्पर्श सौधर्मके देवोंके समान है । तथा पद्मलेश्यावाले जीवोंका स्पर्श सहस्रार स्वर्गके देवोंके समान है ।

§ १३१. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागों में से कुछ कम छह, चार और दो भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १३२. क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १३३. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ

अणाहारि० कम्मइयभंगो ।

एवं उक्कस्सपोसणाणुगमो समत्तो ।

§ १३४. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जह० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो । अज० सव्वलोगो । एवं कायजोगि-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति ।

§ १३५. आदेसेण णेरइय० मोह० जह० खेत्तभंगो । अज० अणुक्कस्सभंगो । पढमाए खेत्तभंगो । विदियादि जाव सत्तमि त्ति मोह० जह० खेत्तभंगो । अज० अणुक्कस्स०भंगो ।

और कुछ कम बारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। असंज्ञी जीवोंका स्पर्श एकेन्द्रियोंके समान है। तथा अनाहारी जीवोंका स्पर्श कार्मणकाययोगियोंके समान है।

विशेषार्थ—संयतासंयतके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति इन गुणस्थानोंको प्राप्त होनेके पहले समयमें होती है पर उस समय मारणान्तिक समुद्घात सम्भव नहीं, अतः इन दोनों मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग कहा है और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श इन मार्गणाओंके स्पर्शके समान ही कहा है। कृष्ण लेश्यामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श सातवें नरककी मुख्यतासे, नील लेश्यामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श पांचवें नरककी मुख्यतासे और कापोत लेश्यामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श तीसरे नरककी मुख्यतासे कहा है। सासादनोंमें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका जो कुछ कम आठ बटे चौदह राजु स्पर्श बतलाया है वह देवोंकी प्रधानतासे कहा है।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

§ १३४. अब जघन्य स्पर्शनानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघ निर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार काययोगी औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्षपकश्रेणिमें प्राप्त होती है और क्षपकोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है अतः यहाँ ओघसे जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। तथा अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक है यह स्पष्ट ही है। मूलमें गिनाई गईं काययोगी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें ओघके समान स्पर्श बन जाता है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा।

§ १३५. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके समान है। पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शके समान है।

§ १३६. तिरिक्ख० मोह० जह० अजह० के० खे० पोसिदं ? सव्वलोगो। एवं सव्वेइंदिय-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-पज्जत्तापज्जत्त - तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज -सुहुम-वाउ०-पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०-तस्सेव अपज्ज०-सव्ववणप्फदि०-सव्वणिगोद०-ओरालियमिस्स-कम्मइय-मदिअण्णाण-सुदअण्णाण-असंजद-तिण्णिले०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारि त्ति। एत्थ खेत्तम्मि भणिदविहाणेण मूलुच्चारणाए पाठभेदो अणुगंतव्वो। तदहिप्पाएण तिरिक्खेसु लोगस्स असंखे० भागमेत्तपोसणुवलंभादो।

विशेषार्थ--नारकियोंमे मोहनीयकी जघन्य स्थितिवालोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। स्पर्श भी उतना ही प्राप्त होता है, क्योंकि जो असंज्ञी नरकमें उत्पन्न होते हैं उन्हीं नारकियोंके विग्रहके दूसरे समयमें जघन्य स्थिति होती है। किन्तु असंज्ञी जीव पहले नरकमें ही उत्पन्न होते हैं और पहले नरकका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं है अतः सामान्यसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान बतलाया है। अजघन्य स्थितिवालोंमें जघन्य स्थितिवालोंको छोड़कर शेष सबका समावेश हो जाता है अतः सामान्यसे अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान बतलाया है। पहली पृथिवीके नारकियोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान ही है अतः यहां पहली पृथिवीके जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले नारकियोंका स्पर्श क्षेत्रके समान कहा है। दूसरेसे लेकर छठे नरक तक जघन्य स्थिति उन सम्यग्दृष्टि नारकियोंके अन्तिम समयमें होती है जिन्होंने नरकमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर ली है। तथा सातवें नरकमें उन मिथ्यादृष्टि नारकियोंके होती है जो जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहे हैं पर अन्तमें मिथ्यादृष्टि हो गये हैं। अब यदि इन जीवोंके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है और इन द्वितीयादि नरकोंके नारकियोंका क्षेत्र भी इतना ही है अतः उक्त नरकोंमें जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान बतलाया है। तथा अजघन्य स्थितिवालोंके स्पर्शका खुलासा जैसा ऊपर कर आये हैं उसी प्रकार यहां भी कर लेना चाहिये।

§ १३६. तिर्यंचगतिमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादरवायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। यहां पर क्षेत्रानुगममें कहीं

§ १३७. सव्वपंचिंदियतिरिक्खाणं जह० खेत्तभंगो। अज० अणुक्कस्सभंगो। एवं सव्वमणुस०।

§ १३८. देव० मोह० ज० खेत्तभंगो। अज० अणुक्कस्सभंगो। भवणादि जाव आरणच्चुदे त्ति जह० खेत्तभंगो। अज० अणुक्कस्सभंगो। उवरि खेत्तभंगो। एवं वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खादसंजदे त्ति।

गई विधिसे मूलोच्चारणाके अनुसार पाठभेद जान लेना चाहिये। उसके अभिप्रायानुसार तिर्यंचोंमें लोकका असंख्यातवां भागमात्र स्पर्शन पाया जाता है।

विशेषार्थ—तिर्यंचोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रियोंके होती है तथा अजघन्य स्थितिवालोंमें भी एकेन्द्रिय ही मुख्य हैं और वे सब लोकमें पाये जाते हैं अतः तिर्यंचोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक बतलाया है। इसी प्रकार मूलमें जो सब एकेन्द्रिय आदि मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये। किन्तु मूल उच्चारणामें इन सबका जघन्य स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। सो वह स्वस्थानस्वस्थान पदकी अपेक्षा जानना चाहिये।

§ १३७. सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके समान है। इसी प्रकार सभी मनुष्योंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय आदि तिर्यंचोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति उन्हीं तिर्यंचोंके पहले और दूसरे विग्रहमें होती है जो एकेन्द्रिय पर्यायसे आकर उक्त तिर्यंच हुए हैं। अब यदि इनके क्षेत्रका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। स्पर्शनमें भी इससे विशेष अन्तर नहीं पड़ता, अतः सब प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान बतलाया है। तथा अजघन्य स्थितिवालोंका भंग अनुत्कृष्टके समान बतलानेका कारण यह है कि अजघन्य स्थितिमें जघन्य स्थितिको छोड़कर शेष सब स्थितियोंका ग्रहण हो जाता है और इसलिये इनका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान बन जाता है। सब मनुष्योंके भी इसी क्रमसे स्पर्शनका कथन करना चाहिये। इसका यह तात्पर्य है कि सब प्रकारके मनुष्योंमें जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंके स्पर्शके समान है।

§ १३८. देवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले देवोंके स्पर्शके समान है। भवनवासियोंसे लेकर आरण अच्युत स्वर्ग तकके देवोंमें जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले उक्त देवोंका स्पर्श अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले उक्त देवोंके स्पर्शके समान है। अच्युत स्वर्गके ऊपर स्पर्श क्षेत्रके समान है। इस प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थानासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानंना चाहिये।

§ १३९. सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज-०तसअपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो। पंचिं- [पंचि०-] पज्ज०-तस०-तसपज्ज० मोह० जह० खेत्तभंगो। अज० अणुक्कस्सभंगो। एवं पंचमण०-पंचवचि०—इत्थि०—पुरिस०—विहंग०—चक्खु०—सण्णि त्ति।

§ १४०. बादरपुढविपज्ज०-बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज० मोह० ज० अज० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। [1]बादरवाउपज्ज० मोह० ज० अज० लोग० संखेज्जदिभागो सव्वलोगो वा।

§ १४१. वेउव्विय० मोह० जह० खेत्तभंगो। अज० अणुक्कस्सभंगो। एवमाभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-तिण्णिले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो।

§ १४२ कालाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। तत्थ उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० उक्क० केवचिरं कालादो?

---

§ १३९. सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रसअपर्याप्त जीवोंमें स्पर्श पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान है। पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले उक्त जीवोंका स्पर्श उन्हींके अनुत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

§ १४०. बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है।

§ १४१. वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श उनके क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले उक्त जीवोंका स्पर्श उनके अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शके समान है। इसी प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदगसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

§ १४२. कालानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे उत्कृष्ट कालानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी

१—प्रतौ अज० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा। बादरवाउपज० अणुक्कस्सभंगो इति पाठः।

जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अणुक्क० के० ? सव्वद्धा। एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णाण०-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छाइट्ठि-सण्णि-आहारि त्ति।

§ १४३. पंचिंदियतिरि०अपज्ज० मोह० उक्क० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणुक्क० सव्वदा। एवं सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादि०-वेदय०-असण्णि-अणाहारि त्ति।

§ १४४. मणुसतिय० मोह० उक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। अणुक्क० सव्वद्धा। मणुसअपज्ज० मोह० उक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणुक्क० के० ? जह० खुद्दाभवग्गहणं समऊणं। उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। आणदादि जाव सव्वट्ठ० मोह० उक्क० केव० ? ज० एग-

अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? सर्वकाल है। इसी प्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि पांच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये।

§ १४३. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट विभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है। इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

§ १४४. सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है। जघन्य एक समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें

समओ, उक्क० संखेज्जा समया । अणुक्क० सव्वद्धा । एवं मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-खइयसम्माइट्ठि त्ति ।

§ १४५. वेउव्वियमिस्स० मोह० उक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अणुक्क० जह० अंतो०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । एवमुवसम०-सम्मामि० वत्तव्वं ।

§ १४६. अवगद० मोह० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अणुक्क० ज० एगसमओ,उक्क० अंतोमु० । एवमकसा०-सुहुमसांपरा०-जहक्खादे त्ति । [एवं आहार०-आहारमि० । णवरि आहारमि० अणुक्क० जह० अंतोमु० ।]

§ १४७. सासण० मोह० उक्क० जह० एगसमओ,उक्क० आवलि० असंखे०-भागो । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो ।

भागप्रमाण है । आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट संख्यात समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १४५. वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सत्त्वकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १४६. अपगतवेदियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल संख्यात समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिए । इसी प्रकार आहारक व आहारकमिश्रकाययोगियोंके जानना चाहिए । परन्तु आहारकमिश्रकाययोगमें अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ १४७. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

विशेषार्थ—नाना जीवोंके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भाग कालतक होता है । इसके पश्चात् एक भी जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला नहीं रहता, इसलिए नाना जीवोंकी अपेक्षा मोहनीयकी

उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। सामान्य नारकी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल घटित होती है, अतः उनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा। उन मार्गणाओंके नाम मूलमें गिनाये ही हैं। इनके अतिरिक्त और जितनी मार्गणाएँ हैं उनमेसे आठ सान्तर मार्गणाओंको तथा अपगतवेद, अकषाय और यथाख्यातसंयत इन तीन मार्गणाओंको छोड़कर शेष सब मार्गणाओमे अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल सर्वदा है, क्योंकि इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता। तथा उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय है, क्योकि इन मार्गणाओमे एक समयतक उत्कृष्ट-स्थिति प्राप्त होकर दूसरे समयमें उसका विरह सम्भव है। हां इनमे उत्कृष्टकाल भिन्न भिन्न प्रकार पाया जाता है जिसका निर्देश मूलमे किया ही है। फिर भी यहाँ उसके कारणका संक्षेपमें विचार कर लेते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोंमे एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है। अब यदि नाना जीव निरन्तर उत्कृष्ट स्थितिके धारक हों तो वे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही होंगे उसके बाद इनमें उत्कृष्ट स्थितिका नियमसे अन्तरकाल आ जाता है, अतः इनमे उत्कृष्टस्थितिका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवे भागप्रमाण कहा। मूलमें निर्दिष्ट सब एकेन्द्रिय आदि कुछ मार्गणाओकी स्थिति इसी प्रकारकी है अतः इनमे भी उत्कृष्ट-स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा। सामान्य आदि तीन प्रकारके मनुष्योमें एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। परन्तु इनका प्रमाण संख्यात है अतः लगातार संख्यात नाना जीव भी क्रमशः यदि उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हों तो भी उस सब कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं होगा। यही कारण है कि इनमे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। यद्यपि सामान्य मनुष्योंकी संख्या असंख्यात है फिर भी यहाँ उत्कृष्ट स्थितिके प्रकरणमें सामान्य मनुष्योंमें लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य प्रधान नहीं हैं। आनतादि कल्पोमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है जिसका काल एक समय है और यहां मनुष्य जीव ही मरकर उत्पन्न होते हैं। अब यदि आनतादि कल्पोमे उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव लगातार उत्पन्न हों तो संख्यात समय तक ही उत्पन्न हो सकते हैं, क्योंकि उनमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्य ही संख्यात हैं। अतः इनमे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा। यही बात मनःपर्ययज्ञान आदि मूलमे गिनाई गई शेष मार्गणाओमे जानना चाहिए। अब रही सान्तर मार्गणाओं और अपगत-वेद आदि तीन मार्गणाओकी बात। सो इनमे कालका खुलासा निम्न प्रकार है—लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योमे एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है। अब यदि अन्तरके बाद नाना जीव एक साथ उत्कृष्ट स्थितिके धारक हुए तो दूसरे समयमे उनकी नियमसे अनुत्कृष्ट स्थिति हो जायगी अतः लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योमे नाना जीवोंकी अपेक्षा भी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है। यही बात शेष मार्गणाओमे जान लेना चाहिए। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य यदि निरन्तर उत्कृष्ट स्थितिके धारक होते रहे तो आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण काल तक ही होंगे, अतः इनमे उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। यही बात वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि मार्गणाओंके विषयमें जानना चाहिये। तथा उत्कृष्ट स्थितिके धारक लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य एक साथ उत्पन्न हुए और दूसरे समयसे उनका उत्पन्न होना ही बन्द हो गया तो लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण प्राप्त होगा। तथा लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल भी इतना ही प्राप्त होता है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट

§ १४८. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण० मोह० जह० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। अज० सव्वद्धा। एवं विदियादि जाव छट्टि त्ति मणुसतिय-जोदिसियादि जाव सव्वट्ठ०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-विहंग०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंसण०-तिण्णिले०-भवसि०-सम्मादि०-वेदय०-खइय०-सण्णि०-आहारि० त्ति।

§ १४९. आदेसेण णेरइयेसु मोह० जह० ज० एगस०,उक्क० आवलि० असंखे०-भागो। अज० केव० ? सव्वद्धा। एवं पढमाए। एवं सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-देव०-भवण०-वाण०-सव्वविगलिंदिय-पंचिं०अपज्ज०-तसअपज्ज० वत्तव्वं। सत्तमाए० मोह०

काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण जानना। नाना जीवोंकी अपेक्षा भी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा। यदि मनुष्य उपशमश्रेणी पर निरन्तर चढ़ें तो संख्यात समय तक ही चढ़ेंगे और उन सबके कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्त ही होगा अतः अपगतवेद, अकषाय, सूक्ष्मसम्परायसंयम और यथाख्यातसंयममें उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। सासादनसम्यक्त्वका जघन्यकाल एक समय है अतः इसमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय कहा। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ।

§ १४८. अब जघन्य कालानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है। इसी प्रकार दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकी, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, वैक्रियिक काययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, विभंगज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ १४९. आदेश निर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है? सर्वदा है। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तर, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके कहना चाहिये। सातवीं पृथिवीमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्ति

जह० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अज० सव्वद्धा ।

§ १५०. तिरिक्ख० मोह० जह० अज० सव्वद्धा । एवं सव्वएइंदिय-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादर-आउअपज्ज०-सुहुमआउ०-पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-[बादरतेउ०-]बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-पज्जत्तापज्जत्त-बादर-वणप्फदिपत्तेय तस्सेव अपज्ज०-सव्ववणप्फदि-सव्वणिगोद-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद-तिण्णिले०-अभवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ १५१. मणुसअपज्ज० मोह० जह० ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०-भागो । अज० के० ? जह० खुद्दाभवग्गहणं विसमऊणं एगसमओ वा, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

§ १५२. चत्तारिकायबादरपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज० जह० ज० एग-समओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अज० सव्वद्धा ।

वाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है।

§ १५०. तिर्यंचोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है। इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जल-कायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ १५१. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल आवलीका असंख्यातवाँ भाग है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सत्त्वकाल कितना है ? जघन्य दो समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण या एक समय है और उत्कृष्ट पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है।

§ १५२. पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय बादर पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय है और उत्कृष्ट सत्त्वकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्ति-वाले जीवोंका सत्त्वकाल सर्वदा है।

§ १५३. वेउव्वियमिस्स० मोह० जह० केव० ? ज० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। अज० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवमुवसम०-सम्मामि० वत्तव्वं। आहार० मोह० जह० ज० एगसमओ,उक्क० संखेज्जा समया। अज० ज० एयसमओ, उक्क० अंतोमु०। एवमवगद० अकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदे त्ति। आहारमिस्स० मोह० जह० [ज०] एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० अंतोमु०।

§ १५४. सासण० मो० जह० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। अज० ज एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

§ १५३. वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना सत्त्वकाल है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपमका असंख्यातवां भाग है। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये। आहारककाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट संख्यात समय है। तथा अघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त है! इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यात-संयत जीवोंके कहना चाहिये। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्ति-वाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट सत्त्वकाल अन्तमुहूर्त है।

§ १५४. सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट सत्त्वकाल संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य सत्त्वकाल एक समय और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

विशेषार्थ—मोहनीयकी जघन्य सत्त्वस्थिति क्षपक सूक्ष्मसांपरायिक जीवके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है। तथा क्षपकश्रेणी पर चढ़नेका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है, अतः ओघसे जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय कहा। ओघसे अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। मूलमें दूसरीसे लेकर छठवीं पृथिवी तकके नारकी, मनुष्यत्रिक आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं गिनाई हैं जिनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान बन जाता है। इसके कारण भिन्न भिन्न हैं। दूसरी पृथिवीसे लेकर नारकियोंमें और ज्योतिषियोंमें तो यह कारण है कि जो उत्कृष्ट आयुके साथ उत्पन्न हों और उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालमें सम्यग्दृष्टि होकर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर लें, उनके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति होती है। ऐसे जीव मरकर मनुष्योंमें ही उत्पन्न होंगे अतः उनका प्रमाण संख्यात ही होगा। यही कारण है कि इन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय कहा। सर्वार्थसिद्धि और वैक्रियिककाययोगमें भी करीब इसी प्रकारका कारण जानना चाहिये। विभंगज्ञानमें यह कारण है कि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता-वाला उपरिम ग्रैवेयकका देव यदि अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होता है तो उस

विभंगज्ञानीके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति पाई जाती है। ये मरकर मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं, अतः इनके भी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है। इनके अतिरिक्त जो शेष मार्गणाएं गिनाई हैं उनकी जघन्य स्थिति मनुष्य पर्यायमें ही प्राप्त होती है अतः उनमें भी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा। तथा इन सब मार्गणाओंमें अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। नारकियोंमें एक जीव की अपेक्षा जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। अब यदि इनमें नाना जीव जघन्य स्थितिवाले हों तो कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही होंगे अतः इनमें जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी आदि मार्गणाओंमें जानना चाहिये जिनका निर्देश मूलमें किया ही है। सातवीं पृथिवीमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहां नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है। तिर्यंचोंमें जघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण भी अनन्त है, अतः यहां जघन्य स्थितिका काल सर्वदा कहा। मूलमें सब एकेन्द्रिय आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार समझना चाहिये। यद्यपि उनमें बहुतसी मार्गणाओंमें जीवोंका प्रमाण असंख्यात है फिर भी वह संख्या बहुत बड़ी है अतः उनमें अजघन्य स्थितिवालोंका काल सर्वदा मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं आती। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति विभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक जीवकी अपेक्षासे एक समय है। यदि इनमें नाना जीव जघन्य स्थितिवाले हों तो कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भाग कालतक ही होंगे। अतः इनमें जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट आवलिके असंख्यातवें भाग कहा। जो एकेन्द्रिय जीव दो विग्रहके साथ लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न हो रहा है उसके प्रथम विग्रहमें अजघन्य स्थिति होकर दूसरे समयमें जघन्य स्थिति होगी और विग्रहके दो समय खुद्दाभवग्रहण प्रमाण आयुमेंसे कम कर देने पर शेष आयुका काल भी अजघन्य स्थितिका है अतः अजघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय या दो समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण कहा है। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य सान्तर मार्गणा है जिसका उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र है अतः अजघन्य स्थितिका उत्कृष्टकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग कहा। बादर पृथिवीकायिक आदि पर्याप्तकोंमें एक जीवकी अपेक्षा जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय है और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। यदि इनमें नाना जीव जघन्य स्थितिवाले हों तो कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक पल्योपमके असंख्यातवें भाग काल तक होंगे अतः इनकी जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगयोंमें जघन्य स्थिति क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशांतमोहसे मरकर सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न होनेवाले जीवके वैक्रियिकमिश्रकाययोगके अन्तिम समयमें होती है। यतः इसका जघन्यकाल एक समय है अतः इसका जघन्यकाल एक समय कहा। पर्याप्त मनुष्योंका प्रमाण संख्यात है अतः इनमें निरन्तर संख्यातसे अधिक काल तक उत्पन्न नहीं हो सकते अतः इनका उत्कृष्टकाल संख्यात समय कहा। इसी प्रकार उपशम सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्मसांपरायिक संयत, यथाख्यातसंयत और सासादनकी प्ररूपणा घटित कर लेनी चाहिये, क्योंकि इन मार्गणाओंमें अन्तिम समयमें ही जघन्य स्थिति विभक्ति होती है। अजघन्य स्थितिके विषयमें हर एक मार्गणाकी जो विशेषता है वह मूलमें दी ही है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

§ १५५. अंतराणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कसओ चेदि। उक्कसए पयदं। दुविहो णिद्द सो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मोह० उक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाणमंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंगुलस्स असंखे०भागो। अणुक्क० णत्थि अंतरं। एवं सत्तपुढवि०-सव्वतिरिक्ख०-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय[१]-सव्वपंचिंदिय-सव्वपंचकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-कम्मइय-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णाण०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-समाइय-छेदो०-परिहार०-असंजद०-संजदासंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंसण०-छलेस्सा-भवसिद्धि०-[अभव०-] सम्मादि०-खइय०-वेदय०-मिच्छादि०-सण्णि-असण्णि-आहारि-अणाहारि त्ति।

§ १५६. मणुसअपज्ज० मोह० उक्क० ओघभंगो। अणुक्क० [जह० एगसमओ, उक्क०] पलिदो० असंखेभागो। एवं सासण०-सम्मामि०दिट्ठि त्ति। वेउव्वियमिस्स० मोह० उक्क० ओघं। अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० बारस मुहुत्ता। आहार०-आहार-

§ १५५. अन्तरानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे उत्कृष्ट अन्तरानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी पांचों स्थावरकाय, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, असंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, छहों लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, मिथ्या दृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ १५६. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल बारह मुहूर्त है। आहारककाययोगी,

१ मूलप्रतौ विगलिंदियपज्जपंचिं इति पाठः।

मिस्स० मोह० उक्क० ओघं। अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। एवमकसा०-जहाक्खादसंजदे त्ति।

§ १५७. अवगद० मोह० उक्क० ओघं। अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा। एवं सुहुमसंपराय० वत्तव्वं। उवसम० उक्क० ओघं। अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० चउवीसमहोरत्ते। अथवा अकसा०-जहाक्खाद०-अवगद०-सुहुम० मोह० उक्क० वासपुधत्तं। उवसम० चउवीसमहोरत्ते० सादि०। सासण० पलिदो० असंखे०भागो। खइय० छम्मासा।

एवमुक्कस्सओ अंतराणुगमो समत्तो।

और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्ष पृथक्त्व है। इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये।

§ १५७. अपगतवेदियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंके कहना चाहिये। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिन रात है। अथवा, अकषायी, यथाख्यातसंयत, अपगतवेदी और सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवोंमे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है, उपशमसम्यग्दृष्टियोमे साधिक चौबीस दिनरात है। सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है और क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें छह महीना है।

विशेषार्थ—उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव यदि संसारमें न हों तो कमसे कम एक समय तक और अधिक से अधिक अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक नहीं होते हैं अतः यहाँ उत्कृष्टस्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं अतः इनका अन्तरकाल नहीं कहा। मूलमें सातों पृथिवियोंके नारकी आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमे यह व्यवस्था बन जाती है अतः उनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा। तथा इनके अतिरिक्त और जितनी मार्गणाएँ हैं उनमें भी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है अतः उन सबमें उत्कृष्टस्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। हाँ इन मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका भी अन्तरकाल पाया जाता है जिसका खुलासा निम्न प्रकार है—लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है। आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। उपशमश्रेणीका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। क्षपक अपगतवेद और सूक्ष्मसंपरायसंयमका जघन्य

§ १५८. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० जह० ज० एगसमओ, उक्क० छमासा । अज० णत्थि अंतरं । एवं मणुस०-मणुसपज्ज०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस०-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-लोभकसाय-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजद-सामाइय-छेदो०-चक्खु०-अचक्खु०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-खइय०-सण्णि०-आहारि त्ति । णवरि ओहिणाण० वासपुधत्तं ।

§ १५६. आदेसेण णेरइएसु जह० अज० उक्कस्साणुक्कस्सभंगो । एवं सत्त-पुढवि०-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-देव-भवणादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-

---

अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, उपशम सम्यक्त्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात है, अतः इन मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल उक्तप्रमाण प्राप्त होता है। यहाँ पहले जो उपशमश्रेणीका अन्तरकाल कहा उससे मोहसत्कर्मवाले अकषायी और यथाख्यातसंयतोंका अन्तरकाल लेना चाहिए। यहाँ अथवा कहकर कुछ मार्गणाओंके अन्तरकालमें कुछ फरक बतलाया है जो मूलमें ही दर्ज है। अकषायी, यथाख्यातसंयत, अपगतवेदी और सूक्ष्मसांपरायिक संयतमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीव उपशमश्रेणीमें ही होते हैं और उपशमश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व है अतः अथवा कहकर इनका उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व कहा गया है। परन्तु कुछ आचार्यों का मत यह भी रहा है कि सभी उपशम श्रेणीवालोके मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती बहुत कम जीवोंके होती है। अतः उनके मतानुसार अकषायी आदि में उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर, ओघके समान अंगुलका असंख्यातवां भाग भी कहा है जो संभवतः वीरसेन स्वामीको भी इष्ट था। तथा उन्होंने अथवा कहकर दूसरे मतका भी उल्लेखकर दिया है। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें भी मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अन्तरके विषयमें मतभेद जान लेना चाहिये। यह अन्तर मूलमें दिया ही है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ १५८. अब जघन्य अन्तरानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारकोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी जीवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है।

§ १५६. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके अन्तरकालके समान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर

अपज्ज०-तसअपज्ज०-चत्तारिकायबादरपज्जत्त-[बादरवणप्फ०पत्तेयपज्ज०-वेउव्विय-कायजोगि-]विहंग०- परिहार०-संजदासंजद-तेउ०-पम्म०-वेदयसम्मादिट्ठि त्ति ।

§ १६०. तिरिक्ख०मोह० जह० अजह० णत्थि अंतरं । एवं सव्वएइंदिय-चत्तारि-काय-तेसिं बादरअपज्ज०-सुहुम०-पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०-अपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद-अण्णाण-असंजद०-तिण्णिलेस्सि०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ १६१. मणुसिणीसु मोह० ज० ज० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अंतरं । एवं मणपज्ज० । ओहिदंस० ओहिणाणिभंगो । मणुसअपज्ज० उक्क-स्सभंगो । वेउव्वियमिस्स० उक्कस्सभंगो । आहार०-आहारमिस्स० उक्कस्सभंगो ।

§ १६२. इत्थि०-णवुंस० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । पुरिस० जह० जह० एगसमओ, उक्क० वासं सादिरेयं । अज० तिण्हं पि णत्थि अंतरं ।

सर्वार्थसिद्धितकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रसअपर्याप्त, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय बादर पर्याप्त, बादर वनस्पति प्रत्येकशरीर पर्याप्त, वैक्रियिककाययोगी, विभंगज्ञानी, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये ।

§ १६०. तिर्यंचोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थिति विभक्तिकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, चारों स्थावरकाय, चारों स्थावरकाय बादर, चारों स्थावरकाय बादर अपर्याप्त, चारों स्थावरकाय सूक्ष्म, चारो स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्त, चारों स्थावरकाय सूक्ष्म अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकाय प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सामान्य वनस्पति, निगोद, वनस्पतिकायिक बादर, वनस्पतिकायि बादर पर्याप्त, वनस्पतिकायिक बादर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म पर्याप्त, वनस्पतिकायिक सूक्ष्म अपर्याप्त, बादर निगोद, बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६१ मनुष्यिनयोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके जानना चाहिये । अवधिदर्शनवाले जीवोंके अवधिज्ञानवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें इनके उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-वाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें इनके उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । तथा आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें इनके उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है ।

§ १६२. स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । पुरुषवेदी जीवोंमें जघन्य स्थिति-

अवगद० मोह० ज० ज० एगसमओ, उक्क० छमासा । एवमजहण्णट्ठिदीए वि वत्तव्वं । एवं सुहुमसंप० । कोह०-माण०-माय० पुरिस०भंगो । अकसाय० उक्कस्सभंगो । एवं जहाक्खाद० वत्तव्वं । उवसम०-[सासण०-]सम्मामि० उक्कस्सभंगो ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है । तथा तीनों ही वेदवाले जीवोंमें अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है । अपगतवेदियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । तथा इनके अजघन्य स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा भी इसीप्रकार कथन करना चाहिये । इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवोंके कहना चाहिये । क्रोध, मान और माया कषायवाले जीवोंके पुरुषवेदियोंके समान कहना चाहिये । अकषायी जीवोंके इनके उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है । इसी प्रकार यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिये । तथा उपशमसम्यग्दृष्टि ,सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके इनके उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके समान अन्तरकाल है ।

विशेषार्थ– जब एक समयके अन्तरसे जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं तब जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय पाया जाता है और जब छह महीनाके अन्तरसे जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं तब जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना पाया जाता है । ओघसे अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है यह तो स्पष्ट ही है । सामान्य मनुष्य आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार अन्तर समझना चाहिये, क्योंकि क्षपकश्रेणीमें वे सब मार्गणाएं सम्भव हैं अतः उनमें जघन्य स्थितिका अन्तर ओघके समान बन जाता है । और वे मार्गणाएं निरन्तर हैं अतः उनमें अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं पाया जाता । किन्तु अवधिज्ञानी जीव यदि क्षपकश्रेणी पर न चढ़ें तो वर्षपृथक्त्व काल तक नहीं चढ़ते हैं अतः इनमें जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा है । सामान्य नारकी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके समान है । सामान्य तिर्यंच आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, अतः इनमें उनका अन्तरकाल सम्भव नहीं । मनुष्यिनी, मनःपर्ययज्ञानी, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद इन मार्गणाओंमें क्षपकश्रेणीका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, अतः इनमें जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा । यही बात अवधिदर्शनकी है । पर इनमें अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता । लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्य, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी इनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान है उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । पुरुषवेदमें कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक साधिक एक वर्ष तक क्षपकश्रेणी नहीं प्राप्त होती, अतः इसमें जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा है । किन्तु इसमें अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है क्योंकि यह निरन्तर मार्गणा है । मोह सत्कर्मवाले क्षपक अपगतवेद और क्षपक सूक्ष्मसम्पराय संयमकी प्राप्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है अतः इनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा । क्रोध, मान और माया कषायका कथन पुरुषवेदके समान है, क्योंकि इन तीनों कषायोंका क्षपकश्रेणीमें जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष पाया जाता है । मोहनीयसत्कर्मवाले अकषायी और यथाख्यातसंयत उपशमश्रेणीमें

§ १६३. भावाणुगमेण सव्वत्थ ओदइओ भावो ।

एवं भावाणुगमो समत्तो ।

§ १६४. अप्पाबहुआणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्से पयदं । दुविधो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा मोह० उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिया जीवा । अणुक्क० अणंतगुणा । एवं तिरिक्ख-सव्वएइंदिय-सव्ववणप्फदि०-सव्वणिओद०-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण०-असंजद-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति ।

§ १६५. आदेसेण णेरइएसु मोह० सव्वत्थोवा उक्क० । अणुक्क० असंखेज्जगुणा । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइद०-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-चत्तारिकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय-वेउव्वियमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-

---

ही होते हैं अतः इनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके समान बन जाता है । इसी प्रकार उपशम सम्यक्त्व, सासादन और सम्यग्मिथ्यात्वमें उत्कृष्ट स्थितिके समान अन्तर जानना, क्योंकि ये तीनों सान्तर मार्गणाएँ हैं अतः इनके जघन्य स्थितिके अन्तरमें उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरसे कोई विशेषता नहीं आती ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

भावानुगमकी अपेक्षा सर्वत्र औदायिक भाव है ।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

§ १६४. अल्पबहुत्वानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्ट अल्पबहुत्वानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्टस्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्ण आदि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

§ १६५. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित स्वर्ग तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, सभी त्रस, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी,

संजदासंजद-चक्खु०-ओहिदंस०-तिण्णिले०-सम्मादि-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण० सम्मामि०-सण्णि त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० सव्वत्थोवा उक्क० । अणुक्क० संखेज्ज-गुणा । एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसाय०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपरा०-जहाक्खादसंजदे त्ति ।

एवमुक्कस्सअप्पाबहुगाणुगमो समत्तो ।

§ १६६. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण जह० अजह० उक्कस्स०भंगो । एवं कायजोगि-ओरालि०-णवंसु०-चत्तारिकसा०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति ।

§ १६७. आदेसेण णेरइएसु मोह० जह० अज० उक्कस्साणुक्कस्सभंगो । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइद-सव्व-एइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-छक्काय०-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स-कम्मइय०-इत्थि०-पुरिस०-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद-असंजद-चक्खु०-ओहिदंस-पंचले०-सुक०-

---

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिए।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ।

§ १६६. अब जघन्य अल्पबहुत्वानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अल्पबहुत्व उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके अल्पबहुत्वके समान है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ १६७. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अल्पबहुत्व उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके अल्पबहुत्वके समान है। इसी प्रकार सातो पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यंच, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित स्वर्ग तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, छहों कायवाले, पांचो मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, असंयत, चक्षुदर्शनी, अवधि-

अभव०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-मिच्छादि०-सण्णि-असण्णि-अणाहारि त्ति ।

§ १६८. मणुसपज्ज०-मणुसिणी० सव्वत्थोवा जह० । अजह० संखेज्जगुणा । एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खादसंजदे त्ति ।

एवमप्पाबहुगाणुगमो समत्तो ।

—:o:—

एवं चउवीस-अणियोगद्दाराणि समत्ताणि ।

§ १६९. भुजगारे तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणादि जाव अप्पाबहुए त्ति । समुक्कित्तणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० अत्थि भुज०-अप्पद०-अवट्ठिदविहत्तिया जीवा । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-पंचकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-ओरालिय-मिस्स-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स-कम्मइय-तिण्णिवेद-चत्तारिकसा०-मदि-सुदअण्णाण०-विहंग०-असंजद०-चक्खु-अचक्खु०-पंचलेस्सा०-भवसिद्धि०-अभवसिद्धि०-मिच्छादि०-

---

दर्शनी, कृष्ण आदि पांच लेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदक-सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १६८. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यात-संयत जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ ।

इस प्रकार चौबीस अनुयोगद्वार समाप्त हुए ।

—*—

§ १६९. भुजगार स्थितिविभक्तिके कथनमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्वतक तेरह अनुयोगद्वार हैं । उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थिति-विभक्तिवाले जीव हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यंच, सभी मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पांचों स्थावरकाय, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदा-रिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मण-काययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी,

सण्णि-असण्णि-आहारि-अणाहारि त्ति ।

§ १७०. आणदादि जाव सव्वट्ठ० मोह० अत्थि अप्पदरविहत्तिया। एवमाहार०-आहारमिस्स-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० ।

एवं समुक्कित्तणाणुगमो समत्तो ।

§ १७१. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० भुज० अवट्ठि० कस्स ? अण्णद० मिच्छादिट्ठिस्स । अप्पदर० कस्स ? अण्ण०

आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ १७०. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयकी अल्पतर स्थिति-विभक्तिवाले जीव हैं। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—भुजगार अनुयोगद्वारमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित इन तीनोंका विचार किया जाता है । इसके अवान्तर अधिकार तेरह हैं । जो निम्न हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व । इनमेंसे पहले यहां समुत्कीर्तनाका विचार करते हैं—ओघसे भुजगारस्थितिवाले, अल्पतर स्थितिवाले और अवस्थित स्थितिवाले जीव पाये जाते हैं । जो कर्म स्थितिसे अधिक स्थितिको प्राप्त हो उसे भुजगारस्थितिवाला कहते हैं । जो अधिक स्थितिसे कम स्थितिको प्राप्त हो उसे अल्पतरस्थितिवाला कहते हैं और जिसकी पहले समयके समान दूसरे समयमें स्थिति रहे उसे अवस्थित स्थितिवाला कहते हैं । इस प्रकार ओघकी अपेक्षा इन तीनों प्रकारके जीवोंका पाया जाना सम्भव है । सातों पृथिवीके नारकी आदि प्रायः बहुत सी मार्गणाओंमे इसी प्रकारकी स्थिति है अतः वहां भी ओघके समान तीनों प्रकारकी स्थितिवाले जीव जानना चाहिये, क्योंकि जिन मार्गणाओंमें मिथ्यादर्शन सम्भव है वहां तीनो विभक्तियां बन सकती हैं । केवल आनतसे लेकर नौ ग्रैवयक तकके देव तथा शुक्ललेश्यावाले इसके अपवाद हैं । किन्तु आनतादि कल्पोंमे, शुक्ललेश्यामें और सम्यग्दर्शनसे सम्बन्ध रखनेवाली शेष मार्गणाओंमे पहले समयमें प्राप्त हुई स्थितिसे द्वितीयादि समयोंमें स्थिति उत्तरोत्तर घटती जाती है, अतः इनमें केवल एक अल्पतर स्थिति ही जाननी चाहिये ।

इस प्रकार समुत्कीर्तनानुगम समाप्त हुआ ।

§ १७१. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्ति किसके होती है ? किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होती है । अल्पतर स्थितिविभक्ति किसके होती है ? किसी भी

सम्मादिट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा। एवं सत्तसु पुढवीसु तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सार-पंचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०--तिण्णिवेद-चत्तारिकसा०-असंजद-चक्खु०-अचक्खु०-पंचलेस्सा-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति।

§ १७२. पंचिंदियतिरि०अपज्ज० मोह० भुज० अप्पद० अवट्ठि० कस्स? अण्णदरस्स। एवं मणुसअपज्ज०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-पंचकाय-तसअपज्ज०-मदि-सुदअण्णाण०-विहंग०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णि त्ति।

§ १७३. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति अप्पदर० कस्स? अण्ण० सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा। [एवं सुक्क०।]णवाणुदिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति अप्पदर० कस्स? अण्णदरस्स सम्माइट्ठिस्स। एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय०-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०संजद०-संजदासंजद-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदग०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो।

सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचत्रिक, मनुष्यत्रिक, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ १७२. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्ति किसके होती है? किसी भी जीवके होती है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पांचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्त, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाये।

§ १७३. आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्ति किसके होती है? किसी भी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। इसी प्रकार शुक्ल लेश्यावालोंके कहना चाहिये। नौ अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्ति किसके होती है? किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके होती है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—इस बातका उल्लेख हम पहले कर आये हैं कि मिथ्यादृष्टिके भुजगार आदि तीनों

§ १७४. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण भुज० जह० एगसमओ, उक्क० चत्तारि समया। अप्पद० जह एगसमओ, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं तीहि पलिदोवमेहि अंतोमुहुत्तब्भहिएहि सादिरेयं। अवट्ठिद० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। एवमचक्खु०—भवसिद्धि०।

स्थिति विभक्तियां सम्भव हैं और सम्यग्दृष्टिके केवल एक अल्पतर स्थितिविभक्ति ही सम्भव है। इस अनुयोगद्वारमें इसी दृष्टिसे विचार किया गया है। पूर्वोक्त सूचनानुसार सामान्य सिद्धान्त यह निष्पन्न हुआ कि सामान्यसे मिथ्यादृष्टि जीव तीनों स्थिति विभक्तियोंके स्वामी हैं और सम्यग्दृष्टि जीव केवल एक अल्पतर स्थितिविभक्तिके ही स्वामी हैं। आदेशकी अपेक्षा भी विचार करनेका मूल यही है। आनतसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंको व शुक्ललेश्यावालोंको छोड़कर शेष जिन मार्गणाओंमें मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन सम्भव है वहां मिथ्यादृष्टियोंको तीनों स्थितिविभक्तियोंके स्वामी जानना चाहिये और सम्यग्दृष्टियोंको केवल एक अल्पतर स्थितिविभक्तिका ही स्वामी जानना चाहिये। ऐसी मार्गणाओंके नाम मूलमें गिनाये ही हैं। इतना विशेष जानना कि यहां सम्यग्दृष्टि पदसे सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी ग्रहण कर लेना चाहिये, क्योंकि इनके भी एक अल्पतर स्थितिविभक्ति ही होती है। मनुष्य अपर्याप्त आदि कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें एक मिथ्यादर्शन ही सम्भव है अतः यहां तीनों स्थितिविभक्तियोंका स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव होता है। यद्यपि इस कसायपाहुडके अनुसार इनमें कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें सासादनसम्यक्त्व भी पाया जाता है पर उसकी अपेक्षासे यहां पृथक् कथन नहीं किया। फिर भी उसकी अपेक्षा विचार करने पर एक अल्पतर स्थितिविभक्ति ही प्राप्त होती है। अर्थात् ऐसे एकेन्द्रियादि जीव जो सासादनसम्यग्दृष्टि होंगे वे सासादनसम्यक्त्वके काल तक एक अल्पतर स्थितिविभक्तिके ही स्वामी होंगे। आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंके तथा शुक्ललेश्यावालोंके मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन दोनों सम्भव हैं फिर भी यहां एक अल्पतर स्थिति ही होती है, अतः उक्त स्थानोंमें मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीवको अल्पतर स्थितिविभक्तिका ही स्वामी बतलाया है। शेष मार्गणाओंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिका स्वामी सम्यग्दृष्टि ही होता है, क्योंकि उनमें मिथ्यादर्शन सम्भव ही नहीं है।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ।

§ १७४. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल चार समय है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्त अधिक एकसौ त्रेसठ सागर है। अवस्थितस्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनी और भव्य जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—किसी जीवने एक समय तक भुजगार स्थितिका बन्ध किया और दूसरे समयमें वह अल्पतर या अवस्थित स्थितिका बन्ध करने लगा तो भुजगारका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है। तथा जब कोई एक एकेन्द्रिय जीव पहले समयमें अद्धाक्षयसे स्थितिको बढ़ाकर बाँधता है, दूसरे समयमें संक्लेशक्षयसे स्थितिको बढ़ाकर बाँधता है, तीसरे समयमें मरकर और एक विग्रहसे संज्ञियोंमें उत्पन्न होकर असंज्ञियों के योग्य स्थितिको बढ़ाकर बाँधता है और चौथे समयमें शरीरको ग्रहण करके संज्ञीके योग्य स्थितिको बढ़ाकर बाँधता है तब उस जीवके भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल चार समय प्राप्त होता है, इस प्रकार भुजगार स्थितिका जघन्यकाल

एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय समझना चाहिये। इसका विशेष खुलासा इस प्रकार है— यहाँ एक स्थितिके बन्धके योग्य कालको अद्धा कहा है। जो कमसे कम एक समयतक और अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त तक होता है। तात्पर्य यह है कि किसी जीवके विवक्षित एक स्थितिका बन्ध हो रहा है तो वह बन्ध कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तमुहूर्त काल तक होगा। इसके पश्चात् वह बदल जायगा और तब उससे न्यून या अधिक स्थितिका बन्ध होने लगेगा। पर यहाँ भुजगारकी स्थिति विवक्षित है अतः अधिकका बन्ध कराना चाहिए। पर इस प्रकार अद्धाक्षयसे बंधनेवाली स्थितिमें फरक पड़ जानेपर भी स्थितिबन्धके कारणभूत संक्लेशरूप परिणामोंमें नियमसे बदल होगा ही यह नहीं कहा जा सकता। किसी जीवके अद्धाक्षयके साथ संक्लेशक्षय हो जाता है और किसी जीवके अद्धाक्षयके पश्चात् भी संक्लेशक्षय होता है। केवल अद्धाक्षयके होने पर स्थितिमें अधिकसे अधिक वृद्धि पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ही हो सकती है अधिक नहीं, क्योंकि एक एक क्रोधादि कषायरूप परिणामखण्ड उक्त प्रमाण स्थितिबन्धका ही कारण होता है। पर संक्लेश क्षयके होने पर अधिकसे अधिक संख्यात सागर स्थिति बढ़ सकती है और घट भी सकती है। किन्तु यहाँ भुजगारकी विवक्षा है, इसलिये वृद्धि ही लेनी चाहिये। इस प्रकार जब किसी एकेन्द्रिय जीवके पहले समयमें अद्धाक्षयसे स्थितिमें वृद्धि होती है, दूसरे समयमें संक्लेशक्षयसे स्थितिमें वृद्धि होती है। तब उसके भुजगारके दो समय तो एकेन्द्रिय पर्यायमें प्राप्त हो जाते हैं। तथा वह जीव यदि तीसरे समयमें मरा और एक मोड़ेके साथ संज्ञियोंमें उत्पन्न हुआ तो उसके तीसरे समयमें असंज्ञीके योग्य स्थितिका बन्ध होने लगेगा और चौथे समयमें शरीरको ग्रहण कर लेनेके कारण संज्ञीके योग्य स्थितिका बन्ध होने लगेगा। इस प्रकार उसी जीवके भुजगारके दो समय संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यायमें प्राप्त हुए। इस तरह भुजगारके कुल समय चार हुए। अतः भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल चार समय कहा। जो जीव एक समय तक अल्पतर स्थितिका बन्ध करके दूसरे समयमें भुजगार या अवस्थित स्थितिका बन्ध करने लगता है उसके अल्पतरका जघन्यकाल एक समयका पाया जाता है। तथा जिस जीवने अन्तमुहूर्त काल तक अल्पतर स्थितिका बन्ध किया। अनन्तर वह तीन पल्यकी आयु लेकर भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ और वहां आयुमें अन्तमुहूर्त कालके शेष रहने पर उसने सम्यक्त्वको ग्रहण किया। अनन्तर वह छयासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ परिभ्रमण करता रहा। तत्पश्चात् अन्तमुहूर्त काल तक सम्यग्मिथ्यात्वमें रहा और वहाँसे पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त करके दूसरी बार छयासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ परिभ्रमण करता रहा। तत्पश्चात् मिथ्यात्वमें गया और इकतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हो गया और वहांसे च्युत होकर और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तमुहूर्त काल तक उसने अल्पतर स्थितिबन्ध किया पश्चात् वह भुजगार स्थितिबन्ध करने लगा। इस प्रकार अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तमुहूर्त और तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर प्राप्त होता है। एक स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। अब यदि कोई जीव स्थितिसत्त्वके समान स्थितिका बन्ध करता है तो वह कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तमुहूर्त काल तक ही ऐसा कर सकेगा इसके पश्चात् उसके नियमसे अल्पतर या भुजगार स्थितिका बन्ध होने लगेगा, अतः अवस्थित स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त प्राप्त होता है। अचक्षुदर्शन और भव्य ये दो मार्गणाएं छद्मस्थ जीवके सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनों दशाओंमें सर्वदा रहती हैं अतः इनमें ओघ प्ररूपणा बन जाती है, और इसीलिए इनके कथनको ओघके समान कहा।

§ १७५. आदेसेण णेरइय०.मोह० भुज० ज० एगसमओ, उक्क० बे समया। अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि। अवट्ठि० ओघभंगो। पढमादि जाव सत्तमि त्ति भुज०-अवट्ठि० णिर०ओघं। अप्प० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा।

§ १७६. तिरिक्ख० मोह० भुज० अवट्ठि० ओघं। अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि अंतोमुहुत्तेण। पंचिंदियतिरिक्ख०-पंचिं०तिरिक्खपज्ज०-पंचिं०तिरिक्खजोणिणीसु भुज० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया। अप्पद०-अवट्ठि० तिरिक्खोघं। पंचिं०तिरि०अपज्ज० भुज० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया। अप्पद०-अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। एवं

---

§ १७५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। तथा अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल सामान्य नारकियोंके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—नरकमें अद्धाक्षय और संक्लेशक्षयसे दो भुजगार समय प्राप्त होते हैं अतः यहाँ भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल दो समय कहा। कोई एक असंज्ञी दो विग्रहसे नरकमें उत्पन्न हुआ और उसके यदि दूसरे विग्रहमें अद्धाक्षयसे तीसरे समयमें शरीरको ग्रहण करनेसे तथा चौथे समयमें संक्लेशक्षयसे भुजगार स्थितिबन्ध हुआ तो इस प्रकार नरकमें भुजगार स्थितिके तीन समय भी प्राप्त हो सकते है पर यहाँ पहले कथनकी ही मुख्यता है अतः उच्चारणावृत्तिमें उसीका उल्लेख किया है। जिस जीवने नरकमें उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालमें सम्यक्त्वका ग्रहण कर लिया है और जो अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहने पर मिथ्यात्वमें गया उसके नरकमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है। शेष कथन ओघके समान घटित कर लेना चाहिए। इसी प्रकार प्रथमादि नरकोंमें भी कथन करना चाहिये। किन्तु यहां अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जानना चाहिये। यद्यपि पहले नरकमें सम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होता है और उसके अल्पतर स्थिति ही पाई जाती है। किन्तु ऐसा जीव पहले नरककी उत्कृष्ट स्थितिके साथ नहीं उत्पन्न होता अतः पहले नरकमें भी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम एक सागरप्रमाण प्राप्त होता है।

§ १७६. तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है। पंचेन्द्रियतिर्यञ्च, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याप्तक और पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिमती जीवोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है। तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट

पंचिं०अपज्ज० ।

§ १७७. मणुसतिय० भुज०-अवट्ठि० णिरओघं । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडितिभागेण सादिरेयाणि । मणुसिणीसु अंतोमुहुत्तेण सादिरेयाणि । मणुसअपज्ज० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० बे समया । अप्पद०-अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§ १७८. देवेसु भुज०-अवट्ठि० णिरओघं । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क०

काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवो के जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—जिस तिर्यंचने पूर्व पर्यायमें अन्तर्मुहूर्त तक अल्पतर स्थितिका वन्ध किया । पश्चात् मरकर तीन पल्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हो गया उसके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य पाया जाता है । सामान्य तिर्यंचोंमें शेष कथन ओघके समान है । यदि कोई अन्य इन्द्रियवाला जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकमे उत्पन्न हुआ तो उसके पहला समय अद्धाक्षयसे,दूसरा समय शरीरको ग्रहण करनेसे और तीसरा समय संक्लेशक्षयसे भुजगार स्थितिका प्राप्त होता है, अतः इनमें भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल तीन समय कहा । शेष कथन सुगम है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके अल्पतर और अवस्थित स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ १७७. सामान्य मनुष्य,पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल सामान्य नारकियोंके समान है । अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक तीन पल्य है । मनुष्यिनियोंमे अल्पतर स्थितिविभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमे भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यिनियोंमेसे एक पूर्वकोटिकी आयुवाले जिस मनुष्यने त्रिभागके शेष रहनेपर मनुष्यायुका बन्ध करके पश्चात् क्षायिकसम्यग्दर्शनको प्राप्त कर लिया है वह मरकर उत्तम भोगभूमिमें तीन पल्यकी आयुके साथ उत्पन्न होता है । इसके त्रिभागसे लेकर अन्त तक निरन्तर स्थितिसत्त्वसे कम स्थितिका ही वन्ध होता रहता है अतः अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य प्राप्त होता है । किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव मरकर स्त्रीवेदी नहीं होता अतः मनुष्यिनियोके अल्पतर स्थितिका काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य ही प्राप्त होगा । यहां अन्तर्मुहूर्तसे पूर्व पर्यायके और तीन पल्यसे उत्तम भोगभूमिके अल्पतर स्थितिके कालका ग्रहण करना चाहिये । लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इसके अल्पतर और अवस्थितस्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ १७८. देवोंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल सामान्य नारकियोंके

तेत्तीस सागरोवमाणि। भवणादि जाव सहस्सारे त्ति एवं चेव। णवरि अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी। भवण०-वाण०-जोदिसि० सगट्ठिदी अंतोमुहुत्तूणा। आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अप्पदर० जह० जहण्णट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी।

§ १७९. एइंदिय०भुज०-अवट्ठि० मणुसभंगो। अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो असंखे०भागो। एवं बादरेइंदिय-सुहुमेइंदिय-चत्तारिकाय-तेसिं बादर-सुहुम-वणप्फदि-बादरवणप्फदि-सुहुमवणप्फदि-णिगोद-बादरणिगोद-सुहुमणिगोदे त्ति। एदेसिं पज्जत्ताणमपज्जत्ताणं च एवं चेव। णवरि अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी।

§ १८०. विगलिंदिय-विगलिंदियपज्जत्ताणं भुज०-अवट्ठि० एइंदियभंगो। अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी। विगलिंदियअपज्ज० भुज०-अवट्ठि०

समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतक इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। उसमें भी भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम कहना चाहिए। आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार तकके देवोंके तीनों प्रकारकी स्थितियोंका बन्ध होता है। अतः सहस्रार स्वर्गतक अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण प्राप्त हो जाता है। पर इतनी विशेषता है कि भवनत्रिकोंमें सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता अतः वहां अल्पतरका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तकम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण ही प्राप्त होगा। किन्तु आनतसे सर्वार्थसिद्धितक अल्पतर स्थितिका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्टकाल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण ही प्राप्त होगा, क्योंकि वहां एक अल्पतर स्थितिका ही बन्ध होता है। शेष कथन सुगम है।

§ १७९. एकेन्द्रियोंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल मनुष्योंके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्मएकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, उनके बादर और सूक्ष्म, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, निगोद, बादर निगोद और सूक्ष्म निगोद जीवोंके जानना चाहिये। इन बादर एकेन्द्रिय आदिके जो पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद हैं उनके भी इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनमें अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है।

§ १८०. विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थिति विभक्तिका काल एकेन्द्रियोंके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय

विगलिंदियभंगो । अप्पद० मणुसअपज्जत्तभंगो ।

§ १८१. पंचिं०-पंचिं०पज्ज० भुज०-अवट्ठि० पंचिं०तिरिक्खभंगो । अप्पद० मूलोघं । तस-तसपज्ज० भुज०-अवट्ठि०-अप्पद० मूलोघं । तसअपज्ज० भुज० ओघं । अप्पद०-अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवमोरालियमिस्स० वत्तव्वं । णवरि भुज० उक्क० तिण्णि समया ।

और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । विकलेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल विकलेन्द्रियोंके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका काल मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है ।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें भी अद्धाक्षय और संक्लेशक्षयसे भुजगारके दो समय प्राप्त होते हैं अतः इनमें भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल भी मनुष्योंके समान कहा। तथा एकेन्द्रियके निरन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक अल्पतर स्थितिका होना सम्भव है, क्योंकि जिस एकेन्द्रियके संज्ञी पंचेन्द्रियकी स्थितिका सत्त्व है वह उसे पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक घटाता रहता है । अतः एकेन्द्रियोमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । बादरएकेन्द्रिय, सूक्ष्मएकेन्द्रिय तथा पाँचों स्थावरकाय और उनके बादर और सूक्ष्म जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक है, अतः इनमें भी एकेन्द्रियोंके समान काल बन जाता है । किन्तु इन सबके पर्याप्त और अपर्याप्त भेदोंका काल कम है अतः इनमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा । इसी प्रकार विकलत्रय पर्याप्त और विकलत्रय अपर्याप्त जीवोंके उत्कृष्ट काल का विचार करके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट काल जानना । शेष कथन सुगम है ।

§ १८१. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्तक जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका काल मूलोघके समान है। त्रस और त्रस पर्याप्तक जीवोंके भुजगार, अवस्थित और अल्पतर स्थितिविभक्तिका काल मूलोघके समान है । त्रस अपर्याप्तकोंके भुजगार स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके भुजगार स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल तीन समय है ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोमें सब पंचेन्द्रिय जीव आ जाते हैं । उनमें पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च भी सम्मिलित हैं अतः पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके जिस प्रकार भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल तीन समय घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार इनके भी जानना चाहिए। तथा ओघसे अल्पतर स्थितिका जो उत्कृष्ट काल बतलाया है वह पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके ही प्राप्त होता है अन्यके नहीं, अतः इनके अल्पतर स्थितिका काल ओघके समान कहा । ओघसे भुजगार आदि तीनों विभक्तियोंका जो काल कहा है वह त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके अविकल बन जाता है, अतः इनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा । त्रस अपर्याप्तकोंका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । जो एकेन्द्रिय या विकलत्रय पंचेन्द्रिय त्रसोंमें उत्पन्न होता है उसके भुजगार स्थितिके चार समय प्राप्त होते हैं । किन्तु इनमें भुजगारका पहला समय विग्रह गतिमें हो जाता है और

§ १८२. पंचमण०-पंचवचि०—वेउव्विय०--वेउव्वियमिस्स० मणुसअपज्जत्त-भंगो। कायजोगि० भुज०-अवट्ठि० ओघं। अप्पद० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। ओरालि० भुज०-अवट्ठि० मणुसअपज्जत्तभंगो। अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० वावीसवस्ससहस्साणि देसूणाणि। आहार० अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। आहारमिस्स० अप्पद० जहण्णुक्क० अंतोमु०। कम्मइय० भुज० ज० एगसमओ, उक्क० वे समया। एवमप्पद०। अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया।

विग्रहतिमें औदारिकमिश्रकाययोग पाया नहीं जाता, अतः इस योगमें भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल तीन समय कहा जो भव ग्रहण अद्धात्रय और संक्लेशत्रयके कारण प्राप्त होता है।

§ १८२. पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्र-काययोगी जीवोंके मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये। काययोगी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। औदारिक काय-योगी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। आहारक काययोगी जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। कार्मणकाययोगी जीवोंके भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। इसी प्रकार अल्पतर स्थितिविभक्तिका काल जानना चाहिये। तथा अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है।

विशेषार्थ—पांचों मनोयोग, पांचों वचनयोग, वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाय-योगमे भुजगार स्थितिविभक्तिका अद्धात्रय और संक्लेशत्रयसे दो समय ही उत्कृष्टकाल प्राप्त होता है तथा अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है, क्योंकि इन योगोंका इससे अधिक उत्कृष्टकाल नहीं पाया जाता, अतः इनमें भुजगार आदि स्थितियोंके कालको लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके समान कहा। काययोगमें सब काययोगोंका अन्तर्भाव हो जाता है और भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल चार समय काययोगमें ही बनता है अतः इसमे भुजगार और अवस्थितस्थितिके कालको ओघके समान कहा। तथा सामान्य काययोगका उत्कृष्टकाल तो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। पर वह एकेन्द्रियके ही पाया जाता है और एकेन्द्रियके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा, अतः काययोगमें भी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण जानना। औदारिककाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष है, अतः इसमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा। आहारक-काययोग और आहारकमिश्रकाययोगमे अल्पतर स्थितिविभक्ति ही होती है अतः इनका जो जघन्य और उत्कृष्टकाल है तत्प्रमाण ही इनमें अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल जानना चाहिये। कार्मणकाययोगका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है, अतः इसमे अवस्थिति स्थितिविभक्तिका तो जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय बन जाता

§ १८३. इत्थि० भुज०-अवट्ठि० पंचिंदियतिरिक्खभंगो । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि । एवं पुरिस० । णवरि अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं तीहि पलिदोवमेहि अंतोमुहुत्तब्भहिएहि सादिरेयं । णवुंस० भुज०-अवट्ठि० ओघं । अप्पद० ज० एगसमओ, उक्क० तेत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि । अवगद० अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं अकसाय०-सुहुमसांपरा०-जहाक्खाद० वत्तव्वं ।

§ १८४. चत्तारिकसाय० ओरालियमिस्सभंगो । णवरि भुज० ओघं ।

है, क्योंकि एक स्थितिका तीन समय तक बन्ध होना असंभव नहीं है, क्योंकि एक स्थितिका उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाया जाता है । परन्तु इसमें भुजगार और अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय ही प्राप्त होता है, क्योंकि इसमें अद्धाक्षय और संक्लेशक्षय ये दो अवस्थाएं ही सम्भव हैं । अतएव इनमें भुजगार और अल्पतरका अधिकसे अधिक दो समय काल ही प्राप्त होगा । शेष कथन सुगम है ।

§ १८३. स्त्रीवेदमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचवन पल्य है । इसी प्रकार पुरुषवेदमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एकसौ त्रेसठ सागर है । नपुंसकवेदमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एकसमय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । अपगतवेदी जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके कहना चाहिए ।

विशेषार्थ—देवीकी उत्कृष्ट स्थिति पचवन पल्य है । अब यदि कोई जीव इस आयुके साथ देवी हुआ और उसने अन्तर्मुहूर्तके बाद सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया और जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहा तो उसके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम पचवन पल्यप्रमाण प्राप्त होता है । ओघसे अल्पतर स्थितिका जो उत्कृष्टकाल कहा वह पुरुषवेदकी अपेक्षा ही घटित होता है, अतः पुरुषवेदमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एकसौ त्रेसठसागर कहा । नपुंसकवेदमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल सातवें नरककी अपेक्षा प्राप्त होगा, अतः इसमें अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर कहा । अपगतवेदमें अल्पतर स्थिति ही पाई जाती है और मोहनीय सत्कर्मवाले अपगतवेदका जघन्यकाल एक समय तथा उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इसमें अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंकी स्थिति अपगतवेदी जीवोंके समान है अतः इनके भी अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण जानना । शेष कथन सुगम है ।

§ १८४. क्रोधादि चार कषायवाले जीवोंके औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके भुजगार स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है ।

विशेषार्थ—भुजगार स्थितिके चार समय अपर्याप्त अवस्थामें प्राप्त होते हैं और उस

§ १८५. मदि०सुदअण्णाण० भुज०-अवट्ठि० ओघं । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि । विभंग० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० सत्तमपुढविभंगो । णवरि अप्पद० एक्कत्तीससागरो० अंतोमुहुत्तूणाणि । आभिणि०-सुद०-ओहि० अप्पद० जह० अंतोमु०, उक्क० छावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि । एवमोहिदंस०-सम्मामि०-वेदयसम्मादिट्ठि त्ति । णवरि वेदयसम्मादिट्ठीसु छावट्ठिसागरोवमाणि संपुण्णाणि । मणपज्ज० अप्पद० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । एवं संजद-परिहार०-संजदासंजदा त्ति ।

समय कोई भी एक कषाय पाई जा सकती है अतः चारों कषायोंमें भुजगार स्थितिका काल ओघके समान कहा । एक कषायका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः शेष कालकी औदारिक मिश्रकाययोगके साथ समानता घटित हो जाती है । शेष कथन सुगम है ।

§ १८५. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर है । विभंगज्ञानी जीवोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल सातवीं पृथिवीके नारकियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके अल्पतर स्थितिविभक्तिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम इकतीस सागर है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें पूरे छयासठ सागर होते हैं । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है । इसी प्रकार संयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—प्रारम्भके दो अज्ञानोंके रहते हुए अधिकसे अधिक अल्पतर स्थितिविभक्ति नौवें ग्रैवेयकमें पाई जाती है, अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल साधिक इकतीस सागर कहा। यहां साधिकसे नौवें ग्रैवेयकके पिछले भवके अन्तका अन्तर्मुहूर्तकाल और अगले भवके प्रारम्भका अन्तर्मुहूर्तकाल लेना चाहिये, क्योंकि इन कालोंमें भी इस जीवके अल्पतर स्थितिका पाया जाना सम्भव है। किन्तु विभंगज्ञानमें अल्पतर स्थितिविभक्तिका काल अन्तर्मुहूर्त कम इकतीस सागर ही प्राप्त होता है जो कि उपरिम नौवें ग्रैवेयकमें अपर्याप्त अवस्थाके अन्तर्मुहूर्त कालको कम कर देनेसे प्राप्त होता है । अभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, अवधिदर्शन और सामान्य सम्यग्दृष्टिका उत्कृष्टकाल साधिक छयासठ सागर और वेदक सम्यक्त्वका उत्कृष्टकाल पूरा छयासठ सागर है और इनके एक अल्पतर स्थिति ही सम्भव है अतः इनके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । तथा इन सबका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनमें अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । मनःपर्ययज्ञानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है अतः इसमें अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा । संयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके भी अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण जान लेना चाहिये ।

§ १८६. सामाइय-च्छेदो० अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। असंजद० णवुंसभंगो। णवरि अप्पद० उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि। चक्खु० तसपज्जत्तभंगो। किण्ह०-णील०-काउ० भुज०-अवट्ठि० ओघं। अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। तेउ०-पम्म० भुज०-अवट्ठि० सोहम्मभंगो। अप्पद० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। सुक्क० अप्प० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादिरेयाणि। एवं खइय० वत्तव्वं।

§ १८७. अभव०-मिच्छादि० मदिअण्णाणिभंगो। उवसम०-सम्मामि० आहारमिस्सभंगो। सासण० अप्पद० ज० एगसमओ, उक्क० छावलियाओ। सण्णि० भुज० ज० एगसमओ उक्क० वेसमया। अप्पद०-अवट्ठि० ओघं। असण्णि० भुज० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। अप्पद०-अवट्ठि० एइंदियभंगो। आहारि० भुज०-

§ १८६. सामायिकसंयत और छेदोपस्थानासंयत जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। असंयत जीवोंके नपुंसकवेदी जीवोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके अल्पतर स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर है। चक्षुदर्शनी जीवोंके त्रस पर्याप्तकोंके समान जानना चाहिए। कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। पीत और पद्मलेश्यावाले जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल सौधर्म कल्पके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। शुक्ललेश्यावाले जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीससागर है। इसी प्रकार क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—जो अनुत्तर विमानवासी एक समय कम तेतीस सागरकी आयुवाला देव च्युत होकर एक कोटि पूर्वकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आयुके अन्तमें संयमको प्राप्त हो सिद्ध हो गया उसके नौ अन्तर्मुहूर्त कम पूर्व कोटिकालसे अधिक तेतीस सागर असंयतका उत्कृष्टकाल होता है। अतः असंयतके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर कहा। शुक्ल लेश्यामें दो अन्तर्मुहूर्त अधिक ३३ सागर जानना चाहिये किन्तु शुक्ललेश्याके कालमें सर्वार्थसिद्धिसे पूर्व और पश्चात् भवके अन्तका और प्रथम अन्तर्मुहूर्तकाल सम्मिलित करना चाहिये। संज्ञीके भुजगारका उत्कृष्टकाल दो समय अद्धाक्षय और संक्लेशक्षयसे प्राप्त होता है। शेष कथन सुगम है।

§ १८७. अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके मत्यज्ञानी जीवोंके समान जानना चाहिये। उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान जानना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल छह आवलीप्रमाण है। संज्ञी जीवोंके भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय है। तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। असंज्ञी जीवोंके भुजगार स्थितिविभक्तिका काल पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान

अवट्ठि० ओरालियमिस्सभंगो । अप्पदर० ज० एयसमओ, उक्क० ओघभंगो । अणाहार० कम्मइयभंगो ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

§ १८८. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० भुज०-अवट्ठि० अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जह० एगसमओ, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं तीहि पलिदोवमेहि अंतोमुहुत्तब्भहिएहि सादिरेयं । अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं पंचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पुरिस०-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि०-आहारि त्ति ।

§ १८९. आदेसेण णेरइएसु भुज०-अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० तेत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि । अप्पद० ओघं । पढमादि जाव सत्तमि त्ति भुज०-अवट्ठि० अंतरं ज० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अप्पद० ओघं ।

है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल एकेन्द्रियोंके समान है । आहारक जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके समान है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल ओघके समान है । अनाहारक जीवोंके कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ १८८. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्त अधिक एकसौ त्रेसठ सागर है । अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—एक कालमें एक जीवके भुजगार आदि स्थितियोंमेंसे कोई एक ही स्थिति होगी और इन तीनोंका जघन्यकाल एक समय है अतः जघन्य अन्तर भी इतना ही प्राप्त होता है । तथा अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एकसौ त्रेसठ सागर है और उस समय अन्य दो स्थितियोंका पाया जाना सम्भव नहीं, अतः भुजगार और अवस्थित स्थितिका अन्तरकाल अल्पतरस्थितिके उत्कृष्टकाल प्रमाण कहा । तथा अवस्थितका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः अल्पतरका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा । पंचेन्द्रिय आदि कुछ मार्गणाओंमें यह अन्तरकाल बन जाता है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा ।

§ १८९. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है ।

§ १९०. तिरिक्ख० भुज०-अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अप्प० ओघं । पंचिं०तिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-पंचिं०तिरि० जोणिणी० भुज०-अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । अप्पद० ओघं । पंचिं०तिरि०अपज्ज० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवं मणुसअपज्ज० । मणुसतिय० भुज०-अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । अप्पद० ओघं ।

§ १९१. देवेसु भुज०-अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० अट्ठारस सागरो० सादिरेयाणि । अप्प० ओघं । भवणादि जाव सहस्सार त्ति भुज०-अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अप्प० ओघं० । आणदादि जाव सव्वट्ठे त्ति अप्प० णत्थि अंतरं ।

---

§ १९०. तिर्यंचोंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यँच, पंचेन्द्रिय तिर्यँच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यँच योनिमती जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यँच अपर्याप्तकोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये । सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यिनियोंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है ।

§ १९१. देवोंमें भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है । आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है ।

विशेषार्थ—सामान्य तिर्यञ्चके अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल साधिक तीन पल्य बतला आये हैं । पर जिस तिर्यञ्चके यह काल प्राप्त होता है उसके तिर्यञ्च पर्यायके रहते हुए पुनः भुजगार और अवस्थित स्थिति नहीं प्राप्त होती, क्योंकि वह जीव तिर्यञ्चसम्बन्धी अल्पतर स्थितिके कालको समाप्त करके देवपर्यायमें चला जाता है, अतः एकेन्द्रियोंमें जो अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल बतलाया है वह सामान्य तिर्यञ्चके भुजगार और अवस्थितस्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये । तिर्यञ्च त्रिकके अल्पतर स्थितिका जो साधिक तीन पल्य उत्कृष्टकाल बतलाया है उसे इनके भुजगार और अवस्थित स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल माननेपर वही आपत्ति खड़ी होती है जो सामान्य तिर्यञ्चोंके उक्त स्थितियोंके अन्तरकालका स्पष्टीकरण करते समय बतला

§ १९२. सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज० पंचि०तिरिक्खअपज्जत्तभंगो। पंचकाय०-तसअपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-ओरालि०-वेउव्विय० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो। एवमोरालियमिस्स-वेउव्वियमिस्स० वत्तव्वं। कायजोगि० भुज०-अवट्ठि० ज० एयसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अप्पद० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। आहार-आहारमिस्स० अप्पद० णत्थि अंतरं। एवमवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सुक्क०सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सम्मामि०-सासण०दिट्ठि त्ति। कम्मइय० भुज०-अप्पद० णत्थि

आये हैं अतः इनके भुजगार और अवस्थित स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटि पृथक्त्वप्रमाण कहा है। कोई संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च उत्कृष्ट स्थिति बाँधकर मरा और असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न हुआ और सेंतालीस पूर्वकोटि तक पंचेन्द्रिय असंज्ञियोंमें भ्रमणकर फिर संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च हो गया। इस प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें भुजगार और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तर सेंतालीस पूर्वकोटि होता है। क्योंकि जिस असंज्ञी जीवके संज्ञी पंचेन्द्रियकी स्थितिका सत्त्व होता है उसको घटानेके लिए सेंतालीस पूर्वकोटिसे भी अधिक काल चाहिये परन्तु असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चमें भ्रमण करनेका उत्कृष्टकाल सेंतालीस पूर्वकोटि है अतः उक्त काल कहा। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें पन्द्रह पूर्वकोटि और योनिमतिमें सात पूर्वकोटि कहना चाहिए। मनुष्यमें असंज्ञी नहीं होते अतः उनमें सम्यक्त्वकी अपेक्षा कुछ कम पूर्वकोटि काल कहा है मनुष्य त्रिकके यद्यपि अल्पतरका उत्कृष्टकाल साधिक तीन पल्य बतलाया है पर वह इनके भुजगार और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तर नहीं हो सकता। आपत्ति वही आती है जिसका पहले उल्लेख कर आये हैं। अतः इनके भुजगार और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण जानना चाहिये। कुछ कमसे यहाँ प्रारम्भके आठ वर्षका और अन्तके अन्तर्मुहूर्त कालका ग्रहण किया है। देवोंमें यद्यपि अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल तेतीस सागर बतलाया है। पर भुजगार और अवस्थित स्थितियाँ सहस्रार स्वर्गतक ही होती हैं और सहस्रार कल्पकी उत्कृष्ट स्थिति साधिक अठारह सागर है, अतः इनके भुजगार और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा। शेष कथन सुगम है।

§ १९२. सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक जीवोंके पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये। पाँचों स्थावरकाय, त्रसअपर्याप्तक, पाँचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, औदारिककाययोगी और वैक्रियिककाययोगी जीवोंके पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना चाहिये। काययोगी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यात संयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। कार्मण-

अंतरं। अवट्ठि० जहण्णुक्क० एगसमओ। एवमणाहारि०।

§ १९३. वेदाणुवादेण इत्थि० भुज०-अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० पणवण्ण पलिदोवमाणि देसूणाणि। अप्प० ओघं। णवुंस० भुज०-अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि। अप्पद० ओघं। एवमसंजद०।

§ १९४. चत्तारिकसाय० मणजोगिभंगो। मदिअण्णाण-सुदअण्णाण० भुज०-अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० एक्कत्तीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि। अप्पद० ओघं। विहंग० भुज०-अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। अप्पद० ओघं। पंचले० भुज०-अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अप्पद० ओघं०। अभव०-मिच्छादि० मदिअण्णाणिभंगो। असण्णि० कायजोगिभंगो।

एवमंतराणुगमो समत्तो।

§ १९५. णाणाजीवेहिं भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण भुज० अप्प० अवट्ठि० णियमा अत्थि। एवं तिरिक्ख-सव्वएइंदिय-पुढवि०-

---

काययोगी जीवोंके भुजगार और अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है। तथा अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ १९३. वेद मार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थिति विभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचवन पल्य है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है। नपुंसकवेदी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है। इसी प्रकार असंयत जीवोंके जानना चाहिये।

§ १९४. चारों कषायवाले जीवोंके मनोयोगी जीवोंके समान जानना चाहिये। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक इकतीस सागर है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है। विभंगज्ञानी जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है। कृष्ण आदि पाँच लेश्यावाले जीवोंके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है। अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके मत्यज्ञानी जीवोंके समान जानना चाहिए। तथा असंज्ञी जीवोंके काययोगी जीवोंके समान जानना चाहिये।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ १९५. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेसे ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले

बादरपुढवि०-बादरपुढवि०अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादर-आउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०—सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त--तेउ०—बादरतेउ० [-बादरतेउ०] अपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउ-अपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउ०पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०तस्सेव अपज्ज०-सव्ववणप्फदि०-सव्वणिगोद०-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णाण—असंजद०--अचक्खु०-तिण्णलेस्सिय-भव०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि त्ति।

§ १९६. आदेसेण णेरइएसु अप्पद० अवट्ठि० णियमा अत्थि। भुज० भजियव्वं सिया एदे च भुजगारविहत्तिओ च। सिया एदे च भुजगारविहत्तिया च २। धुवे पक्खित्ते तिण्णि भंगा। एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचि०तिरि०-मणुसतिय०-देव०-भवणादि-जाव सहस्सार०-सव्वविगलिंदिय—सव्वपंचिंदिय-बादरपुढवीपज्ज०—बादरआउ-पज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज०—सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि त्ति।

जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादरजलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ १९६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। तथा भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीव भजनीय हैं। (१) कदाचित् बहुत अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव होते हैं और एक भुजगार स्थितिविभक्तिवाला जीव होता है। (२) कदाचित् बहुत अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव होते हैं और बहुत भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीव होते हैं। इन दोनों भंगोंको ध्रुव भंगमें मिला देनेपर तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रियतिर्यञ्च, सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादरजलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी त्रस, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पतिलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

§ १९७. मणुसअपज्ज० सव्वपदा भयणिज्जा । एवं वेउव्वियमिस्स० । आणदादि जाव सव्वट्ठे त्ति अप्पद० णियमा अत्थि । एवमाभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयच्छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादि०-खइय०-वेदएत्ति । आहार०-आहारमिस्स० सिया अप्पदरविहत्तिओ च सिया अप्पदरविहत्तिया च । एवमवगद०-अकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद०-उवसम०-सम्मामि०-सासणसम्मादिट्ठि त्ति ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचओ समत्तो ।

§ १९८. भागाभागाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण भुज० सव्वजीव० के० भागो ? असंखे०भागो । अवट्ठि० सव्वजी० के० ? संखे०भागो । अप्पद० सव्वजीव० के० भागो ? संखेज्जा भागा । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव सहस्सार-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिं-

§ १९७. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सभी पद भजनीय हैं। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत सामायिक संयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ल-लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें कदाचित् अल्पतर स्थितिविभक्तिवाला एक जीव होता है, कदाचित् अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले अनेक जीव होते हैं। इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले नाना जीव सर्वदा पाये जाते हैं। पर मार्गणाओंमें विचार करनेपर कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें ओघ प्ररूपणा बन जाती है। कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें अल्पतर और अवस्थित स्थितिवाले नाना जीव तो नियमसे हैं तथा भुजगार स्थितिवाला कदाचित् एक जीव होता है और कदाचित् अनेक जीव होते हैं। इस प्रकार इन दो अध्रुव भंगोंमे पहला ध्रुवभंग मिला देनेपर तीन भंग हो जाते हैं। कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें तीनों पद भजनीय हैं। जैसे लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य आदि। अतः यहां २६ भंग होंगे। कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें एक अल्पतर स्थितिवाले ही जीव होते हैं और कुछ मार्गणाएं ऐसी है जिनमें अल्पतर स्थितिवाला कदाचित् एक जीव होता है और कदाचित् नाना जीव होते हैं। जैसे आहारक काययोगी आदि। अतः यहां दो भंग होंगे।

इस प्रकार नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम समाप्त हुआ।

§ १९८. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं? असंख्यातवें भाग हैं। अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं? संख्यातवें भाग हैं। अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोके कितने भाग हैं? संख्यात बहुभाग हैं।

दिय-सव्वपंचिंदिय-पंचकाय०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स-वेउव्विय०-वेउ०मिस्स०-कम्मइय-तिण्णिवेद०-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि त्ति।

§ १९९. मणुसपज्जत्तमणुसिणीसु भुज० सव्वजी० के० भागो ? संखे०भागो। एवमवट्ठिदि०। अप्पदर० संखेज्जा भागा। आणदादि जाव सव्वट्ठा त्ति णत्थि भागाभागं। एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०।

एवं भागाभागाणुगमो समत्तो।

§ २००. परिमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण भुज० अप्पद० अवट्ठि० केत्ति० ? अणंता। एवं तिरिक्ख-सव्वएइंदिय-सव्ववणप्फदि-सव्वणिगोद०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स-कम्मइय-णवुंस०-चत्तारिकसाय-

---

इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यंच, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पांचों स्थावरकाय, सभी त्रसकाय, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ १९९. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। इसी प्रकार अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले संख्यातवें भाग हैं। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले संख्यात बहुभाग हैं। आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त जीवोंके भागाभाग नहीं हैं; क्योंकि वहां एक अल्पतर पद ही पाया जाता है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ।

§ २००. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थितस्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, सभी वनस्पतिकायिक,

मदिसुदअण्णाण०–असंजद–अचक्खु–तिण्णिले०–भवसि०–अभवसि०–मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति ।

§ २०१. आदेसेण णेरइएसु भुज० अप्पद० अवट्ठि० केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिं०तिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देव--भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिं०-चत्तारिकाय-बादरवणप्फदिपत्तेय०-पज्जत्तापज्जत्त–सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०–वेउव्विय०–वेउव्वियमिस्स-इत्थि०–पुरिस०–विहंग०–चक्खु०–तेउ०– पम्म०-सण्णित्ति ।

§ २०२. मणुसपज्ज०–मणुसिणी० भुज० अप्पद० अवट्ठि० केत्ति० ? संखेज्जा । आणदादि जाव अवराइदत्ति अप्पदर० केत्ति० ? असंखेज्जा । एवमाभिणि०–सुद०–ओहि०–संजदासंजद०–ओहिदंस०–सम्मादि०–खइय०-वेदय०–उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति । सव्वट्ठ० अप्पद० केत्तिया ? संखेज्जा । एवमाहार०–आहारमिस्स०–अवगद०–अकसा०–मणपज्ज०–संजद०–सामाइयछेदो० परिहार०-सुहु०-जहाक्खादसंजदेत्ति । सुक्क० आभिणि०भंगो ।

सभी निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी नपुसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

२०१. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्यदेव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २०२. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । आनत कल्पसे लेकर अपराजित कल्पतकके देवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सी प्रकार मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । सर्वार्थसिद्धिमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले देव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिक संयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये । शुक्ललेश्यावाले जीवोंका कथन मतिज्ञानी जीवोंके समान है

एवं परिमाणाणुगमो समत्तो ।

§ २०३. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण भुज० अप्पद० अवट्ठि० केवडि खेत्ते ? सव्वलोए । एवं तिरिक्ख०-सव्वएइंदिय-सव्ववणप्फदि-सव्वणिगोद-कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमिस्स-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय-मदिसुदअण्णाण-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छा०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति ।

§ २०४. आदेसेण णेरइएसु भुज० अप्पद० अवट्ठि० के० खे०? लोग० असंखे०-भागे । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-बादरपुढवि०पज्ज०-बादरआउ०पज्ज०-बादरतेउ०पज्ज०-बादरवाउ०पज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्ज०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसा०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज-०संजद०-सामाइयछेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिण्णिले०-सम्मादिट्ठी-खइय०-वेदय०-

---

विशेषार्थ—ओघसे तीनों स्थितिविभक्तिवाले अनन्त हैं यह तो स्पष्ट है पर मार्गणाओंमें जिस मार्गणाका जितना प्रमाण है उसमें सम्भव स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सामान्यरूपसे उतना ही प्रमाण जानना चाहिये । अर्थात् जिस मार्गणाका प्रमाण अनन्त है उसमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण भी अनन्त ही है । इसी प्रकार सर्वत्र जानना । किन्तु जहां एक ही स्थिति हो वहां एक की अपेक्षा ही कथन करना ।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ ।

§ २०३ क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमे रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्च, सभी एकेन्द्रिय, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारो कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २०४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले प्रत्येक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सभी मनुष्य, सभी देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचो वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, अपगतवेदी, अकषायी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-

उवसम०–सासण०–सम्मामि०–सण्णि त्ति । णवरि बादरवाउ०पज्ज० लोग० संखे०भागो ।

§ २०५. पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउ०अपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउ०पज्जत्ता-पज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउ०अपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउ०पज्जत्तापज्जत्त-वाउ० बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०–सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-भुज० अप्पद० अवट्ठि० के० खेत्ते ? सव्वलोगे ।

एवं खेत्ताणुगमो समत्तो ।

§ २०६. पोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण

विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंका वर्तमान क्षेत्र लोकका संख्यातवाँ भाग है ।

§ २०५. पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्मजलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादरअग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मअग्निकायिक, सूक्ष्मअग्निकायिकपर्याप्त, सूक्ष्मअग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्त, बादरवनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्तकोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं । सर्व लोकमें रहते हैं ।

विशेषार्थ–ओघसे तीनों स्थितिवाले जीव अनन्त हैं अतः उनका क्षेत्र सब लोक बन जाता है। पर मार्गणाओंकी अपेक्षा क्षेत्रका विचार करनेपर दो विकल्प प्राप्त होते हैं । जिन मार्गणाओंमें तीनों स्थितिवालोंका प्रमाण अनन्त है उनका तो सब लोक क्षेत्र है ही । साथ ही पृथिवीकायिक आदि असंख्यात संख्यावाली कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें भी तीनों स्थिति-वालोंका क्षेत्र सब लोक है । तथा इनके अतिरिक्त शेष जितनी मार्गणाएं हैं उनमें अपनी अपनी सम्भव भुजगार आदि स्थितियोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही क्षेत्र जानना चाहिये । किन्तु वायुकायिक पर्याप्त जीव इसके अपवाद हैं क्योंकि उनके तीनों स्थितियोंकी अपेक्षा लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र पाया जाता है । तात्पर्य यह है कि मार्गणाओंकी अपेक्षा जिस मार्गणाका जो क्षेत्र है वही यहां अपनी अपनी सम्भव स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ २०६. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश

भुज० अप्पद० अवट्ठि० खेत्तभंगो। एवं तिरिक्ख०–णवगेवज्जादि जाव सव्वट्ठ०–सव्वएइंदिय–पुढवि०–[बादरपुढवि०] बादरपुढवि०अपज्ज०–सुहुमपुढवि०–सुहुमपुढवि०पज्जत्तापज्जत्त–आउ०–बादरआउ०–बादरआउअपज्ज०–सुहुमआउ०–सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त–तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०–सुहुमतेउ०–सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त–वाउ०–बादरवाउ०–बादरवाउअपज्ज०–सुहुमवाउ०–सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय० - बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज० — कायजोगि० — ओरालि० - ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स-कम्मइय-णवुंस०-अवगद०–चत्तारिकसाय-अकसा०-मदिसुदअण्णाण०-मणपज्ज०- संजद-समाइयच्छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति।

§ २०७. आदेसेण णिरय० भुज० अप्पद० अवट्ठि० केव० खे० पो०? लोग० असंखे०भागो छ चोद्दसभागा वा देसूणा। पढमपुढवि० खेत्तभंगो। विदियादि जाव सत्तमि त्ति भुज० अप्पद० अवट्ठि० के० खेत्तं पोसिदं? लोग० असंखे० भागो एक्क बे तिण्णि चत्तारि पंच छ चोद्दस भागा वा देसूणा।

उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यंच, नौ ग्रैवेयकसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देव, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादरजलकायिक, बादरजलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्मजलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मजलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादरअग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मअग्निकायिक, सूक्ष्मअग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मअग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादरवायुकायिक, बादरवायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक, सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, अपगतवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अकषायी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। तात्पर्य यह है कि उक्त मार्गणाओंमें जिसका जितना क्षेत्र बतला आये हैं उसका उतना स्पर्शन भी जानना चाहिये।

§ २०७. आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें

§ २०८. सव्वपंचिं० तिरिक्ख० भुज० अप्पद० अवट्ठि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । एवं मणुस्स-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय अपज्ज०-बादरपुढवि० (पज्ज०)-बादरआउ०पज्ज०-बादरतेउ०पज्ज०-बादरवाउ०पज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेय०पज्ज०-तसअपज्ज० । णवरि बादरवाउपज्ज० लोग० संखे० भागो सव्वलोगो वा ।

§ २०९. देव० भुज० अप्प० अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो अट्ठणव चोद्दसभागा वा देसूणा । एवं सोहम्मीसाणेसु । भवण० वाण० जोदिसि० एवं चेव । णवरि अद्धुट्ठ अट्ठ णव चोद्दसभागा वा देसूणा । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारेत्ति के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस भागा वा देसूणा । आणदादि जाव अच्चुदेत्ति के० खेत्तं पो० ? लोग० असंखे०भागो छ चोद्दसभागा देसूणा ।

§ २१०. पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज० भुज० अप्पद० अवट्ठि० के० खे० पो० ? लोग असंखे० भागो अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा । एवं पंच

भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोमेंसे क्रमसे कुछ कम एक, कुछ कम दो, कुछ कम तीन, कुछ कम चार, कुछ कम पाँच और कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ २०८. सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सभी मनुष्य, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्तजीवोंने लोकके संख्यातवें भाग और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ २०९. देवोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोमेंसे कुछ कम आठ और नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंके जानना चाहिये । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । तनी विशेषता है कि इनके अतीतकालीन स्पर्श त्रसनालीके चौदह भागोमेंसे कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण होता है । सानत्कुमारसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ? आनतकल्पसे लेकर अच्युतकल्प तकके देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोमेंसे कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ २१०. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका, त्रसनालीके चौदह भागोमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका और सर्व लोक क्षेत्रका स्पर्श

मण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-सण्णि त्ति । वेउव्विय० भुज० अप्प० अवट्ठि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ठ तेरह चोद्दस भागा वा देसूणा ।

§ २११. आभिणी० सुद० ओहि० अप्पद० के० खे० पो० ? लोग० असंखे० भागो अट्ठ चोद्दस० देसूणा । एवमोहिदंस०-पम्मले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति ।

§ २१२. संजदासंजद० अप्पद० के० खेत्तं पो० ? लोग० असंखे०भागो छ चोद्दस० देसूणा । एवं सुक० लेस्सा । तेउ० सोहम्मभंगो । सासण० अप्पद० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ बारह चोद्दस० देसूणा ।

एव पोसणाणुगमो समत्तो ।

किया है । इसी प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचो वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यतातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ २११. मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें अल्पतर स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, पद्मलेश्यावाले सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २१२. संयतासंयतोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये । पीतलेश्यावाले जीवोंके सौधर्मस्वर्गके समान स्पर्श है । सासादनसम्यग्दृष्टि अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ तथा कुछ कम बारह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

विशेषार्थ—ओघसे भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिवालोंका क्षेत्र सब लोक बतलाया है स्पर्शन भी इतना ही है अतः इनके स्पर्शको क्षेत्रके समान कहा । इसी प्रकार तिर्यंच आदिकमें स्पर्श जाननेकी सूचना की है । इसका यह अभिप्राय है कि उन मार्गणाओंमें, जिनका जितना क्षेत्र है स्पर्श भी उतना ही है । हां, सामान्य नारकी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनका स्पर्श क्षेत्रसे भिन्न है । अतः उनका पृथक् कथन किया । फिर भी जीवट्ठाणके स्पर्शन अनुयोग द्वारमें उन मार्गणाओंमेंसे जिसका जितना स्पर्श बतलाया है वही यहाँ उस उस मार्गणामें भुजगार आदि सम्भव पदोंकी अपेक्षा प्राप्त होता है । जो मूलमें बतलाया ही है । अब अमुक मार्गणामें अमुक स्पर्श क्यों प्राप्त होता है इसका विशेष खुलासा स्पर्शन अनुयोगद्वारसे जान लेना चाहिये ।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

§ २१३. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० केवचिरं कालादो होंति? सव्वद्धा। एवं तिरिक्ख-सव्व-एइंदिय-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्ता-पज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्जत्त-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्ज०-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-सव्ववणप्फदि- सव्वणिगोद०-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णा०-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादिट्ठी-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति।

§ २१४. आदेसेण णेरइएसु भुज० के०? जह० एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अप्पद०-अवट्ठि० के०? सव्वद्धा। एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदिय-तिरिक्ख०-देव-भवणादि जाव सहस्सारे त्ति सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-बादरपुढवि-पज्ज०-बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि त्ति।

§ २१३. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका कितना काल है? सब काल है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यंच, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सभी वनस्पतिकायिक, सभी निगोद, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ २१४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिका कितना काल है? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका कितना काल है? सर्व काल है। इसी प्रकार सातो पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी त्रस, पांचो मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

§ २१५. मणुस० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। मणुसपज्ज०-मणुसिणी० भुज० के० ? ज० एगसमओ उक्क० संखेज्जा समया। मणुसतिएसु अप्पद०-अवट्ठि सव्वद्धा। मणुसअपज्ज० भुज० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अप्प०-अवट्ठि० के० ? जह० एगस० उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं वेउव्वियमिस्स०।

§ २१६. आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धे त्ति अप्पदर० के० ? सव्वद्धा। एवमाभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंसण०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०दिट्ठि त्ति।

§ २१७. आहार०-आहारमिस्स० अप्पदर० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। णवरि आहारमिस्स० जहण्णु० अंतोमु०। अवगद० अप्प० के० ? ज० एगस०, उक्क० अंतोमुहुत्तो। एवमकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद०संजदे त्ति। उवसम० अप्पद० के० ? जह० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं सम्मामि०-सासण०। णवरि सासण० जह० एयसमओ।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

---

§ २१५. मनुष्योंमें भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल सर्वदा है। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें भुजगार स्थितिविभक्तिका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये।

§ २१६. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्वकाल है। इसी प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

§ २१७. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जघन्य और उत्कृष्ट दोनों काल अन्तर्मुहूर्त हैं। अपगतवेदी जीवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जघन्यकाल एक समय है।

§ २१८. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० अंतरं केवचिरं० ? णत्थि अंतरं। एवं तिरिक्ख०-सव्व-एइंदिय-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्ता-पज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-

---

विशेषार्थ—नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका विचार करनेपर ओघसे तीनों स्थितियां निरन्तर हैं, अतः उनका काल सर्वदा कहा। मार्गणाओंमें कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें ये सर्वदा पाई जाती हैं। जैसे सामान्य तिर्यंच आदि। कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें अल्पतर और अवस्थित स्थितियां तो सर्वदा पाई जाती हैं पर भुजगार स्थिति सान्तर है, कभी होती और कभी नहीं भी होती। यदि होती है तो कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक होती है। जैसे सामान्य नारकी आदि। किन्तु मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी ये दो मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, क्योंकि ये दोनों मार्गणाएं ही संख्यातसंख्यावाली हैं। कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें तीनों स्थितियां सान्तर हैं क्योंकि वे मार्गणाएं स्वयं सान्तर हैं, अतः उनमें भुजगारका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अल्पतर और अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। यहां यह शंका होती है कि ऐसी मार्गणाओंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है और भंगविचय अनुयोगद्वारमें तीनों को भजनीय बतलाया है अतः उनमें अल्पतर और अवस्थित का उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण नहीं बनना चाहिये। सो इसका यह समाधान है कि जब उक्त मार्गणावाले जीव निरन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक होते रहते हैं तब इनमें कदाचित् अल्पतर और अवस्थित स्थितियां नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त काल तक सर्वदा पाई जा सकती हैं अतः इनका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण बन जाता है। कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें निरन्तर अल्पतर स्थिति ही पाई जाती है अतः उनमें अल्पतर स्थितिका काल सर्वदा है। यथा—आनत कल्पआदिके देव आदि। कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा जिनमें एक अल्पतर स्थिति ही पाई जाती है, अतः उनमें अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण जानना। यथा—आहारकाययोग आदि। किन्तु आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण ही प्राप्त होता है। तथा कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है और इनमें एक अल्पतर स्थिति ही सम्भव है, अतः इनमें अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा। किन्तु इन मार्गणाओंमें सासादन सम्यग्दृष्टि मार्गणा ऐसी है जिसका जघन्य काल एक समय ही है, अतः इसमें अल्पतर स्थितिका जघन्य काल एक समय जानना चाहिये।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

§ २१८. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमें से ओघ की अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थिति विभक्तिवाले जीवों का अन्तरकाल कितना है ? इनका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार सामान्य तिर्यंच, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जल-

तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-कायजोगि०-ओरालि०-ओरालियमिस्स-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिकसाय०-मदि-सुदअण्णाण०-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि० त्ति ।

§ २१९. आदेसेण णेरइएसु भुज० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अप्प०-अवट्ठि० णत्थि अंतरं । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसतिय०-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय०-बादरपुढविपज्ज०-बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्ज०-बादरवणप्फदि-पत्तेयपज्ज०-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि त्ति ।

§ २२०. मणुसअपज्ज० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । एवं वेउव्वियमिस्स० । णवरि उक्क० वारस मुहुत्ता ।

कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पति, निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारो कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवों के जानना चाहिये ।

§ २१९. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यनी ये तीन प्रकारके मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचो वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २२०. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके उत्कृष्ट अन्तरकाल बारह मुहूर्त है ।

§ २२१. आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अप्पद० णत्थि अंतरं। एवमाभिणि०-सुद०-ओहि०--मणपज्ज०-संजद०--सामाइय-छेदो०--परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०दिट्ठि त्ति।

§ २२२. आहार०-आहारमिस्स० अप्पद० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। एवमकसाय-जहाक्खादसंजदे त्ति। अवगद० अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा। एवं सुहुमसांपरायसंजदे त्ति। उवसम० अप्पद० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि। सासण०-सम्मामि० अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो।

एवमंतराणुगमो समत्तो।

---

§ २२१. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

§ २२२. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये। अपगतवेदी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिये। उपशमसम्यग्दृष्टि अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिनरात है। सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

विशेषार्थ—तीनों स्थितिवाले नाना जीव सर्वदा पाये जाते हैं, अतः ओघसे इनका अन्तर काल नहीं बनता। मार्गणाओंमें कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें तीनों स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा। कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें भुजगारका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिका अन्तरकाल नहीं है। यथा सामान्य नारकी आदि। इसका कारण यह है कि इनमें केवल भुजगार स्थिति ही सान्तर है फिर भी नाना जीवोंकी अपेक्षा उसका अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं प्राप्त होता। आगे मनुष्य अपर्याप्त आदि जितनी मार्गणाओंमें भुजगार आदि स्थितियोंके अन्तरकालका कथन किया है उनमें जिस मार्गणाका जितना अन्तर काल है उसमें सम्भव स्थितियोंका उतना अन्तरकाल जानना चाहिये। उदाहरणके लिये लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है अतः इसमें भुजगार आदि तीनों स्थितियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। इसी प्रकार अन्य मार्गणाओंमें भी जानना चाहिए।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ २२३. भावाणुगमेण सव्वत्थ ओदइयो भावो।

एवं भावाणुगमो समत्तो।

§ २२४. अप्पाबहुगाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा भुज०विहत्तिया। अवट्ठि० असंखे०गुणा। अप्पद० संखे०गुणा। एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख०-मणुस०--मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव सहस्सार०--सव्वएइंदिय--सव्वविगलिंदिय--सव्वपंचि०--पंचकाय--सव्वतस--पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-वेउ०मिस्स०-कम्मइय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण०-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०--पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि त्ति।

§ २२५. मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु सव्वत्थोवा भुज०। अवट्ठि० संखे०गुणा। अप्पद० संखे०गुणा। आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अप्पद० णत्थि अप्पाबहुगं। एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०--अकसा०--आभिणि०--सुद--ओहि०--मणपज्ज०-संजद०-समाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-ओहिदंस०-

---

§ २२३. भावानुगम की अपेक्षा सवत्र औदयिक भाव है।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ।

§ २२४. अल्पबहुत्वानुगम की अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमें से ओघ की अपेक्षा भुजगारस्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतर स्थितिविभक्ति वाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सातों पृथिवियों के नारकी, सभी तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियों से लेकर सहस्त्रार स्वर्ग तक के देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पांचो स्थावर काय, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचन योगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिकमिश्र काययोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवों के जानना चाहिये। तात्पर्य यह है कि उक्त मार्गणाएं अनन्त और असंख्यात संख्यावाली हैं अतः इनमें उक्त क्रम बन जाता है।

§ २२५. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। तात्पर्य यह है कि ये मार्गणाएँ संख्यात संख्यावाली है इसलिये इनमें उक्त क्रम ही घटित होता है। आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले देवोंका अल्पबहुत्व नहीं है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी अकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत,

सुक्क०-सम्मादिट्ठी-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति ।

एवमप्पाबहुगाणुगमो समत्तो ।

एवं भुजगारविहत्ती समत्ता ।

—०—

§ २२६. पदणिक्खेवे तत्थ इमाणि तिण्णि अणिओगद्दाराणि—समुक्कित्तणा सामित्तं अप्पाबहुअं चेदि । समुक्कित्तणं दुविहं—जहण्णयं उक्कस्सयं चेदि । तत्थ उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० अत्थि उक्कस्सिया वड्ढी उक्क० हाणी उक्कस्समवट्ठाणं च । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्व-तिरिक्ख-सव्वमणुस-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्व-पंचिंदिय-पंचकाय-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालिय-मिस्स-वेउव्विय-वेउ०मिस्स-कम्मइय-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण०-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति ।

§ २२७. आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अत्थि उक्कस्सिया हाणि । एव-माहार-[आहार]मिस्स०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्जव०-

अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इन मार्गणाओंमें एक अल्पतर स्थिति पाई जाती है इसलिये इनमें अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता।

इस प्रकार अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ।

इस प्रकार भुजगार विभक्ति समाप्त हुई।

—०—

§ २२६. अब पदनिक्षेपका कथन अवसर प्राप्त है। उसके विषयमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। समुत्कीर्तना दो प्रकार की है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीय स्थितिविभक्तिकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यंच, सभी मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी पांचो स्थावरकाय, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ २२७. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीय स्थितिविभक्तिकी उत्कृष्ट हानि है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, आभिनिबोधकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत,

संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-ओहिदंस०-सुक्कले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० ।

एवमुक्कस्ससमुक्कित्तणाणुगमो समत्तो ।

§ २२८. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मोह० अत्थि जहण्णवड्ढी जहण्णहाणी जहण्णमवट्ठाणं च । एवं सव्वणिरय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-पंचकाय-सव्वतस०-पंचमण-पंचवचि०-कायजोगी-ओरालिय०-ओरालियमिस्स-वेउव्विय-वेउ०मिस्स-कम्मइय०-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि-असण्णि-आहारि०-अणाहारि त्ति ।

§ २२९. आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति अत्थि जह० हाणी । एवमाहार०-आहारमिस्स-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादिट्ठी-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि० ।

छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट समुत्कीर्तनानुगम समाप्त हुआ ।

§ २२८. अब जघन्य समुत्कीर्तनानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमें से ओघकी अपेक्षा मोहनीय स्थितिविभक्तिकी जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थान है । इसी प्रकार सभी नारकी, सभी तिर्यंच, सभी मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, सभी पांचों स्थावरकाय, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचो वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी असंयत चक्षुदर्शनवाले अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २२९. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मोहनीय स्थितिविभक्तिकी जघन्य हानि है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जहाँ स्थितिकी वृद्धि और हानिके अनेक विकल्प सम्भव हैं वहाँ जब बन्ध या संक्रम द्वारा सबसे अधिक बढ़ाकर स्थिति प्राप्त होती है तब उत्कृष्ट वृद्धि कहलाती है । तथा

एवं समुक्कित्तणाणुगमो समत्तो ।

§ २३०. सामित्ताणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्कस्सिया वड्ढी कस्स ? अण्णदरस्स जो चदुट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं बंधंतो अच्छिदो ट्ठिदिबंधद्धाए पुण्णाए जेण उक्कस्सट्ठिदिसंकिलेसं गदेण उक्कस्सट्ठिदी पवद्धा तस्स उक्कस्सिया वड्ढी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ तेण उक्कस्सट्ठिदिखंडए हदे तस्स उक्क० हाणी । एवं सत्तसु पुढवीसु तिरिक्ख०—पंचिंदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज०-पंचितिरि०जोणिणी-मणुसतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०—ओरालिय०-वेउव्विय०—तिण्णिवेद-

स्थितिकाण्डकघात आदिके द्वारा जब सबसे अधिक स्थिति घटाई जाती है तब उत्कृष्ट हानि कहलाती है । तथा उत्कृष्ट वृद्धिके बाद जो अवस्थान होता है उसे उत्कृष्ट अवस्थान कहते हैं । ओघसे मोहनीय कर्मकी स्थितिमें ये तीनों पद सम्भव हैं अतः 'ओघसे मोहनीय कर्मकी स्थितिकी उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान होता है' यह कहा है । इसी प्रकार जिस जिस मार्गणामें अपने अपने योग्य हानि, वृद्धि और अवस्थान सम्भव हैं उस उस मार्गणामें उसके अनुसार उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि और उत्कृष्ट अवस्थान जानना चाहिये । किन्तु कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें हानि ही होती है । जैसे आनत आदिक । फिर भी वहाँ स्थितिकी हानि एक समय प्रमाण भी होती है और अधिक भी होती है । अतः वहाँ उत्कृष्टपदकी अपेक्षा केवल उत्कृष्ट हानि बतलाई है, उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थान ये दो पद नहीं बतलाये । जघन्य वृद्धि आदिका भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि जहाँ उत्कृष्ट वृद्धि आदि सम्भव हैं वहाँ जघन्य वृद्धि आदि भी सम्भव हैं । किन्तु जहाँ उत्कृष्टकी अपेक्षा केवल उत्कृष्ट हानि है वहाँ जघन्यकी अपेक्षा केवल जघन्य हानि है । कारण स्पष्ट है ।

इस प्रकार जघन्य समुत्कीर्तनानुगम समाप्त हुआ ।

§ २३०. स्वामित्वानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीय स्थितिविभक्तिकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिको बांधकर स्थित है और स्थितिबन्धके कालके पूर्ण होनेपर उत्कृष्ट स्थितिके योग्य संक्लेशसे जिसने उत्कृष्ट स्थिति बांधी है ऐसे किसी एक जीवके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा उसीके तदनन्तर कालमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो कोई एक जीव मोह कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला है वह जब उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करता है तब उसके उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी

चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-आहारि त्ति ।

§ २३१. पंचिं०तिरि०अपज्ज० उक्क० वड्ढी कस्स ? जेण तप्पाओग्ग-जहण्णट्ठिदिं बंधमाणेण उक्कस्सिया ट्ठिदी पबद्धा तस्स उक्कस्सिया वड्ढी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरस्स जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ ट्ठिदिघादं करेमाणो पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववण्णो तेण उक्कस्सट्ठिदिखंडगे हदे तस्स उक्कस्सिया हाणी । एवं मणुसअपज्ज०-बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज० - पंचकायाणं बादरअपज्ज०-सुहुमपज्जत्तापज्जत्त-[तेउ०-] बादरतेउ०-बादरतेउपज्ज-[वाउ०] बादरवाउ०-बादरवाउपज्ज०-तसअपज्जत्ते त्ति ।

§ २३२. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति उक्कस्सिया हाणी कस्स ? अण्णदरो जो उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ तेण पढमसम्मत्तं पडिवज्जमाणेण पढमट्ठिदिखंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएमाणो तेण पढमट्ठिदिखंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी ।

श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, भव्य अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २३१. पंचेन्द्रिय तिर्यँच अपर्याप्तकोमे उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिको बांधनेवाले जिस जीवने उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध किया है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा उसीके तदनन्तर कालमे उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो तिर्यंच या मनुष्य स्थितिघातको करता हुआ पंचेन्द्रिय तिर्यँच अपर्याप्तकोंमे उत्पन्न हुआ । फिर वहाँ उसके उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करने पर उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, पांचों स्थावरकाय बादर अपर्याप्तक, पाँचों स्थावरकाय सूक्ष्म, पांचों स्थावरकाय सूक्ष्म पर्याप्तक, पाँचों स्थावरकाय सूक्ष्म अपर्याप्तक, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक पर्याप्तक, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक पर्याप्तक और त्रस अपर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २३२. आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करते समय जब प्रथम स्थितिकाण्डकका घात करता है तब उसके उत्कृष्ट हानि होती है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? अनन्तानुवन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाला जो कोई एक जीव जब प्रथम स्थितिकाण्डकका घात करता है तब उसके उत्कृष्ट हानि होती है ।

§ २३३. एइंदिय० उक्कस्सवड्ढि-उक्कस्सअवट्ठाणाणं पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो। उक्क० हाणी कस्स? अण्णदरो जो पंचिंदिओ उक्कस्सट्ठिदिघाद-मकाऊण एइंदिएसु उववण्णो तेण पढमट्ठिदिखंडए घादिदे तस्स उक्कस्सिया हाणी। एवं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्ज०-पुढवि० बादरपुढवि-बादरपुढविपज्ज०-आउ०-बादरआउ०-बादरआउपज्ज०-वणप्फदि-बादरवणप्फदि-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्जत्त-असण्णि त्ति।

§ २३४. ओरालियमिस्स० उक्क०वड्ढि-अवट्ठा० पंचिं०तिरि०अपज्जत्तभंगो। उक्क० हाणी कस्स? अण्णदरो जो देवो णेरइओ वा उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ ट्ठिदिघादमकाऊण ओरालियमिस्सजोगेसु उववण्णो तेण उक्कस्सट्ठिदिखंडए घादिदे तस्स उक्क० हाणी।

§ २३५. वेउव्वियमिस्स० उक्क०वड्ढि-अवट्ठाणाणं पंचिं०तिरि०अपज्जत्त-भंगो। उक्क० हाणी कस्स? अण्णदरो जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिदि-संतकम्मिओ ट्ठिदिघादमकादूण वेउव्वियमिस्स० उववण्णो तेण उक्कस्सए ट्ठिदिखंडए घादिदे तस्स उक्क० हाणी। आहार०-आहारमिस्स० उक्क० हाणी कस्स? अण्णदरस्स अद्धट्ठिदिं गलेमाणसंतस्स उक्क० हाणी। एवमकसाय-जहाक्खाद०-सासण०दिट्ठि त्ति।

§ २३३. एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थानके स्वामित्वका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये। एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो कोई एक पंचेन्द्रिय तिर्यंच उत्कृष्ट स्थितिका घात न करके एकेन्द्रियोंमे उत्पन्न होकर वहाँ प्रथम स्थिति काण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तक, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक पर्याप्तक, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

§ २३४. औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थानके स्वामित्वका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये। औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है? मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक देव या नारकी स्थितिघात न करके औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्पन्न होकर वहाँ उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है।

§ २३५. वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट वृद्धि और उत्कृष्ट अवस्थानके स्वामित्वका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है? मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक तिर्यंच या मनुष्य स्थितिघात न करके वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें उत्पन्न होकर वहाँ उत्कृष्ट स्थितिखण्डका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाय-योगियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है? जो अद्धा स्थितिकी निर्जरा करता हुआ विद्यमान है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यातसंयत और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

§ २३६. कम्मइय० उक्क० वड्ढी कस्स ? अण्णद० जेण पंचिंदियसण्णिणा विग्गहगदीए वट्टमाणेण तप्पाओग्गट्ठिदिसंतकम्मादो तप्पाओग्गउक्कस्सट्ठिदिबंधो पबद्धो तस्स उक्क० वड्ढी। उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो जो चदुगदिओ उक्क० ट्ठिदिसंतकम्मिओ ट्ठिदिकंदयघादमाढविय विदियविग्गहे ट्ठिदिसंतकम्मस्स ट्ठिदिखंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी। उक्क० अवट्ठाणं कस्स ? अण्ण० जो एइंदिओ तप्पाओग्गट्ठिदिसंतकम्मादो वड्ढिदूण अवट्ठिदो तस्स उक्क० अवट्ठाणं। एवमणाहारीणं।

§ २३७. अवगद० उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण० इत्थि-णवुंस०वेदखवगस्स पढमे ट्ठिदिखंडए हदे तस्स उक्कस्सिया हाणी। मदि०-सुद०-ओहि० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरो उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ तेण उक्कस्सए ट्ठिदिखंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी। एवं ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादि०-वेदय०दिट्ठि त्ति। मणपज्ज० उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदरस्स जेण सागरोवमपुधत्तमेत्तमुक्कस्सट्ठिदिखंडयं पादिदं तस्स उक्क० हाणी। एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-खइय०दिट्ठि-परिहार०-संजदासंजद०। सुहुमसांप० उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण० खवगस्स चरिमट्ठिदिखंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी।

§ २३८. उवसम० उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण० अणंताणु०विसंजोयणापढम-

§ २३६. कार्मणकाययोगियोमें उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? विग्रहगतिमें विद्यमान जो पंचेन्द्रिय संज्ञी जीव तद्योग्य स्थितिसत्त्ववाले कर्मके साथ तद्योग्य उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उस कार्मणकाययोगीके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जिसके मोहनीयकर्मका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व है ऐसा चारो गतिका जीव स्थितिकाण्डकघातका आरम्भ करके दूसरे विग्रह में जब स्थितिसत्तावाले कर्मके स्थितिखण्डका घात करता है तब उस कार्मण-काययोगी जीवके उत्कृष्ट हानि होती है। उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है ? जो एकेन्द्रिय तद्योग्य स्थितिसत्त्व से बढ़ाकर अवस्थित है उसके उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ २३७ अपगतवेदियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका क्षपक जो कोई एक जीव प्रथम स्थितिखण्डका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। आभिनि-बोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमे उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक जीव उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोके जानना चाहिये। मनःपर्ययज्ञानियोमे उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जिसने सागरपृथक्त्व प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये। सूक्ष्मसापरायिक संयतोंमे उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो कोई एक क्षपक अन्तिम स्थितिकाण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है।

§ २३८ उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो कोई एक जीव अनन्तानु-

ट्ठिदिखंडए पादिदे तस्स उक्क० हाणी । अथवा कसायउवसामगस्स पढमट्ठिदिखंडए पदिदे एदं सामित्तं वत्तव्वं, उवसमसम्मत्तकालब्भंतरे अणंताणु०विसंजोयणपक्खाणब्भुवगमादो । अथवा एदं पि जाणिय वत्तव्वं, उवसमसेढीए दंसणतियस्स ट्ठिदिघादसंभवाणुवलंभादो । सम्मामि० उक्क० हाणी कस्स ? अण्ण० उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मम्मि उक्कस्सट्ठिदिखंडए पदिदे तस्स उक्कस्सिया हाणी ।

एवमुक्कस्ससामित्तं समत्तं ।

§ २३९. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण जह० वड्ढी कस्स ? अण्ण० जो समऊणउक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणो उक्कस्ससंकिलेसं गंतूण उक्कस्सट्ठिदिं पबद्धो तस्स जह० वड्ढी । जह० हाणी कस्स ? अण्ण० अधट्ठिदिक्खएण । एगदरत्थ अवट्ठाणं । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वएइंदिय०-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-छकाय-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि-ओरालि०-ओरालियमिस्स-वेउव्विय०-वेउ०मिस्स०-कम्मइय-तिण्णिवेद०-चत्तारिकसाय-तिण्णिअण्णाण-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि त्ति ।

बन्धीकी विसंयोजनाके समय प्रथम स्थितिकाण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । अथवा कषायकी उपशमना करनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवके प्रथमस्थितिखण्डका घात करनेपर उत्कृष्ट हानिके स्वामित्वका कथन करना चाहिये, क्योंकि उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका पक्ष स्वीकार नहीं किया है । अथवा इसका भी जान कर ही कथन करना चाहिये, क्योंकि उपशमश्रेणीमें दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंके स्थितिघातकी संभावना नहीं पाई जाती है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिकी सत्तावाला जो कोई एक जीव उत्कृष्ट स्थितिखण्डका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ ।

§ २३९. अब जघन्य स्वामित्वका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बांधता हुआ उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है ऐसे किसी एक जीवके जघन्य वृद्धि होती है । जघन्य हानि किसके होती है ? अधःस्थितिके क्षयसे किसी एक जीवके जघन्य हानि होती है । तथा इनमेंसे किसी एकमें अवस्थान होता है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यंच, सभी मनुष्य, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, छहों कायवाले, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, तीनों अज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४०. आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति जह० हाणी कस्स ? अण्ण० अधट्ठिदिक्खएण । एवमाहार०-आहारमिस्स–अवगद०–अकसा०–आभिणि०–सुद० ओहि०-मणपज्ज०–संजद०-सामाइय-छेदो०–परिहार०–सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०–ओहिदंस०–सुक्क०-सम्माइट्ठि–खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०–सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति ।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो ।

§ २४१. अप्पाबहुअं दुविहं–जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा उक्कस्सिया हाणी । वड्ढी अवट्ठाणं च दो वि तुल्लाणि विसेसाहियाणि । एवं सत्तसु पुढवीसु तिरिक्ख–पंचि०तिरिक्खतिय-मणुसतिय–देव०–भवणादि जाव सहस्सार०-पंचि०–पंचि०पज्ज०–तस–तसपज्ज०–पंचमण०–पंचवचि०–कायजोगि-ओरालिय०–वेउव्विय०–तिण्णिवेद-चत्तारिक०–तिण्णिअण्णाण-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादि०-सण्णि०-आहारि त्ति ।

§ २४२. पंचि०तिरिक्खअपज्ज० सव्वत्थोवा उक्क० वड्ढी अवट्ठाणं च । हाणी संखेज्जगुणा । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-तसअपज्ज०-ओरालि-

§ २४०. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें जघन्य हानि किसके होती है ? अधःस्थितिके क्षयसे किसी एकके होती है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ २४१. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । इनमेंसे ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट हानिवाले जीव सबसे स्तोक हैं । वृद्धि और अवस्थान इन दोनोंवाले जीव समान होते हुए भी उत्कृष्ट हानिवाले जीवोंसे विशेष अधिक हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, तीनों अज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पाँच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४२. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे उत्कृष्ट हानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय,

यमिस्स-वेउव्वियमिस्स-असण्णि त्ति ।

§ २४३. आणदादि जाव सव्वट्ठ० णत्थि अप्पाबहुगं । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम० - जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति ।

§ २४४. एइंदिएसु सव्वत्थोवा वड्ढी अवट्ठाणं च । हाणी असंखेज्जगुणा । एवं पंचकाय० । कम्मइय० सव्वत्थोवमवट्ठाणं । वड्ढी असंखेज्जगुणा । हाणी असंखेज्जगुणा । एवमणाहार० ।

एवमुक्कस्सप्पाबहुअं समत्तं ।

§ २४५. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च तिण्णि वि तुल्लाणि । एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति । आणदादिसु णत्थि अप्पाबहुअं, एगपदत्तादो ।

एवं पदणिक्खेवो समत्तो ।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रस अपर्याप्तक, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४३. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके अल्पबहुत्व नहीं है । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २४४. सभी एकेन्द्रियोंमें उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे उत्कृष्ट हानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सभी पाँचों स्थावरकाय जीवोंके जानना चाहिये । कार्मणकाययोगियोंमें अवस्थानवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे वृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे हानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

§ २४५. अब जघन्य अल्पबहुत्वका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और अवस्थान इन तीनोंवाले जीव समान हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये । किन्तु आनतादिकमें अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि वहाँ एक हानिपद ही पाया जाता है ।

इस प्रकार पदनिक्षेप समाप्त हुआ ।

§ २४६. वड्ढि त्ति तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणादि जाव अप्पाबहुए त्ति। समुक्कित्तणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण तिण्णि वड्ढी तिण्णि हाणी असंखेज्जगुणहाणी अवट्ठाणं च अत्थि। एवं मणुसतिय-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि०-आहारए त्ति।

§ २४७. आदेसेण णेरइएसु मोह० अत्थि तिण्णि वड्ढी तिण्णि हाणी अवट्ठाणं च। एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिं०अपज्ज०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स-वेउव्विय०-वेउ०मिस्स०-कम्मइय-तिण्णि-अण्णाण-असंजद०-पंचले०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारए त्ति।

§ २४८. आणदादि जाव सव्वट्ठ० मोह० अत्थि असंखेज्जभागहाणी संखेज्जभागहाणी। एवं परिहार०-संजदासंजद०-उवसमसम्माइट्ठि त्ति। एइंदिएसु अत्थि असंखेज्जभागवड्ढी तिण्णि हाणी अवट्ठाणं च। एवं पंचकाय०। विगलिंदिएसु अत्थि दो वड्ढी तिण्णि हाणी अवट्ठाणं च। आहार०-आहारमिस्स० अत्थि असंखे०-भागहाणी। एवमकसा०-जहाक्खाद०-सासण०। अवगद० अत्थि असंखेज्जभागहाणी [संखेज्जभागहाणी] संखे०गुणहाणी। एवं सुहुमसांप०-वेदय०-सम्मामि०दिट्ठीणं।

§ २४६. अब वृद्धि अनुयोगद्वारका प्रकरण है। उसके कथनमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक ये तेरह अनुयोगद्वार हैं। उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा तीन वृद्धि, तीन हानि, असंख्यातगुणहानि और अवस्थान हैं। इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ २४७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीय कर्मकी तीन वृद्धियाँ, तीन हानियाँ और अवस्थान हैं। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी तिर्यञ्च, मनुष्यअपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रस अपर्याप्तक, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों अज्ञानी, असंयत, कृष्णादि पाँच लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ २४८. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मोहनीय कर्मकी असंख्यात भागहानि और संख्यातभागहानि है। इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। एकेन्द्रियोंमें असंख्यातभागवृद्धि, तीन हानियाँ और अवस्थान हैं। इसी प्रकार पाँचों स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिये। सभी विकलेन्द्रियोंमें दो वृद्धियाँ, तीन हानियाँ और अवस्थान हैं। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें असंख्यातभागहानि है। इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यातसंयत और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। अपगतवेदी जीवोंमें असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि

आभिणि०-सुद०-ओहि० अत्थि चत्तारि हाणीओ। एवं मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-ओहिदंस०-सुक्कलेस्सि०-सम्मादिट्ठी०-खइय०।

एवं समुक्कित्तणा समत्ता।

है। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें चार हानियाँ हैं। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पदनिक्षेपमें उत्कृष्ट वृद्धि, उत्कृष्ट हानि, उत्कृष्ट अवस्थान, जघन्य वृद्धि, जघन्य हानि और जघन्य अवस्थानका कथन किया जाता है। किन्तु वे उत्कृष्ट वृद्धि आदि एक रूप न होकर अनेकरूप होते हैं। इसका ज्ञान पदनिक्षेपसे न होकर वृद्धि अनुयोगद्वारसे होता है, अतः पदनिक्षेप विशेषको वृद्धि कहते हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इसके ये तेरह अनुयोगद्वार हैं। इनमेंसे पहले समुत्कीर्तनाका विचार किया गया है। इसकी अपेक्षा ओघसे असंख्यात भागवृद्धि, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि ये तीन वृद्धियां; असंख्यात भागहानि, संख्यात भागहानि, संख्यात गुणहानि ये तीन हानियां और असंख्यात गुणहानि तथा इनके अवस्थान होते हैं। विवक्षित स्थितिमें जो वृद्धि या हानि होती है वह जब तक उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण रहती है तब तक उसे असंख्यात भागवृद्धि या असंख्यात भागहानि कहते हैं। जब वह वृद्धि या हानि विवक्षित स्थितिके संख्यातवें भागप्रमाण हो जाती है तब उसे संख्यात भागवृद्धि और संख्यात भागहानि कहते हैं। तथा जब वह वृद्धि या हानि विवक्षित स्थितिसे संख्यातगुणी वृद्धि या हानिरूप हो जाती है तब उसे संख्यात गुणवृद्धि या संख्यात गुणहानि कहते हैं। इसी प्रकार असंख्यात गुणहानिके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये। यह असंख्यात गुणहानि केवल अनिवृत्तिक्षपकके ही होती है, अन्यत्र नहीं। अवस्थान सुगम है। यदि वृद्धियोंके बाद अवस्थान हुआ तो वह वृद्धि सम्बन्धी अवस्थान कहलाता है और हानियोंके बाद अवस्थान हुआ तो वह हानि सम्बन्धी अवस्थान कहा जाता है। मनुष्य त्रिक आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा। नारकियोंमें केवल असंख्यात गुणहानि सम्भव नहीं, क्योंकि वहाँ अनिवृत्ति क्षपक जीव नहीं पाये जाते। शेष सब सम्भव हैं, इसी प्रकार सातों नरकके नारकी आदि मूलमें गिनाई हुई और भी मार्गणाएं हैं जिनमें यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा। आनतकल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें उत्कृष्ट स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण ही होती है और वह वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर उत्तरोत्तर घटती ही जाती है, जो प्रकृतियोंकी अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके समय संख्यातवें भागप्रमाण घटती है और शेष समयमें असंख्यातवें भागप्रमाण ही घटती है। अतः यहां दो हानियां ही कहीं। परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके इसी प्रकार जानना। एकेन्द्रियोंमें जघन्य स्थितिबन्ध पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम एक सागरप्रमाण और उत्कृष्ट स्थितिबन्ध एक सागर प्रमाण होता है, अतः यहां वृद्धिरूपसे असंख्यात भागवृद्धि ही सम्भव है, क्योंकि किसी जीवने यदि जघन्य स्थिति से उत्कृष्ट स्थितिका भी बन्ध किया तो भी जघन्य स्थितिके असंख्यातवें भाग की ही वृद्धि हुई। पर इनके असंख्यात गुणहानिको छोड़ कर शेष तीनों हानियां सम्भव हैं, क्योंकि जो संज्ञी

§ २४९. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण तिण्णि वड्ढी अवट्ठाणाणि कस्स? मिच्छादिट्ठिस्स। तिण्णि हाणीओ कस्स? सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा। असंखे०गुणहाणी कस्स? अणियट्टिखवयस्स। एवं मणुसतिय-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०—पंचमण०-पंचवचि०-[काय०-] ओरालिय०-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-चक्खु०-अचक्खु०-भवसि०-सण्णि०-आहारि त्ति।

§ २५०. आदेसेण णेरइएसु तिण्णि वड्ढी अवट्ठा० कस्स? मिच्छादिट्ठिस्स। तिण्णि हाणी कस्स? सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठिस्स वा। एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-वेउव्विय०-असंजद०—पंचलेस्सा त्ति।

पंचेन्द्रिय जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके तीनों हानियां बन जाती हैं। पांचो स्थावरकायिक जीवोंमें भी इसी प्रकार जानना। विकलत्रयोंमें जघन्य स्थितिबन्धसे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण अधिक है अतः यहाँ वृद्धिरूपसे संख्यात भागवृद्धि और असंख्यातभागवृद्धि ये दो वृद्धियां ही सम्भव हैं, क्योंकि जब कोई विकलत्रय अपनी पूर्व समयमें बंधनेवाली स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक स्थितिको बांधता है तब उसके असंख्यात भागवृद्धि होती है और जब वह अपनी पूर्व समयमें बंधनेवाली स्थितिसे संख्यातवें भाग अधिक स्थितिको बांधता है तब उसके संख्यातभागवृद्धि होती है। तथा इनके तीन हानियोंका खुलासा एकेन्द्रियोंके समान कर लेना चाहिये। आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें मोहनीयकी स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है और यहाँ स्थितिकाण्डकघात न होकर अधःस्थितिगलनाके द्वारा एक एक निषेकका ही गलन होता है अतः यहां एक असंख्यात भागहानि ही सम्भव है। इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यातसंयत और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। अपगतवेदमें असंख्यात भागहानि उपशमक और क्षपक किसी भी जीवके बन जाती है पर संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि क्षपकके ही बनती है। इसी प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिक संयत और वेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना। आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जीवोंके चारों हानियां सम्भव हैं यह स्पष्ट ही है।

इस प्रकार समुत्कीर्तनानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ २४९. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा तीन वृद्धियाँ और अवस्थान किसके होते है? मिथ्यादृष्टिके होते हैं। तीन हानियाँ किसके होती हैं? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके होती हैं। असंख्यातगुणहानि किसके होती है? अनिवृत्तिकरणक्षपकके होती है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, त्रस, त्रस पर्याप्तक, पाँचों मनोयोगी, पाँचो वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ २५०. आदेशकी अपेक्षा नारकियों में तीन वृद्धियां और अवस्थान किसके होते हैं? मिथ्यादृष्टिके होते हैं। तीन हानियाँ किसके होती हैं? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती हैं। इसी प्रकार सभी नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव, वैक्रियिककाययोगी, असंयत और कृष्णादि पाँच लेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये।

§ २५१. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० तिण्णि वड्ढी अवट्ठाणाणि तिण्णि हाणीओ कस्स ? अण्णदरस्स। एवं मणुसअपज्ज०-पंचिंदियअपज्ज०-तसअपज्ज०-तिण्णि अण्णाण-अभव-मिच्छादि०-असण्णि त्ति।

§ २५२. आणदादि जाव उवरिमगेवज्ज० असंखेज्जभागहाणी कस्स ? अण्णदरस्स सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठिस्स वा। संखे०भागहाणी कस्स ? अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएंतस्स पढमसम्मत्तं पडिवज्जमाणस्स वा। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति असंखे०भागहाणी कस्स ? अण्णदरस्स। संखे०भागहाणी कस्स ? अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएंतस्स।

§ २५३. एइंदिएसु असंखेज्जभागवड्ढी तिण्णिहाणी अवट्ठाणाणि कस्स ? अण्णद०। एवं पंचण्हं कायाणं। विगलिंदिएसु दो वड्ढी तिण्णि हाणी अवट्ठाणाणि कस्स ? अण्णद०।

§ २५४. ओरालियमिस्स० तिण्णिवड्ढि-अवट्ठाणाणि कस्स ? मिच्छादिट्ठिस्स। दोहाणिओ कस्स ? मिच्छादिट्ठिस्स। असंखे०भागहाणी कस्स ? सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठिस्स वा। एवं वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-अणाहारि त्ति। आहार०-आहारमिस्स० असंखे०भागहाणी कस्स ? अधट्ठिदिं गालयमाणस्स। एवमकसा०-जहाक्खाद०-सासण०दिट्ठि त्ति।

---

§ २५१. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें तीन वृद्धियां, अवस्थान और तीन हानियाँ किसके होती हैं ? किसी एक जीवके होती हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रस अपर्याप्तक, तीनों अज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

§ २५२. आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोमें असंख्यात भागहानि किसके होती है ? किसी एक सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती है। संख्यातभागहानि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले जीवके या प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके होती है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोमें असंख्यातभागहानि किसके होती है ? किसी एकके होती है। संख्यातभागहानि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले जीवके होती है।

§ २५३. एकेन्द्रियोंमें असंख्यातभागवृद्धि, तीन हानियां और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी भी जीवके होते हैं। इसी प्रकार पांचों स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिये। विकलेन्द्रियोंमें दो वृद्धियां, तीन हानियाँ और अवस्थान किसके होते हैं ? किसी भी जीवके होते हैं।

§ २५४. औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें तीन वृद्धियाँ और अवस्थान किसके होते हैं ? मिथ्यादृष्टिके होते हैं। दो हानियाँ किसके होती हैं ? मिथ्यादृष्टिके होती हैं। असंख्यात भागहानि किसके होती है ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होती है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें असंख्यात भागहानि किसके होती है ? अधःस्थिति गलनाके द्वारा निर्जरा करनेवाले जीवके होती है। इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यातसंयत और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

§ २५५. अवगद० असंखे०भागहाणी कस्स ? अण्णदरस्स उवसामयस्स खवयस्स वा । संखे०भागहाणी संखे०गुणहाणी खवगस्स । आभिणि०-सुद०-ओहि० तिण्णि हाणीओ कस्स ? अण्णद० सम्मादिट्ठिस्स । असंखे०गुणहाणी कस्स ? अणियट्टिक्खवयस्स । एवं मणपज्ज०-[संजद-] समाइय-च्छेदो०-ओहिदंस०-सम्माइट्ठि त्ति ।

§ २५६. परिहार० असंखेज्जभागहाणि-संखेज्जभागहाणीओ कस्स ? अण्ण० । णवरि संखेज्जभागहाणी अणंताणुबंधिविसंजोए'तस्स दंसणतियक्खवेंतस्स वा । एवं संजदासंजद० । सुहुमसांपरा० असंखेज्जभागहाणी संखेभागहाणी संखेगुणहाणी कस्स ? अण्णदरस्स ।

§ २५७. सुक्कले० तिण्णि हाणीओ कस्स ? सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठिस्स वा । असंखे०गुणहाणी कस्स ? अणियट्टिखवयस्स । खइय० असंखेज्जभागहाणी कस्स ? अण्णद० । संखे०भागहाणी कस्स ? उवसामयस्स खवयस्स वा । संखेज्जगुणहाणी कस्स ? खवयस्स । असंखेज्जगुणहाणी कस्स ? ओघं ।

§ २५८. उवसम० असंखेज्जभागहाणी कस्स ? अण्णद० । संखेज्जभागहाणी कस्स ? अण्णद अणंताणुबंधि० विसंजोएंतस्स कसायोवसामगस्स वा ।

---

§ २५५. अपगतवेदियोंमें असंख्यात भागहानि किसके होती है ? किसी भी उपशामक या क्षपक जीवके होती है । तथा संख्यात भागहानि और संख्यातगुणहानि क्षपक जीवके होती है । आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें तीन हानियाँ किसके होती हैं ? किसी भी सम्यग्दृष्टि जीवके होती हैं । असंख्यात गुणहानि किसके होती है ? अनिवृत्तिकरण क्षपकके होती है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २५६. परिहारविशुद्धिसंयतोंमें असंख्यात भागहानि और संख्यात भागहानि किसके होती है । किसी भी जीवके होती है । परन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यात भागहानि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले जीवके या तीन दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवके होती है । इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसांपरायिक संयतोंमे असंख्यात भागहानि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि किसके होती है ? किसी भी जीवके होती है ।

§ २५७. शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें तीन हानियां किसके होती हैं ? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके होती हैं । असंख्यात गुणहानि किसके होती है ? अनिवृत्तिकरण क्षपकके होती है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानि किसके होती है ? किसी भी जीवके होती है । संख्यात भागहानि किसके होती है ? उपशामक या क्षपक जीवके होती है । संख्यात गुणहानि किसके होती है ? क्षपकके होती है । असंख्यातगुणहानि किसके होती है ? इसका कथन ओघके समान है ? अर्थात् असंख्यातगुणहानि अनिवृत्तिकरण क्षपकके होती है ।

§ २५८. उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानि किसके होती है ? किसी भी जीवके होती है । संख्यातभागहानि किसके होती है ? अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजना करनेवाले या

वेदय० असंखेज्जभागहाणी संखेज्जगुणहाणी कस्स ? अण्णदरस्स । संखेज्जभाग-हाणी कस्स ? अणंताणुबंधि० विसंजोएंतस्स दंसणतियं खवेंतस्स वा । सम्मामि० तिण्णिहाणीओ कस्स ? अण्णद० ।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो ।

§ २५६. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण तिण्णि वड्ढी केवचिरं कालादो होंति ? जह० एगसमओ, उक्क० बे समया । असंखे० भागहाणी केवचि० ? जह० एयसमओ, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं अंतोमुहुत्तब्भहियं पलिदो० असंखे०भागे० सादिरेगं । संखे०भागहाणी केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० उक्कस्ससंखेज्जं दुरूवूणं । दो हाणी केव० ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवमचक्खु०-भवसि०-तस-तसपज्ज० ।

कषायोंका उपशम करनेवाले किसी भी जीवके होती है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि किसके होती है ? किसी भी जीवके होती है । संख्यात भागहानि किसके होती है ? अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले जीवके या तीन दर्शनमोहनीयका क्षय करनेवाले जीवके होती है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें तीनों हानियां किसके होती हैं ? किसी भी जीवके होती हैं ।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

§ २५६. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा तीन वृद्धियोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । असंख्यात भागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है । संख्यात भागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो कम उत्कृष्ट संख्यात समय प्रमाण है । संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि इन दो हानियोंका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, त्रस और त्रस पर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जब कोई जीव अद्धाक्षय या संक्लेशक्षयसे सत्कर्मके ऊपर एक समय तक असंख्यातवें भाग, संख्यातवें भाग या संख्यातगुणी स्थितिको बढ़ाकर बांधता है और दूसरे समयमें अल्पतर या अवस्थित स्थितिको प्राप्त करता है तब उसके असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । जब कोई एक जीव पहले समयमें अद्धाक्षयसे और दूसरे समयमें संक्लेशक्षयसे असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिको बढ़ाकर बांधता है तथा तीसरे समयमें अल्पतर या अवस्थित स्थितिबन्ध करने लगता है तब उसके असंख्यातभागवृद्धिका उत्कृष्ट काल दो समय प्राप्त होता है । जब कोई एक द्वीन्द्रिय जीव संक्लेशक्षयसे एक समय तक संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिको बढ़ाकर बांधता है और दूसरे समयमें मरकर तथा त्रीन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर पूर्व स्थितिसे संख्यातवें भाग अधिक त्रीन्द्रियोंके योग्य जघन्य स्थितिको बांधता है

§ २६०. आदेसेण णेरइएसु असंखेज्जभागवड्ढी केव० ? जह० एगसमओ,

तब संख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट काल दो समय प्राप्त होता है। अथवा जो तेइन्द्रिय जीव स्वस्थानमें संक्लेशक्षयसे एक समय तक संख्यात भागवृद्धि करके और दूसरे समयमें मरकर तथा चौइन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर चौइन्द्रियोंके योग्य जघन्य स्थितिबन्ध करता है उसके संख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट काल दो समय पाया जाता है। तथा जो एकेन्द्रिय एक मोंड़ा लेकर संज्ञियोंमें उत्पन्न होता है उसके पहले समयमें असंज्ञीके योग्य स्थिति बन्ध होता है जो कि एकेन्द्रियके स्थितिसत्त्वसे संख्यातगुणा है और दूसरे समयमे शरीरको ग्रहण करके संज्ञीके योग्य स्थितिबन्ध होता है जो कि असंज्ञीके योग्य स्थितिबन्धसे संख्यातगुणा है अतः संख्यात गुणवृद्धिका उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। असंख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय है क्योंकि समान स्थितिको बांधनेवाले जिस जीवने एक समय तक पूर्व स्थितिसे असंख्यातवें भाग कम स्थितिका बन्ध किया और दूसरे समयमें पुनः सत्त्वके समान स्थितिका बन्ध करने लगा उसके असंख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा असंख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और पल्यके असंख्तातवें भाग अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। उसका खुलासा इस प्रकार है—कोई मिथ्यादृष्टि भोगभूमियां, आयुमें पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग शेष रहने पर उपशम सम्यक्त्व को ग्रहण कर संख्यात भागहानि कर, मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। उस समयसे असंख्यात भागहानि प्रारंभ हो गई। आयुके अन्तमें वह वेदक सम्यग्दृष्टि हो गया और छ्यासठ सागर तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रहा। पुनः अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यग्मिथ्यात्वके साथ रहा और तदनन्तर वह पुनः वेदक सम्यग्दृष्टि हो गया और छ्यासठ सागर तक वेदक सम्यक्त्वके साथ रहा तथा अन्तमें इकतीस सागर की आयुवाले देवोंमे उत्पन्न होकर मिथ्यादृष्टि हो गया। तदनन्तर वहांसे च्युत होकर मनुष्योंमें उपन्न हुआ और एक अन्तर्मुहूर्तके बाद भुजगार स्थितिको प्राप्त हो गया। इस प्रकार इस जीवके असंख्यात भागहानिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त और पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक एक सौ त्रेसठ सागर पाया जाता है। संख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो कम उत्कृष्ट संख्यात समय प्रमाण है। इसका खुलासा इस प्रकार है—दर्शनमोहनीयकी क्षपणामें या अन्यन्त्र जब पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिकाण्डकका घात होता है तब संख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा सूक्ष्मसांपरायिक क्षपकके अन्तिम दो समय कम उत्कृष्ट संख्यात समय प्रमाण काल तक संख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिये। जो जीव सत्तर कोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितिके संख्यात बहुभागका घात करता है उसके तथा अन्यत्र अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय संख्यात गुणहानि पाई जाती है अतः संख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा अनिवृत्तिकरणक्षपक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके सवेद भागमें स्थितिकांडक की अंतिम फालिके पतनके समय असंख्यात गुणहानि होती है, अतः असंख्यात गुणहानिका भी जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा अवस्थित स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, जो जीव एक समय तक अवस्थित स्थितिको प्राप्त होकर दूसरे समयमें भुजगार या अल्पतर स्थितिको प्राप्त हो जाता है उसके अवस्थित स्थिति एक समय तक ही पाई जाती है तथा जो लगातार अन्तर्मुहूर्त काल तक अवस्थित स्थितिके साथ रहकर भुजगार या अल्पतर स्थितिको प्राप्त होता है उसके अवस्थित स्थितिका अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है। अचक्षुदर्शनी, भव्य, त्रस और त्रसपर्याप्तक जीवोंके यह ओघ प्ररूपणा अविकल बन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा।

§ २६०. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें असंख्यातभागवृद्धिका कितना काल है ? जघन्य

उक्क० वे समया। दो वड्डी० दो हाणी० केव० ? जहण्णुक्क० एगसमओ। असंखे०भागहाणी के० ? ज० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि। अवट्ठि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं सव्वणेरइ०। णवरि असंखेज्जभागहाणीए उक्कस्स० सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा।

§ २६१. तिरिक्खेसु तिण्णि वड्डी संखेज्जगुणहाणी अवट्ठि० ओघं। असंखे०भागहाणी ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि। संखेज्जभागहाणी जहण्णुक्क० एगसमओ। एवं पंचिंदियतिरिक्खतियस्स। णवरि संखेज्जभागवड्डि-संखेज्जगुणवड्डीणं जहण्णुक्क० एगसमओ। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० तिण्णिवड्डि-दोहाणि-अवट्ठिदाणं णिरओघभंगो। असंखेज्जभागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक्क अंतोमुहुत्तं। एवं मणुसअपज्ज०। मणुसतिय० पंचिंदियतिरिक्खतियभंगो। णवरि संखेज्जभागहाणी असंखे०गुणहाणी ओघं।

काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। दो वृद्धियो और दो हानियोंका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। असंख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थितविभक्तिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सभी नारकियोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सर्वत्र असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है।

§ २६१. तिर्यंचोंमें तीन वृद्धियों संख्यातगुणहानि और अवस्थितविभक्तिका काल ओघके समान है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है। तथा संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार पचेन्द्रियतिर्यंच त्रिकके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातभागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकों में तीन वृद्धियों, दो हानियों और अस्थितविभक्तिका काल सामान्य नारकियोंके समान है। तथा असंख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकों के जानना चाहिये। तथा मनुष्य त्रिकके पंचेन्द्रिय तिर्यंच त्रिकके समान काल है। इतनी विशेषता है कि इनके संख्यात भागहानि और असंख्यातगुणहानिका काल ओघ समान है।

विशेषार्थ—असंख्यात भागवृद्धि अद्धाक्षय और संक्लेशक्षय दोनों से प्राप्त हो सकती है किन्तु संख्यातभागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि केवल संक्लेशक्षयसे ही प्राप्त होती है अतः नारकियोंमें असंख्यात भागवृद्धिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय तथा शेष दो वृद्धियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बन जाता है। इसी प्रकार संख्यात भागहानि और संख्यातगुणहानि अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय ही होती है अतः इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। नरकमें असंख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय ओघके समान घटित कर लेना चाहिये। जिस नारकीने नरकमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त काल बाद वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया है और जब आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल

§ २६२. देव० तिण्णि वड्ढी दो हाणी अवट्ठि० णिरओघं । असंखे०भागहाणी के० ? ज० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । भवण०-वाण०-जोइसि० एवं चेव । णवरि असंखे०भागहाणी के० ? ज० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा । सोहम्मादि जाव सहस्सार त्ति एवं चेव । णवरि असंखे०भागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सग०ट्ठिदी । आणदादि जाव उवरिमगेवज्ज त्ति असंखेज्जभागहाणी के० ? ज० अंतोमु०, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । संखेज्जभागहाणी के० ? जहण्णुक्क० एगसमओ । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति एवं चेव ।

§ २६३. इंदियाणुवादेण एइंदिएसु असंखे०भागवड्ढी के० ? जह० एगसमओ, उक्क० बे समया । असंखेज्जभागहाणी के० ? जह एगसमओ, उक्क०

शेष रह गया तब उसका त्याग किया है उसके असंख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है । शेष कथन सुगम है । प्रथमादि नरकोंमें असंख्यातभागहानिके उत्कृष्ट कालको छोड़कर शेष कथन इसी प्रकार जानना । किन्तु असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जानना । यहां कुछ कमसे भवके प्रारम्भका अन्तमुहूर्त काल लेना चाहिये । जो तिर्यंच तीन पल्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न होता है उसके असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य प्राप्त होता है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच त्रिकके संख्यात भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि संक्लेशक्षयसे ही प्राप्त होगी अतः यहां इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । लब्ध्यपर्याप्त पंचेद्रिय तिर्यंचका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा । ओघसे संख्यात भागहानि और असंख्यात गुणहानिका जो उत्कृष्ट काल कहा है वह मनुष्य पर्याय में ही बनता है अतः मनुष्यत्रिक के उक्त दो हानियोंका काल ओघके समान कहा । इस प्रकार ओघप्ररूपणाका और नरकादि तीन गतियोंका जो खुलासा किया है उसीसे आगेकी मार्गणाओं मे जहाँ जितनी हानि और वृद्धियाँ सम्भव हो उनके कालका खुलासा हो जाता है अतः आगे नहीं लिखा जाता है । हाँ जहाँ कुछ विशेषता होगी वहाँ अवश्य निर्देश कर देंगे ।

§ २६२. देवोंमें तीन वृद्धियों, दो हानियों और अवस्थितविभक्तिका काल सामान्य नारकियोंके समान है । तथा असंख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सौधर्म कल्पसे लेकर सहस्रार कल्पतक भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात भागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक के देवोंमें असंख्यात भागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । संख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये

§ २६३. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें असंख्यात भागवृद्धिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । असंख्यात भागहानिका कितना

पलिदो० असंखे०भागो। दो हाणी केव० ? जहण्णुक्क० एगसमओ। अवट्ठि० ओघं। एवं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं। णवरि असंखे०भागहाणी के० ? जह० एगसमओ, उक्क० बादरेइंदिय-सुहुमेइंदिएसु पलिदो० असंखे०भागो। बादरेइंदियपज्जत्तेसु संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि। अण्णत्थ अंतोमुहुत्तं।

§ २६४. विगलिंदिएसु असंखेज्जभागवड्ढी ओघं। संखे०भागवड्ढी दो हाणी० अवट्ठिदाणं णिरओघभंगो। असंखेज्जभागहाणी केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। पंचिंदिय०-पंचिं०पज्ज० मणुसभंगो। णवरि असंखे०भागहाणी० ओघं। पंचिंदियअपज्ज०-तसअपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो। णवरि तसअपज्ज० संखे०भागवड्ढी संखे०गुणवड्ढी० ओघं।

§ २६५. पंचकाय-बादर-सुहुमाणमेइंदियभंगो। तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणमेवं चेव। णवरि असंखे०भागहाणी० के० ? ज० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी।

काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। दो हानियोंका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। तथा अवस्थितविभक्तिका काल ओघके समान है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल बादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमे संख्यात हजार वर्ष है तथा इनके अतिरिक्त शेष बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमे अन्तर्मुहूर्त काल है।

§ २६४. विकलेन्द्रियोंमें असंख्यात भागवृद्धिका काल ओघके समान है। संख्यात भागवृद्धि, दो हानि और अवस्थितविभक्तिका काल सामान्य नारकियों के समान है। तथा असंख्यातभागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोके मनुष्योके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागहानिका काल ओघके समान है। पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक और त्रस अपर्याप्तकों के पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि त्रस अपर्याप्तकोके संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धि का काल ओघके समान है।

§ २६५ पांचों स्थावरकाय, पाँचों स्थावरकाय बादर और पाँचों स्थावरकाय सूक्ष्म जीवोंके एकेन्द्रियोके समान जानना चाहिये। तथा पाँचों स्थावरकाय बादर और सूक्ष्मोके जो पर्याप्त और अपर्याप्त भेद हैं उनके भी इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात भागहानिका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है।

§ २७०. आभिणि०-सुद०-ओहि० असंखे०भागहाणी के० ? ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० छावट्ठिसागरो० देसूणाणि । तिण्णि हाणी ओघं । एवमोहिदंस०-सम्मादि० । मणपज्ज० असंखे०भागहाणी जह० एयसमओ, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । तिण्णि हाणी ओघं । एवं संजद० । सामाइय-छेदो०संजदाणमेवं चेव । णवरि संखेज्जभागहाणीए कालो जहण्णुक्क० एगसमओ । परिहार०-संजदासंजद० असंखे०भागहाणी जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी । संखे०भागहाणी० जहण्णुक्क० एगसमओ । सुहुम० अवगदवेदभंगो । असंजद० णवुंसयभंगो । णवरि असंखेज्जभागहाणीए कालो जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि । असंखे०गुणहाणीवि० णत्थि । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो । णवरि संखे०भागवड्ढी जहण्णुक्क० एगसमओ ।

§ २७१. किण्ह-णील-काउले० असंजदभंगो । णवरि असंखे०भागहाणीए जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सणक्कुमारभंगो । सुक्क० असंखे०भागहाणीए जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि । तिण्णि हाणी ओघं । एवं खइय० । णवरि असंखे०भागहाणी ज०

---

§ २७०. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके असंख्यात भागहानिका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम छयासठ सागर है। तथा तीन हानियोंका काल ओघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। तथा तीन हानियोंका काल ओघके समान है। इसी प्रकार संयत जीवोंके जानना चाहिये। सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा संख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवोंके अपगतवेदियोंके समान जानना चाहिये। असंयतोंके नपुंसकवेदियोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। असंयतोंके असंख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है। चक्षुदर्शनवाले जीवोंके त्रसपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके संख्यातभागवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

§ २७१. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके असंयतोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। पीतलेश्यावाले जीवोंके सौधर्म कल्पके समान जानना चाहिये। पद्मलेश्यावाले जीवोंके सानत्कुमार कल्पके समान जानना चाहिये। शुक्ल लेश्यावाले जीवों के असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। तथा तीन हानियोंका काल ओघके समान है। इसी प्रकार क्षायिकसम्यग्दृष्टि

अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीसं साग० सादिरेयाणि । वेदयं० असंखे०भागहाणी० आभिणि०भंगो । संखे०भागहाणी संखेज्जगुणहाणी जहण्णुक्क० एगसमओ ।

§ २७२. सासण० असंखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० छ आवलियाओ । सम्मामि० असंखे०भागहाणी जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । वे हाणी० वेदयभंगो । सण्णि० पंचिंदियभंगो । असण्णि० दो वड्ढी संखे०गुणहाणी० अवट्टि० ओघं । संखे०गुणवड्ढी संखे०भागहाणी जहण्णुक्क० एगसमओ । असंखे० भागहाणीए एइंदियभंगो । अभव० मदि०भंगो । आहारि० दो वड्ढी चत्तारि हाणी अवट्टि० ओघभंगो । संखे०गुणवड्ढी जहण्णुक्क० एगस० । अणाहारि० कम्मइय०भंगो ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

§ २७३. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्दे सो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण असंखेज्जभागवड्ढी० अवट्टि० अंतरं केव० ? ज० एगसमओ, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं अंतोमुहुत्तब्भहियतीहि पलिदोवमेहि सादिरेयं । दो वड्ढी० दो हाणी० जह० एयसमओ अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । असंखे०भाग-

---

जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि असंख्यातभागहानिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है । वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों के असंख्यात भागहानिका काल आभिनिबोधिकज्ञानियोके समान है । तथा संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ २७२. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके असंख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवली है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा दो हानियोंका काल वेदकसम्यग्दृष्टियोके समान है । संज्ञी जीवोंके पंचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये । असंज्ञी जीवोंके दो वृद्धियों, संख्यात गुणहानि और अवस्थितविभक्तिका काल ओघके समान है । तथा संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है और असंख्यात भागहानिका काल एकेन्द्रियोंके समान है । अभव्य जीवोंके मत्यज्ञानियोके समान जानना चाहिये । आहारक जीवोंके दो वृद्धियो, चार हानियों और अवस्थितविभक्तिका काल ओघके समान है । तथा संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनाहारक जीवों के कार्मण काययोगियोंके समान जानना चाहिये ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

§ २७३. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे ओघकी अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्योसे अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है । तथा दो वृद्धियों और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण

हाणी० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । असंखे०गुणहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं । एवमचक्खु०-भवसि० ।

है। तथा असंख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा असंख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनवाले और भव्य जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—जब असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थित स्थितिके मध्यमें एक समय तक अन्य स्थितिविभक्ति प्राप्त हो जाती है तब इनका जघन्य अन्तरकाल एक समय प्राप्त होता है। तथा असंख्यात भागहानि और संख्यातभागहानिका मिला कर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है, अतः असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है। जब कोई दो इन्द्रिय जीव पहले समयसे संख्यातभागवृद्धि करता है, दूसरे समयमें अवस्थित स्थितिको प्राप्त होता है और तीसरे समयमें मरकर तथा तेइन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर पुनः संख्यातभागवृद्धि करता है तब संख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर काल एक समय प्राप्त होता है, अतः संख्यात भागवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल एक समय कहा। जो एकेन्द्रिय जीव दो मोड़ा लेकर संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके पहले मोड़ेके समय संख्यातगुणवृद्धि होती है। दूसरे मोड़के समय अन्य स्थिति होती है और तीसरे समयमें पुनः संख्यातगुणवृद्धि होती है अतः संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर काल एक समय कहा। जिस जीवके स्थिति काण्डककी चरम फालिके पतनके समय संख्यातभागहानि हुई पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके बाद अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय संख्यातभागहानि होती है अतः संख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। तथा उसी जीवके दूरापकृष्टि प्रमाण स्थितिके उपरिम द्विचरम स्थिति काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय संख्यातगुणहानि होती है। पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके बाद अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय संख्यातगुणहानि होती है अतः संख्यात गुणहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। तथा उक्त दोनों वृद्धियों और दोनो हानियोंका उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण पाया जाता है, क्योंकि जिस जीवने संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यायमें उक्त दो वृद्धियां और दो हानियां की पुनः जो मरकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और वहां असंख्यात पुद्गल परिवर्तन काल तक परिभ्रमण करता रहा। तत्पश्चात् वहांसे निकलकर जो संज्ञियोंमें उत्पन्न हुआ और संज्ञी पर्यायमें जिसने पुनः दो वृद्धियां और दो हानियां कीं उसके उक्त दो वृद्धियो और दो हानियोका उत्कृष्ट अन्तर काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण पाया जाता है। एक समयके अन्तरसे असंख्यातभागहानिका होना सम्भव है, अतः असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तर एक समय कहा। तथा अवस्थित स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अब यदि असंख्यात भागहानिको अवस्थित स्थितिसे अन्तर्मुहूर्त काल तक अन्तरित कर दिया जाय तो असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है। अनिवृत्तिकरण क्षपकके सवेद भागमें स्थिति काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय असंख्यातगुणहानि होती है पुनः अन्तर्मुहूर्तके बाद दूसरे स्थिति काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय असंख्यातगुणहानि होती है, अतः असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। अचक्षुदर्शन और भव्य मार्गणामें यह ओघ प्ररूपणा बन जाती है. अतः इनके कथनको ओघके समान कहा।

§ २७४. आदेसेण णेरइय० असंखे०भागवड्ढी अवट्ठि० जह० एगसमओ। दो वड्ढी० दो हाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीससागरो० देसूणाणि। असंखे० भागहाणी० ओघं। पढमादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा।

§ २७५. तिरिक्खेसु असंखेज्जभागवड्ढी अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। दो वड्ढि०-दोहाणी० असंखे० भागहाणी० ओघं। पंचि० तिरिक्खतियम्मि असंखे०भागवड्ढी० अवट्ठि० ज० एगसमओ। दो वड्ढी० संखे० गुणहाणी ज० अंतोमुहुत्तं। उक्क० सव्वेसिं पि पुव्वकोडिपुधत्तं। असंखेज्जभाग-हाणी० ओघं। संखे०भागहाणी ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि अंतोमुहुत्तब्भहियाणि। एवं मणुसतिय०। णवरि जम्हि पुव्वकोडिपुधत्तं तम्हि पुव्वकोडी देसूणा। असंखे०गुणहाणी० ओघं। पंचि०तिरिक्खअपज्ज० असंखे० भागवड्ढी० हाणी० अवट्ठि० जह० एगसमओ। दो वड्ढी० दो हाणी० जह० अंतोमु०। उक्क० सव्वेसिमंतोमुहुत्तं। एवं मणुसअपज्ज०-पंचि०अपज्ज०-तसअपज्ज०-विहंग०। णवरि तसअपज्ज० दोवड्ढी० जह० एगसमओ।

---

§ २७४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंके असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय तथा दो वृद्धियों और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा उपर्युक्त सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है। तथा असंख्यात भागहानिका अन्तरकाल ओघके समान है। पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनके कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये।

§ २७५. तिर्यञ्चोंमें असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा दो वृद्धियों, दो हानियों और असंख्यातभागहानिका अन्तरकाल ओघके समान है। पंचेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय तथा दो वृद्धियों और सख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व है। असंख्यात भागहानिका अन्तरकाल ओघके समान है तथा संख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके जहाँ पूर्वकोटि पृथक्त्व कहा है वहाँ मनुष्यत्रिकके कुछ कम पूर्वकोटि कहना चाहिये। तथा असंख्यातगुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके असंख्यात-भागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है तथा दो वृद्धियो और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा उक्त सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, त्रस अपर्याप्तक और विभंगज्ञानियोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि त्रस अपर्याप्तकोंके दो वृद्धियोंका जघन्य अन्तर काल एक समय है।

§ २७६. देव० असंखेज्जभागवड्ढी० अवट्ठि० जह० एगसमओ, दो वड्ढी० संखेज्जगुणहाणी० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि। संखेज्जभागहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि । असंखे० भागहाणी० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । भवणादि जाव सहस्सार त्ति एवं चेव। णवरि सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा। आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति असंखे० भागहाणीए जहण्णुक्क० एगसमओ । संखे०भागहाणीए जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति असंखे०भागहाणी० जहण्णुक्क० एगसमओ । संखे०भागहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु० ।

---

§ २७६. देवोंमें असंख्यातभागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है तथा दो वृद्धियों और संख्यात गुणहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर है। तथा संख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर है। तथा असंख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये। आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। तथा संख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंके असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय तथा संख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—नरकमें स्वस्थानकी अपेक्षा संख्यातभाग वृद्धि और संख्यातगुणवृद्धि संक्लेश क्षयसे एक समय तक होती है और पुनः इनका होना अन्तर्मुहूर्त कालके विना सम्भव नहीं है, अतः इनका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। तथा नरकमें असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, अतः असंख्यातभागहानिको छोड़कर शेष सबका उत्कृष्ट अन्तर काल उक्त प्रमाण कहा। तिर्यंचोंमें असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल यद्यपि साधिक तीन पल्य है पर ऐसे जीवके तिर्यंच पर्यायके रहते हुए असंख्यातभागवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तरकाल सम्भव नहीं किन्तु तिर्यंचोंमें एकेन्द्रियोंके जो असंख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण बतलाया है वही इनके असंख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये। तिर्यंचत्रिकमें स्वस्थानकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धि एक समय तक होकर पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके विना नहीं हो सकती हैं अतः इन दोनोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। तथा तिर्यंच त्रिकके असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल यद्यपि साधिक तीन पल्य बतलाया है किन्तु ऐसा जीव मरकर पुनः तिर्यंच पर्यायमें नहीं आता, अतः तिर्यंच त्रिकके असंख्यात भागहानिका जो उत्कृष्ट काल है वह तीन वृद्धि, संख्यातगुणहानि और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल नहीं हो सकता किन्तु इनके संज्ञी अवस्थामें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होकर असंज्ञियोंमें उत्पन्न हो जानेसे असंख्यातभागहानि प्रारंभ हो जाती है। पुनः असंज्ञियोंमें अपने अपने असंज्ञियोग्य उत्कृष्ट काल तक, जो क्रमशः ४६, १५ व ७ कोटि पूर्व भ्रमण किया। तथा वहाँ अपनी अपनी असंज्ञी पर्यायके

§ २७७. एइंदिएसु असंखे०भागवड्ढी० हाणी० अवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । दो हाणी० णत्थि अंतरं। एवं पंचकायाणं। विगलिंदिएसु असंखे०भागवड्ढी हाणी० अवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । संखे०भागवड्ढी० संखे०भागहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं । संखे०गुणहाणी० णत्थि अंतरं ।

प्रारम्भमें उक्त तीन वृद्धियां, संख्यात गुणहानि और अवस्थित स्थितिका अन्तर करके उक्त पूर्व कोटि पृथक्त्व काल तक असंख्यात भागहानिके साथ रहा। और संज्ञियोंमें उत्पन्न होकर पुनः तीन वृद्धियां, संख्यातगुण हानि और अवस्थित स्थिति प्राप्त हो गईं तब जाकर इनका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण ही प्राप्त होता है। जिस तिर्यंचने प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करते समय संख्यातभागहानि की। पुनः मिथ्यात्वमें जाकर और अन्तर्मुहूर्त कालके बाद जो तीन पल्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ और जीवनमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रह जाने पर जिसने पुनः प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके संख्यात भागहानि की उसके संख्यात भागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य प्रमाण पाया जाता है। मनुष्यत्रिकके असंख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल तिर्यंच त्रिकके समान ही है पर इनके भी असंख्यात भागवृद्धि आदिका उत्कृष्ट अन्तरकाल तत्प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि तिर्यंचत्रिकके समान यहां भी वही बाधा आती है। अब यदि कहा जाय कि जिस प्रकार तिर्यंच त्रिकके इनका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण बतला आये हैं उसी प्रकार मनुष्योंके भी घटित हो जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि मनुष्योंमें असंज्ञी न होनेके कारण सम्यक्त्व की अपेक्षा भुजगार और अवस्थित स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण बतलाया है अतः यहां असंख्यात भागवृद्धि आदिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण ही कहा है। जो पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त स्थितिघात करता है उसके एक काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय संख्यातभाग-हानि या संख्यातगुणहानि हुई। पुनः अन्तर्मुहूर्तकालके बाद दूसरे काण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय संख्यात भागहानि या संख्यात गुणहानि होगी अतः पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें इनका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। किन्तु त्रस अपर्याप्तकोंमें विकलत्रय भी सम्मिलित हैं, अतः इनके संख्यातभागवृद्धिका जघन्य अन्तर काल एक समय भी बन जाता है। देवोंमें बारहवें स्वर्गके बाद असंख्यातभागवृद्धि संख्यातभागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात गुणहानि और अवस्थित स्थिति नहीं पाई जातीं अतः इनका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक अठारह सागर कहा। तथा नौ ग्रैवेयकके देव सम्यग्दर्शनको प्राप्त करके पुनः मिथ्यात्वमें और मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वमें जा सकते हैं और इस प्रकार उनके पुनः अनन्तानुबन्धीका सत्त्व और उसकी विसंयोजना हो सकती है, अतः सामान्य देवोंके संख्यात भागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर कहा। शेष कथन सुगम है।

§ २७७. एकेन्द्रियोंमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा दो हानियोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार पाँच स्थावरकायिक जीवोंके जानना चाहिये। विकलेन्द्रियोंमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है। संख्यात भागवृद्धि और संख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा संख्यात गुणहानिका अन्तरकाल नहीं है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें असंख्यात भागहानिका उत्कृष्ट काल जो पल्यके असंख्यातवें

§ २७८. पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज० असंखे०भागवड्ढी० अवट्ठि० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं अंतोमुहुत्तब्भहियतीहि पलिदोवमेहि सादिरेयं। असंखे०भागहाणि० अंतरं ज० एगसम०, उक्क० अंतोमु०। दोवड्ढी-दोहाणीणं ज० अंतोमु०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं। असंखे०गुणहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु०। एवं तस-तसपज्जत्ताणं। णवरि दो वड्ढी० जह० एगसमओ।

भागप्रमाण बतलाया सो इतने काल तक असंख्यात भागहानि उन एकेन्द्रियोंके पाई जाती है जिनकी स्थिति एकेन्द्रियोंकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे बहुत ही अधिक होती है और इसलिये ऐसे जीवके असंख्यात भागवृद्धि, या अवस्थित या इनका अन्तरकाल यह कुछ भी सम्भव नहीं। किन्तु असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि या अवस्थितविभक्तिका अन्तर काल उन एकेन्द्रियोंके पाया जाता है जिनका स्थितिसत्त्व एकेन्द्रियोंके स्थितिबन्धके योग्य रह जाता है और इस प्रकार इनका जघन्य अन्तरकाल एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बन जाता है। तथा जिस संज्ञी पंचेन्द्रियने संख्यात भागहानि या संख्यात गुणहानिका प्रारम्भ किया है वह यदि स्थितिकाण्डकके उत्कीरण कालको समाप्त करनेके पहले मरकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हो जाय तो उस एकेन्द्रिय जीवके संख्यात भागहानि या संख्यात गुणहानि पाई जाती है अतः एकेन्द्रियके इनका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता। विकलत्रयोंमें संख्यात भागवृद्धि भी सम्भव है अतः इनके अपने स्थितिबन्धके योग्य स्थितिके रहते हुए भी संख्यात भागहानि हो सकती है पर इस प्रकार संख्यात भागवृद्धि और संख्यात भागहानि अन्तर्मुहूर्तके पहले नहीं होती, अतः इनका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। शेष कथन सुगम है।

§ २७८. पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एकसौ त्रेसठ सागर है। असंख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। दो वृद्धियों और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एकसौ त्रेसठ सागर है। तथा असंख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार त्रस और त्रस पर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके दो वृद्धियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवके संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानिका जो उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एकसौ त्रेसठ सागर बतलाया है सो यहां दोनो वृद्धियों और संख्यात गुणहानिके अन्तरकालका कथन करते समय साधिकसे तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्त कालका ग्रहण करना चाहिये तथा संख्यात भागहानिके अन्तरकालका कथन करते समय साधिकसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि पहले असंख्यात भागहानिका जो पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक एकसौ त्रेसठ सागर प्रमाण उत्कृष्ट काल बतला आये हैं वह यहां संख्यात भागहानिका उत्कृष्ट अन्तर काल है और जो अल्पतर स्थितिका अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एकसौ त्रेसठ सागरप्रमाण उत्कृष्ट काल बतला आये हैं वह यहां संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि और संख्यात गुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल है। तथा उक्त जीवोंके उक्त दो वृद्धि और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बतलाया है सो इसका कारण यह है कि स्वस्थानकी अपेक्षा उक्त स्थिति-

§ २७९. पंचमण०-पंचवचि० असंखे०भागवड्ढी० अवट्ठि० अंतरं के० ? ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । असंखे०भागहाणी० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सेसदोवड्ढी-तिण्णिहाणीणं णत्थि अंतरं । एवमोरालियकायजोगीणं ।

§ २८०. कायजोगीसु असंखे०भागवड्ढी० अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । असंखे०भागहाणी० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । दोवड्ढी-दोहाणीणं जह० एगसमओ अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । असंखे०गुणहाणी० णत्थि अंतरं । ओरालियमिस्स० असंखे०भागवड्ढी० अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । असंखेज्जभागहाणी० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । संखे०भागवड्ढी जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । दोहाणी० संखे०गुणवड्ढी० जह० अंतोमु०, उक्क० अंतोमु० । वेउव्विय० असंखे०भागवड्ढी० हाणी० अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सेसदोवड्ढी-दोहाणीणं णत्थि अंतरं । वेउव्वियमिस्स० असंखे०भागवड्ढी हाणी० अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सेसपदेसु णत्थि अंतरं । कम्मइय० अवट्ठि० ज० उ० एगसमओ ।

विभक्तियोंका इससे कम अन्तरकाल नहीं पाया जा सकता है । तथा त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके संख्यात भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल जो एक समय बतलाया है सो यह परस्थानकी अपेक्षा जानना चाहिये जिसका खुलासा ओघ प्ररूपणाके समय कर आये हैं ।

§ २७९. पाँचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । असंख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा शेष दो वृद्धियों और तीन हानियोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार औदारिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २८०. काययोगियोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । असंख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । दो वृद्धियों और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल नहीं है । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । असंख्यातभागहानिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । संख्यात भागवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा दो हानियों और संख्यात गुणवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । वैक्रियिककाययोगियोंमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा शेष दो वृद्धियों और दो हानियोंका अन्तरकाल नहीं है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा शेष पदोंका अन्तरकाल नहीं है । कार्मणकाययोगियोंमें अवस्थितविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है । तथा

सेसपदाणं णत्थि अंतरं। आहार०-आहारमिस्स० असंखे०भागहाणी० णत्थि अंतरं। एवमकसा०-जहाक्खाद०-सासण०। अणाहारीणं कम्मइयभंगो।

§ २८१. इत्थिवेद० असंखे०भागवड्ढी० अवट्ठि० ज० एगसमओ। दो वड्ढी-दोहाणीणं जह० अंतोमु०। उक्क० पणवण्णपलिदोवमाणि देसूणाणि। असंखे०भागहाणी-असंखे०गुणहाणीणमोघभंगो। पुरिस० पंचिंदियभंगो। णवुंस० असंखे०भागहाणी-अवट्ठिदाणं णिरओघं। सेसपदाणमोघभंगो। एवमसंजद०।

शेष पदोंका अन्तरकाल नहीं है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें असंख्यात भागहानिका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यातसंयत और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। अनाहारक जीवोंके कार्मणकाययोगियोंके समान जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पांचों मनोयोगों और पांचों वचनयोगोंका तथा एकेन्द्रियोंको छोड़कर शेष जीवोंके औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है और विवक्षित किसी एक योगके रहते हुए संख्यात भागवृद्धि आदि तथा संख्यात भागहानि आदि दो बार सम्भव नहीं अतः इनके संख्यात भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि इन दो वृद्धियोंका तथा संख्यात भागहानि, संख्यात गुणहानि और असंख्यातगुणहानि इन तीन हानियोंका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता। काययोगमें असंख्यात भाग हानिका जो उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है वही यहां असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितका उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये। कोई एक त्रस जीव है उसने काययोगके रहते हुए संख्यात भागवृद्धि की। पुनः वह काययोगके साथ मर गया और एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर अनन्त काल तक घूमता रहा। तदनन्तर वह त्रस हुआ और वहां उसने पुनः संख्यात भागवृद्धि की। इस प्रकार इस जीवके संख्यात भागवृद्धिका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार संख्यात गुणवृद्धि और दो हानियोका उत्कृष्ट अन्तरकाल यथायोग्य रीतिसे घटित कर लेना चाहिये। औदारिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है इसलिये इसमें सम्भव सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्तप्रमाण ही प्राप्त होता है। वैक्रियिक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है और एक योगके रहते हुए संख्यात भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि इन दो वृद्धियोंका तथा संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि इन दो हानियोंका दो दो बार होना सम्भव नहीं अतः वैक्रियिककाययोगमें इनका अन्तरकाल नहीं बतलाया। यही बात वैक्रियिकमिश्रकाययोगके सम्बन्धमें जानना चाहिये। कार्मणकाययोगमें अवस्थित पदका ही उत्कृष्ट काल तीन समय बतलाया है। अब यदि किसी कार्मणकाययोगीने पहले और तीसरे समयमें अवस्थित स्थिति की तो उसके अवस्थितका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय पाया जाता है। यहां शेष पदोंका अन्तरकाल सम्भव नहीं। यही बात अनाहारकोंके जानना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ २८१. स्त्रीवेदी जीवोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थित विभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और दो वृद्धियों और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है। तथा उक्त सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचवन पल्य है। तथा असंख्यात भागहानि और असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है। पुरुषवेदियोंके पंचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये। नपुंसकवेदियोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका अन्तरकाल सामान्य नारकियोंके समान है। तथा शेष पदोंका अन्तरकाल ओघके समान है। इसी प्रकार असंयत

णवरि असंखे०गुणहाणी णत्थि। अवगद० असंखे०भागहाणी जहण्णुक्क० एगसमओ। दोहाणीण जहण्णुक्क० अंतोमु०। एवं सुहुमसांपराय०।

§ २८२. चत्तारिकसाय० तिण्णि वड्ढी० असंखेज्जभागहाणी० अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। संखे०भागहाणी-संखे०गुणहाणी-असंखेज्जगुणहाणीणं जहण्णुक्क० अंतोमु०।

§ २८३. मदि-सुदअण्णाणीसु असंखेज्जभागवड्ढी [अवट्ठि०] जह० एगसमओ, उक्क० एक्कत्तीस सागरो० सादिरेयाणि। सेसमोघं। एवमभव०-मिच्छादिट्ठि त्ति।

§ २८४. आभिणि०-सुद०-ओहि० असंखे०भागहाणी जहण्णुक्क० एगसमओ। संखे०भागहाणी जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि।

जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात गुणहानि नहीं है। अपगतवेदियों में असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। तथा दो हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिये।

§ २८२. क्रोधादि चारों कषायवाले जीवोंमें तीन वृद्धियों, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा संख्यात भागहानि, संख्यात गुणहानि और असंख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—देवीकी उत्कृष्ट आयु पचवन पल्यकी है। अब यदि किसी देवीने उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर लिया और जीवनमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहने पर वह मिथ्यादृष्टि हो गई तो उसके इतने काल तक असंख्यात भागहानि ही पाई जायगी अतः स्त्रीवेदमें असंख्यात भागवृद्धि, अवस्थित, संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचवन पल्य बन जाता है, क्योंकि ये सब पद सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके पूर्व और बादमें सम्भव हैं। असंख्यात गुणहानि अनिवृत्ति क्षपकके ही होती है अतः असंयत जीवके इसका निषेध किया। अपगतवेदमें असंख्यात भागहानि जब संख्यातभागहानि या संख्यातगुणहानिसे एक समयके लिये अन्तरित होजाती है तब असंख्यात भागहानिका अन्तरकाल पाया जाता है जो कि जघन्य और उत्कृष्ट रूपसे एक समय प्रमाण ही होता है। तथा यहां संख्यात भागहानि और संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान घटित कर लेना चाहिये। किन्तु वहां जो जघन्य अन्तरकाल बतलाया है वही यहां जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये। अपगतवेदसे सूक्ष्मसाम्परायिक संयतके कोई विशेषता नहीं अतः उसके कथन को अपगतवेदके समान जानना चाहिये। चारो कषायोंका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनमें सम्भव पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बन जाता है। शेष कथन सुगम है।

§ २८३ मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक इकतीस सागर है। शेष कथन ओघके समान है। इसी प्रकार अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

§ २८४. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। संख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त

एवं संखेज्जगुणहाणीए । णवरि छावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि । असंखे०गुणहाणी० ओघं । एवमोहिदंस०-सम्मादिट्ठीणं । मणपज्ज० असंखे०भागहाणी० जहण्णुक्क० एगसमओ । संखेज्जभागहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा । दोहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु० । एवं संजद०-सामाइय-छेदो०संजदे त्ति ।

§ २८५. परिहार०-संजदासंजद० असंखे०भागहाणी-संखे०भागहाणीणं मणपज्जयभंगो । चक्खु० तसपज्जत्तभंगो । णवरि संखे०भागवड्ढी० ज० अंतोम० ।

और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम छियासठ सागर है । इसी प्रकार संख्यात गुणहानिका जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इसका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक छयासठ सागर है । तथा असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानियोंमें असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है संख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि है । तथा दो हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ २८५. परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके असंख्यात भागहानि और संख्यात भागहानिका अन्तरकाल मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है । चक्षुदर्शनवाले जीवोंके त्रसपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके संख्यात भागवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—किसी एक मिथ्यादृष्टि मनुष्यने असंख्यात भागवृद्धि या अवस्थित स्थितिको किया । अनन्तर वह असंख्यात भागहानिको प्राप्त होकर उत्कृष्ट आयुके साथ नौवें ग्रैवेयकमें उत्पन्न हो गया और वहां से च्युत होकर वह पुनः असंख्यात भागवृद्धि या अवस्थित स्थितिको प्राप्त हुआ । इस प्रकार मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके उक्त दो पदोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक इकतीस सागर पाया जाता है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके असंख्यात भागहानिके सम्भव रहते हुए जब अन्य पद एक समयके लिये प्राप्त हो जाते है तभी इनके असंख्यात भागहानिका अन्तरकाल प्राप्त होता है अतः इनके असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्रमाण कहा । संख्यात भागहानि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके समय आदिमें हुई और ६६ सागर के अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें दर्शन मोहकी क्षपणाके समय हुई अतः इसका अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कम ६६ सागर होता है । संख्यात गुणहानि वेदक सम्यक्त्वके प्रथम समयमें हुई । फिर वेदक सम्यक्त्वमें ३ पूर्वकोटि ४२ सागर काल तक रह कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो २४ सागर व १ पूर्वकोटिके अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में क्षपकश्रेणीके कालमें संख्यातगुणहानि हुई इस प्रकार इसका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कम चार पूर्वकोटियोंसे अधिक छयासठ सागरोपम होता है । मनःपर्यमज्ञानी, परिहारविशुद्धि व संयतासंयतका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है । अतः जिसने इस कालके प्रारंभमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना और अन्तमें दर्शनमोहकी क्षपणा की उसके संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्थात्, ८ वर्ष, ३८ वर्ष व ८ वर्ष कम पूर्व कोटि होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ २८६. किण्ह-णील-काउ० तिण्णि वड्ढी० अवट्ठि० जह० एगसमओ, दोहाणी० ज० अंतोमु० । उक्क० सव्वेसिं सगट्ठिदी देसूणा । असंखे०भागहाणी० ओघं । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्सारभंगो । सुक्क० असंखे०भागहाणी० जहण्णुक्क० एगसमओ । संखे०भागहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० एक्कत्तीस साग० देसूणाणि । संखे०गुणहाणी जहण्णुक्क० अंतोमु० । असंखे०गुणहाणी० ओघं ।

§ २८७. खइय० असंखे०भागहाणी० जहण्णुक्क० एगसमओ । तिण्णि हाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु० । णवरि संखे०भागहाणी० उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि । वेदय० दो हाणीणं ओधिभंगो । संखे०गुणहाणी० णत्थि अंतरं । उवसम० असंखे०भागहाणी० जहण्णुक्क० एगसमओ । संखे०भागहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु० । सम्मामि० असंखे०भागहाणी० जहण्णुक्क० एगसमओ । दो हाणी० णत्थि अंतरं ।

§ २८८. [सण्णीणं पंचिंदियभंगो ।] असण्णीसु असंखे०भागवड्ढी० अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । संखे०भागहाणी ओघं । संखे०भागवड्ढी ज० एगसमओ, संखे०गुणवड्ढी-दोहाणीणं ज० अंतोमु० । उक्क० सव्वेसिमणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ।

---

§ २८६. कृष्ण, नील, और कापोत लेश्यावाले जीवोमें तीन वृद्धियों और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तथा असंख्यात भागहानिका अन्तरकाल ओघके समान है। पीतलेश्यावाले जीवोंके सौधर्म स्वर्गके समान और पद्मलेश्यावाले जीवोंके सहस्रारस्वर्गके समान जानना चाहिये। तथा शुक्ललेश्यावाले जीवोमें असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। संख्यात भागहानिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर है। तथा संख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है।

§ २८७. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय तथा तीन हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। इतनी विशेषता है कि संख्यात भागहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें दो हानियोंका अन्तरकाल अवधिज्ञानियोंके समान है। तथा संख्यातगुणहानिका अन्तरकाल नहीं है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। तथा संख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है। तथा दो हानियोंका अन्तरकाल नहीं है।

§ २८८. संज्ञी जीवोंमें पंचेन्द्रियोंके समान भंग है। असंज्ञी जीवोंमें असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थितविभक्तिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। संख्यात भागहानिका अन्तरकाल ओघके समान है। संख्यात भागवृद्धि का जघन्य अन्तरकाल एक समय तथा संख्यातगुणवृद्धि और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा उक्त सभीका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है जो कि असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।

§ २८९. आहारि० असंखे०भागवड्ढी हाणी० अवट्ठि० ओघं । संखे०गुणवड्ढी दोहाणी० जह० अंतोमु० । संखे०भागवड्ढी० ज० एगसमओ, उक्क० अंगुलस्स असंखे०भागो । असंखेज्जगुणहाणी० ओघं ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

§ २९०. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण असंखेज्जभागवड्ढी-हाणि-अवट्ठाणाणि णियमा अत्थि । सेसपदाणि भयणिज्जाणि । भंगा बादालीसुत्तरदुसदमेत्ता २४२ । एवं तिरिक्ख०-सव्वेइंदिय-पुढवी०-बादरपुढवी०-बादरपुढवीअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त०-वणप्फदि०-बादरवणप्फदि०-बादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-णिगोद०-बादरणिगोद०-बादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमणिगोद०-सुहुमणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-बादरणिगोदपदिट्ठिद-बादरणिगोदपदिट्ठिद-

---

§ २८९. आहारक जीवोंके असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिका अन्तरकाल ओघके समान है। संख्यातगुणवृद्धि और दो हानियोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है तथा संख्यात भागवृद्धिका जघन्य अन्तरकाल एक समय है। तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा असंख्यात गुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान है।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ २९० नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। भंग दोसौ ब्यालीस होते हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यंच, सभी एकेन्द्रिय, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोद, बादर निगोद, बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, बादर-निगोद प्रतिष्ठित, बादर निगोद

अपज्ज०–कायजोगि०–ओरालिय०–ओरालियमिस्स०–कम्मइय०–णवुंस०–चत्तारि-कसाय–मदि–सुदअण्णाण०–असंजद०–अचक्खु०–तिण्णिले०–भवसि०–अभवसि०–मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि त्ति । णवरि भंगा जाणिय वत्तव्वा ।

प्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कपायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञनी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके भंग जान कर कहना चाहिये।

विशेषार्थ—मोहनीय कर्मकी स्थितिमें असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि ये तीन वृद्धियां, असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि ये चार हानियां तथा अवस्थित इस प्रकार आठ पद पाये जाते हैं। इनमेंसे असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थित पदवाले नाना जीव नियमसे पाये जाते हैं, इसलिये इनका एक ध्रुव भंग हुआ। किन्तु शेष पांच पद भजनीय हैं। उनमेंसे किसी एक पदवाला कदाचित् एक जीव होता है और कदाचित् नाना जीव होते हैं। यह भी सम्भव है कि कदाचित् किसी एक पदवाला एक या नाना जीव हो तथा उसी समय उससे भिन्न अन्य पदवाले भी एक या नाना जीव हों। इस प्रकार इन भजनीय पदोंके भंगोमें एक ध्रुव भंगके मिलाने पर कुल भंगोंका जोड़ २४३ होता है। यथा—

१ ध्रुव भंग
२ संख्यातभागवृद्धिके एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा
३ कुल जोड़
६ सख्यातभागवृद्धिके प्रत्येक और संख्यातगुणवृद्धिके साथ एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा संयोगी भंग
९ कुल जोड़
१८ संख्यात भागहानिके प्रत्येक व पूर्वोक्त दो पदोंके साथ संयोगी भंग
२७ कुल जोड़
५४ संख्यातगुणहानि के प्रत्येक व पूर्वोक्त तीन पदोके साथ संयोगी भंग
८१ कुल जोड़
१६२ असंख्यातगुणहानिके प्रत्येक व पूर्वोक्त चार पदोंके साथ संयोगी भंग
२४३ कुल जोड़

मूलमें ध्रुव भंगको सम्मिलित न करके केवल भजनीय पदोंके २४२ भंग कहे हैं और ध्रुव भंगको अलग बतलाया है। अब यदि इन २४२ भंगोंमें ध्रुव भंग भी मिला दिया जाता है तो कुल भंगोका जोड़ २४३ होता है जैसा कि हमने पूर्वमें घटित करके बतलाया ही है। आगे सामान्य

§ २६१. आदेसेण णेरइएसु असंखे०भागहाणि-अवट्ठाणाणि णियमा अत्थि। सेसपदा भयणिज्जा। भंगा बादालीसुत्तरदुसदमेत्ता २४२। एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसपज्ज०-मणुसिणी-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-बादरपुढवीपज्ज०-बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज०-बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्ज०-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि त्ति।

तिर्यंच आदि मार्गणाओंमें जो ओघके समान कथन करनेकी सूचना की है सो उसका मतलब यह है कि उन मार्गणाओंमें जहां जितने सम्भव पद हैं उनमेंसे असंख्यात भागहानि, असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थित इन तीन पदोंकी अपेक्षा एक ध्रुव भंग है और शेष पद भजनीय हैं। विशेष खुलासा इस प्रकार है—मूलमें गिनाई हुई मार्गणाओंमेंसे काययोग, औदारिककाययोग, चारों कषाय, अचक्षुदर्शन, भव्य, आहारक और नपुंसकवेद ये मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें अविकल ओघ-प्ररूपणा घटित हो जाती है, अतः २४३ भंग प्राप्त होते हैं। सामान्य तिर्यंच, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, असंज्ञी, अनाहारक, मिथ्यादृष्टि, अभव्य और कृष्णादि तीन लेश्यावाले ये मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें असंख्यात गुणहानि नहीं पाई जाती अतः भजनीय पद चार रह जाते हैं और इसलिये इनमें ध्रुव भंगके साथ कुल भंग ८१ होते हैं। तथा इनके अतिरिक्त जो एकेन्द्रिय और उनके भेद तथा पांच स्थावरकाय और उनके भेद बतलाये हैं। उनमें संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानिके बिना एक वृद्धि, तीन हानि और अवस्थित ये पांच पद ही पाये जाते हैं। सो इनमेंसे असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित पद की अपेक्षा एक ध्रुव भंग ही प्राप्त होता है। अब भजनीय पद दो रह जाते हैं, अतः इनमें ध्रुव भंगके साथ कुल नौ भंग होते हैं।

§ २६१. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें असंख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। तथा शेष पद भजनीय हैं। भंग दोसौ ब्यालीस होते हैं। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्तक, मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीरपर्याप्त, बादर निगोदप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनवाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—नारकियोंमें असंख्यात गुणहानिको छोड़कर सात पद हैं पर उनमें असंख्यात भागहानि और अवस्थित ये दो पद ध्रुव हैं तथा शेष पांच पद भजनीय हैं, अतः यहां भी भजनीय पदोंके २४२ भंग और एक ध्रुव भंग इस प्रकार कुल २४३ भंग प्राप्त होते हैं। आगे सातों तरहके नारकी आदि कुछ और मार्गणाओंमें जो सामान्य नारकियोंके समान कथन करनेकी सूचना की है सो उसका यह मतलब है कि जहां जितने सम्भव पद हैं उनमेंसे असंख्यात भागहानि और अवस्थित इन दो पदोंकी अपेक्षा एक ध्रुव भंग है और शेष पद भजनीय हैं। विशेष खुलासा इस

§ २९२ मणुस्सअपज्ज० सव्वपदा भयणिज्जा । एवं वेउव्वियमिस्स०-अवगद०-सुहुम०-सम्मामि० । णवरि भंगा जाणिय वत्तव्वा ।

§ २९३. आणदादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति असंखेज्जभागहाणी णियमा अत्थि । सिया एदे च संखेज्जभागहाणिविहत्तिओ च । सिया एदे च संखे०भागहाणिविहत्तिया च । धुवसहिदा तिण्णि भंगा । एवं परिहार०-संजदासंजद० ।

§ २९४. आहार०-आहारमिस्स० सिया असंखेज्जभागहाणिविहत्तिओ, सिया असंखे०भागहाणीविहत्तिया एवं दोण्णि भंगा २ । एवमकसा०-जहाक्खाद०-सासण० । आभिणि०-सुद०-ओहिणाणीसु असंखेज्जभागहाणी णियमा अत्थि । सेस-

प्रकार है—मूलमें गिनाई हुई मार्गणाओंमेंसे सातों नरकके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, वैक्रियिककाययोगी, विभंगज्ञानी, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले ये मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें सामान्य नारकियोंके समान प्ररूपणा बन जाती है, अतः इनमें ध्रुव भंग सहित कुल भंग २४३ होते हैं। सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनी और संज्ञी ये मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें असंख्यात गुणहानि और पाई जाती है, अतः कुल आठ पदोंमेंसे भजनीय पद ६ हो जाते हैं अतः यहां ध्रुव भंगके साथ कुल भंग ७२९ हो जाते हैं। विकलत्रयोंमें असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि तथा तीन हानि और अवस्थित इस प्रकार छह पद हैं। इनमेंसे चार अध्रुव हैं, अतः यहां ध्रुव भंगके साथ कुल भंग ८१ होते हैं। अब शेष रहीं पृथिवीकायिक पर्याप्त आदि मार्गणाएं सो उनमें असंख्यात भागवृद्धि, तीन हानि और अवस्थित इस प्रकार पांच पद हैं। इनमेंसे तीन अध्रुव हैं, अतः यहां ध्रुव भंगके साथ कुल भंग २७ होते हैं।

§ २९२. मनुष्य अपर्याप्तकोंके सभी पद भजनीय हैं। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके भंग जानकर कहना चाहिये।

विशेषार्थ—लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंके असंख्यात गुणहानिके सिवा सात पद पाये जाते हैं और ये सब भजनीय हैं, अतः यहां ध्रुव भंगके बिना कुल भंग २१८६ होंगे। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें २१८६ भंग जानना चाहिये। अपगतवेदी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और सम्यग्मिथ्यादृष्टिके असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि, और संख्यातगुणहानि ये तीन पद हैं तथा ये तीनों भजनीय हैं, अतः यहां २६ भंग होंगे।

§ २९३. आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीव नियमसे हैं। तथा कदाचित् असंख्यात भागहानिवाले अनेक जीव हैं और संख्यातभागहानिवाला एक जीव है। कदाचित् असंख्यातभागहानिवाले अनेक जीव हैं और संख्यात भागहानिवाले अनेक जीव हैं। इस प्रकार ध्रुव भंगसहित तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये।

§ २९४. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें कदाचित् असंख्यात भागहानिवाला एक जीव है और कदाचित् असंख्यातभागहानिवाले अनेक जीव हैं। इस प्रकार दो भंग हैं। इसी प्रकार अकषायी, यथाख्यातसंयत और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीव नियम

पदा भयणिज्जा । एवं मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०दिहि त्ति । उवसम० दो हाणी भयणिज्जा ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समत्तो ।

§ २६५. भागाभागाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण असंखे०भागवड्ढी० सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? असंखे०भागो । अवहि० सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? संखेज्ज०भागो । असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा । सेसपदा सव्वजीवा के० ? अणंतिमभागो । एवं तिरिक्ख०-सव्व-एइंदिय - वणप्फदि०- बादरवणप्फदि०-बादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त - सुहुमवणप्फदि०-सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-णिगोद० — बादरणिगोद०—बादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त—सुहुमणिगोद०-सुहुमणिगोदपज्जत्तापज्जत्त - कायजोगि - ओरालिय० - ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णाण-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०

से है । तथा शेषपद भजनीय है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें दो हानियां भजनीय हैं ।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके असंख्यात भागहानि की अपेक्षा एक ध्रुवपद है और संख्यातभागहानि, संख्यातगुणहानि और असंख्यात गुणहानि ये तीन पद अध्रुव हैं अतः यहां ध्रुव भंगके साथ कुल भंग २७ होंगे । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके २७ भंग जानना चाहिये । किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके असंख्यात गुणहानि नहीं होती, अतः यहां एक ध्रुवपद और दो भजनीय पद हुए और इसलिये कुल भंग नौ होंगे । उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके असंख्यात भागहानि और संख्यात भागहानि ये दो पद ही होते हैं । किन्तु दोनों भजनीय हैं अतः यहां कुल भंग आठ होंगे ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम समाप्त हुआ ।

§ २६५. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं । अवस्थितविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । असंख्यात भागहानिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं । शेष पदवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं । अनन्तवें भाग हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यंच, सभी एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोद, बादरनिगोद, बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, क्रोधादि चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि

अभवसि०-मिच्छादिट्ठि०-असण्णि०-आहारि०-अणाहारि त्ति ।

§ २६६. आदेसेण णेरइएसु अवट्ठि० सव्वजी० के० ? संखेज्जदिभागो। असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा। सेसपदा सव्वजीवाणं के० ? असंखे०भागो। एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस्स-मणुसअपज्जत्त-देव-भवणादि जाव सहस्सार० सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-चत्तारिकाय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदि०पत्तेय०-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-[वेउव्वि०-] वेउव्वियमिस्स०-इत्थि-पुरिस०-विहंग०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि त्ति। मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा। सेसपदा संखेज्जदिभागो। एवमवगद०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-सुहुम०संजदे त्ति।

§ २६७. आणदादि जाव अवराइदे त्ति असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? असंखेज्जा भागा। संखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? असंखे०भागो। एव-

---

तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवों के जानना चाहिये।

विशेषार्थ–यहां तिर्यंच आदि अन्य मार्गणाओंमें जो ओघके समान भागाभाग जाननेकी सूचना की सो उसका यह अभिप्राय नहीं कि इन सब मार्गणाओंमें सब पदोंकी अपेक्षा ओघके समान भागाभाग बन जाता है। किन्तु इसका इतना ही अभिप्राय है कि जहां जितने पद सम्भव हों उनकी अपेक्षा भागाभाग ओघके समान ही जानना। तथा जहां जो पद न हो उसकी अपेक्षा भागाभागका कथन नहीं करना। आगे भी इसी प्रकार विचार करके यथासम्भव भागाभाग जानना चाहिये।

§ २६६. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें अवस्थितविभक्तिवाले जीव सभी नारकियोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं। असंख्यात भागहानिवाले जीव सभी नारकियोंके कितने भाग हैं। संख्यात बहुभाग हैं। शेष पदवाले जीव सभी नारकियोके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रियतिर्यंच, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, सभी पंचेन्द्रिय, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय तथा इनके बादर और सूक्ष्म तथा बादर और सूक्ष्मोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, सभी त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवदवाले, पुरुषवेदवाले, विभंगज्ञानी, चक्षुदर्शनवाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। मनुष्य पर्याप्तक और मनुष्यनियोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवों के कितने भाग हैं ? संख्यात बहुभाग हैं। तथा शेष पदवाले जीव संख्यातवें भाग हैं। इसी प्रकार अपगतवेदवाले, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंके जानना चाहिये।

§ २६७ आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग प्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभाग हैं। संख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवों कितने भाग हैं, असंख्यातवें भाग हैं। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत

मुवसम०-संजदासंजदाणं । सव्वट्ठे असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? संखे०भागा । संखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? संखे०भागो । एवं परिहार० ।

§ २९८. आभिणि०-सुद०-ओहि० असंखे०भागहाणी० सव्वजी० के० ? असंखेज्जा भागा । सेसपदा असंखे०भागो । एवमोहिदंस०-सुक्क०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति । आहार०-आहारमिस्स०-अकसा०-जहाक्खाद०-सासणसम्मादिट्ठीणं णत्थि भागाभागं ।

एवं भागाभागाणुगमो समत्तो ।

§ २९९. परिमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य । तत्थ-ओघेण असंखे०भागवड्ढी हाणी० अवट्ठि० केत्तिया ? अणंता । दोवड्ढी० दोहाणी० के० ? असंखेज्जा । असंखे०गुणहाणी० केत्ति० ? संखेज्जा । एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिकसाय–अचक्खु०–भवसि०-आहारि त्ति ।

§ ३०० आदेसेण णेरइएसु सव्वपदा केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्वविग-लिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-चत्तारिकाय-बादरवणप्फदिपत्तेय०-तस्सेव पज्जत्तापज्ज०–

जीवोंके जानना चाहिये। सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग हैं ! संख्यात बहुभाग हैं। संख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग हैं ? संख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार परिहारविशुद्धि संयत जीवोंके जानना चाहिये।

§ २९८. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीव उक्त सभी जीवोंके कितने भाग है ? असंख्यात बहुभाग हैं। तथा शेष पदवाले जीव असंख्यातवें भाग है । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। आहारककाययोगी, आहारकमिश्र-काययोगी, अकषायी, यथाख्यातसंयत और सासादनसम्यग्दृष्टियोंके भागाभाग नहीं है ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ।

§ २९९. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त है । दो वृद्धियों और दो हानियोंवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। तथा असंख्यात गुणहानिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिक-काययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३००. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सभी पदवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सभी नारकी, सभी पचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक आदि चार स्थावर

तसअपज्ज०-वेउव्विय०-वेउव्वियमिस्स-विहंग०-तेउ०-पम्मलेस्से त्ति ।

§ ३०१. तिरिक्खा ओघं । णवरि असंखे०गुणहाणी णत्थि । एवमेइंदिय-सव्ववणप्फदि०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण०-असंजद०-तिण्णले०-अभव०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि-अणाहारि त्ति ।

§ ३०२. मणुस्सेसु णिरओघं । णवरि असंखे०गुणहाणी० संखेज्जा । एवं पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति । मणुस्सपज्ज०-मणुस्सिणीसु सव्वपद० के० ? संखेज्जा । एवं सव्वट्ठ०-अवगद०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय० ।

§ ३०३. आणदादि जाव अवराजिदा त्ति असंखे०भागहाणी संखे०भागहाणी केत्ति० ? असंखेज्जा । [एवं संजदासंजद० । आहार०-] आहार०मिस्स० असंखे०भाग हाणी० केत्ति० ? संखेज्जा । एवमकसाय०-जहाक्खाद०त्ति ।

§ ३०४. आभिणि०-सुद०-ओहि० तिण्णि हाणि० केत्तिया ? असंखेज्जा । असंखे०गुणहाणी० संखेज्जा ? एवमोहिदंस०-सुक्क०-सम्मादिट्ठि त्ति ।

काय, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, विभंगज्ञानी, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३०१. तिर्यंचोंमें असंख्यातभागवृद्धि आदिकी अपेक्षा संख्या ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि इनमे असंख्यात गुणहानि नहीं है । इसी प्रकार एकेन्द्रिय, सभी वनस्पतिकायिक, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोके जानना चाहिये ।

§ ३०२. मनुष्योंमें असंख्यात भागवृद्धि आदिकी अपेक्षा संख्या सामान्य नारकियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनमे असंख्यात गुणहानिवाले जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्तक और मनुष्यनियों मे सभी पदवाले जीव कितने हैं ? संख्यात है । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, अपगतवेदवाले, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवोके जानना चाहिये ।

§ ३०३. आनतकल्पसे लेकर अपराजित तकके देवों मे असंख्यात भागहानि और संख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार संयतासंयत जीवोके जानना चाहिए । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोमे असंख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात है । इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३०४. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोमे तीन हानिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात है । तथा असंख्यातगुणहानिवाले जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले और सम्यग्दृष्टि जीवोके जानना चाहिये ।

§ ३०५. खइय० असंखेज्जभागहाणी० के० ? असंखेज्जा। सेसपदा संखेज्जा। वेदग० तिण्णि हाणी० के० ? असंखेज्जा। उवसम० दो हाणी० असंखेज्जा। सासण० असंखे०भागहाणी० केत्ति० ? असंखेज्जा। सम्मामि० तिण्णि हाणी० वेदय०भंगो।

एवं परिमाणाणुगमो समत्तो।

§ ३०६. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण असंखे०भागवड्ढी हाणी अवट्ठि० केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे। सेसपदा केवडि खेत्ते ? लोग० असंखेज्ज०भागे। एवमणंतरासीणं।

§ ३०७. पुढवी-बादरपुढवी-बादरपुढवीअपज्ज०-सुहुमपुढवी-सुहुमपुढवीपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त० तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त० असंखेज्जभागवड्ढी-हाणी अवट्ठि० केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे। सेसपदा० के० ? लोग० असंखेज्ज०भागे। सेसंसंखेज्जासंखेज्जरासीणं सव्वपदा लोगस्स असंखे०भागे। णवरि बादरवाउ-

§ ३०५. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। तथा शेष पदवाले जीव संख्यात हैं। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें तीन हानिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें दो हानिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें तीन हानिवाले जीवोंका प्रमाण वेदकसम्यग्दृष्टियोंके समान है।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

§ ३०६. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं। शेष पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार अनन्त संख्यावाली राशियोंके कहना चाहिये।

§ ३०७. पृथिवीकायिक, बादरपृथिवीकायिक, बादरपृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादरवायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त और सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, जीवोंमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं। तथा शेष पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। शेष संख्यात और असंख्यात संख्यावाली राशियोंकी अपेक्षा सभी पदवाले जीव

पज्ज० असंखे०भागवड्ढी हाणी अवट्ठि० लोगस्स संखेज्जदिभागे ।

एवं खेत्ताणुगमो समत्तो ।

§ ३०८. पोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण असंखेज्जभागवड्ढी-हाणी-अवट्ठि० केवडियं खेत्तं पोसिदं ? सव्वलोगो । दोवड्ढी-दोहाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ-चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा । असंखेज्जगुणहाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो । एवं कायजोगि०-चत्तारिकसा०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति ।

लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकका संख्यातवां भाग है ।

विशेषार्थ—ओघसे असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थित स्थितिवाले जीव अनन्त हैं यह परिमाणानुयोगद्वारमें बतला ही आये हैं और अनन्त संख्यावाली राशियोंका स्वस्थानकी अपेक्षा भी सब लोक क्षेत्र बन जाता है, अतः इन तीन पदवाले जीवोंका ओघसे सब लोक क्षेत्र कहा । किन्तु शेष पांच पदवाले जीव बहुत स्वल्प हैं, क्योंकि उन पदोंका अधिकतर त्रसोंसे ही सम्बन्ध है । दो हानियां ऐसी हैं जो स्थावरोंके भी पाई जाती हैं पर जो त्रस स्थितिकाण्डकघातके द्वारा संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानिको कर रहे हैं ऐसे त्रस यदि मर कर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हों तो उन स्थावरोंके ही वे दो हानियां पाई जाती हैं, अतः शेष पदवालोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही बनता है । जितनी भी अनन्त संख्यावाली मार्गणाएं हैं उनमें भी अपने अपने सम्भव पदोंकी अपेक्षा इसी प्रकार क्षेत्र जानना चाहिये । तथा सामान्य पृथिवीकायिक आदि कुछ असंख्यात संख्यावाली ऐसी मार्गणाएं हैं जिनका सब लोक क्षेत्र बन जाता है अतः उनमें भी अपने सम्भव पदोंकी अपेक्षा अविकल ओघ प्ररूपणा घटित हो जाती है । पर इनसे अतिरिक्त जितनी भी असंख्यात या संख्यात संख्यावाली मार्गणाएं हैं उनमें सभी सम्भव पदोंकी अपेक्षा क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि उन मार्गणावाले जीवोंका क्षेत्र ही लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु वायुकायिक पर्याप्त जीव इस व्यवस्थाके अपवादभूत हैं, क्योंकि उनका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है अतः उनमें असंख्यात भागहानि, असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थित स्थितिवालोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण जानना और शेष पदोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र जानना ।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ ।

§ ३०८. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोकका स्पर्श किया है । दो वृद्धि और दो हानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका, त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सर्वलोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार काययोगी, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३०९. आदेसेण णेरइएसु सव्वपदा के० खे० पो० ? लोग० असंखेभागो छ चोद्दस० देसूणा। पढमपुढवि० खेत्तभंगो। विदियादि जाव सत्तमि त्ति सव्वपदाणं विहत्तिएहि के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो एक वे तिण्णि चत्तारि पंच छ चोद्दसभागा देसूणा।

§ ३१०. तिक्खि० असंखे०भागवड्डी-हाणी०-अवट्ठि० के० ? सव्वलोगो। दोवड्डी-दोहाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। एवमोरालियमिस्स०-कम्मइय०-तिण्णिले०-असण्णि०-अणाहारि त्ति।

विशेषार्थ—ओघसे असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित पदवालोंका स्पर्श सब लोक बतलानेका कारण यह है कि इन पदवाले जीवोंका प्रमाण अनन्त है और वे सब लोकमें पाये जाते हैं। संख्यात भागवृद्धि, संख्यात गुणवृद्धि, संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि इन पदवालोंका स्पर्श तीन प्रकारका बतलाया है। लोकका असंख्यातवां भाग स्पर्श वर्तमान कालकी अपेक्षा बतलाया है। कुछ कम आठ बटे चौदह राजु प्रमाण स्पर्श विहार, वेदना आदि की अपेक्षा बतलाया है, क्योंकि उक्त पदवालोंका नीचे दो राजु और ऊपर छह राजु तक गमनागमन पाया जाता है। और सब लोक प्रमाण स्पर्श मारणान्तिक समुद्घात और उपपादपदकी अपेक्षा बतलाया है। तथा असंख्यात गुणहानिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलानेका कारण यह है कि इस पदको नौवें गुणस्थानवाले जीव ही प्राप्त होते हैं। पर नौवें गुणस्थानवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं है। कुछ मार्गणाएं भी ऐसी हैं जिनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल बन जाती है। जैसे काययोगी आदि, अतः इनके कथनको ओघके समान कहा।

३०९. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम एक, कुछ कम दो, कुछ कम तीन, कुछ कम चार, कुछ कम पांच और कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

विशेषार्थ—नरकमें सामान्य नारकियोंका और प्रत्येक नरकके नारकियोंका जो स्पर्श बतलाया है वही यहां सब पदवालोंका स्पर्श है उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। कारण यह है कि सब नारकी संज्ञी पंचेन्द्रिय होते हैं अतः सबके सब पद सम्भव हैं और इसलिये यहां प्रत्येक पदकी अपेक्षा वही स्पर्श प्राप्त होता है जो सामान्य नारकियोंके या उस नरकके नारकियोंके बतलाया है।

§ ३१०. तिर्यंचोंमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा दो वृद्धि और दो हानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३११. सव्वपंचिं०तिरिक्ख० सव्वपदा० के० खेत्तं पो० ? लोग० असंखे०-भागो सव्वलोगो वा । एवं मणुस्सअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-बादरपुढविपज्ज०-बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्ज-बादरवणप्फदिपत्तेय पज्ज०-तसअपज्जत्ते त्ति । णवरि बादरवाउपज्जत्तएहि असंखेज्जभागवड्ढी-हाणी-अवट्ठि० के० खे० पोसिदं ? लोग० संखे०भागो सव्वलोगो वा। मणुसतिय० पंचि०तिरिक्ख-भंगो । णवरि असं०गुणहाणीए ओघभंगो ।

§ ३१२. देवेसु सव्वपदाणं वि० के० खे० पोसिदं ? लोगस्स असं०भागो अट्ठ णव चोद्दस० देसूणा । एवं सोहम्मीसाणे । भवण०-वाण०-जोइसि० सव्वपदा० के० खे० पो० ? लो० असंखे०भागो अद्धुट्ठ-णवचोद्दसभागा वा देसूणा । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारो त्ति सव्वपदा० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस०

विशेषार्थ—तिर्यंचोमे असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितपदवाले जीव सब लोकमे पाये जाते हैं अतः इन तीन पदवालोंका स्पर्श सब लोक बतलाया है । संख्यात भागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि विभक्तिवाले तिर्यंच जीव पाये तो लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें ही जाते हैं किन्तु मारणान्तिक और उपपादपदकी अपेक्षा अतीत कालमे इन्होंने सब लोकका स्पर्श किया है इसलिये इनका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण स्पर्श बतलाया है । औदारिकमिश्रकाययोग आदि मूलमें गिनाई गई कुछ और ऐसी मार्गणाएं हैं जिनका स्पर्श तिर्यंचोके समान है अतः उनके कथनका तिर्यंचोके समान कहा ।

§ ३११. सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमे सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सभी विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमे असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके संख्यातवें भाग और सर्वलोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । मनुष्यत्रिकके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोके समान स्पर्श जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात गुणहानिकी अपेक्षा स्पर्श ओघके समान है ।

§ ३१२. देवोंमें सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोमे से कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोके जानना चाहिये । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोमें सभी पदवाले जीवोने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोमे से कुछ कम साढ़े तीन भाग और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवों मे सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमे से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । आनत, प्राणत, आरण

देसूणा। आणद-पाणद-आरणच्चुद० सव्वपदा० के० खेत्तं पोसिदं० ? लोग० असंखे०-भागो छचोद्दसभागा वा देसूणा। उवरि खेत्तभंगो। एवं वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा० मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खादसंजदे त्ति।

§ ३१३. सव्वेइंदिय० असंखेज्जभागवड्ढी-हाणी-अवट्ठा० के० खे० पो० ? सव्वलोगो। सेसपद० वि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। एवं पुढवी०-बादरपुढवी०-बादरपुढवीअपज्ज०-सुहुमपुढवी०-सुहुमपुढवीपज्जत्तापज्जत्त-

और अच्युत कल्पके देवोंमें सभी पदवाले देवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सोलहवें कल्पके ऊपर स्पर्श क्षेत्रके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यात संयत जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—सब प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका वर्तमानकालीन और कुछ अन्य पदोंकी अपेक्षा अतीत कालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा मारणान्तिक और उपपादपदकी अपेक्षा अतीतकालीन स्पर्श सब लोक बतलाया है। तथा सब प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके असंख्यात गुणहानिको छोड़कर सब पद संभव हैं अतः सब प्रकारके तिर्यंचोंमें सब पदवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक कहा है। मूलमें गिनाई गई मनुष्य अपर्याप्तक आदि सब मार्गणाओंमें भी अपने अपने पदोंकी अपेक्षा इसी प्रकार स्पर्श प्राप्त होता है अतः उनके कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान कहा है। किन्तु बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंके असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित पदकी अपेक्षा कुछ विशेषता है। बात यह है कि इन जीवोंने वर्तमानमें लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और अतीत कालमें सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है अतः उक्त तीन पदोंकी अपेक्षा इनका स्पर्श उक्त प्रमाण ही प्राप्त होता है। जिन कारणोंसे पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण या सब लोक प्राप्त होता है वे ही कारण मनुष्यत्रिकके भी समझना चाहिये अतः इनमें पंचेन्द्रियतिर्यंचोंके समान स्पर्श बतलाया है। किन्तु मनुष्योंके नौवां गुणस्थान भी होता है अतः यहां असंख्यातगुणहानि सम्भव है। फिर भी असंख्यात गुणहानिवालोंका जो स्पर्श ओघसे कह आये हैं वही उक्त पदकी अपेक्षा मनुष्योंके जानना चाहिये क्योंकि यह पद मनुष्योंके ही होता है। देवोंमें जिसका जितना स्पर्श है सब पदोंकी अपेक्षा उसका उतना ही स्पर्श प्राप्त होता है अतः यहां उसका विशेष खुलासा नहीं किया। 'एवं' कह कर मूलमें जो कुछ वैक्रियिकमिश्रकाययोग आदि मार्गणाएं गिनाई हैं वहां 'एवं' का यही अर्थ है कि जिस मार्गणाका जितना स्पर्श है अपने सम्भव पदोंकी अपेक्षा उस मार्गणाका उतना ही स्पर्श प्राप्त होता है।

§ ३१३. सभी एकेन्द्रियोंमें असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा शेष पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सर्वलोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त,

आउ०-[-बादरआउ०-] बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादर-वाउ०-बादरवाउअपज्ज०सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-वणप्फदि०-बादरवण-प्फदि०-बादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदि-सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-णिगोद०-बादरणिगोद०-बादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमणिगोद०-सुहुमणिगोदपज्जत्ता-पज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्जत्ते त्ति ।

§ ३१४. पंचिंदिय०-पंचि०पज्ज०-तस०-तसपज्ज० सव्वपदवि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा सव्वलोगो वा । णवरि असंखेज्ज-गुणहाणी० ओघं । एवं पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति ।

जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पति कायिक अपर्याप्त, निगोद, बादर निगोद, बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जैसा कि आघमें घटित करके बतला आये हैं तदनुसार असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितपदवालोंका वर्तमान और अतीत दोनों प्रकारका स्पर्श सब लोक एकेन्द्रियोंमें ही पाया जाता है अतः एकेन्द्रियोंमे उक्त पदवालोंका स्पर्श सब लोक प्रमाण बतलाया। किन्तु एकेन्द्रियोंमें शेष पद सबके नहीं पाये जाते हैं किन्तु जो पंचेन्द्रियोंमेंसे आकर एकेन्द्रिय होते हैं उन्हींके पाये जाते हैं किन्तु ऐसे जीव स्वल्प होते हैं अतः इनका वर्तमान कालीन स्पर्श तो लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है हां अतीत कालीन स्पर्श सब लोक बन जाता है अतः इनमे शेष पदोंकी अपेक्षा वर्तमान कालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा और अतीतकालीन स्पर्श सब लोक कहा। मूलमें जो पृथिवी आदि दूसरी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी उक्त प्रमाण स्पर्श उसी क्रमसे बन जाता है अतः उनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा। इसी प्रकार आगे और जितनी मार्गणाओंमें अपने अपने पदोंकी अपेक्षा स्पर्श बतलाया है वह उन उन मार्गणाओंके स्पर्शके अनुसार बन जाता है। अतः जिस मार्गणाका जितना स्पर्श है अपने सम्भव पदोकी अपेक्षा उसका उतना स्पर्श जानना चाहिये जिसका निर्देश मूलमे किया ही है।

§ ३१४. पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमे सभी पदवाले जीवोने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानिका स्पर्शन ओघके समान है। इसी प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। वैक्रियिक-

वेउव्विय० सव्वपदवि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ–तेरहचोद्दस० देसूणा। ओरालि० तिरिक्खोघं। एवं णवुंस०।

§ ३१५. मदि-सुदअण्णा० ओघं। णवरि असंखेज्जगुणहाणी णत्थि। एवमसंजद०-अभव०-मिच्छादिट्ठि त्ति। विहंग० पंचिंदियभंगो। णवरि असंखेज्जगुणहाणी णत्थि। आभिणि०-सुद०-ओहि० तिण्णि हाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा। असंखे०गुणहाणी ओघं। एवमोहिदंस०सम्मादिट्ठि त्ति। एवं वेदय०। णवरि असंखेज्जगुणहाणी णत्थि।

§ ३१६. तेउ० सोहम्मभंगो। पम्म० सहस्सारभंगो। सुक्क० तिण्णिहाणी के० खे० पोसिदं ? लोग० असंखेभागो छचोद्दस० देसूणा। असंखेज्जगुणहाणी० ओघं।

§ ३१७. खइय० असंखे०भागहाणी० के० खे० पो० ? लो० असं०भागो। अट्ठचोद्दस० देसूणा। सेसपदाणं खेत्तभंगो। उवसम० असंखे०भागहाणी० संखे०-भागहाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा। सासण०

काययोगियोंमें सभी पदवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। औदारिककाययोगियोंके स्पर्श सामान्य तिर्यञ्चोंके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३१५. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके ओघके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है। इसी प्रकार असंयत, अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। विभंगज्ञानियोंके पंचेन्द्रियोंके समान स्पर्श है। इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं पायी जाती है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें तीन हानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा इनके असंख्यातगुणहानिकी अपेक्षा स्पर्शन ओघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। तथा इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं पाई जाती है।

§ ३१६. पीतलेश्यावालोंके सौधर्म कल्पके समान स्पर्शन है। पद्मलेश्यावालोंके सहस्रार कल्पके समान स्पर्श है। तथा शुक्ललेश्यावालोंमें तीन हानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमे से कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा इनके असंख्यातगुणहानिकी अपेक्षा स्पर्शन ओघके समान है।

§ ३१७. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमे से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा इनके शेष पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमे असंख्यातभागहानि और संख्यातभागहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमे से कुछ कम

असंखेज्जभागहाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ-बारहचोद्दस० देसूणा। सम्मामि० वेदय०भंगो।

§ ३१८. संजदासंजद० असंखे०भागहाणी० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०-भागो छचोद्दस० देसूणा। संखे०भागहाणी० खेत्तभंगो।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो।

§ ३१६. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण असंखे०भागवड्डी-हाणी-अवट्ठा० केवचिरं ? सव्वद्धा। दोवड्ढी० दोहाणी० के० ? ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। असंखे०गुणहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति।

आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके वेदकसम्यग्दृष्टियोंके समान स्पर्श जानना चाहिये।

§ ३१८. संयतासंयतोंमें असंख्यात भागहानिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा इनके संख्यात भागहानिकी अपेक्षा स्पर्श क्षेत्रके समान है।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

§ ३१६. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमें से ओघकी अपेक्षा असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्वकाल है। दो वृद्धि और दो हानिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा असंख्यात गुणहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—यहां नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका विचार किया जा रहा है। तदनुसार ओघसे असंख्यात भागवृद्धि, असंख्यात भागहानि और अवस्थित स्थितिवाले जीव अनन्त हैं अतः इनका सद्भाव सर्वदा पाया जाता है। संख्यात भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धि तथा संख्यात भागहानि और संख्यात गुणहानि इनके निरन्तर रहनेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इनका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। तथा असंख्यात गुणहानि अनिवृत्ति क्षपकके ही होती है और अनिवृत्ति क्षपकके इसके निरन्तर प्राप्त होनेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, अतः असंख्यात गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तत्प्रमाण बतलाया। यह ओघ प्ररूपणा काययोगी आदि कुछ मार्गणाओंमें अवकिल बन जाती है, अतः उनकी कथनी ओघके समान कही।

§ ३२०. आदेसेण णेरइएसु असंखेज्जभागहाणी-अवट्ठि० के० ? सव्वद्धा । सेसपदा० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-देव०भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिं०अपज्ज०-सव्व-विगलिंदिय-बादरपुढविपज्ज०-बादरआउपज्ज० - बादरतेउपज्ज० - बादरवाउपज्ज०-बादर-वणप्फदिपत्तेयपज्ज०-तसअपज्ज०-वेउव्विय०-विहंग०-तेउ०-पम्मलेस्से त्ति ।

§ ३२१. तिरिक्खा ओघं । णवरि असंखे०गुणहाणी णत्थि । एवमोरालिय-मिस्स० - कम्मइय० - मदि-सुदअण्णा०-असंजद० - तिण्णिलेस्सा०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ ३२२. मणुस० पंचिं०तिरिक्खभंगो । णवरि असंखे०गुणहाणी० ओघं । एवं पंचिं०-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० एवं चेव ? णवरि जम्हि आवलि० असंखे०-

§ ३२०. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति-वाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है । तथा शेष पदवालोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, सभी विकलेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, वैक्रियिककाययोगी, विभंगज्ञानी, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—नारकियोंमें असंख्यात भागहानि और अवस्थितस्थिति ये दो ध्रुव पद हैं अतः यहां इनका सर्वदा काल कहा । इसी प्रकार आगे भी जानना । तथा शेष पद अध्रुव हैं फिर भी यदि वे निरन्तर रहें तो कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक आवलिके असंख्यातवें भाग काल तक निरन्तर पाये जाते हैं अतः शेष पदोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । सातों नरकके नारकी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं है जिनमें उक्त प्ररूपणा अविकल बन जाती है, अतः इनमें सब सम्भव पदोंका काल सामान्य नारकियोंके समान कहा ।

§ ३२१. सामान्य तिर्यंचोंके ओघके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात गुणहानि नहीं पाई जाती है । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३२२. सामान्य मनुष्योंके पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यात गुणहानिका काल ओघके समान है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि पहले जहाँ आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल कहा है वहाँ इनके

भागो तम्हि संखेज्जा समया। णवरि संखे०भागहाणी० जह० एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। मणुसअपज्ज० असंखे०भागहाणी-अवट्ठि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सेसपदवि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। एवं वेउव्वियमिस्स०।

संख्यात समय काल कहना चाहिये। तथा इतनी और विशेषता है कि इनके संख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें असंख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंके कितना काल है? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा शेष पदवाले जीवोंका कितना काल है? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—तिर्यंचोंका प्रमाण अनन्त है, अतः उनके सब पदोंका काल ओघके समान बन जाता है। किन्तु इनके असंख्यातगुणहानि नहीं होती, क्योंकि यह पद अनिवृत्तिक्षपकके ही पाया जाता है। औदारिकमिश्रकाययोग आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें उक्त प्ररूपणा बन जाती है अतः इनमें सब सम्भव पदोंका काल सामान्य तिर्यंचोंके समान कहा। मनुष्योंके और सब पदोंका काल तो पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है, क्योंकि इनके ध्रुव और अध्रुव पद पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान पाये जाते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि और पाई जाती है। पर यह पद मनुष्योंके ही होता है क्योंकि अनिवृत्ति क्षपक गुणस्थान मनुष्य गतिको छोड़कर अन्य गतिवाले जीवोंके नहीं पाया जाता। अतः सामान्य मनुष्योंके इस पदका काल ओघके समान बन जाता है। पंचेन्द्रिय आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें उक्त प्ररूपणा बन जाती है अतः उनमें सम्भव सब पदोंका काल सामान्य मनुष्योंके समान कहा। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनी संख्यात होते हैं, अतः इनके संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, और संख्यात गुणहानिका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त न होकर संख्यात समय प्राप्त होता है। किन्तु उक्त दोनों मार्गणावालोंका प्रमाण संख्यात होते हुए भी इनके संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है, क्योंकि पहले एक जीवकी अपेक्षा संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल दो कम उत्कृष्ट संख्यात समय प्रमाण बतला आये हैं। अब यदि किसी एक पर्याप्तमनुष्य या मनुष्यनीने संख्यातभागहानिका प्रारम्भ किया और वह संख्यात भागहानिके उत्कृष्ट काल तक उसके साथ रहकर जिस समय समाप्त करता है उसी समय किसी उक्त मार्गणावाले अन्य जीवने उसका प्रारम्भ किया तो इस प्रकार निरन्तर संख्यातभागहानिकी प्रवृत्ति आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक पाई जाती है अतः उक्त मार्गणाओंमें इसका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा। मनुष्य अपर्याप्त यह सान्तर मार्गणा है अतः इस मार्गणाका जो उत्कृष्ट काल है वही यहां असंख्यातभागहानि और अवस्थित पदका उत्कृष्ट काल जानना। किन्तु अन्तरकालके बाद जब नाना जीव इस मार्गणाको प्राप्त होते हैं तब वे यदि एक समय तक असंख्यातभागहानि या अवस्थित पदके साथ रहे और दूसरे समयमें अन्य पदको प्राप्त हो गये तो इनके उक्त दो पदोंका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है। वैक्रियिकमिश्रकाययोग यह मार्गणा भी सान्तर है, अतः यहां भी लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंके समान सम्भव सब पदोंका काल बन जाता है।

§ ३२३. आणदादि जाव अवराइद त्ति असंखे०भागहाणी० के० ? सव्वद्धा। संखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। एवं संजदासंजद०। सवट्टे असंखे०भागहाणी० के०? सव्वद्धा। संखेज्जभागहाणी ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। एवं परिहार०।

§ ३२४. सव्वएइंदिएसु असंखे०भागवड्डी-हाणी-अवट्ठि० तिरिक्खोघं। सेसपदवि० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। एवं पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-[-बादरतेउ०-]बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-वणप्फदि०-बादरवणप्फदि-बादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदि० — सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त — बादरवणप्फदिपत्तेयसरीर० — तस्सेव अपज्जत्ते त्ति।

---

§ ३२३. आनत कल्पसे लेकर अपराजित कल्पतकके देवोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है। संख्यातभागहानिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिये। सर्वार्थसिद्धिमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? सर्व काल है। तथा संख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है। इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके प्रत्येक स्थान के देवोंका प्रमाण असंख्यात है अतः यहाँ संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है। पर सर्वार्थसिद्धिमें देवोंका तथा परिहारविशुद्धि सयतोंका प्रमाण संख्यात है, अतः यहाँ संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय ही प्राप्त होता है। शेष कथन सुगम है।

§ ३२४. सभी एकेन्द्रियोंमे असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थित विभक्तिवाले जीवोंका काल सामान्य तिर्यंचोंके समान है। तथा शेष पदवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३२५. आहार० असंखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। एवमकसा०-जहाक्खादसंजदे त्ति। आहारमिस्स० असंखे०भागहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अवगद० असंखे०भागहाणी के०? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। सेसपदा० मणुसपज्जत्तभंगो। एवं सुहुमसांपरा०।

§ ३२६. आभिणि०-सुद०-ओहि० असंखे०भागहाणी० के०? सव्वद्धा। सेसपदा० पंचिंदियभंगो। एवमोहिदंस०-सुक्क०सम्मादिट्ठि त्ति। मणपज्ज० असंखे०भागहाणी० के०? सव्वद्धा। सेसपदा० के०? जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। णवरि संखे०भागहाणी० उक्क० आवलि० असंखे०भागो। एवं संजद०-सामाइय-छेदोव०-खइय०। णवरि सामाइय-छेदोव० संखेज्जभागहाणी० उक्क० संखेज्जा समया।

§ ३२७. वेदय० असंखेज्जभागहाणी० के०? सव्वद्धा। सेसपद० आभिणि०-

---

§ ३२५. आहारककाययोगियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये। आहारकमिश्रकाययोगियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अपगतवेदियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा इनके शेष पदोंकी अपेक्षा काल मनुष्य पर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिकसंयतों के जानना चाहिये।

विशेषार्थ—आहारककाययोग, विवक्षित प्रकरणमें अकषाय और यथाख्यातसंयतका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ असंख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा। किन्तु आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्त है, अतः इसमें असंख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है। अपगतवेद और सूक्ष्मसाम्परायका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें असंख्यात भागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण बन जाता है। तथा अपगतवेद अवस्था सूक्ष्म साम्परायसंयत मनुष्योंके भी होती है, अतः इनमें सम्भव शेष पदोंका काल मनुष्य पर्याप्तकोंके समान बन जाता है।

§ ३२६. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है? सर्वकाल है। तथा शेष पदोंकी अपेक्षा काल पंचेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। मनःपर्ययज्ञानियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवो का कितना काल है? सर्वकाल है। तथा शेष पदवाले जीवोंका कितना काल है? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिवाले जीवोंका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना संयतोंमें संख्यातभागहानिवाले जीवोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है।

§ ३२७. वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है? सर्वकाल

भंगो। उवसम० असंखे०भागहाणी० के० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। संखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। सासण० असंखे०भागहाणी० के० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सम्मामि० असंखे०भागहाणी० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सेसपदाणमोहिभंगो।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

§ ३२८. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण असंखे०भागवड्डी-हाणी-अवट्ठि० णत्थि अंतरं। दो वड्डी-हाणी० अंतर के० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। असंखे०गुणहाणी० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० छ मासा। एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति। णवरि णवुंसयवेदे असंखे०गुणहाणी० उक्क० अंतरं वासपुधत्तं। कोध-माण-माया-लोभाणं वासं सादिरेयं।

है। तथा इनके शेष पदोंकी अपेक्षा काल आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा संख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा शेष पदोंकी अपेक्षा काल अवधिज्ञानियोंके समान है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

§ ३२८. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। दो वृद्धि और दो हानिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा असंख्यातगुणहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले भव्य और, आहारक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है नपुंसकवेदमें असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है और क्रोध, मान, माया और लोभमें असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है।

विशेषार्थ—असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और अवस्थितका काल सर्वदा है अतः इनका अन्तरकाल नहीं पाया जाता। संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यातभागहानि और सख्यातगुणहानि ये कमसे कम एक समयके बाद और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कालके बाद नियमसे प्राप्त होती हैं, अतः इनका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। तथा असंख्यातगुणहानि क्षपकश्रेणीमें ही होती है और इसका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः एक समय और छह महीना प्रमाण है, अतः असंख्यातगुणहानिका जघन्य

§ ३२९. आदेसेण णिरयगईए असंखे०भागहाणी-अवट्ठि० णत्थि अंतरं। सेसपदाणं केव० ? ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवं सत्तसु पुढवीसु पंचिंदिय-तिरिक्ख-पंचिं०तिर०पज्ज०-पंचिं०तिर०जोणिणी-पंचिं०तिरि०अपज्ज०-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिं०अपज्ज०-तसअपज्ज०-वेउव्वि०-विभंग०-तेउ०-पम्मलेस्से त्ति।

§ ३३०. तिरिक्खा० ओघं। णवरि असंखेज्जगुणहाणी णत्थि। एवमोरालिय-मिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णा०-असंजद०-किण्ह-णील-काउ०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारि त्ति।

§ ३३१. मणुस० णिरओघं। णवरि असंखे०गुणहाणी० ओघं। एवं पचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति। मणुसपज्ज०-मणुसिणी० एवं चेव। णवरि इत्थि०-मणुस्सिणी० असंखेज्जगुणहाणी० वासपुधत्तं। पुरिसवेद० वासं सादिरेयं।

अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण कहा। काययोगी आदि कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें यह ओघ प्ररूपणा बन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा। किन्तु इतनी विशेषता है कि यदि नपुंसकवेदी जीव क्षपकश्रेणी पर न चढ़े तो अधिक से अधिक वर्षपृथक्त्व काल तक नहीं चढ़ता है अतः इसके असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्ष पृथक्त्व प्रमाण कहा। तथा क्रोधादि कषायवाले जीव यदि क्षपकश्रेणी पर न चढ़ें तो अधिक से अधिक साधिक एक वर्ष तक नहीं चढ़ते हैं, अतः इनके असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष प्रमाण कहा।

§ ३२९. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नरकगतिमें असंख्यातभागहानि और अवस्थितविभक्ति वाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। तथा इनके शेष पदोंकी अपेक्षा अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती, पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, वैक्रियिककाययोगी, विभंगज्ञानी, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३३०. तिर्यंचोंके अन्तरकाल ओघके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं होती है। इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले कापोतलेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३३१. मनुष्योंमें अन्तरकाल सामान्य नारकियोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानिकी अपेक्षा अन्तरकाल ओघके समान है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनीके भी इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदवाले और मनुष्यनीके असंख्यातगुणहानिकी अपेक्षा अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। तथा पुरुषवेदवाले जीवोंके साधिक एक वर्ष है।

§ ३३२. मणुसअपज्ज० सव्वपदा० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

§ ३३३. आणदादि जाव अवराइद त्ति असंखे०भागहाणीए णत्थि अंतरं । संखे०भागहाणि० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० सत्त रादिंदियाणि वासपुधत्तं । सव्वट्ठे असंखेज्जभागहाणीए णत्थि अंतरं । असंखे०भागहाणि० अंतरं के० ? जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

विशेषार्थ—नरकगतिमें असंख्यातभागहानि और अवस्थित ये दो पद निरन्तर पाये जाते हैं अतः इनका अन्तरकाल नहीं बनता। तथा यहां सम्भव शेष पदोंका अन्तरकाल ओघमें जिस प्रकार घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहां भी जानना। सातों नरकके नारकी आदि कुछ मार्गणाएं ऐसी हैं जिनमें नरकगतिके समान अन्तरकालकी प्ररूपणा बन जाती है, अतः उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा। तिर्यंचोंके असंख्यातभागहानि, असंख्यात भागवृद्धि और अवस्थित ये तीन पद निरन्तर पाये जाते हैं अतः इनमें अन्तर प्ररूपणा ओघके समान कही। किन्तु तिर्यंचोंके असंख्यातगुणहानि नहीं होती, क्योंकि यह पद अनिवृत्तिक्षपकके ही पाया जाता है। औदारिकमिश्रकाययोग आदि कुछ और भी मार्गणाएं हैं जिनमें सम्भव पदोंका अन्तरकाल सामान्य तिर्यंचोंके समान बन जता है, अतः उनकी प्ररूपणा सामान्य तिर्यंचोंके समान कही। मनुष्योंमें असंख्यातभागहानि और अवस्थित ये दो पद ही निरन्तर पाये जाते हैं, अतः इनमें अन्तर प्ररूपणा सामान्य नारकियोंके समान कही। किन्तु इनके असंख्यातगुणहानि भी पाई जाती है जो मनुष्य पर्यायमें ही सम्भव है, अतः मनुष्योंके असंख्यातगुणहानिका अन्तरकाल ओघके समान कहा। पंचेन्द्रिय आदि कुछ और ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें अन्तरकाल सामान्य मनुष्योंके समान है, अतः उनकी प्ररूपणा सामान्य मनुष्योंके समान कही। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनीके क्षपकश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व प्रमाण है, अतः स्त्रीवेद और मनुष्यनीके असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहा। तथा पुरुषवेदमें क्षपकश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष प्रमाण पाया जाता है, अतः पुरुषवेदमें असंख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष प्रमाण कहा।

§ ३३२ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सभी पदवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इनके सम्भव सब पदोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा।

§ ३३३. आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंके असंख्यातभागहानिकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। संख्यातभागहानिवाले उक्त देवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल सात दिन रात और वर्षपृथक्त्व है। सर्वार्थसिद्धिमें असंख्यात भागहानिकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। तथा संख्यातभागहानिवाले उक्त देवोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

§ ३३४. एइंदिएसु सव्वपदाणं तिरिक्खोघं। एवं पुढवि-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि० – सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त–आउ०–बादरआउ०–बादरआउअपज्ज०–सुहुमआउ० - सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त–तेउ०–बादरतेउ०–बादर–तेउअपज्ज०–सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०–सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त–बादरवणप्फदिपत्तेय०–तस्सेव अपज्ज०–वण–प्फदि०-बादरवणप्फदि-बादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदि०–सुहुमवणप्फदि-पज्जत्तापज्जत्त-णिगोद०-बादरणिगोद-बादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त–सुहुमणिगोद०-सुहुम-णिगोदपज्जत्तापज्जत्ते त्ति।

§ ३३५. सव्वविगलिंदिय० सव्वपदाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो। एवं बादरपुढविपज्ज०-बादरआउपज्ज०–बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्ज०-बादरवणप्फदि–पत्तेयसरीरपज्जत्ता त्ति।

§ ३३६. वेउव्वियमिस्स० सव्वपदाणमंतरं जह० एगसमओ, उक्क० बारस मुहुत्तं। आहार०-आहारमिस्स० असंखे०भागहाणि० अंतरं के०? ज० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। एवमकसाय-जहाक्खादसंजदे त्ति।

§ ३३४ एकेन्द्रियोंमें सभी पदोंकी अपेक्षा अन्तरकाल सामान्य तिर्यंचोंके समान है। इसी प्रकार पृथिवीकायिक, बादर पृथ्वीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक-शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोद, बादर निगोद, बादरनिगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्मनिगोद, सूक्ष्मनिगोद पर्याप्त और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३३५. सभी विकलेन्द्रियोंमें सभी पदोंकी अपेक्षा अन्तरकाल पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये। इसी प्रकार बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्नि-कायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३३६. वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सभी पदवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल बारह मुहूर्त है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल कितना है? जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३३७. अवगद० तिण्णि हाणि० जह० एगसमओ, उक्क० छम्मासा। एवं सुहुमसांपरा०।

§ ३३८. आभिणि०-सुद०-ओहि० असंखे०भागहाणि० णत्थि अंतरं। संखे०भागहाणि०-संखेगुणहाणि० ज० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि। असंखे०गुणहाणी० ओघं। एवमोहिदंस०-सम्मादिट्ठि त्ति। णवरि ओहिणाणि०-ओहिदंसणी० असंखे०गुणहाणि० उक्क० वासपुधत्तं। मणपज्ज० असंखे०भागहाणि०-संखे०भागहाणि० ओहि०भंगो। दोहाणि० अंतरं ज० एगसमओ,उक्क० वासपुधत्तं।

§ ३३९. संजद०-सामाइय-छेद० असंखेज्जभागहाणी० णत्थि अंतरं। संखे० भागहाणि० मणपज्जवभंगो। दोहाणि० जह० एगसमओ, उक्क० छ मासा। परिहार०-संजदासंजद० असंखे०भागहा०-संखे०भागहाणी० आभिणि०भंगो।

§ ३४०. सुक्कले० असंखेज्जभागहाणि० णत्थि अंतरं। सेसपदा० ओघं। खइय० संजदभंगो। णवरि संखेज्जभागहाणी० उक्क० छम्मासा। वेदय० सव्व-पदाणमाभिणि०भंगो। उवसम० असंखे०भागहाणी० जह एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि।

---

§ ३३७. अपगतवेदियोंमें तीन हानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३३८. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। संख्यातभागहानिवाले और संख्यातगुणहानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिनरात है। तथा असंख्यात गुणहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल ओघके समान है। इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंके असंख्यात गुणहानिकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। मनःपर्ययज्ञानियोंमें असंख्यातभागहानि और संख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल अवधिज्ञानियोंके समान है। तथा दो हानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है।

§ ३३९. संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयतोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। संख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है। तथा दो हानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयतोंमें असंख्यातभागहानि और संख्यात-भागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है।

§ ३४०. शुक्ललेश्यावालोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। तथा शेष पदोंकी अपेक्षा अन्तरकाल ओघके समान है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतोंके समान जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें सभी पदोंकी अपेक्षा अन्तरकाल आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है। उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिनरात है।

§ ३४१. जइवसहाइरियो उवसमसम्माइट्ठिकालम्मि अणंताणुबंधिविसंजोयण- मिच्छदि तस्साहिप्पाएण संखे०भागहाणी लभदि सा एत्थ कत्थ वि वुत्ता कत्थ वि ण वुत्ता तेण थप्पं काऊण एत्थ संखेज्जभागहाणी वत्तव्वा । अथवा उवसमसेढीए दंसणतियस्स द्विदिघादसंभवपक्खमस्सियूण उवसमसम्माइट्ठिम्मि सव्वत्थ संखेज्जभागहाणी णिव्विसंकमणुगंतव्वा । सासण० असंखे०भागहा० ज० एयसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । एवं सम्मामि० । णवरि पदभेदो अत्थि ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

§ ३४२. भावाणुगमेण सव्वत्थ सव्वपदाणं को भावो ? ओदइओ भावो ।

एवं भावाणुगमो समत्तो ।

§ ३४३. अप्पाबहुगाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणिविहत्तिया जीवा । संखे०गुणहाणिविह० जीवा असंखे०गुणा । संखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा । संखे०गुणवड्ढिवि० जीवा असंखेज्जगुणा । संखेज्जभागवड्ढिवि० जीवा संखेज्जगुणा । असंखेज्जभागवड्ढि० जीवा अणंतगुणा । अवट्ठिदवि० जीवा असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणिविहत्तिया

§ ३४१ यतिवृषभ आचार्य उपशमसम्यग्दृष्टिके कालमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना स्वीकार करते हैं, अतः इनके अभिप्रायसे उपशमसम्यग्दृष्टियोंके संख्यातभागहानि प्राप्त होती है। वह यहाँ कहीं पर कही गई है और कहीं पर नहीं कही गई है, इसलिये इसे स्थगित करके यहाँ पर संख्यातभागहानि कहनी चाहिये। अथवा उपशमश्रेणिमें तीन दर्शनमोहनीयका स्थितिघात संभव है, अतः इस पक्षका आश्रय करके उपशमसम्यग्दृष्टिके सर्वत्र संख्यातभागहानि निःशंक जाननी चाहिये। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें असंख्यातभागहानिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके पद विशेष पाये जाते हैं। अर्थात् सासादनमें असंख्यातभागहानि पद है और सम्यग्मिथ्यात्वमें असंख्यातभागहानि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि इस प्रकार ये तीन पद हैं।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

§ ३४२. भावानुगमकी अपेक्षा सर्वत्र सभी पदोंकी अपेक्षा क्या भाव है। औदयिकभाव है।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ।

§ ३४३. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है। ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे संख्यातगुणहानि- वाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यात- गुणवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे

जीवा संखे०गुणा । एवं कायजोगि०-णवुंस०-चत्तारिकसाय०-अचक्खु—भवसि०-आहारि त्ति ।

§ ३४४. आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा संखे०गुणहाणिवि० जीवा । संखे०-गुणवड्ढिवि० जीवा विसेसाहिया । संखे०भागवड्ढि-संखे०भागहाणिविहत्तिया जीवा दो वि सरिसा संखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढिवि० जीवा असंखे०गुणा । अवट्ठिदवि० जीवा असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा । एवं पढमाए पुढवीए सव्वपंचिं०तिरिक्ख-मणुसअपज्ज-देव०-भवण०-वाण०-पंचिंदियअपज्जत्ते त्ति । विदियादि जाव सत्तमि त्ति सव्वत्थोवा संखे०गुणवड्ढि-हाणिवि० जीवा दो वि सरिसा । संखेज्ज-भागवड्ढि-हाणिविह० जीवा दो वि सरिसा संखे०गुणा । असंखेज्जभागवड्ढिवि० जीवा असंखे०गुणा । अवट्ठिदवि० जीवा असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा ।

§ ३४५. तिरिक्खा ओघं । णवरि सव्वत्थोवा संखेज्जगुणहाणिविह० जीवा त्ति वत्तव्वं । एवमोरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुद०-असंजद०-किण्ह-णील-काउ०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि-अणाहारि त्ति ।

§ ३४६. मणुस्सेसु सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणिवि० जीवा । संखे०गुण-

---

हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार काययोगी, नपुंसकवेदवाले क्रोधादि चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३४४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें संख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव विशेष अधिक हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानिवाले जीव समान होते हुए भी संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे है । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यात गुणे हैं । इसी प्रकार पहली पृथ्वीके नारकी, सभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासी, व्यन्तरदेव और पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानि इन दोनों पदवाले जीव समान होते हुए भी सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानि इन दोनों पदवाले जीव समान होते हुए भी संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ३४५. तिर्यंचोंमें अल्पबहुत्व ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यात-गुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं ऐसा कहना चाहिये । इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्या-वाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३४६. मनुष्योंमें असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यातगुणहानि-

हाणिवि० जीवा असंखे०गुणा । संखे०गुणवड्ढिवि० जीवा विसेसाहिया । संखे०-भागवड्ढि-हाणिवि० जीवा सरिसा संखे०गुणा। असंखे०भागवड्ढिवि० जीवा असंखे०-गुणा । अवट्ठिदवि० जीवा असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणिवि०जीवा संखे०गुणा । एवं पंचिं०-पंचि०पज्ज०-इत्थि-पुरिस०-सण्णि त्ति । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु एवं चेव । णवरि जम्मि असंखे०गुणं तम्मि संखेज्जगुणं कायव्वं ।

§ ३४७. जोइसियादि जाव सहस्सारे त्ति विदियपुढविभंगो । आणदादि जाव अवराइदं ति सव्वत्थोवा संखे०भागहाणिवि० जीवा । असंखे०भागहाणिवि० जीवा असंखे०गुणा । एवं संजदासंजदाणं । सव्वट्ठे सव्वत्थोवा संखे०भागहाणिवि० जीवा। असंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा । एवं परिहार० ।

§ ३४८. एइंदिएसु सव्वत्थोवा संखे०गुणहाणिवि० जीवा । संखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढिवि० जीवा अणंतगुणा । अवट्ठि० जीवा असंखे०-गुणा । असंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा । एवं सव्वएइंदिय-वणप्फदि०-बादर-वणप्फदि०-बादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदि०-सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-णिगोद० - बादरणिगोद० - बादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त - सुहुमणिगोद - सुहुमणिगोद-पज्जत्तापज्जत्ता त्ति ।

वाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानि इन दोनों पदवाले जीव समान होते हुए भी संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असं-ख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जहां असंख्यातगुणा है वहां इनके संख्यातगुणा करना चाहिये ।

§ ३४७. ज्योतिषियोंसे लेकर सहस्रारतक दूसरी पृथिवीके समान भंग है । आनत कल्पसे लेकर अपराजित तक संख्यातभागहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार संयतासंयतोंके जानना चाहिये। सर्वार्थसिद्धिमें संख्यात-भागहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयतोंके जानना चाहिये ।

§ ३४८. एकेन्द्रियोंमें संख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे संख्यातभागहानि-वाले जीव संख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव अनन्तगुणे हैं । इनसे अवस्थित-विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं । इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सभी एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, बादरवनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पति-कायिक अपर्याप्त, निगोद, बादर निगोद, बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ३४९. सव्वविगलिंदिएसु सव्वत्थोवा संखे०गुणहाणिविहत्तिया जीवा। संखे०भागवड्ढि-हाणिवि० जीवा दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा। असंखे०भागवड्ढिवि० जीवा असंखे०गुणा। अवट्ठिदवि० जीवा असंखे०गुणा। असंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा। चदुण्हं कायाणमेइंदियभंगो। णवरि जम्मि अणंतगुणं तम्मि असंखे०गुणं कायव्वं। तस०-तसपज्जत्ताणमोघभंगो। णवरि जम्मि अणंतगुणं तम्मि असंखे०गुणं। एवं तस०अपज्ज०। णवरि असंखे०गुणहाणी णत्थि।

§ ३५०. पंचमण०-पंचवचि० सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणिवि० जीवा। सेसं विदियपुढविभंगो। एवमोरालि०। णवरि जम्मि असंखे०गुणं तम्मि अणंतगुणं कायव्वं। वेउव्विय० विदियपुढविभंगो। वेउव्वियमिस्स० पढमपुढविभंगो। आहार०-आहारमिस्स०-अकसा०-जहाक्खाद० उवसम०-सासण० णत्थि अप्पाबहुअं।

§ ३५१. अवगद० सव्वत्थोवा संखे०गुणहाणि०जीवा। संखे०भागहाणि० जीवा संखे०गुणा। असंखेज्जभागहाणि० जीवा संखे०गुणा। एवं सुहुमसांपरा०।

§ ३५२. आभिणि०-सुद०-ओहि० सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणहाणि० जीवा। संखेज्जगुणहाणि० जीवा असंखे०गुणा। संखे०भागहाणि० जीवा संखे०गुणा। असंखे०

---

§ ३४९. सभी विकलेन्द्रियोंमें संख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े है। इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानि इन दोनों पदवाले जीव परस्पर समान होते हुए संख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थितविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। चारो कायवाले जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंके जिस स्थानमें अनन्तगुणा कहा है वहां इनके असंख्यातगुणा करना चाहिये। त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके ओघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि ओघमें जहां अनन्तगुणा है वहां इनके असंख्यातगुणा करना चाहिये। इसी प्रकार त्रस अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके असंख्यातगुणहानि नहीं है।

§ ३५०. पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। शेष कथन दूसरी पृथिवीके समान है। इसी प्रकार औदारिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मनोयोगी और वचनयोगियोंमें जहाँ असंख्यातगुणा है वहाँ औदारिककाययोगियोंके अनन्तगुणा करना चाहिये। वैक्रियिककाययोगियोंमे दूसरी पृथिवीके समान भंग है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमे पहली पृथिवीके समान भंग है। आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अकषायी, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके अल्पबहुत्व नहीं है।

§ ३५१. अपगतवेदियोमे संख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे संख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३५२ आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे संख्यातगुणहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातभाग-

भागहाणिविह० जीवा असंखे०गुणा। एवमोहिदंसण०-सुक्कले०-सम्मादिट्ठि त्ति। मणपज्जव० एवं चेव। णवरि जम्मि असंखे०गुणं तम्मि संखे०गुणं कायव्वं। एवं संजद०-सामाइय-छेदो०।

§ ३५३. चक्खु० सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणहाणिविहत्तिया जीवा। संखे० गुणहाणिवि० जीवा असंखे०गुणा। संखे०गुणवड्ढिवि० जीवा विसेसाहिया। संखेज्ज-भागवड्ढि-हाणिवि० जीवा दो वि तुल्ला संखेज्जगुणा। असंखे०भागवड्ढि० जीवा असंखे०गुणा। अवट्ठि० जीवा असंखेज्जगुणा। असंखे०भागहाणिवि० जीवा संखे० गुणा। विभंग०-तेउ०-पम्म० विदियपुढविभंगो।

§ ३५४. खइय० मणपज्जवभंगो। णवरि असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा त्ति वत्तव्वं। वेदय० सव्वत्थोवा संखे०गुणहाणिवि० जीवा। संखे०भागहाणिवि० जीवा संखे०गुणा। असंखे०भागहाणिवि० जीवा असंखे०गुणा। एवं सम्मामि०।

एवं वड्ढी समत्ता।

§ ३५५. संपहि ठाणपरूवणे कीरमाणे सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ समयूण-दुसमयूणादिकमेण ओदारेयव्वाओ जाव णिव्वियप्पअंतोकोडाकोडि त्ति। तदो

हानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। मनःपर्यय-ज्ञानियोंके इसी प्रकार जानना चाहिये। पर उनके इतनी विशेषता है कि आभिनिबोधिकज्ञानी आदिके जहाँ असंख्यातगुणा है वहाँ इनके संख्यातगुणा करना चाहिये। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३५३. चक्षुदर्शनवालोंमें असंख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे संख्यात-गुणहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे संख्यातगुणवृद्धिवाले जीव विशेष अधिक हैं। इनसे संख्यातभागवृद्धि और संख्यातभागहानि इन दोनों पदवाले जीव परस्पर समान होते हुए भी संख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे अवस्थित विभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। विभंगज्ञानी, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है।

§ ३५४. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें मनःपर्ययज्ञानियोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि इनमें असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं ऐसा कहना चाहिये। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें संख्यातगुणहानिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे संख्यातभागहानिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इनसे असंख्यातभागहानिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

इस प्रकार वृद्धि अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ३५५. स्थानकी प्ररूपणा करते समय एक समय कम, दो समय कम इस क्रमसे सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण स्थितिके निर्विकल्प अन्तःकोडाकोडी सागरप्रमाण प्राप्त होने तक कम

धुवट्ठिदीए हदसमुप्पत्तियं कादूण णिरंतरमोदारेदव्वं जाव एइंदियधुवट्ठिदि त्ति। तदो एइंदियधुवट्ठिदिसरिसमणियट्टिखवगट्ठिदिसंतकम्मं घेत्तूण सांतरणिरंतरकमेण ओदारेदव्वं जाव सुहुमसांपराइयचरिमसमयम्मि एगा ट्ठिदि त्ति। एवमोदारिदे मूलपयडिट्ठाणाणि सव्वाणि समुप्पण्णाणि होंति।

एवं मूलपयडिट्ठिदिविहत्ती समत्ता।

करना चाहिये। तदनन्तर ध्रुव स्थितिकी हतसमुत्पत्ति करके एकेन्द्रियोकी ध्रुव स्थिति प्राप्त होने तक कम करते जाना चाहिये। तदनन्तर एकेन्द्रियोंकी ध्रुवस्थितिके समान अनिवृत्तिकरणक्षपककी सत्तामें स्थित स्थितिको ग्रहण करके सान्तर-निरन्तर क्रमसे इसे सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थानके अन्तिम समयमें प्राप्त होनेवाली एक स्थितिके प्राप्त होनेतक कम करते जाना चाहिये। इस प्रकार प्रारम्भसे स्थितिके उत्तरोत्तर कम करने पर सभी मूलप्रकृतिस्थितिस्थान प्राप्त हो जाते हैं।

इस प्रकार मूलप्रकृति स्थितिविभक्ति समाप्त हुई।

उत्तरपयडिद्विदिविहत्ती

❀ उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्तिमणुमग्गइस्सामो ।

§ ३५६. एदं जइवसहाइरियस्स पइज्जावयणं । ण चेसा पइज्जा णिष्फला, सिस्साणं परूविज्जमाणअहियारावगमणफलत्तादो । अहियारो किमिदि जाणाविज्जदे? सिस्समणोगयसंदेहविणासणट्ठं ।

❀ तं जहा । तत्थ अट्ठपदं—एया ट्ठिदी ट्ठिदिविहत्ती अणेयाओ ट्ठिदीओ ट्ठिदिविहत्ती ।

§ ३५७. परूविज्जमाणट्ठिदिविहत्तीए एदमट्ठपदं जइवसहाइरिएण किमट्ठं परूविदं ? ट्ठिदिविहत्तिसरूवावगमणट्ठं । एया कम्मस्स ट्ठिदी एया ट्ठिदी णाम । कथमणेयाणं पदेसभेदेण भिण्णाणं ट्ठिदीणमेयत्तं ? ण, पयडिभावेण सव्वपदेसाणमेयत्तुवलंभादो । चरिमणिसेयट्ठिदिपरमाणूणं सव्वेसिं कालमस्सिदूण सरिसत्तदंसणादो वा एयत्तं । एसा एगा ट्ठिदी ट्ठिदिविहत्ती होदि । समयूण-दुसमयूणादि-

उत्तरप्रकृतिस्थितिविभक्ति

*** अब उत्तरप्रकृति स्थितिविभक्तिका विचार करते हैं ।**

§ ३५६. यह यतिवृषभ आचार्यका प्रतिज्ञावचन है। यदि कोई कहे कि यह प्रतिज्ञा निष्फल है सो भी बात नहीं है, क्योंकि शिष्योंको कहे जानेवाले अधिकारका ज्ञान कराना इसका फल है ।

शंका—अधिकारका ज्ञान क्यों कराया जाता है ?

समाधान—शिष्योंके मनमें उत्पन्न हुए सन्देहको नष्ट करानेके लिये अधिकारका ज्ञान कराया जाता है ।

*** जो इस प्रकार है । उसके विषयमें यह अर्थपद है—एक स्थिति भी स्थितिविभक्ति है और अनेक स्थितियाँ भी स्थितिविभक्ति हैं ।**

§ ३५७. **शंका**—कही जानेवाली स्थितिविभक्तिका यह अर्थपद यतिवृषभ आचार्यने किसलिए कहा ?

समाधान—स्थितिविभक्तिके स्वरूपका ज्ञान करानेके लिये यतिवृषभ आचार्यने यह अर्थपद कहा है ।

कर्मकी एक स्थितिको एक स्थिति कहते हैं ।

शंका—प्रदेशोंके भेदसे भेदको प्राप्त हुई अनेक स्थितियोंमें एकत्व कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रकृति सामान्यकी अपेक्षा सभी प्रदेशोंमें एकत्व पाया जाता है । अथवा अन्तिम निषेककी स्थितिको प्राप्त हुए सब परमाणुओंमें कालकी अपेक्षा समानता देखी जाती है, अतः उनमें एकत्व बन जाता है ।

यह एक स्थिति भी स्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि एक समय कम और दो समय कम

ट्ठिदीहिंतो भेदुवलंभादो। अथवा सुहुमसांपराइयचरिमसमयपरमाणुपोग्गलक्खंधकालो एया ट्ठिदी णाम। तस्स एगसमयणिप्पण्णत्तादो। एसा वि ट्ठिदी ट्ठिदिविहत्ती होदि, दुसमयादिट्ठिदीहिंतो पुधभूदत्तादो। तत्थेव भिण्णपरमाणुट्ठिदसमएहिंतो अप्पिद-कालसमयस्स पुधभावुवलंभादो वा सगाहारपरमाणुम्मि पोग्गलक्खंधे वावट्ठिद-तिकालगोयराणंतपज्जएहिंतो एदिस्से ट्ठिदीए पुधभावदंसणादो वा विहत्तित्तं जुज्जदे। दव्वट्ठियणयमस्सिदूण एसा परूवणा कदा। उक्कस्स-समऊणुक्कस्स-दुसमऊणुक्कस्सा-दिभेदेण अणेयाओ ट्ठिदीओ ताओ वि ट्ठिदिविहत्ती होंति, समाणासमाणट्ठिदीहिंतो परमाणुपोग्गलभेदेण च भेदुवलंभादो। एदमट्ठपदं पज्जवट्ठियसिस्साणुग्गहट्ठं कदं।

§ ३५८. का ट्ठिदी णाम? कम्मसरूवेण परिणदाणं कम्मइयपोग्गलक्खंधाणं कम्म-भावमछंडिय अच्छणकालो ट्ठिदी णाम। उत्तरपयडीणं ट्ठिदी उत्तरपयडिट्ठिदी। का उत्तरपयडी? मूलपयडीए अवांतरपयडीओ। कथं मदि-सुद-ओहि-मणपज्जव-केवलणाणावरणीयाणं पुधभूदणाणेसु वावदाणं पयडीणमेयत्तं? ण, णाणसामण्णेण सव्वेसिं णाणाणमेयत्तमुवगयाणमावरणाणं पि एयत्ताविरोहादो।

आदि स्थितियोसे इसमे भेद पाया जाता है। अथवा सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थानके अन्तिम समयमे पुद्‌गल परमाणुओंके स्कन्धका जो काल है वह एक स्थिति कहलाती है, क्योकि वह काल एक समय निष्पन्न है। यह स्थिति भी एक स्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि यह दो समय आदि स्थितियोसे भिन्न है। अथवा उसी सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थानके अन्तिम समयमें भिन्न परमाणुओं मे स्थित समयोसे विवक्षित कालसमय पृथक् पाया जाता है। अथवा अपने आधारभूत परमाणुओ मे या पुद्‌गलस्कन्धमें अवस्थित त्रिकालकी विषयभूत अनन्त पर्यायोंसे यह स्थिति पृथक् देखी जाती है, इसलिये इसमें विभक्तिपना बन जाता है। यह कथनी द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षासे की है। तथा जो उत्कृष्ट, एक समय कम उत्कृष्ट और दो समय कम उत्कृष्ट आदिके भेदसे अनेक स्थितियाँ हैं वे भी स्थितिविभक्ति कहलाती हैं, क्योकि इनमे समान और असमान स्थितियोकी अपेक्षा तथा पुद्‌गलपरमाणुओंके भेदकी अपेक्षा भेद पाया जाता है। यह अर्थपद पर्यायार्थिक बुद्धिवाले शिष्योके उपकारके लिये किया है।

§ ३५८. शंका—स्थिति किसे कहते हैं?

समाधान—कर्मरूपसे परिणत हुए पुद्‌गलकर्मस्कन्धोंके कर्मपनेको न छोड़कर रहनेके कालक स्थिति कहते हैं।

उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितिको उत्तर प्रकृतिस्थिति कहते हैं।

शंका—उत्तर प्रकृति किसे कहते हैं?

समाधान—मूल प्रकृतिकी अवान्तर प्रकृतियोंको उत्तरप्रकृति कहते है।

शंका—भिन्न भिन्न ज्ञानोंमें व्यापार करनेवाले मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि-ज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरणरूप प्रकृतियोंमें एकपना कैसे बन सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि ज्ञानसामान्यकी अपेक्षा सभी ज्ञान एक हैं, अतः उनकोआवरण

ॐ एदेण अट्ठपदेण ।

§ ३५६. एदमट्ठपदं कादूण उवरिमचउवीसअणियोगद्दारेहि ट्ठिदिविहत्तीए अणुगमं कस्सामो । तेसिं चउवीसण्हमणिओगद्दाराणं चुण्णिसुत्तम्मि पुव्वं परूविदाणं बालजणाणुग्गहट्ठं पुणरवि णामणिद्देसो कीरदे । तं जहा—अद्धाछेदो-सव्वट्ठिदिविहत्ती णोसव्वट्ठिदिविहत्ती उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती जहण्णट्ठिदिविहत्ती अजहण्णट्ठिदिविहत्ती सादियविहत्ती अणादियविहत्ती धुवट्ठिदिविहत्ती अद्धुवट्ठिदिविहत्ती एयजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं सण्णियासो भावो अप्पाबहुअं चेदि २४ । भुजगार-पदणिक्खेव-वड्ढि-ट्ठाणाणि त्ति एदाणि चत्तारि अणियोगद्दाराणि, एदेहि वि ट्ठिदिविहत्ती परूविज्जदि । अट्ठावीस अणियोगद्दाराणि किण्ण होंति त्ति वुत्ते ण, चउवीसअणिओगद्दारेसु चेव एदेसिमंतब्भावादो । तं जहा—अजहण्णाणुक्कस्स-ट्ठिदिविहत्तीसु भुजगारविहत्ती पविट्ठा तत्थ उक्कस्सणोसक्कणविहाणपरूवणादो । भुजगारविसेसो पदणिक्खेवो, जहण्णुक्कस्सवड्ढिहाणिपरूवणादो । पदणिक्खेव-विसेसो वड्ढी, वड्ढिहाणीणं भेदपरूवणादो । वड्ढिविसेसो ट्ठाणं, तत्थतणअवांतर-भेदपरूवणादो । तदो ट्ठिदिविहत्तीए चउवीस चेव अणियोगद्दाराणि होंति त्ति सिद्धं ।

करनेवाले कर्मोंको भी एक माननेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

* इस अर्थपदके अनुसार स्थितिविभक्तिका अनुगम करते हैं ।

§ ३५६. इस अर्थपदका आलम्बन लेकर आगे कहे जानेवाले चौबीस अनुयोगद्वारोंके द्वारा स्थितिविभक्तिका अनुगम करते हैं । ये चौबीस अनुयोगद्वार चूर्णिसूत्रमें पहले कहे जा चुके हैं फिर भी बालजनोंके उपकारके लिये उनका फिरसे नामनिर्देश करते हैं । जो इस प्रकार है—अद्धाच्छेद, सर्वस्थितिविभक्ति, नोसर्वस्थितिविभक्ति, उत्कृष्टस्थितिविभक्ति, अनुत्कृष्टस्थितिविभक्ति, जघन्यस्थितिविभक्ति, अजघन्यस्थितिविभक्ति, सादिस्थितिविभक्ति, अनादिस्थितिविभक्ति, ध्रुवस्थितिविभक्ति, अध्रुवस्थितिविभक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, सन्निकर्ष, भाव और अल्पबहुत्व ।

शंका—भुजगार, पदनिक्षेप, वृद्धि और स्थान ये चार अनुयोगद्वार और हैं, क्योंकि इनके द्वारा भी स्थितिविभक्तिका कथन किया जायगा, अतः अट्ठाईस अनुयोगद्वार क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि चौबीस अनुयोगद्वारोंमे ही इनका समावेश हो जाता है । यथा—अजघन्य और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तियोंमे भुजगार स्थितिविभक्तिका अन्तर्भाव हो जाता है, क्योंकि उसमें उत्कर्षण और अपकर्षण विधिका कथन किया गया है । तथा भुजगार विशेषको पद निक्षेप कहते है, क्योंकि उसमें जघन्य और उत्कृष्टरूप वृद्धि और हानिका कथन किया गया है । पदनिक्षेप का एक विशेष वृद्धि है, क्योंकि इसमे वृद्धि और हानिके भेदोका कथन किया गया है । तथा वृद्धिका एक विशेष स्थान है, क्योकि इसमें स्थानगत अवान्तर भेदोंका कथन किया गयाहै । इसलिये स्थितिविभक्तिके चौबीस ही अनुयोगद्वार होते हैं यह सिद्ध हुआ ।

❀ पमाणाणुगमो ।

§ ३६०. कीरदे इदि एत्थ अज्झाहारो कायव्वो, अण्णहा सुत्तट्ठाणुववत्तीदो । चवत्रीसअणियोगद्दारेसु ताव उत्तरपयडीणमद्धाछेदं भणामि त्ति वुत्तं होदि । पढम-मद्धाछेदो चेव किमट्ठं वुच्चदे ? ण, अणवगयअद्धाछेदस्स उवरिमअणियोगद्दाराणं परूवणाणुववत्तीदो ।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ पडिवुण्णाओ ।

§ ३६१. एसो अद्धाछेदो एगसमयपवद्धमस्सिदूण परूविदो ण णाणासमय-पवद्धे; तत्थ तिण्णिभंगप्पसंगादो । एगसमयपवद्धस्से त्ति कथं णव्वदे ? अकम्मसरू-वेण ट्ठिदाणं कम्मइयवग्गणक्खंधाणं मिच्छत्तादिपच्चएहि मिच्छत्तकम्मसरूवेण अक्कमेण परिणमिय सव्वजीवपदेसेसु संबंधाणं समयाहियसत्तवाससहस्समादिं कादूण णिरं-तरं समयुत्तरादिकमेण सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीमेत्तट्ठिदिदंसणादो । जम्मि समय-पवद्धे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिकम्मक्खंधा अत्थि तत्थ एगसमयमादिं कादूण जाव सत्तवास-सहस्साणि त्ति एदेसु ट्ठिदिविसेसेसु एगो वि कम्मक्खंधो णत्थि त्ति कुदो णव्वदे ?

❀ अब प्रमाणका अनुगम करते हैं ।

§ ३६०. 'पमाणाणुगमो' इस सूत्रमें 'कीरदे' क्रियाका अध्याहार कर लेना चाहिये, अन्यथा सूत्रका अर्थ नहीं बन सकता है । चौवीस अनुयोगद्वारोंमेंसे पहले उत्तर प्रकृतियोंके अद्धाच्छेद अर्थात् कालका कथन करते हैं यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है ।

शंका—सबसे पहले अद्धाच्छेदका ही कथन किसलिये किया जा रहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अद्धाच्छेदका ज्ञान किये विना आगेके अनुयोगद्वारोंका कथन नहीं बन सकता है, अतः सबसे पहले अद्धाच्छेदका कथन किया जा रहा है ।

❀ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति पूरी सत्तर कोडाकोडी सागर है ।

§ ३६१. यह अद्धाच्छेद एक समयप्रबद्धकी अपेक्षा कहा है नाना समयप्रबद्धोंकी अपेक्षा नहीं, क्योंकि नाना समयप्रबद्धोंकी अपेक्षा अद्धाच्छेदके कथन करने पर तीन भंग प्राप्त होते हैं ।

शंका—यह स्थिति एक समयप्रबद्धकी है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि जो कार्मणवर्गणास्कन्ध अकर्मरूपसे स्थित हैं वे मिथ्यात्वादि कारणोंसे मिथ्यात्वकर्मरूपसे एक साथ परिणत होकर जब सम्पूर्ण जीव प्रदेशोंमें सम्बद्ध हो जाते हैं तब उनकी एक समय अधिक सात हजार वर्षसे लेकर समयोत्तरादि क्रमसे निरन्तर सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति देखी जाती है । इससे जाना जाता है, कि यह स्थिति एक समय-प्रबद्धकी है ।

शंका—जिस समयप्रबद्धमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कर्मस्कन्ध हैं वहाँ प्रथम समयसे लेकर सात हजार वर्ष प्रमाण स्थितिविशेषोंमें एक भी कर्मस्कन्ध नहीं है यह किस प्रमाण

मिच्छत्तस्स सत्तवाससहस्साणि उक्कस्सिया आबाहा आबाहूणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिसेओ त्ति महाबंधसुत्तादो। ण च सव्वासु ट्ठिदीसु सत्तवाससहस्साणि चेव आबाहा होदि त्ति णियमो; एगाबाहाकंदयमेत्तट्ठिदीसुत्तणियमुवलंभादो। आबाहाकंदएणूणउक्कस्सट्ठिदीए समयूणसत्तवाससहस्साणि आबाहा होदि त्ति एवं जाणिदूण णेयव्वं जाव धुवट्ठिदि त्ति।

*** एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं। णवरि अंतोमुहुत्तूणाओ।**

§ ३६२. एदाणि वे वि कम्माणि जेण ण बंधपयडीओ तेण एदासिमुक्कस्सट्ठिदी सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ अंतोमुहुत्तूणाओ होदि। बंधाभावे कथमेदासिं दोण्हं पयडीणमुक्कस्सट्ठिदीए वा समुप्पत्ती? मिच्छत्तसंकमादो। तं जहा—पढमसम्मत्तग्गहणपढमसमए तिहि करणपरिणामेहि तिहाविहत्तमिच्छत्तकम्मंसेण अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा बद्धमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणा अंतोमुहुत्तपडिहग्गेण पुणो सम्मत्त-

---

से जाना जाता है?

समाधान—'मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट आबाधा सात हजार वर्ष प्रमाण है और आबाधासे न्यून कर्मस्थिति प्रमाण कर्मनिषेक हैं' महाबन्धके इस सूत्रसे जाना जाता है कि जिस समयप्रबद्धमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कर्मस्कन्ध हैं वहाँ प्रथम समयसे लेकर सात हजार वर्ष प्रमाण स्थितिके भेदोंमें एक भी कर्मस्कन्ध नहीं है।

यदि कहा जाय कि समस्त स्थितियोंमें सात हजार वर्ष प्रमाण ही आबाधा होती है ऐसा नियम है सो भी बात नहीं है, क्योंकि एक आबाधाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंमें ही उक्त नियम देखा जाता है, अतः आबाधाकाण्डकसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिकी एक समय कम सात हजार वर्ष प्रमाण आबाधा होती है ऐसा समझना चाहिये। आगे भी इसी प्रकार जानकर ध्रुवस्थिति तक ले जाना चाहिये।

*** इसी प्रकार सम्यक्त्व प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थिति है। पर इतनी विशेषता है कि इनकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है।**

§ ३६२ चूंकि ये दोनों ही कर्म बंधते नहीं हैं, इसलिये इनकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर होती है।

शंका—बन्धके नहीं होने पर इन दोनों प्रकृतियोंकी और उनकी उत्कृष्ट स्थितिकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है?

समाधान—मिथ्यात्वका संक्रमण होकर इन दोनों प्रकृतियोंकी और उनकी उत्कृष्ट स्थिति की उत्पत्ति होती है। उसका खुलासा इस प्रकार है—तीन करण परिणामोंके द्वारा जिसने प्रथमोपशम सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके पहले समयमें सत्तामें स्थित मिथ्यात्व कर्मको तीन भागोंमें बांट दिया है ऐसा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव जब उत्कृष्ट स्थितिके साथ मिथ्यात्व कर्मको बांधकर उत्कृष्ट स्थिति बन्धके योग्य उत्कृष्ट संक्लेशपरिणामोंसे निवृत्त होनेमें लगनेवाले अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालके द्वारा पुनः सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही उक्त

ग्गहणपढमसमए चेव पडिग्गहकालेणूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडीमेत्तमिच्छत्तट्ठिदीए सम्मत्तसम्मामिच्छत्तेसु संकामिदाए सम्मत्तसम्मामिच्छात्ताणमुक्कस्सअद्धाछेदो होदि, तेण बंधाभावे वि दोण्हं पयडीणं तदुक्कस्सट्ठिदीणं च अत्थित्तं सिद्धं । पडिहग्गकालो एग-दु-तिसमइओ किण्ण होदि ? ण, संकिलेसादो ओयरिय विसोहीए अंतोमुहुत्तावट्ठाणेण विणा सम्मत्तस्स गहणाणुववत्तीदो ।

प्रतिभग्नकाल अन्तमुहूर्तप्रमाणसे न्यून सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिको सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रान्त कर देता है तब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद होता है, अतः बन्धके नहीं होने पर भी दोनों प्रकृतियोंका और उनकी उत्कृष्ट स्थितिका अस्तित्व सिद्ध होता है।

शंका—प्रतिभग्न कालका प्रमाण एक, दो और तीन समय क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वमें आकर और उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारणभूत संक्लेशसे च्युत होकर और विशुद्धिको प्राप्त करके जब तक उसके साथ जीव मिथ्यात्वमें अन्तमुहूर्तकाल तक नही ठहरता है तब तक उसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं हो सकती है, इसीलिये प्रतिभग्न कालका प्रमाण एक, दो और तीन समय नहीं होता ।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दोनों प्रकृतियां बन्धसे सत्त्वको नहीं प्राप्त होतीं किन्तु मिथ्यात्व का इन दोनों प्रकृतियों रूप से संक्रमण होता है और इसीलिये मोहनीय की बन्ध प्रकृतियां २६ तथा उदय और सत्त्व प्रकृतियां २८ मानी गई हैं । यद्यपि एक सजातीय प्रकृति का दूसरी सजातीय प्रकृतिरूप से संक्रमण दूसरी प्रकृतिके बन्धकाल मे ही होता है ऐसा नियम है पर यह नियम बन्ध प्रकृतियोमें ही लागू होता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोमे नहीं, क्योंकि ये दोनों बन्ध प्रकृतियां नहीं हैं। इनके सम्बन्धमें तो यह नियम है कि जब कोई एक २६ प्रकृतियों की सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है तब वह प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके पहले समयमें मिथ्यात्वके तीन भाग कर देता है जिन्हें क्रमसे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व संज्ञा प्राप्त होती है । पर ऐसे जीवके आयु कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे अधिक नहीं होता है इसलिये ऐसे जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व सम्भव नहीं। अतः ऐसा जीव जब मिथ्यात्व मे चला जाता है और वहां संक्लेशरूप परिणामों के द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदनन्तर अन्तमुहूर्त कालके पश्चात् पुनः वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है तब उसके मिथ्यात्वकी अन्तमुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूपसे संक्रमण हो जाता है और इस प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तमुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण प्राप्त होती है । यहां इतना विशेष समझना चाहिये कि मिथ्यात्वमे जाकर जिस जीवने मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है उसे सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धता प्राप्त करनेके लिये अन्तमुहूर्त से कम काल नहीं लगता है इसलिये यहां मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिमे से अन्तमुहूर्त काल कम किया है । तथा ऐसा जीव वेदकसम्यक्त्वको ही प्राप्त कर सकता है प्रथमोपशम सम्यक्त्वको नहीं, क्योंकि प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले जीवके अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर से अधिक स्थिति नहीं होनी चाहिये ऐसा नियम है ।

*** सोलसण्हं कसायाणमुक्कस्सहिदिविहत्ती चत्तालीससागरोवम-कोडाकोडीओ पडिवुण्णाओ।**

§ ३६३. कुदो? मिच्छाइट्ठिणा उक्कस्ससंकिलिट्ठेण बद्धकम्मइयवग्गणक्खंधाणं सोलसकसायसरूवेण परिणयाणं सयलजीवपदेसुवगयाणं समयाहियचत्तारिवाससहस्स-मादिं कादूण जाव चालीससागरोवमकोडाकोडीओ त्ति कम्मभावेण अवट्ठाणुव-लंभादो। एदेसिं कम्माणं मिच्छत्तुक्कस्सहिदीए समाणा हिदी किण्ण जादा? ण, दंसण-चरित्तविरोहीणं पयडीणं सत्तीए समाणत्तविरोहादो। अविरोहे वा एगा चेव पयडी होज्ज; तासिं भेदकारणाभावादो। ण च एवं; कोहमाणमायालोहादिकज्जभेएण पयडीणं पि भेदसिद्धीदो।

*** एवं णवणोकसायाणं। णवरि आवलिऊणाओ।**

§ ३६४. कुदो, सोलसकसायाणमुक्कस्सहिदिं बंधिय बंधावलियकालं वोलाविय आवलियूणचालीससागरोवमकोडाकोडीमेत्तलोभकसायहिदीए णवणोकसाएसु संकंताए

*** सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति पूरी चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है।**

§ ३६३. **शंका**—सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति पूरी चालीस कोड़ाकोड़ी सागर क्यों है?

समाधान—जब कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंके द्वारा कार्मण-वर्गणास्कन्धोंको बांधकर सोलह कषायरूपसे परिणत करके समस्त जीवप्रदेशोंमें प्राप्त कर लेता है तब एक समय अधिक चार हजार वर्षसे लेकर चालीस कोड़ाकोड़ी सागर तक उन सोलह कषायोंका कर्मरूपसे अवस्थान पाया जाता है, इससे सिद्ध होता है कि सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है। तात्पर्य यह है कि सोहल कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चालीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होता है।

शंका—इन कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समान क्यों नहीं होती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय परस्पर विरोधी प्रकृतियां हैं, अतः उनकी शक्तिको समान माननेसे विरोध आता है। यदि इनमें अविरोध माना जावे तो वे दोनों एक ही प्रकृति हो जायगी, क्योंकि अविरोध मानने पर उनमें भेदका कोई कारण नहीं रहता है। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि क्रोध, मान, माया और लोभ आदि रूप कार्यके भेदसे प्रकृतियोंमें भी परस्पर भेद सिद्ध है, अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समान सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती है।

*** इसी प्रकार नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलीकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है।**

§ ३६४. **शंका**—नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलीकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण क्यों है?

समाधान—सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और बन्धावलि प्रमाण कालको बिताकर क आवली कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण लोभ कषायकी स्थितिके नौ नोकषायों

तेसिमावलियूणकसायुक्कस्सहिदिदंसणादो । णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाए-मुक्कस्ससंकिलेसेण बंधपाओग्गाणं सोलसकसायाणं व चत्तालीससागरोवमकोडाकोडी-मेत्तो हिदिबंधो किएण होदि ? ण, कसायणोकसायाणं पुधभूदजादीणं हिदिभेदे संते विरोहाभावादो । इत्थि-पुरिस-हस्स-रदीणं पडिहग्गकालम्मि बज्झमाणाणं कथमावलि-यूणा कसायाणमुक्कस्सहिदी होदि ? ण, पडिहग्गपढमसमए चेव बज्झमाणेसु चदुसु कम्मेसु बंधावलियादिक्कंतकसायकम्मक्खंधाणमावलियूणउक्कस्सहिदीणं संकंतिदंस-णादो । एदाणि चत्तारि वि कम्माणि उक्कस्ससंकिलेसेण किण्ण बज्झंति ? ण, साहावियादो ।

मे संक्रान्त हो जाने पर नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवली कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर देखी जाती है, अतः नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति उक्त प्रमाण बन जाती है।

शंका—उत्कृष्ट संक्लेशसे बंधनेके योग्य जो नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा प्रकृतियां हैं उनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सोलह कषायोंके समान पूरा चालीस कोड़ाकोड़ी सागर क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कषाय और नोकषाय ये पृथक् जातिकी प्रकृतियाँ हैं, इसलिये इनके स्थिति भेदके रहनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका—प्रतिभग्न कालमें बंधनेवालीं स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रति इन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवली कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कैसे हो सकती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रतिभग्न कालके पहले समयमें ही बंधनेवाली इन चार प्रकृतियोंमें बन्धावलिके सिवा शेष कर्मस्कन्धोंकी एक आवली कम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण देखा जाता है, अतः इनकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवली कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण हो जाती है।

शंका—ये स्त्रीवेद आदि चारों कर्म उत्कृष्ट संक्लेशसे क्यों नहीं बंधते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेशसे नहीं बंधनेका इनका स्वभाव है।

विशेषार्थ—बन्धसे स्त्रीवेदकी १५ कोड़ाकोड़ी सागर, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और नपुंसकवेदकी २० कोड़ाकोड़ी सागर तथा हास्य, रति और पुरुषवेदकी १० कोड़ाकोड़ी सागर उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है किन्तु जब कषायो की उत्कृष्ट स्थितिका नौ नोकषायरूपसे संक्रमण होता है तब इनकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलिकम ४० कोड़ाकोड़ी सागर हो जाती है। तत्काल बंधे हुए कर्मका एक आवलि काल तक संक्रमण नहीं होता अतः ४० कोड़ाकोड़ी सागरमें से एक आवलि कम कर दी गई है। किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट संक्लेशसे होनेवाले कषायकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन पांच प्रकृतियोका ही बन्ध होता है, अतः बन्धकालके भीतर ही इनमें एक आवलिके पश्चात् कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण प्रारम्भ हो जाता है। तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिका बन्ध उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे नहीं होता अतः कषायकी उत्कृष्ट स्थिति बन्धके उपरत होने पर एक आवलिके पश्चात् इनमें कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण होता है क्योंकि उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंके निवृत्त होने के पहले समयसे ही इन स्त्रीवेद आदि चार प्रकृतियोंका बन्ध होने लगता है और इसलिये एक

*** एवं सव्वासु गदीसु णेयव्वो ।**

§ ३६५. जहा ओघेण अद्धाछेदो परूविदो तहा सव्वासु गदीसु णेदव्वो त्ति। एवं जइवसहाइरिएण सव्वासु मग्गणासु सूचिदमुक्कस्सट्ठिदिअद्धच्छेदमुच्चारणाइरिएण मंदबुद्धिजणाणुग्गहट्ठमेसुद्दे से परूविदं वत्तइस्सामो ।

§ ३६६. तं जहा—सत्तण्हं पुढवीणं तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०-पज्ज०-पंचिं०तिरिक्खजोणिणी-मणुसतिय०-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचलेस्सा०-भवसिद्धि०-अभवसिद्धि०-मिच्छाइ०-सण्णि-आहारीणमोघभंगो ।

§ ३६७. पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्स-

---

आवलिके पश्चात् इनमें कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमित होने में कोई बाधा नहीं आती है। यहां इतना और विशेष जानना चाहिए कि बन्धावलिके बाद यद्यपि कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका नौ नोकषायरूपसे संक्रमण तो होता है पर उदयावलिप्रमाण निषेकोंको छोड़कर ऊपरके निषेकोंमें स्थित कर्मपरमाणुका ही संक्रमण होता है। इस प्रकार बन्धावलि और उदयावलि इन दो अवलिप्रमाण निषेक असंक्रमित ही रहते हैं। इसलिये संक्रमणकी अपेक्षा नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो आवलिकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण और सत्त्वकी अपेक्षा एक आवलिकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण पाई जाती है, क्योंकि जिस समय कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण होता है उस समय उदयावलिप्रमाण निषेकोंको छोड़कर शेषका होता है। पर नौ नोकषायोंकी सत्ता संक्रमणके पहले भी थी अतः पूर्वसत्ताके उदयावलि प्रमाण निषेकोंको मिला देने पर एक आवलिकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थिति प्राप्त हो जाती है।

*** इसी प्रकार सभी गतियोंमें जानना चाहिये ।**

§ ३६५. जिस प्रकार ओघसे मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंका अद्धाच्छेद कहा है उसी प्रकार सभी गतियोंमें जानना चाहिये। इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यने जो सम्पूर्ण मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिका प्रमाण सूचित किया है जिसका कि प्ररूपण उच्चारणाचार्यने मन्दबुद्धिजनोंके अनुग्रहके लिये इसी प्रकरणमें किया है उसे बतलाते हैं।

§ ३६६. वह इस प्रकार है—सातों नरक, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिमती, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचो मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके ओघके समान भंग है। अर्थात् ओघसे जिस प्रकार मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी स्थितिका कथन कर आये हैं उसी प्रकार इन पूर्वोक्त मार्गणाओंमें भी जानना चाहिये।

§ ३६७. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मकी

ट्ठिदिअद्धाछेदो सत्तरि सागरोवमकोडाकोडीओ अंतोमुहुत्तूणाओ। सोलसकसाय-णव-णोकसायाणं उक्कस्सअद्धाछेदो चत्तालीससागरोवमकोडाकोडीओ अंतोमुहुत्तूणाओ। एवं मणुसअपज्ज-बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-अपज्ज०-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ-पज्जत्तापज्जत्त-सव्वतेउ०-सव्ववाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअपज्ज०-सुहुमवणप्फदि०-पज्जत्तापज्जत्त-सव्वणिगोद-तसअपज्ज०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-ओहिदंस०-सुक्कलेस्सा-सम्मादि०-वेदय०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति।

§ ३६८. आणदादि जाव सव्वट्ठ० सव्वपयडीणमुक्क० अद्धाछेदो अंतोकोडा-कोडी०। एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-खइय-उवसम०-सासणसम्मा-दिट्ठि त्ति।

§ ३६९. एइंदिएसु मिच्छत्तुक्क० सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीओ समऊणाओ। सम्मत्तसम्मामिच्छत्तणवणोकसायाणमोघं। सोलसक० उक्क० चत्तालीस० कोडाकोडीओ समयूणाओ। एवं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्ज०-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविपज्ज०-आउ०-बादरआउ०-बादरआउपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेय०-बादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज०-

---

उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। तथा सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, बादर जलकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्तक, सब अग्निकायिक, सब वायुकायिक, बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर अपर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पति, सूक्ष्म वनस्पति पर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पति अपर्याप्तक, सब निगोद, त्रस अपर्याप्तक, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३६८. आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सभी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होती है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशम-सम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

§ ३६९. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति ओघके समान है। तथा सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर,

ओरालि०-वेउव्वियमि०-कम्मइय०-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

एवमुक्कस्सट्ठिदिअद्धाछेदो समत्तो ।

बादर वनस्पति प्रत्येकशरीर पर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मण-काययोगी, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ पहले ओघके अनुसार जिन मार्गणाओंमें २८ प्रकृतियोंका अद्धाच्छेद है उनका मूलमें उल्लेख करके जिन मार्गणाओंमें विशेषता है उनका अलगसे निर्देश किया है। खुलासा इस प्रकार है—जिसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है वह एक अन्तर्मुहूर्तके बाद ही स्थितिघात किये बिना पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हो सकता है, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर कहा है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकके सम्यक्त्व और सम्य-ग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर जाननी चाहिये, क्योंकि जिस जीवने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त किया है वह जीव जब अति लघुकालके द्वारा लौट कर मिथ्यात्वमें आता है और स्थितिघात किये बिना मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकमें उत्पन्न होता है तब उसके पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक अवस्थामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है। यहां मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे लेकर पुनः मिथ्यात्वमें आकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकमें उत्पन्न होने तकके कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्त ही लेना चाहिये तभी पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति उक्त प्रमाण बन सकती है। तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवके जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर घटित कर लेनी चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सोलह कषायों की उत्कृष्ट स्थिति बन्धकी अपेक्षा और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति संक्रमकी अपेक्षा घटित करनी चाहिये। मूलमें मनुष्य अपर्याप्तक आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति जाननी चाहिये। किन्तु सम्यग्दर्शनसे सम्बन्ध रखनेवाली आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति कहते समय वेदकसम्यक्त्वसे पुनः मिथ्यात्वमें नहीं ले जाना चाहिये। किन्तु वेदकसम्यक्त्वके प्राप्त होनेके पहले समयमें ही उनके सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये। हां सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके वेदकसम्यक्त्वसे अतिशीघ्र सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त कराके पहले समयमें सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये। आनतादि चार कल्पोंमें यदि अविरती उत्पन्न होता है तो द्रव्यलिंगी मुनि ही उत्पन्न होता है। यही बात नौ ग्रैवेयकोंकी भी है, अतः इनके सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे अधिक नहीं होती। मूलमें आहारककाय-योगी आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमे उत्कृष्ट स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे अधिक नहीं होती यह स्पष्ट ही है। हां सूक्ष्मसाम्परायिक और यथाख्यातसंयतके जो उत्कृष्ट स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर बतलाई है वह उपशामककी अपेक्षा जाननी चाहिये। जिसने मिथ्यात्व या सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है वह दूसरे समय में मर कर मूलमे कही गई एकेन्द्रियादि मार्गणाओमे उत्पन्न हो सकता है अतः उक्त मार्गणाओंमें मिथ्यात्वकी एक समय कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर और सोलह कषायों की एक समय कम

* एत्तो जहण्णयं ।

§ ३७०. एदम्हादो उवरि जहण्णयमद्धाच्छेदं वत्तइस्सामो त्ति मंदमेहाविजण-

---

चालीस कोड़ाकोड़ी सागर उत्कृष्ट स्थिति बन जाती है। किन्तु एकेन्द्रियसे लेकर बादर वनस्पति प्रत्येक शरीर पर्याप्त तक मार्गणाओंमें और असंज्ञी मार्गणामें देव पर्यायसे च्युत हुए जीवको उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये। औदारिक मिश्रकाययोगमें देव और नारक पर्यायसे च्युत हुए जीव को उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें मनुष्य और तिर्यंच पर्यायसे च्युत हुए जीवको नरकमें उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये। कार्मणकाययोग और अनाहारकमें उत्कृष्ट स्थिति कहते समय चारों गतिसे मरे हुए जीवको तिर्यंच और नारकियोंमें उत्पन्न कराकर उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये। तथा इतनी और विशेषता है कि इन सब मार्गणाओंमें भवके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व होगा। तथा एकेन्द्रियसे लेकर बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्तक तक उपर्युक्त मार्गणाओंमें और असंज्ञी मार्गणामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व इस प्रकार घटित कर लेना चाहिये कि भवनत्रिक व सौधर्म कल्पतक के किसी एक जीवने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् वेदक सम्यक्त्व प्राप्त किया। पुनः अति लघु कालके द्वारा वह मिथ्यात्वमें गया और वहां अन्तर्मुहूर्त काल तक रह कर सम्यक्त्व और सम्यमिथ्यात्वका स्थिति काण्डकघात किये बिना एकेन्द्रियादिक उक्त मार्गणाओंमें से किसी एकमें उत्पन्न हो गया तो उसके उत्पन्न होनेके पहले समय में सम्यकत्व और सम्यग्मिथ्यात्त्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व प्राप्त होता है। इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेपता है कि देव और नारक पर्यायसे वेदकसम्यकत्वके साथ आकर जो औदारिकमिश्रकाययोगी होता है उसके ही भवके पहले समयमें सम्यक्त्व और सम्यमिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व होता है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कहते समय मनुष्य और तिर्यंच पर्यायसे नारकियोंमें उत्पन्न कराकर भवके पहले समयमें ही कहना चाहिये। किन्तु ऐसे जीवको तिर्यंच और मनुष्य पर्यायमें रहते हुए वेदकसम्यक्त्व उत्पन्न कराकर मिथ्यात्वमें ले जाना चाहिये और तब नरकमें वैक्रियिकमिश्रकाययोगके साथ उत्पन्न कराना चाहिये। तथा कार्मणकाययोग और अनाहारक मार्गणामें सम्यक्त्व और सम्मग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व औदारिकमिश्रकाययोगके समान घटित कर कहना चाहिये। तथा नौ नोकषायों का उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व मिथ्यात्व और सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके समान घटित करके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व उस मार्गणा में भवके पहले समयसे लेकर एक आवलिकाल तक प्राप्त हो सकता है; क्योंकि जिस जीवने सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर एक आवलि कालके पश्चात् मरण किया उसके भवके पहले समयमें नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व प्राप्त होगा और जो दूसरे समयमें मर गया उसके एक आवलिकालके पश्चात् उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व प्राप्त होगा। इसीप्रकार एक समयसे लेकर आवलितकके मध्यम विकल्प जानने चाहिये।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिअद्धाच्छेद समाप्त हुआ।

* इसके आगे जघन्य स्थिति अद्धाच्छेदको बतलाते हैं।

§ ३७०. इस उत्कृष्ट स्थितिअद्धाच्छेदके आगे जघन्य स्थिति अद्धाच्छेदको बतलाते हैं।

संभालणट्ठं परूविदमेदं ।

*** मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती एगा ट्ठिदी दुसमयकालट्ठिदिया ।**

§ ३७१. कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदो त्ति एदे दंसण-मोहक्खवणाए पाओग्गा। एदेसिं चदुण्हं गुणट्ठाणाणमण्णदरेण पुव्वमेव खविदअणंताणुबंधि-चउक्केण दंसणमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदेण अधापवत्तकरणद्धाए अणंतगुणाए विसी-हीए वड्ढिमुवगएण अप्पसत्थाणं कम्माणं समयंतरादीदअणुभागबंधं पडुच्च बद्धअणंत-गुणहीणाणुभागेण पसत्थाणं कम्माणमणंतरादीदअणुभागबंधादो बद्धअणंतगुणाणु-भागेण ट्ठिदिअणुभागखंडयघादविवज्जिएण दंसणमोहणीयक्खवणाए गुणसेढिपदेस-णिज्जरुम्मुक्केण अपुव्वकरणद्धाए पढमसमए आढत्तट्ठिदिअणुभागखंडयघादेण तत्थेवाढत्त-पदेसगुणसेढिणिज्जरेण बंधविरहिदअप्पसत्थमिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणमाढत्तगुणसंकमेण अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जसहस्सट्ठिदिकंडयाणि ट्ठिदिकंडएहिंतो संखेज्जगुणाणुभागकंड-याणि च पाडिय संखेज्जसहस्सट्ठिदिबंधोसरणाहि ओसरिय गुणसेढिणिज्जराए कम्म-क्खंधे गालिय अणियट्टिकरणं पविट्ठेण तत्थ वि अणियट्टिअद्धाए ट्ठिदिकंडयअणुभाग-

---

यह सूत्र मन्दबुद्धि जनोंके सम्हालनेके लिये कहा है ।

*** मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी एक स्थिति जघन्य स्थितिविभक्ति होती है, जिसका स्थितिकाल दो समय है ।**

§ ३७१. **शंका**—उक्त मिथ्यात्वादि कर्मोंकी दो समय कालवाली एक स्थिति जघन्य स्थितिविभक्ति क्यों होती है ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक ये चार गुणस्थानवर्ती जीव दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके योग्य होते हैं । इनमेंसे पहले जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्कका क्षय कर दिया है ऐसा इन चार गुणस्थानोंमें रहनेवाला कोई एक जीव जब दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके लिये उद्यत होता है तब वह अधःप्रवृत्तकरणके कालमें अनन्तगुणी विशुद्धिके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होता हुआ अप्रशस्त कर्मोंके अनुभागको अपने पूर्वसमयवर्ती अनुभागबन्धकी अपेक्षा अनन्तगुणा हीन बाँधता है और प्रशस्त कर्मोंके अनुभागको अपने पूर्व समयवर्ती अनुभागबन्धकी अपेक्षा अनन्त-गुणा अधिक बाँधता है । पर इसके यहाँ स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात नहीं होते हैं और न दर्शनमोहनीयकी क्षपणामें होनेवाली गुणश्रेणी क्रमसे कर्मप्रदेशोंकी निर्जरा ही होती है । तथा जब वह अपूर्वकरणको प्राप्त होता है तब वह उसके पहले समयमें ही स्थिति-काण्डकघात और अनुभागकाण्डकघातका आरम्भ कर देता है । तथा यहींसे कर्मप्रदेशोंकी गुण-श्रेणी निर्जरा चालू हो जाती है और जिनका बन्ध नहीं होता ऐसे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो अप्रशस्त कर्मोंका गुणसंक्रम प्रारम्भ हो जाता है । तथा इस जीवके अपूर्वकरणके कालमें संख्यात हजार स्थितिकाण्डकघात और स्थितिकाण्डकघातोंसे संख्यातगुणे अनुभागकाण्डकघात होते हैं तथा संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरण होते हैं । इस प्रकार यह जीव गुणश्रेणी निर्जराके द्वारा कर्मस्कन्धोंका नाश करता हुआ अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश करता है । वहाँ अनिवृत्तिकरणके

कंडयसहस्साणि घादिय समयं पडि असंखेज्जगुणाए सेढीए कम्मक्खंधे गालिय अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु मिच्छत्तचरिमफालिं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तमुदयावलियादो बाहिरिल्लयं घेत्तूण सम्मत्तसम्मामिच्छत्तेसु संकामेंतेण उव्वराविदसमऊणुदयावलियमेत्तट्ठिदीसु थिउक्कसंकमेण संकमंतीसु मिच्छत्तेयणिसेयणिसेयट्ठिदीए दुसमयकालट्ठिदीए उवलंभादो। कथमणंताणं परमाणूणं ठिदिववएसो? ण, आहारे आहेओवयारादो। कथमेयत्तं? ण, दुसमयकालावट्ठाणेण समाणाणमेयत्ताविरोहादो।

§ ३७२. एवं सम्मामिच्छत्तबारसकसायाणं पि वत्तव्व। णवरि अप्पप्पणो चरिमफालीओ परसरूवेण संछुहिय उदयावलियपविट्ठणिसेयट्ठिदीओ थिवुक्कसंकमेण संकामिय एयणिसेयट्ठिदीए दुसमयकालाए सेसाए जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि त्ति वत्तव्वं। एदेसिं सव्वकम्माणं सगसगअणियट्टिअद्धासु संखेज्जेसु भागेसु गदेसु चरिमफालीओ पदंति। अणंताणुबंधिचउक्कस्स पुण अणियट्टिअद्धाए चरिमसमए चरिमफाली पददि

कालमें भी यह जीव हजारों स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकोंका घात करके प्रतिसमय असंख्यातगुणी श्रेणी रूपसे कर्मस्कन्धोका नाश करता है और इस प्रकार जब यह जीव अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभागको व्यतीत कर देता है तब वह पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिको उदयावलिके बाहरसे ग्रहण करके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रान्त करता है और उदयावलिप्रमाण जो निषेक शेष रहे हैं उनमेंसे एक समय कम उदयावलिप्रमाण स्थितिको भी स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा (सम्यक्त्वप्रकृतिमें) संक्रान्त कर देता है। तब इस जीवके मिथ्यात्वके एक निषेककी दो समयप्रमाण निषेकस्थिति प्राप्त होती है।

शंका—अनन्त परमाणुओंको स्थिति संज्ञा कैसे प्राप्त होती है?

समाधान—आधारमें आधेयके उपचारसे अनन्त परमाणुओंको स्थितिसंज्ञा प्राप्त हो जाती है?

शंका—ये एक कैसे हो सकते हैं?

समाधान—नहीं क्योंकि दो समय काल तक रहनेके कारण इनमें समानता है, इसलिये इनको एक माननेमें कोई विरोध नहीं है।

§ ३७२. जिस प्रकार मिथ्यात्वकी एक जघन्य स्थिति दो समय प्रमाण कही उसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी भी कहनी चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी अन्तिम फालिको पररूपसे संक्रमित करके तथा उदयावलिमें स्थित निषेकोंकी स्थितिको स्तिवुक संक्रमणके द्वारा संक्रामित करके जो दो समय प्रमाण एक निषेककी स्थिति शेष रहती है वह उक्त कर्मोकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है प्रकृतमें ऐसा कथन करना चाहिये। इन सभी कर्मोंकी अपने अपने अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभाग व्यतीत होने पर अन्तिम फालियोंका पतन होता है। परन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अन्तिम फालिका पतन अनिवृत्तिकरणके कालके

त्ति घेत्तव्वं । कुदो ? साहावियादो । सम्मामिच्छत्तस्स उव्वेल्लणाए वि जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि । चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए पदिदाए तत्थ वि दुसमयकालेगणिसेगट्ठिदीए उवलंभादो ।

*** सम्मत्त-लोहसंजलण-इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती एगा ट्ठिदी एगसमयकालट्ठिदिया ।**

§ ३७३. सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी एगसमयकालपमाणा जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि त्ति जं सुत्ते भणिदं तस्स विवरणं कस्सामो । तं जहा—सम्मामिच्छत्तचरिमफालियाए सम्मत्तम्मि संकामिदाए सम्मत्तस्स अट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मं होदि । पुणो एवंविहट्ठिदिसंतकम्ममंतोमुहुत्तमेत्तट्ठिदिकंडयपमाणेण घादयमाणो सम्मत्तस्स अणुसमयओवट्टणं च कुणमाणो ताव गच्छदि जाव संखेज्जट्ठिदिकंडयसहस्साणि गदाणि त्ति । तदो तेसु गदेसु सम्मत्तचरिमफालिमागाएंतो कदकरणिज्जकालमेत्ताओ ट्ठिदीओ मोत्तूण आगाएदि । पुणो तं घेत्तूण गुणसेढिणिक्खेवेण णिक्खिवंते अणियट्टिकरणं समप्पदि । तदो अणुसमयमोवट्टणं करेमाणो उदयावलियपविट्ठट्ठिदीओ ताव गालेदि जाव एगा ट्ठिदी एगसमयकालपमाणा उदयम्मि ट्ठिदा त्ति । ताधे सम्मत्तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि । सम्मा-

---

अन्तिम समयमें प्राप्त होता है ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि इनका ऐसा स्वभाव है। तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें भी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है, क्योंकि अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिके पतन होने पर वहां भी एक निषेककी दो समय प्रमाण स्थिति पाई जाती है।

*** सम्यक्त्व, लोभसंज्वलन, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी एक स्थिति जघन्य स्थिति विभक्ति होती है, जिसका स्थितिकाल एक समय है ।**

§ ३७३. सम्यक्त्वकी एक स्थिति एक समय प्रमाण काल तक रहनेवाली जघन्य स्थिति विभक्ति होती है, इस प्रकार जो सूत्रमें कहा है, अब उसका विवरण करेंगे। जो इस प्रकार है—जब सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिका संक्रमण सम्यक्त्वमें होता है तब सम्यक्त्वका आठ वर्ष प्रमाण स्थिति सत्कर्म होता है। पुनः यह जीव सम्यक्त्वके इस प्रकार स्थित स्थितिसत्कर्मका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिकाण्डकके द्वारा घात करता हुआ और प्रत्येक समयमें अपवर्तना करता हुआ तब तक जाता है जब जाकर संख्यात हजार स्थितिकाण्डक व्यतीत हो जाते हैं। तदनन्तर उन संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत होने पर यह जीव सम्यक्त्वकी अन्तिम फालिको प्राप्त होता हुआ उसमेंसे कृतकृत्यवेदकके काल प्रमाण स्थितियोंको छोड़कर शेषको ग्रहण करता है। पुनः इसके कृतकृत्यवेदक कालप्रमाण स्थितियोंको छोड़कर और शेषको ग्रहण करके उनका गुणश्रेणीरूपसे निक्षेप कर देने पर अनिवृत्तिकरण समाप्त होता है। तदनन्तर उनका प्रत्येक समयमें अपवर्तन करता हुआ उदयावलिमें स्थित स्थितियोंकी तब तक निर्जरा करता है जब जाकर उदयमें स्थित एक स्थिति एक समय काल प्रमाण प्राप्त होती है। और इसी समय सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है।

मिच्छत्तादीणं जहण्णट्ठिदी एगसमयकालपमाणा त्ति किण्ण परूविदं ? ण, मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसकसायाणं सम्मत्तस्सेव सोदएण क्खवणाभावादो।

§ ३७४. संपहि लोहसंजलणस्स जहण्णट्ठिदी वुच्चदे। तं जहा—अप्पणो बादर-किट्टीओ वेदिय तदो तदियकिट्टिं वेदयमाणो सुहुमसांपराइयअद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण लोभचरिमफालिमागाएंतो सुहुमसांपराइयअद्धाए सेसं सगद्धाए संखेज्जदिभागं मोत्तूण आगाएदि। पुणो तं चरिमफालिदव्वं घेत्तूण गुणसेढिकमेण उदयादि णिक्खिविय तदो जहाकमेण सेसगोवुच्छाओ गालिय एगट्ठिदीए उदयगदाए एगसमयकालपमाणाए सेसाए लोभसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि।

§ ३७५. इत्थिवेदस्स एगा ट्ठिदी एगसमयकालपमाणा जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि त्ति जं भणिदं तस्स विवरणं कस्सामो। तं जहा—इत्थिवेदोदएण खवगसेढिं चडिय तदो विदियट्ठिदीए ट्ठिदमित्थिवेदचरिमफालिं दुचरिमसमयसवेदएण घेत्तूण पुरिसवेद-सरूवेण संकामिदे सवेदियचरिमसमयम्मि एगा ट्ठिदी एगसमयकालपमाणा सुद्धा अवचिट्ठदि ताधे इत्थिवेदस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि।

§ ३७६. संपहि णवुंसयवेदस्स वुच्चदे। तं जहा—णवुंसयवेदोदएण जो खवग-

---

शंका—सम्यग्मिथ्यात्व आदिककी जघन्य स्थिति एक समय कालप्रमाण क्यों नहीं कही ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषायोंका सम्यक्त्वके समान स्वोदयसे क्षपण नहीं होता, इसलिये उनकी जघन्य स्थिति एक समय कालप्रमाण नहीं कही।

§ ३७४. अब लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थिति कहते हैं। वह इस प्रकार है—लोभसंज्वलन-वाला जीव अपनी बादर कृष्टियोंका वेदन करके तदनन्तर तीसरी कृष्टिका वेदन करता हुआ सूक्ष्मसांपरायिकगुणस्थानके कालमें संख्यात बहुभागप्रमाण कालको व्यतीत करके लोभकी अन्तिम फालिको ग्रहण करता हुआ सूक्ष्मसंपरायके कालमें अपने कालके अर्थात् लोभकी अन्तिम फालिके कालके संख्यातवें भागप्रमाण निषेकोंको छोड़कर शेष निषेकोंको ग्रहण करता है। पुनः उस अन्तिम फालिके द्रव्यको ग्रहण करके और उसे गुणश्रेणीक्रमसे उदय कालसे लेकरके निक्षिप्त करके तदनन्तर यथाक्रमसे शेष गोपुच्छको गलाता है तब जाकर उदय प्राप्त एक स्थितिकी एक समय कालप्रमाण स्थितिके शेष रहने पर लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

§ ३७५. अब स्त्रीवेदकी एक स्थिति एक समय कालप्रमाण जघन्य स्थितिविभक्ति होती है यह जो पहले कह आये हैं उसका विवरण करेंगे। वह इस प्रकार है—

स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़कर तदनन्तर सवेदक जीवके द्वारा द्विचरम समयमें द्वितीय स्थितिमें स्थित स्त्रीवेदकी अन्तिम फालिका पुरुषवेदरूपसे संक्रमण कर देने पर जब सवेद भागके अन्तिम समयमें एक समय कालप्रमाण एक स्थिति शुद्ध शेष रहती है तब स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

§ ३७६. अब नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति कहते है। वह इस प्रकार है—जो नपुंसकवेदके

सेढिमारूढो तेण सवेदियदुचरिमसमए इत्थिणवुंसयवेदचरिमफालीसु सव्वसंकमेण पुरिसवेदे संकामिदासु तदो सवेदियचरिमसमए णवुंसयवेदस्स एगा ट्ठिदी एगसमय-कालपमाणा पत्तोदया सुद्धा चिट्ठदि। ताधे णवुंसयवेदस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि।

* कोहसंजलणस जहण्णट्ठिदिविहत्ती वे मासा अंतोमुहुत्तूणा।

§ ३७७. कुदो? चरित्तमोहक्खवएण कोधसंजलणवेकिट्टीओ खविय कोध-तदियकिट्टिं खवेमाणेण तिस्से पढमट्ठिदीए समयाहियावलियाए सेसाए कोधसंजलणस्स जहण्णबंधे संपुण्णवेमासमेत्ते पबद्धे ताधे समयूणदोआवलियमेत्ता समयपबद्धा सुद्धा कोहस्स चिट्ठंत्ति। तम्मि समए उप्पादाणुच्छेदेण कोहचिराणसंतकम्मचरिमफालीए णिस्सेसविणासुवलंभादो। तदो बंधावलियाए वदिक्कंताए समऊणावलियमेत्तफालीसु परसरूवेण संकामिदासु दुसमयूणदोआवलियमेत्तसमयपबद्धेसु णिस्सेसं परसरूवेण गदेसु ताधे समयूणदोआवलियाहि ऊणवेमासमेत्ता कोधचरिमसमयपबद्धस्स ट्ठिदी थक्कदि; ताधे कोधसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिदंसणादो। समयूणदोआवलियाहि ऊण-वेमासमेत्ता कोधजहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि त्ति अभणिय वेमासा अंतोमुहुत्तूणा त्ति भणिदं कथमेदं घडदे? ण, वेमासअब्भंतरआवाहाए अंतोमुहुत्तपमाणाए कम्मणिसेगा-

उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़ा है वह जब सवेद भागके द्विचरम समयमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी अन्तिम फालियोंका सर्वसंक्रमणके द्वारा पुरुषवेदमें संक्रमण कर देता है तब सवेद भागके अन्तिम समयमें नपुंसकवेदकी उदयगत एक स्थिति एक समय कालप्रमाण शुद्ध शेष रहती है और तभी नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है।

* क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति अन्तमुहूर्त कम दो महीना है।

§ ३७७. शंका—क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति अन्तमुहूर्त कम दो महीना क्यों है?

समाधान—चारित्रमोहनीयके क्षयके साथ क्रोधसंज्वलनकी दो कृष्टियोंका क्षय करके क्रोधकी तीसरी कृष्टिका क्षय करते हुए उसकी प्रथम स्थितिके एक समय अधिक आवली प्रमाण शेष रहने पर क्रोधसंज्वलनका जघन्य बन्ध पूरा दो महीना होता है और उस समय क्रोधके केवल एक समय कम दो आवली काल प्रमाण समयप्रबद्ध शेष रहते हैं। तथा उसी समय उत्पादानुच्छेद की अपेक्षा क्रोधकी प्राचीन सत्तामें स्थित अन्तिम फालिका पूरा विनाश प्राप्त होता है। तदनन्तर बन्धावलिके व्यतीत होने पर एक समय कम आवलि प्रमाण फालियोंके पररूपसे संक्रमित होने पर तथा दो समय कम दो आवली प्रमाण समयप्रबद्धोंके पूरी तरह पररूपसे प्राप्त होने पर उस समय एक समय कम दो आवलियोसे न्यून दो महीना प्रमाण क्रोधके अन्तिम समयप्रबद्धकी स्थिति शेष रहती है; क्योंकि उसी समय क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थिति देखी जाती है।

शंका—क्रोधसंज्वलनकी एक समय कम दो आवलियोंसे न्यून दो महीना प्रमाण जघन्य स्थिति होती है ऐसा न कहकर जो अन्तमुहूर्त कम दो महीना जघन्य स्थिति कही है सो यह कैसे बन सकती है?

१ अप्रतौ दुसमयूणादो-इति पाठः। २ अप्रतौ णिस्सेणं इति पाठः।

भावेण अंतोमुहुत्तूणं वेमासत्तुवत्तीदो। कथं णिसेयाणं ट्ठिदिववएसो? ण, णिसेयादो पुधभूदकालाभावेण णिसेयाणं ट्ठिदित्ताविरोहादो। एत्थ कालो पहाणो किण्ण कदो? ण, कम्मपरूवणाए कालस्स पहाणत्ताभावादो। जहा सम्मामिच्छत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकालपमाणा जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि त्ति भणिदं तहा एत्थ वि अंतोमुहुत्तूण-वेमासमेत्तट्ठिदीओ समयूणवेआवलिऊणवेमासकालपमाणाओ त्ति किण्ण परूविदं? ण, चरिमणिसेयं मोत्तूण सेसणिसेयाणमेम्महंतकालाभावादो। उवदेसेण विणा वि णिसेयाणं कालो अवगम्मदि त्ति वा सुत्ते ण भणिदो।

*** माणसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती मासो अंतोमुहुत्तूणो।**

§ ३७८. कुदो? माणवेकिट्टीओ खविय तदियकिट्टिं वेदयमाणस्स तिस्से तदियकिट्टीपढमट्ठिदीए समयाहियावलियसेसाए माणचरिमट्ठिदिबंधो मासमेत्तो। तत्तो उवरि समऊणदोआवलियमेत्तद्धाणे चडिदे चरिमसमयपबद्धट्ठिदीए अंतोमुहुत्तूणमास-मेत्तणिसेगाणमुवलंभादो। जदि णिसेगट्ठिदीओ चेव घेत्तूण जहण्णट्ठिदिविहत्ती वुच्चदि

समाधान—नहीं, क्योंकि दो मास प्रमाण स्थितिके भीतर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आबाधा-कालमें कर्मनिषेक नहीं होनेसे जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम दो महीना बन जाती है।

शंका—निषेकोंकी स्थिति संज्ञा कैसे हो सकती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि निषेकोसे काल पृथग्भूत नहीं पाया जाता है अतः निषेकोंकी स्थिति संज्ञा होनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका—यहाँ पर कालको प्रधान क्यो नहीं किया है?

समाधान—नहीं, क्योंकि कर्मोंकी प्ररूपणामें कालको प्रधानता नहीं प्राप्त होती है।

शंका—जिस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी दो समय कालवाली एक स्थिति जघन्य स्थिति विभक्ति होती है ऐसा कहा है उसी प्रकार यहाँ भी अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना प्रमाण स्थितियाँ एक समय कम दो आवलियोंसे न्यून दो महीना काल प्रमाण होती हैं ऐसा क्यों नहीं कहा?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्तिम निषेकको छोड़कर शेष निषेकोंका इतना बड़ा काल नहीं पाया जाता है। अथवा उपदेशके विना भी निषेकोंका काल जाना जाता है इसलिये सूत्रमें नहीं कहा है।

*** मान संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति अन्तर्मुहूर्त कम एक महीना है।**

§ ३७८. **शंका**—मानसंज्वलनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम एक महीना क्यों है?

समाधान—मानकी दो कृष्टियोंका क्षय करके तीसरी कृष्टिका वेदन करनेवाले जीवके उस तीसरी कृष्टिकी प्रथम स्थिति एक समय अधिक आवलीप्रमाण शेष रहने पर मानका अन्तिम स्थितिबन्ध एक महीना प्रमाण होता है। तदनन्तर एक समय कम दो आवली प्रमाण स्थान जाने पर अन्तिम समयप्रबद्धकी स्थितिके निषेक अन्तर्मुहूर्त कम एक महीना प्रमाण पाये जाते हैं।

तो चरिमसमयमाणवेदयम्मि जहण्णसामित्तं किण्ण परूविज्जदि; अंतोमुहुत्तूणत्तं पडि विसेसाभावादो ? ण, तत्थ समयाहियआवलियमेत्तणिसेगट्ठिदीणं पढमट्ठिदीए उवलंभादो। पढमट्ठिदिणिसेगेसु गालिदेसु किण्ण दिज्जदे ? ण, तत्थ हेट्ठा बद्धकम्माणं चरिमसमयट्ठिदिबंधादो हेट्ठा वि तण्णिसेगाणमुवलंभादो। तम्हा समयूणदोआवलियमेत्तद्धाणं गंतूण चेव जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि।

* मायासंजलणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती अद्धमासो अंतोमुहुत्तूणो।

§ ३७९. जेण मायासंजलणचरिमट्ठिदिबंधस्स णिसेया अंतोमुहुत्तूणा अद्धमासमेत्ता तेण समऊणदोआवलियमेत्तपच्चग्गसमयपबद्धे स गालिदेसु अंतोमुहुत्तूणद्धमासमेत्तणिसेयट्ठिदीओ लब्भंति तम्हा तत्थ जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि। सेसं सुगमं, कोधमाणसंजलणेसु परूविदत्तादो।

* पुरिसवेदस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती अट्ठवस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि।

§ ३८०. कुदो ? चरिमसमयसवेदएण बंधजहण्णट्ठिदिबंधो अट्ठवस्समेत्तो।

शंका—यदि निषेकोंकी स्थितिको ग्रहण करके जघन्य स्थितिविभक्ति कही जाती है तो मान वेदनके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिका स्वामित्व क्यों नहीं कहा, क्योंकि दोनों जगह दो महीनामें अन्तर्मुहूर्त काल कम है इसकी अपेक्षा दोनो जगह कोई विशेषता नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मानवेदनके अन्तिम समयमे प्रथम स्थितिके निषेकोंकी भी एक समय अधिक आवलीप्रमाण स्थिति पाई जाती है, अतः वहाँ मानकी जघन्य स्थित्ति नहीं हो सकती है।

शंका—तो फिर जिसने प्रथम स्थितिके निषेकोंको गला दिया है वह जघन्य स्थितिका स्वामी क्यों नही माना जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ पहले बंधे हुए कर्मोंकी अपेक्षा अन्तिम समयमें जो स्थिति बन्ध होता है उसके नीचे भी उनके निषेक पाये जाते हैं। अतः एक समय कम दो आवली प्रमाण स्थान जाकर ही मानकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

* मायासंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति अन्तर्मुहूर्त कम आधा महीना है।

§ ३७९. चूंकि मायासंज्वलनके अन्तिम स्थितिबन्धके निषेक अन्तर्मुहूर्त कम आधा महीना प्रमाण होते हैं, इसलिये एक समय कम दो आवलीप्रमाण नूतन समयप्रबद्धोंके गला देने पर अन्तमें निषेकोंकी स्थितियाँ अन्तर्मुहूर्त कम अर्धमास प्रमाण प्राप्त होती हैं, इसलिये वहाँ जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। शेष कथन सुगम है; क्योंकि उसका कथन क्रोध और मान संज्वलनकी जघन्य स्थितिका कथन करते समय कर आये हैं।

* पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण होती है।

§ ३८०. **शंका**—पुरुष वेदकी जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण क्यों होती है ?

समाधान—क्योंकि सवेदभागके अन्तिम समयमें पुरुषवेदका जघन्य स्थितिबन्ध आठ वर्षप्रमाण

णिसेयट्ठिदीओ पुण अंतोमुहुत्तूणअट्ठवस्समेत्ताओ; अंतोमुहुत्तावाहाए णिसेयरयणाभावादो। पुणो समयूणदोआवलियमेत्तमद्धाणमुवरि गंतूण अंतोमुहुत्तूणअट्ठवस्समेत्तणिसेयट्ठिदीणमुवलंभादो। सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीणं जदि सत्तवाससहस्समेत्तावाहा लब्भदि तो अट्ठण्हं वस्साणं किं लभामो त्ति पमाणेणिच्छागुणिदफले ओवट्टिदे जेण एगसमयस्स असंखेज्जदिभागो आगच्छदि तेण अट्ठण्णं वस्साणमावाहा अंतोमुहुत्तमेत्ता त्ति ण घडदे? ण एस दोसो, संसारावत्थं मोत्तूण खवगसेढीए एवंविहणियमाभावादो। तं पि कुदो णव्वदे? अट्ठवस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि पुरिसवेदस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि त्ति सुत्तादो। एदमत्थपदमण्णत्थ वि वत्तव्वं।

❀ छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती संखेज्जाणि वस्साणि।

§ ३८१. एदस्स अत्थो वुच्चदे, अण्णदरवेदकसायाणमुदएण खवगसेढिं चडिय तदो जहाकमेण णवुंसयवेदमित्थिवेदं च खविय तदो छण्णोकसायखवणकालचरिमसमए चरिमट्ठिदिकंडयचरिमफालीए संखेज्जवस्सपमाणाए सेसाए छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि।

होता है। परन्तु निषेकोंकी स्थितियाँ अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण ही होती हैं, कारण कि अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधामें निषेकोंकी रचना नहीं पाई जाती है। पुनः एक समय कम दो आवली प्रमाण काल ऊपर जाकर निषेकोंकी स्थितियाँ अन्तर्मुहूर्तकम आठ वर्ष प्रमाण पाई जाती हैं।

शंका—सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिकी यदि सात हजार वर्ष प्रमाण आबाधा पाई जाती है तो आठ वर्षप्रमाण स्थितिकी कितनी आबाधा प्राप्त होगी, इस प्रकार त्रैराशिक विधिके अनुसार इच्छाराशिसे फलराशिको गुणित करके उसमें प्रमाणराशिका भाग देने पर चूँकि एक समयका असंख्यातवां भाग आता है, इसलिये आठ वर्षकी आबाधा अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है यह कथन नहीं बनता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि संसार अवस्थाको छोड़कर क्षपकश्रेणीमें इस प्रकारका नियम नहीं पाया जाता है।

शंका—यह भी किस प्रमाणसे जाना जाता है।

समाधान—'पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्ष प्रमाण है' इस सूत्रसे जाना जाता है।

यह अर्थपद अन्यत्र भी कहना चाहिये।

✻ छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यात वर्षप्रमाण होती है।

§ ३८१. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—किसी एक वेद और किसी एक कषायके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़कर तदनन्तर यथाक्रमसे नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका क्षय करके तदनन्तर छह नोकषायोंके क्षय करनेके अन्तिम समयमें उनके अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिकी संख्यात वर्ष प्रमाण स्थितिके शेष रहने पर छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

❀ गदीसु अणुमग्गिदव्वं ।

§ ३८२. गदीसु त्ति देसामासियवयणं । तेण गदियादिसु चोदसमग्गणट्ठाणेसु अणुमग्गिदव्वमिदि भणिदं होदि । एवं जइवसहाइरिएण सूचिदस्स अत्थस्स उच्चारणाइरिएण परूविदवक्खाणं भणिस्सामो । उच्चारणोघो जइवसहोघेण समाणो त्ति ण तत्थ वत्तव्वमत्थि ।

§ ३८३. मणुस०-मणुसपज्ज०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज-तस-तसपज्ज०-पंचमण-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०-लोभकसाय-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक्क०-भवसिद्धि०-सम्मादिट्ठि-सण्णि-आहारीणमोघभंगो । णवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० जह० अद्धाच्छेदो पलिदो० असंखे०भागो । लोभकसाय० दोण्हं संजलणाणं जह० ट्ठिदिअद्धा०जहाकमेण अट्ठ वस्साणि चत्तारि मासा च अंतोमुहुत्तूणा ।

§ ३८४. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-बारसकसाय-भय-दुगुंछाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती सागरोवमसहस्सस्स सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा पलिदो० [1]संखे०भागेण ऊणा । तं जहा—मिच्छत्तस्स ताव उच्चदे । असण्णिपंचिंदिओ हदसमुप्पत्तियकमेण ट्ठिदियादं कादूण कयजहण्णमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मो विग्गहगदीए णेरइएसु उववण्णो

❀ इसी प्रकार गतियोंमें अनुसंधान करके समझना चाहिये ।

§ ३८२. सूत्रमें आया हुआ 'गदीसु' यह वचन देशामर्षक है, इसलिये गति आदिक चौदह मार्गणास्थानोंमें अनुसन्धान करके समझना चाहिये यह उक्त सूत्रका अभिप्राय होता है। इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा सूचित अर्थका उच्चारणाचार्यके द्वारा जो व्याख्यान किया गया है उसे कहेंगे। उसमें भी उच्चारणाका ओघ यतिवृषभके ओघके समान है अतः उच्चारणाके ओघका कथन नहीं करेंगे।

§ ३८३. उसमें भी सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके ओघके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि मनुष्यपर्याप्तके स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है और लोभकषायवाले जीवके दो संज्वलनोंका जघन्य स्थितिकाल क्रमसे अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तकम चार मास है।

§ ३८४. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून सातों भागप्रमाण है और बारह कषाय, भय तथा जुगुप्साकी जघन्यस्थितिविभक्ति हजार सागरके सात भागोंमे से पल्यका संख्यातवाँ भग कम चार भागप्रमाण है। खुलासा इस प्रकार है। उसमें पहले मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति कहते हैं—जिसने हतसमुत्पत्तिकक्रमसे स्थितिघात करके मिथ्यात्वका जघन्यस्थिति सत्कर्म कर लिया

१. १अ०प्रतौ असंखे. इति पाठः ।

तस्स विदियसमये णेरइयस्स सागरोवमसहस्सस्स सत्त सत्तभागा पलिदो० संखे०-भागेण ऊणा जहण्णट्ठिदिअद्धाछेदो होदि। णेरइओ सण्णिपंचिंदिओ संतो अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं मिच्छत्तस्स किण्ण बंधदि? सरीरे गहिदे पढमसमयप्पहुडि अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं चेव बंधदि, किं तु विग्गहगदीए असण्णिट्ठिदिं चेव बंधदि, पंचिंदियपाओग्गजहण्णट्ठिदीए तत्थ संभवादो असण्णिपंचिंदियपच्छायदत्तादो वा।

§ ३८५. एवं बारसकसाय-भय-दुगुंछाणं पि वत्तव्वं। णवरि सागरोवमसहस्सस्स चत्तारि सत्तभागा पलिदोवमस्स संखे०भागूणा। एवं सत्तणोकसायाणं। इत्थिवेदस्स जहण्णद्धाछेदो ताव वुच्चदे। तं जहा—जो असण्णिपंचिंदिओ हदसमुप्पत्तियकमेण कयतत्थतणजहण्णट्ठिदिसंतकम्मो तेण बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदिसंतकम्मे सागरोवमसहस्सस्स चत्तारि सत्तभागमेत्ते पलिदो० संखे०भागेणूणे इत्थिवेदम्मि संकामिय णेरइयेसुप्पण्णपढमसमए[1] इत्थिवेदबंधवोच्छेदे कदे कसायट्ठिदी इत्थिवेदम्मि ण संकमदि; बंधाभावेण पडिग्गहत्ताभावादो। तदो अंतोमुहुत्तकालं पुरिस-

है ऐसा कोई एक असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव जब विग्रहगतिसे नारकियोंमें उत्पन्न होता है तब उस नारकीके दूसरे समयमें हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्यके संख्यातवें भागसे न्यून सातों भाग प्रमाण जघन्यस्थिति होती है।

शंका—नारकी संज्ञी पंचेन्द्रिय है, अतः वह मिथ्यात्वकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिको क्यों नहीं बाँधता है?

समाधान—नारकी जीव शरीर ग्रहण करने पर प्रथम समयसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितिको ही बाँधता है किन्तु वह विग्रहगतिमें असंज्ञीकी स्थितिको बाँधता है, क्योंकि पंचेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिका पाया जाना नरककी विग्रहगतिमें संभव है। अथवा वह असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यायसे लौटकर आया है, इसलिये भी वहाँ असंज्ञीके योग्य जघन्य स्थिति पाई जाती है।

§ ३८५. इसी प्रकार बारह कषाय, भय और जुगुप्साका भी कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमें से पल्यका संख्यातवाँ भाग कम चार भाग प्रमाण होती है। इसी प्रकार शेष सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है। उनमेंसे पहले स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति कहते हैं। वह इस प्रकार है—जिस असंज्ञी पंचेन्द्रियने हतसमुत्पत्तिकक्रमसे असंज्ञीके योग्य जघन्यस्थिति सत्कर्मको प्राप्त कर लिया है वह बन्धावलिके व्यतीत होने पर हजार सागरके सात भागोंमें से पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण कषायके स्थितिसत्कर्मका स्त्रीवेदमें संक्रमण करके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ उत्पन्न होने पर पहले समयमें स्त्रीवेदकी बन्धव्युच्छित्ति होनेसे उसके कषायकी स्थितिका स्त्रीवेदमें संक्रमण नहीं होता, क्योंकि स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होनेसे उसमें प्रतिग्रह शक्ति नहीं रहती। ऐसा जीव तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल तक पुरुषवेदका बन्ध करके पुनः अन्तर्मुहूर्त

१. अ०प्रतौ णेरइएसु इति पाठः।

वेदं बंधिय पुणो अंतोमुहुत्तकालं णवुंसयवेदं बंधदि । णवुंसयवेदबंधगद्धाचरिमसमए इत्थिवेदस्स जहण्णद्धाच्छेदो होदि । एवं पुरिसवेद-णवुंसयवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं। णवरि असण्णिचरिमसमए इच्छिदणोकसायं बंधाविय तत्थेव बंधवोच्छेदं कादूण णेरइएसुप्पण्णपढमसमयप्पहुडि अंतोमुहुत्तकालपडिवक्खपयडीओ बंधाविय पडिवक्खपयडिबंधगद्धाचरिमसमए इच्छिदणोकसायस्स जहण्णअद्धाच्छेदो होदि ।

§ ३८६. एत्थ पडिवक्खपयडिबंधयद्धाणं माहप्पजाणावणट्ठं णोकसायद्धाणमप्पाबहुगं उच्चदे । तं जहा—सव्वत्थोवा पुरिसवेदबंधगद्धा २ । इत्थिवेदबंधगद्धा संखेज्जगुणा ४ । हस्स-रदिबंधगद्धा संखे०गुणा १६ । अरदि-सोगबंधगद्धा संखे०गुणा ३२ । णवुंसयवेदबंधगद्धा विसेसाहिया ४२ । तिरिक्खगइ-मणुस्सगईसु देव-णिरयगईसु च एसो अद्धप्पाबहुआलावो वत्तव्वो । एसो उच्चारणाइरियाणमहिप्पाओ ।

§ ३८७. अण्णे पुण वक्खाणाइरिया एवं भणंति—ओघप्पाबहुआलावो तिरिक्खमणुसगईसु चेव होदि । णिरयगईए पुण अण्णहा । तं जहा—सव्वत्थोवा पुरिसबंधगद्धा० ३ । इत्थि०बंधगद्धा संखे०गुणा ६ । हस्स-रदिबंधगद्धा विसे० ११ । णवुंसयबंधगद्धा संखे०गुणा २२ । अरदि-सोगबंधगद्धा विसेसाहिया २३ । देवगईए णिरयगइभंगो । हेट्ठिमबंधगद्धमुवरिमबंधगद्धम्मि सोहिदे सुद्धसेसं विसेसपमाणं होदि ।

काल तक नपुंसकवेदका बन्ध करता है, अतः उसके नपुंसकवेदके बन्ध होनेके अन्तिम समयमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति होती है । इसी प्रकार पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोककी जघन्य स्थिति कहनी चाहिये । परन्तु इतनी विशेषता है कि असंज्ञीके अन्तिम समयमें इच्छित नोकषायका बन्ध कराकर और वहीं उसकी बन्धव्युच्छित्ति कराके नारकियोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका बन्ध कराकर प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धकालके अन्तिम समयमें इच्छित नोकषायकी जघन्य स्थिति कहनी चाहिये ।

§ ३८६. अब यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्ध कालके दीर्घत्वका ज्ञान करानेके लिये अर्थात् उत्कृष्ट बन्धकाल बतलानेके लिये नोकषायोंके कालके अल्पबहुत्वको कहते हैं । वह इस प्रकार है—पुरुषवेदका बन्धकाल सबसे थोड़ा २ है । इससे स्त्रीवेदका बन्धकाल संख्यातगुणा ४ है । इससे हास्य और रतिका बन्ध काल संख्यातगुणा १६ है । इससे अरति और शोकका बन्धकाल संख्यातगुणा ३२ है । इससे नपुंसक वेदका बन्धकाल विशेष अधिक ४२ है । जिनकी अंकसंदृष्टि क्रमशः २, ४, १६, ३२ और ४२ है । यह अल्पबहुत्व तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति और नरकगतिमें कहना चाहिये । यह उच्चारणाचार्यका अभिप्राय है ।

§ ३८७. परन्तु अन्य व्याख्यानाचार्य इस प्रकार कथन करते हैं—ओघ अल्पबहुत्वालाप तिर्यंचगति और मनुष्यगतिमें ही होता है । परन्तु नरकगतिमें अन्य प्रकारसे होता है । वह इस प्रकार है—पुरुषवेदका बन्धकाल सबसे थोड़ा ३ है । इससे स्त्रीवेदका बन्धकाल संख्यातगुणा ६ है । इससे हास्य और रतिका बन्धकाल विशेष अधिक ११ है । इससे नपुंसकवेदका बन्धकाल संख्यातगुणा २२ है । इससे अरति और शोकका बन्धकाल विशेष अधिक २३ है । जिनकी अंकसंदृष्टि क्रमशः ३, ६, ११, २२ और २३ है । तथा देवगतिमें नरकगतिके समान भंग है । यहाँ नीचेके बन्धकालको ऊपरके बन्धकालमेंसे घटा देने पर जो शेष रहता है वह विशेषका प्रमाण है । ये

एदाओ बंधगद्धाओ चदुगदिजहण्णअद्धाच्छेदस्स साहणीओ होंति।

§ ३८८. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधिचउक्काणं ओघभंगो। णवरि सम्मत्तं णिरएसुप्पण्णकदकरणिज्जस्स चरिमसमए जहण्णं होदि। सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लणाए वत्तव्वं। एवं पढमाए भवण०-वाण०। णवरि भवणवासिय-वाणवेंतरेसु सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो। विदियादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिअद्धाच्छेदे भण्णमाणे मिच्छाइट्ठी अण्णप्पणो णिरएसु उप्पज्जिय पज्जत्तयदो होदूण उवसमसम्मत्तं गेण्हमाणेण जेण सव्वुक्कस्सओ ट्ठिदिघादो कदो, पुणो अंतोमुहुत्तं गंतूण अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएमाणेण जेण उक्कस्सओ ट्ठिदिघादो कदो तस्स सगसगुक्कस्साउअमेत्तट्ठिदीओ अधाट्ठिदिगलणाए गालिय सगाउअचरिमसमए वट्टमाणस्स अंतोकोडाकोडीसागरोवममेत्तट्ठिदीओ मिच्छत्तस्स जहण्णओ अद्धाच्छेदो। एवं इत्थि-णवुंसयवेदाणं। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधिचउक्काणमोघभंगो। णवरि सम्मत्तस्स भवण०भंगो; उव्वेल्लणाए जहण्णअद्धाच्छेदग्गहणादो। बारसकसाय-सत्तणोकसायाणं उवसमसम्मत्तग्गहणकाले सव्वुक्कस्सयं ट्ठिदिघादं कादूण पुणो अणंताणुबंधिचउक्कस्स विसंजोयणं

बन्धकाल चारों गतियोंके जघन्य कालके साधक होते हैं। अर्थात् इनसे चारों गतियोंका जघन्य स्थितिअद्धाछेद निकाला जाता है।

§ ३८८. नारकियोंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति ओघके समान है। पर इतनी विशेषता है कि नारकियोंमें उत्पन्न हुए कृतकृत्यवेदकके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति होती है। तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके समय जघन्यस्थिति कहनी चाहिये। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, भवनवासी और व्यन्तरोंके कथन करना चाहिये। पर इतनी विशेषता है कि भवनवासी और व्यन्तरोके सम्यक्त्वकी जघन्यस्थिति सम्यग्मिथ्यात्वके समान होती है। दूसरे नरकसे लेकर छटे नरक तक मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अद्धाच्छेदका कथन करनेपर जो मिथ्यादृष्टि जीव अपने अपने नरकमें उत्पन्न हुआ और वहाँ पर्याप्त होकर जिसने उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करते हुए सबसे उत्कृष्ट स्थितिघात किया पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल व्यतीत करके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके हेतु जिसने उत्कृष्ट स्थितिघात किया वह अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण स्थितियोंको अधःस्थितिगलनाके द्वारा गलाता हुआ जब अपनी आयुके अन्तिम समयमें विद्यमान रहता है तब उसके अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण मिथ्यात्वका जघन्यस्थितिअद्धाच्छेद होता है। इसी प्रकार स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्यस्थिति काल कहना चाहिये। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति भवनवासियोंके समान है, क्योंकि यहाँ उद्वेलनाके द्वारा प्राप्त होनेवाले जघन्य स्थिति अद्धाच्छेदका ग्रहण किया है। उपशमसम्यक्त्वके ग्रहण करनेके समय सर्वोत्कृष्ट स्थितिघात करके पुनः अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना

---

१. अ०प्रतौ अद्धट्ठिदि- इति पाठः।

कुणमाणद्धाए वि सव्वुक्कस्सयं ट्ठिदिघादं कादूण पुणो उक्कस्साउअमणुपालिय णिप्पिय-माणसम्माइट्ठिचरिमसमए अंतोकोडाकोडीसागरोवममेत्तट्ठिदीओ जहण्णअद्धाच्छेदो। णवरि णवुसयवेदं मोत्तूण अण्णासिं सव्वपयडीणं परोदएण जहण्णअद्धच्छेदो वत्तव्वो। कुदो ? उदयट्ठिदीए थिवुक्कसंकमेण गदाए जहण्णत्तुववत्तीदो।

§ ३८६. एवं सत्तमाए वि वत्तव्व। णवरि मिच्छत्तस्स जहण्णअद्धाच्छेदे भण्णमाणे पढमसम्मत्तग्गहणेण अणंताणुबंधिचउक्कविसंयोजणाए च सव्वुक्कस्सयं ट्ठिदिघादं कादूण सम्मत्तेण सह तेत्तीससागराउअमणुपालिय तदो अंतोमुहुत्तावसेसे आउए मिच्छत्तं गंतूण अंतोमुहुत्तकालं संतस्स हेट्ठा बंधिय पुणो संतसमाणट्ठिदिं वंध-माणचरिमसमए अंतोकोडाकोडिसागरोवममेत्तट्ठिदीओ घेत्तूण जहण्णअद्धाच्छेदो होदि। एवं सोलसकसाय-भय-दुगुंछाणं। सत्तणोकसायाणं पि एवं चेव। णवरि मिच्छत्तं गंतूण जहण्णट्ठिदिसंतसमाणबंधे संजादे अप्पप्पणो पडिवक्खबंधगद्धाओ वंधाविय तासिं चरिमसमए जहण्णअद्धाछेदो वत्तव्वो।

करनेके समय भी सर्वोत्कृष्ट स्थितिघात करके पुनः उत्कृष्ट आयुका पालन करके जो सम्यग्दृष्टि नरकसे निकलना चाहता है उसके नरकसे निकलनेके अन्तिम समय मे बारह कषाय और सात नोकषायोंका अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण जघन्यस्थिति अद्धाच्छेद होता है। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदको छोड़कर अन्य सभी प्रकृतियोका परोदयसे जघन्य स्थितिअद्धाच्छेद कहना चाहिये; क्योंकि स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा उदयस्थितिके कम हो जाने पर जघन्यपना वन जाता है।

§ ३८६. इसी प्रकार सातवी पृथ्वीमे भी कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका कथन करते समय जो प्रथम सम्यक्त्वका ग्रहण करनेसे और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेसे सर्वोत्कृष्ट स्थितिघात करके सम्यक्त्वके साथ तेतीस सागर आयुका पालन करके तदनन्तर आयुके अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सत्तामे स्थित कर्मसे कम स्थितिवाले कर्मका वन्ध करके पुनः सत्तामें स्थित कर्मके समान स्थितिवाले कर्मका वन्ध करता है उसके अन्तिम समयमे अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिकी अपेक्षा जघन्यस्थिति अद्धाच्छेद होता है। इसी प्रकार सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्यस्थिति अद्धाच्छेद कहना चाहिये। तथा इसी प्रकार सात नोकषायोंका भी कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वको प्राप्त होकर जघन्य स्थिति सत्त्वके समान वन्धके होने पर अपनी अपनी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका वन्ध कराके उनके वन्धकालके अन्तिम समयमे सात नोकषायोंका जघन्यस्थिति अद्धाच्छेद कहना चाहिये।

विशेषार्थ—जो असंज्ञी जीव मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साके जघन्य स्थिति सत्त्वके साथ नरकमे उत्पन्न हुआ है उसके विग्रहके दूसरे समयमे उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है। विग्रहगतिके दूसरे समयमें कहनेका कारण यह है कि शरीरग्रहण करनेके पश्चात् इसके संज्ञी पंचेन्द्रियके योग्य स्थितिका वन्ध होने लगता है। किन्तु विग्रहगतिमें ऐसा जीव असंज्ञीके योग्य स्थितिका ही वन्ध करता है। मिथ्यात्वादिकी जघन्य स्थिति मूलमें वतलाई

ही है। सात नोकषायोंकी यद्यपि जघन्य स्थिति एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्यके संख्यातवें भाग कम चार भागप्रमाण ही प्राप्त होती है पर यह स्थिति विग्रहके दूसरे समयमें न प्राप्त होकर अन्तमुहूर्त कालके पश्चात् प्राप्त होती है। यथा—वेद तीन हैं और ये प्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं। इनमेंसे किसी एकका बन्ध होते समय शेष दोका बन्ध नहीं होता। अब यदि कोई असंज्ञी जीव स्त्रीवेदके जघन्य स्थिति सत्त्वके साथ नरकमें उत्पन्न हुआ और वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर पुरुषवेदका बन्ध करने लगा। पुनः पुरुषवेदके स्थानमें अन्तमुहूर्तकाल तक नपुंसकवेदका बन्ध करने लगा तो उस नारकीके नपुंसकवेदके बन्ध होनेके अन्तिम समय तक स्त्रीवेदकी उक्त प्रमाण जघन्य स्थितिके अन्तमुहूर्त प्रमाण अधस्तन निषेकोंका और गलन हो जायगा किन्तु स्थितिमें वृद्धि नहीं होगी, अतः नरकमें स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्व नपुंसकवेदके बन्धके अन्तिम समयमें प्राप्त हुआ। तथा पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति और शोकके विषयमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु हास्यादिकी जघन्य स्थिति एक अन्तमुहूर्तके पश्चात् कहनी चाहिये, क्योंकि इनकी प्रतिपक्षभूत एक एक प्रकृतियाँ होनेसे एक अन्तमुहूर्तके बाद पुनः इनका बन्ध होने लगता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमेंसे जिनका जघन्य स्थितिसत्त्व कहना हो उनका असंज्ञीके अन्तिम समयमें बन्ध कराकर नरकमें उत्पन्न होने पर उनकी प्रतिपक्षभूत प्रकृतियोंका अन्तमुहूर्तकाल तक बन्ध कहना चाहिये और इस अन्तमुहूर्तके अन्तिम समयमें उस उस प्रकृतिका जघन्य स्थितिसत्त्व कहना चाहिये। तथा सम्यक्त्वकी जघन्यस्थिति एक समय और सम्यग्मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति दो समय ओघके समान नरकमें भी बन जाती है, क्योंकि जो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नरकमें उत्पन्न हुआ है उसके कृतकृत्य-वेदकके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसंयोजना करनेवाले नारकीके अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंके अन्तिम समयमें बन जाती है। किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति दो समय सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें ही बनेगी, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वकी क्षपणा मनुष्यगतिको छोड़कर अन्यत्र नहीं होती। सामान्य नारकियोंके जो मिथ्यात्वादि कर्मोंकी जघन्य स्थिति कही है इसी प्रकार पहले नरकके नारकी, भवनवासी और व्यन्तर देवोंके भी जानना चाहिये, क्योंकि इनमें भी असंज्ञी जीव मर कर उत्पन्न होते हैं। किन्तु भवनवासी और व्यन्तरोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर नहीं उत्पन्न होते, अतः इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति एक समय न कहकर सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके समान दो समय कहनी चाहिये, क्योंकि उद्वेलनाकी अपेक्षा इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति दो समय बन जाती है। द्वितीयादिक पाँच नरकोंमें न तो असंज्ञी जीव मरकर उत्पन्न होता है और न सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न होता है, अतः वहाँ मिथ्यात्व आदि कर्मोंकी जघन्य स्थिति ऊपर कहे अनुसार नहीं बन सकती। फिर वह किस प्रकार बनती है आगे इसीका खुलासा करते हैं—कोई एक जीव द्वितीयादिक नरकोंमें अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुके साथ उत्पन्न हुआ और पर्याप्त होनेके पश्चात् वह उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करना चाहता है। ऐसी हालतमें उसने मिथ्यात्वकी स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिघात किया और उसे इतनी रखी जो उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवालेके कमसे कम हो सकती है। पुनः उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके साथ उत्कृष्ट स्थितिघात किया। यहाँ वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण कराकर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना इसलिये नहीं कही, क्योंकि वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करनेवालेके स्थितिघात करनेका कोई नियम नहीं है। पुनः वह जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहा और इस प्रकार मिथ्यात्वकी अधःस्थितिके एक एक निषेकको गलाता

§ ३९०. तिरिक्खेसु मिच्छत्त-बारसकसाय-णवणोकसायाणं जहण्णट्ठिदिअद्धाच्छेदो सागरोवमस्स[सत्त]सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा पलिदो० असंखे०भागेण ऊणया। सम्मत्त-सम्मामि० अणंताणुबंधिचउक्काणमोघं । पंचिं०तिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-पंचिं०तिरिक्खजोणिणीसु मिच्छत्त-बारसकसाय-भय-दुगुंछाणं जहण्ण० सागरोवमसहस्सस्स सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा वे सत्तभागा पलिदो० संखे०भागेण ऊणया। सत्तणोकसायाणं सागरोवमस्स चत्तारि सत्तभागा पलिदो० असंखे०भागेण पडिवक्खबंधगद्धाहियऊणया। सेसं तिरिक्खोघं। णवरि जोणिणीसु सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो। पंचिं०तिरि०अपज्ज० पंचिं०तिरि०जोणिणीभंगो। णवरि अणंताणु०४ बारसक०भंगो।

रहा। इस प्रकार अपनी आयुके अन्तिम समयमें उसके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होगी। इसी प्रकार स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्यस्थिति कहनी चाहिये, क्योंकि सम्यग्दृष्टिके इन दोनों वेदोंका बन्ध नहीं होता, अतः इनकी उक्त प्रकारसे जघन्य स्थिति बन जाती है। तथा इनके सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति दो समय होती है जिसका खुलासा भवनवासियोंके इनकी जघन्यस्थिति कहते समय कर आये हैं। तथा सातवें नरकमें जो विशेषता है उसका खुलासा मूलमें ही कर दिया है।

§ ३९०. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिअद्धाच्छेद एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंका एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य स्थितिकाल ओघके समान है। पंचेन्द्रियतिर्यंच पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंमें मिथ्यात्वका जघन्यस्थिति सत्त्वकाल एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है। बारह कषायोंका जघन्यस्थिति सत्त्वकाल एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है और भय तथा जुगुप्साका जघन्यस्थिति सत्त्वकाल एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून दो भागप्रमाण है। सात नोकषायोंका जघन्यस्थिति सत्त्वकाल एक सागरके सात भागोंमेंसे अपनी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धकालसे और पल्यके असंख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है। शेष कथन सामान्य तिर्यंचोंके समान है। इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यंचोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतीके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग बारह कषायोंके समान है।

विशेषार्थ—तिर्यंचोंमें एकेन्द्रिय भी सम्मिलित हैं, अतः एकेन्द्रियोंकी जो जघन्य स्थिति है वही यहाँ मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी सामन्य तिर्यंचोंके जघन्यस्थिति जाननी चाहिये, किन्तु अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त ही करता है, अतः अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति ओघके समान दो समय जानना। सम्यक्त्व की जघन्यस्थिति कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके समान एक समय जानना। किस कर्मकी कितनी जघन्य स्थिति है यह मूलमें बतलाया ही है। पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंके मिथ्यात्व और बारह कषायकी जघन्य स्थिति असंज्ञियोंकी जघन्य स्थितिके

§ ३६१. मणुसिणि० णवुंसयवेद० जहण्ण० पलिदो० असंखे०भागो। पुरिस० जह० संखेज्जाणि वस्साणि। सेसपयडीणमोघभंगो। मणुसअपज्ज० पंचिं०तिरि०-अपज्जत्तभंगो।

समान जानना। भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्यके संख्यातवें भाग कम दो भागप्रमाण होती है। इसका कारण यह है कि ये दोनों ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं। अब यदि कोई एकेन्द्रिय जीव उक्त तीन प्रकारके तिर्यँचोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ उसने पहले समयमें असंज्ञीके योग्य जघन्य स्थितिका बन्ध किया तो उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण ही प्राप्त होगी। यदि कहा जाय कि इस जीवके उस समय सोलह कषायोंकी जघन्य स्थिति भय और जुगुप्सारूपसे संक्रमित हो जायगी, अतः भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति भी सोलह कषायोंकी जघन्य स्थितिके समान प्राप्त हो जायगी सो भी बात नहीं है, क्योंकि नवीन बन्धका एक आवलिके बाद ही अन्य प्रकृतिरूपसे संक्रमण होता है और यह जीव एकेन्द्रिय पर्यायसे आया है, अतः इसके सोलह कषायोंकी असंज्ञीके योग्य जघन्य स्थिति उसी समय प्राप्त हुई है, अतः उसका संक्रमण नहीं हो सकता। तथा सात नोकषाय प्रतिपक्ष प्रकृतियाँ हैं अतः जो एकेन्द्रिय उक्त तीन प्रकारके तिर्यँचोंमें उत्पन्न हुआ है उसके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रियोंकी जघन्य स्थितिके समान होती है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थिति कहते समय अपनी अपनी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धकालको और घटा देना चाहिये, क्योंकि प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका बन्ध होते समय शेष सजातीय प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता और उसके अधःस्थितिगलनारूपसे प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धकाल प्रमाण निषेक गल जाते हैं। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सामान्य तिर्यँचोंके समान क्रमसे दो समय, एक समय और दो समय प्रमाण बन जाती है। खुलासा सामान्य नारकियोंके समान जानना। किन्तु योनिमती तिर्यँचोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होता अतः वहाँ सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति एक समय नहीं बनती। अतः जिस प्रकार उद्वेलनाकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वकी दो समय जघन्य स्थिति कही उसी प्रकार योनिमतियोंके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति कहनी चाहिये। पंचेन्द्रियतिर्यँच लब्ध्यपर्याप्तकोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्कको छोड़कर शेष सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति योनिमती तिर्यंचोंके समान बन जाती है। किन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति शेष बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिके समान होती है, क्योंकि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती।

§ ३६१. मनुष्यनियोंमें नपुंसकवेदका जघन्यस्थिति सत्त्वकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। पुरुषवेदका जघन्यस्थिति सत्त्वकाल संख्यात वर्ष है। तथा शेष प्रकृतियोंका ओघके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान भंग है।

विशेषार्थ—मनुष्यनियोंके नपुंसकवेद और पुरुषवेदको छोड़कर सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान बन जाती है, क्योंकि इनके क्षायिक सम्यग्दर्शन और क्षपकश्रेणीकी प्राप्ति सम्भव है। किन्तु इनके क्षपकश्रेणीमें जिस समय नपुंसकवेदकी द्वितीय स्थितिके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका पुरुषवेदमें संक्रमण होता है उस समय उसकी पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थिति पाई जाती है, अतः इनके नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण जाननी चाहिये। तथा इनके पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति संख्यात वर्ष प्रमाण होती है, क्योंकि मनुष्यनियोंके पुरुषवेदका क्षय छह नोकषायोंके साथ होता है, इसलिये जब यह जीव पुरुषवेदके साथ छह नोकषायोंके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका संक्रमण क्रोधसंज्वलनमें

§ ३६२. देवाणं णिरओघं। जोदिसि० विदियपुढविभंगो। सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति विदियपुढविभंगो। णवरि दोवारमुवसमसेढिं चढाविय उक्कस्सट्ठिदिघादं कराविय पुणो ओदरिय दंसणमोहणीयं खइय अप्पिददेवेसु उक्कस्साउट्ठिदीएसुप्पाइय णिप्पिदमाणदेवचरिमसमए जहण्णअद्धाछेदो वत्तव्वो। सम्मत्तस्स देवोघं। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मामिच्छत्तस्स मिच्छत्तभंगो।

करता है उस समय पुरुषवेदकी द्वितीय स्थितिमें स्थित अन्तिम फालिकी स्थिति संख्यात वर्ष प्रमाण पाई जाती है। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान बतानेका कारण यह है कि जो एकेन्द्रिय जीव अपने स्थिति बन्धके योग्य स्थितिके साथ लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें उत्पन्न होता है उसके यथायोग्य समयमें सब कर्मोंकी लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचोंके समान जघन्य स्थिति बन जाती है। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति दो समय उद्वेलनाकी अपेक्षा कहनी चाहिये।

§ ३६२. देवोंमें सामान्य नारकियोंके समान जघन्य स्थिति है। ज्योतिषियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है। सौधर्म स्वर्गसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक दूसरी पृथिवीके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि जो दो वार उपशमश्रेणी पर चढ़कर और उत्कृष्ट स्थितिघात करके पुनः उतर कर और दर्शनमोहनीयका क्षय करके उत्कृष्ट आयुवाले विवक्षित देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके वहाँसे निकलनेके अन्तिम समयमें बारह कषाय और नौ नोकषायका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल कहना चाहिये। सम्यक्त्वका सामान्य देवोंके समान जघन्य स्थिति सत्त्वकाल है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितक भी इसी प्रकार है। इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वका स्थितिसत्त्वकाल मिथ्यात्वके समान है।

विशेषार्थ—सामान्य देवोंमें सामान्य नारकियोंके समान जघन्य स्थिति कहनेका कारण यह है कि असंज्ञी जीव भी देवोंमें उत्पन्न होते हैं, अतः इस अपेक्षासे देवोंमें नारकियोंके समान मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति घटित हो जायगी। तथा विसयोजनाकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी, उद्वेलनाकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वकी और कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति भी नारकियोंके समान देवोंके बन जाती है। तथा ज्योतिषियोंमें असंज्ञी जीव मर कर उत्पन्न नहीं होता अतः इनके दूसरी पृथिवीके समान मिथ्यात्वादिककी जघन्य स्थिति घटित करके कहनी चाहिये। विशेषता इतनी है कि इनके अपनी उत्कृष्ट आयुका विचार करके ही कथन करना चाहिये। यद्यपि सौधर्मस्वर्गसे लेकर नौ ग्रैवयक तक मिथ्यात्वादिककी जघन्य स्थिति दूसरी पृथिवीके समान बन जाती है पर सौधर्मादिक स्वर्गोंमें सम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होता है, अतः यहां द्वितीय पृथिवीके नारकियोंक जघन्य स्थितिके कथनसे कुछ विशेषता है जो मूलमें बतलाई है, अतः उसके अनुसार इनके जघन्य स्थिति घटित करके जानना चाहिये। किन्तु यहां कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होता है अतः यहां सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति द्वितीय नरकके समान न जानकर सामान्य नारकियोंके समान जाननी चाहिये। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक सम्यग्दृष्टि ही उत्पन्न होते हैं, अतः इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति दो समय नहीं बन सकती है और इसलिये इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके समान जाननी चाहिये। तथा शेष कर्मोंकी जघन्य स्थिति सौधर्मादिक स्वर्गोंके समान जानना।

§ ३९३. एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० जह० सागरोवमस्स सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा पलिदो० असंखे० भागेण ऊणा। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त°० जह० एया ट्ठिदी दुसमयकाला। एवं सव्वएइंदिय-पंचकाय-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णा०-तिण्णिलेस्सा०-अभव०-मिच्छा०-असण्णि०-अणाहारि त्ति। णवरि ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-काउलेस्सा-अणाहारि० सम्मत्तमोघं। तिसु लेस्सासु अणंताणुबंधिचउक्कमोघं।

§ ३९४. विगलिंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछा० ज० पणुवीससागराणं पण्णारससागराणं सदसागराणं सत्त सत्तभागा चत्तारि सत्तभागा वे सत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणा। सत्तणोकसायाणं ज० सागरोवमस्स चत्तारि

§ ३९३. एकेन्द्रियोमे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल एक सागरके सात भागोमेंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल एक सागरके सात भागोमेंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी एक स्थितिका जघन्य सत्त्वकाल दो समय है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, पाँचों स्थावरकाय, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, कपोतलेश्यावाले और अनाहारक जीवोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओघके समान है। तीन लेश्याओंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओघके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियादिक मार्गणाओमे जो मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति बतलाई है वह वहां सम्भव जघन्य स्थितिसत्त्वकी अपेक्षासे जानना। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति दो समय उद्वेलनाकी अपेक्षा जानना। किन्तु औदारिकमिश्रकायोगी, कार्मणकाययोगी, कापोत लेश्यावाले और अनाहारक इन मार्गणाओंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि भी उत्पन्न हो सकता है और इनके रहते हुए उसका काल भी पूरा हो सकता है, अतः इन मार्गणाओमे सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति ओघके समान एक समय भी बन जाती है। तथा कृष्णादि तीन लेश्याओके रहते हुए अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना भी होती है अतः इन तीन लेश्याओमे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति ओघके समान दो समय बन जाती है।

§ ३९४. विकलेन्द्रियोमे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल दोइन्द्रियोंमें पच्चीस सागरके सात भागोमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण, तीन इन्द्रियोंमे पचास सागरके सात भागोमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून सात भागप्रमाण और चौइन्द्रियोमें सौ सागरके सात भागोंमेसे पल्योपमके संख्यातवे भागसे न्यून सात भागप्रमाण है। सोलह कषायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल दोइन्द्रियोमें पच्चीस सागरके तेइन्द्रियोमे पचास सागरके और चौइन्द्रियोमे सौ सागरके सात भागोमेसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है। तथा भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल दो इन्द्रियोमे पच्चीस सागरके, तेइन्द्रियोंमे पचास सागरके और चौइन्द्रियोमें सौ सागरके सात भागोमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून

१. अ०प्रतौ सम्मामिच्छाइट्ठी० इति पाठः।

सत्तभागा पलिदो० असंखे० भागेण ऊणा । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० एइंदियभंगो । पंचिंदियअपज्ज० पंचि०तिरि०अपज्जत्तभंगो । तसअपज्ज० वेइंदियअपज्जत्तभंगो ।

§ ३६५. वेउव्वि० सव्वट्ठभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० जोदिसिय०भंगो । वेउव्वियमिस्स० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० अंतोकोडाकोडीसागरोवमाणि । सम्मत्त-सम्मामि० सोहम्मभंगो । सत्तणोक० जह० सागरोवमसहस्सस्स चत्तारि सत्तभागा पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण ऊणा। आहार०-आहारमिस्स० सव्वपयडीणं जह० अंतोकोडाकोडीसागरोवमाणि ।

दो भागप्रमाण है। सात नोकषायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एकेन्द्रियोंके समान भंग है। पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान भंग है। त्रस अपर्याप्तकोंमें दो इन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भंग है।

विशेषार्थ—जब कोई एक एकेन्द्रिय जीव विकलत्रयोंमें उत्पन्न होता है तो वह वहां उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही कमसे कम विकलत्रयोंके योग्य जघन्य स्थितिका बन्ध करने लगता है, अतः विकलत्रयके मिथ्यात्व, सोलह कषाय तथा भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति मूलमें बतलाये अनुसार ही प्राप्त होगी। किन्तु सात नोकषाय प्रतिपक्षभूत प्रकृतियां हैं, अतः विकलत्रयोंके इनकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रियोंके समान भी बन जाती है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनाकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंके समान दो समय जाननी चाहिये। पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान तथा त्रस अपर्याप्तकोंके द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान जघन्य स्थिति जाननेकी जो मूलमें सूचना की सो उसका कारण स्पष्ट ही है।

§ ३६५. वैक्रियिककाययोगियोंमें सर्वार्थसिद्धिके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ज्योतिषियोंके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल सौधर्मके समान है। तथा सात नोकषायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल एक हजार सागरके सात भागोंमें से पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके सभी प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर है।

विशेषार्थ—देव वैक्रियिककाययोगी भी होते हैं अतः वैक्रियिककाययोगमें सर्वार्थसिद्धिके समान सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति बन जाती है। किन्तु वैक्रियिककाययोगमें कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्व नहीं पाया जाता, अतः इसमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति ज्योतिषियोंके समान दो समय जानना। ऐसा नियम है कि शरीर ग्रहण करनेके पश्चात् संज्ञी जीव पंचेन्द्रियके योग्य स्थितिका ही बन्ध करता है अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर कही है। किन्तु सात नोकषाय सप्रतिपक्षभूत प्रकृतियां हैं। इनका बन्ध एक साथ नहीं होता, अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगके रहते हुए भी इनकी जघन्य स्थिति असंज्ञीके योग्य प्राप्त हो जाती है जो मूलमें बतलाई ही है। तथा वैक्रियिक मिश्रकाययोगमें कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्व भी पाया जाता है, अतः इसमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति

§ ३६६. इत्थिवेदे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-बारसक०-इत्थिवेदाणमोघं । णवुंस० ज० पलिदो० असंखे०भागो । सत्तणोक०-चत्तारिसंजल० संखेज्जाणि वास-सहस्साणि । एवं णवुंस० । णवरि इत्थि० जह० पलिदो० असंखे०भागो । पुरिस० इत्थि-णवुंसयवेद० ज० पलिदो० असंखे०भागो । पुरिस-चत्तारिक० जह० संखेज्जाणि वस्साणि । सेसं मूलोघं । अवगद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अट्ठक०-इत्थि-णवुंस० जह० अंतोकोडाकोडीसागरोवमाणि । सत्तणोक०-चत्तारिसंज० ओघं ।

एक समय और उद्वेलनाकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति दो समय बन जाती है जो सौधर्म स्वर्गमें भी सम्भव है । छठे गुणस्थानमें सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होती है, अतः आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें इनकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है । तथा आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगके रहते हुए दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ नहीं होता है और जिसने दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ किया है उसकेउक्त दोनों योग नहीं होते, अतः उक्त दोनों योगोंमें तीन दर्शन मोहनीयकी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण ही होती है ।

§ ३६६. स्त्रीवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओघके समान है । नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा सात नोकषाय और चार संज्वलनोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल संख्यात हजार वर्ष है । इसी प्रकार नपुंसकवेदमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसमें स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । पुरुषवेदमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । पुरुषवेद और चार कषायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल संख्यात वर्ष है । तथा शेष मूलोघके समान हैं । अपगतवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, आठ कषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर है । तथा सात नोकषाय और चार संज्वलनोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओघके समान है ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदके उदयके रहते हुए मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और स्त्रीवेदकी क्षपणा सम्भव है, अतः स्त्रीवेदीके इनकी जघन्य स्थिति ओघके समान कही है । तथा स्त्रीवेदके उदयके रहते हुए नपुंसकवेदकी क्षपणा भी हो जाती है पर जिस समय ऐसे जीवके नपुंसकवेदके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका पुरुषवेद रूपसे संक्रमण होता है उस समय उसकी जघन्य निषेक स्थिति पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती है, अतः स्त्रीवेदीके नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति उक्तप्रमाण कही है । तथा जिस समय स्त्रीवेदका प्रथम स्थितिमें विद्यमान अन्तिम निषेक स्वोदयसे क्षयको प्राप्त होता है उस समय सात नोकषाय और चार संज्वलनका जघन्य स्थितिसत्त्व संख्यात हजार वर्ष प्रमाण पाया जाता है, अतः स्त्रीवेदीके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति उक्तप्रमाण कही है । नपुंसकवेदीके भी इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति जानना । किन्तु क्षपक नपुंसकवेदी जीव अपने उपान्त्य समयमें स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका पुरुषवेदरूपसे संक्रमण करता है और उस समय अन्तिम फालिकी जघन्य स्थिति पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती है, अतः नपुंसकवेदीके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है । तथा पुरुषवेदीके जब स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके

§ ३९७. कोध० चत्तारिक० जह० चत्तारि वस्साणि । सेसं मूलोघं । एवं माण० । णवरि तिण्णि० संज० जह० वे वस्साणि । सेसमोघं । एवं माया० । णवरि दो संज० जह० वस्सं । सेसमोघं । अकसा० सव्वपयडीणं ज० अंतोकोडाकोडी । एवं जहाक्खाद० ।

अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिका सर्वसंक्रमण द्वारा पुरुषवेदरूपसे संक्रमण होता है उस समय उन अन्तिम फालियोंकी जघन्य निषेकस्थिति पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण पाई जाती है, अतः पुरुषवेदीके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति उक्तप्रमाण कही है। पुरुषवेदके अन्तिम समयमें चार संज्वलनोंकी स्थिति संख्यात वर्षप्रमाण पाई जाती है, अतः पुरुषवेदीके चार संज्वलनोंकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है। तथा पुरुषवेदीके शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान प्राप्त होती है, अतः उनकी जघन्य स्थिति ओघके समान कही है। तथा जो द्वितीयोपशम सम्यक्त्वसे उपशमश्रेणी पर चढ़ा है उसीके अपगतवेदके रहते हुए मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, मध्यकी आठ कषाय स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका सत्त्व पाया जाता है। किन्तु उपशमश्रेणीमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होती है, अतः अपगतवेदीके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ीसागर प्रमाण कही है। तथा सात नोकषाय और चार संज्वलनका सत्त्व क्षपक अपगतवेदीके भी होता है, अतः अपगतवेदीके इनकी जघन्य स्थिति ओघके समान कही है। अपगतवेदीके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सत्त्व तो होता ही नहीं, अतः इसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति नहीं कही। हां जिन आचार्योंके मतसे अनन्तानुबन्धीकी बिना विसंयोजना किये भी जीव उपशमश्रेणी पर चढ़ सकता है उनके मतानुसार अपगतवेदीके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण होगी जिसका यहां उल्लेख न करनेका कारण यह है कि कषायप्राभृतके मतानुसार ऐसी जीव उपशमश्रेणिपर आरोहण नहीं करता।

§ ३९७. क्रोधमें चार कषायोंका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल चार वर्ष है। शेष मूलोघके समान है। इसी प्रकार मानमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इसके तीन संज्वलनका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल दो वर्ष है। तथा शेष ओघके समान है। इसी प्रकार मायामें जानना चाहिये। पर इतनी विशेषता है कि इसके दो संज्वलनोंका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल एक वर्ष है। तथा शेष ओघके समान है। अकषायी जीवोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर है। इसी प्रकार यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—क्रोधकषायीके क्रोध कषायके वेदन करनेके अन्तिम समयमें चार संज्वलनोंकी जघन्य स्थिति चार वर्ष प्रमाण होती है। मानकषायीके मान कषायके वेदन करनेके अन्तिम समयमें मानादि तीन संज्वलनोंकी जघन्य स्थिति दो वर्षप्रमाण होती है। तथा मायाकषायीके माया कषायके वेदन करनेके अन्तिम समयमें माया आदि दो संज्वलनोंकी जघन्य स्थिति एक वर्ष प्रमाण होती है, अतः इन क्रोधादि कषायवाले जीवोंके उक्त कषायोंकी जघन्य स्थिति उक्त प्रमाण कही है। इनके शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान जानना, क्योंकि इनमेंसे किसी भी कषायके उदयके रहते हुए दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षपणा सम्भव है, अतः इन कषायवालोंके शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान बन जाती है। उपशान्तकषाय गुणस्थानमें अकषायी जीवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्कको छोड़ कर शेष सब प्रकृतियोंका सत्त्व सम्भव है और उपशमश्रेणीमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे

§ ३९८. विहंग० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० ज० अंतोकोडाकोडीसागरोवमाणि। सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो। मणपज्ज० ओघं। णवरि इत्थि०-णवुंस० ज० पलिदो० असंखे०भागो।

§ ३९९. सामाइय-छेदो० ओघं। णवरि लोभसंज० ज० अंतोमुहुत्तं। परिहार० सम्मत्त०-मिच्छत्त०-सम्मामि०-अणंताणु० ओघं। सेसाणं सोहम्मभंगो। एवं तेउ-पम्म-संजदासंजदाणं। सुहुमसंप० लोभ० ज० एया ट्ठिदी एयसमइया। सेसाणमकसाइभंगो। असंजद० तिरिक्खोघं। णवरि मिच्छत्तस्सोघभंगो।

कम नहीं होती, अतः अकषायी जीवोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कही है। तथा अकषायी जीवोंके समान यथाख्यातसंयत जीवोंके भी सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति घटित कर लेनी चाहिये।

§ ३९८. विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल एकेन्द्रियोंके समान है। मनःपर्ययज्ञानमें ओघके समान है। पर इतनी विशेषता है कि इसमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—विभंगज्ञान संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवके पर्याप्त अवस्थामें ही होता है और पर्याप्त अवस्थामें संज्ञी मिथ्यादृष्टि जीवके अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे कम जघन्य स्थितिसत्त्व नहीं होता, अतः विभंगज्ञानियोंके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कही है। तथा विभंगज्ञानी भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वलना करते हैं, अतः इनके उक्त दो प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति एकेन्द्रियोंके समान दो समय कही है। यद्यपि मनःपर्ययज्ञानके रहते हुए क्षायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति और क्षपकश्रेणी पर आरोहण बन सकता है, अतः इसके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदको छोड़ कर शेष सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान बन जाती है। किन्तु स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवके मनःपर्ययज्ञानकी प्राप्ति सम्भव नहीं, अतः जिस प्रकार पुरुषवेदी जीवके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानीके भी जानना।

§ ३९९. सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें ओघके समान है। पर इतनी विशेषता है कि इनके लोभसंज्वलनका जघन्य स्थिति सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है। परिहारविशुद्धिसंयतके सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल ओघके समान है। तथा शेषका सौधर्मके समान है। इसी प्रकार पीत, पद्म लेश्यावाले और संयतासंयतोंके जानना चाहिये। सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोंके लोभकी एक स्थितिका जघन्य काल एक समय है। तथा शेषका अकषायी जीवोंके समान भंग है। असंयतोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान भंग है। पर इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यात्वका ओघके समान भंग है।

विशेषार्थ—सामायिक संयम और छेदोपस्थापना संयमके रहते हुए भी दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षपणा होती है, अतः इनके संज्वलन लोभको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान कही है। किन्तु ये दोनों संयम नौवें गुणस्थान तक ही पाये जाते है और क्षपक नौवें गुणस्थानके अन्तमें लोभकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होती है, अतः इन दोनों संयमोंमे लोभकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त कही है।

§ ४००. खइय० एक्कावीसपयडीणमोघभंगो। वेदयसम्मा० परिहार०भंगो। उवसम० अकसाइभंगो। सम्मामिच्छत्त० सोलसक०-णवणोक० ज० अंतोकोडाकोडिसागरोवमाणि। सम्मत्त०-सम्मामि० जह० सागरोवमपुधत्तं। सासण० अकसाइभंगो।

परिहारविशुद्धि संयमके रहते हुए दर्शनमोहनीयकी क्षपणा और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना सम्भव है, अतः इसके इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान कही। तथा यह संयम सातवें गुणस्थान तक ही होता है और सातवें गुणस्थानमें शेष कर्मोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण पाई जाती है, अतः इसके शेष कर्मोंकी जघन्य स्थिति सौधर्म कल्पके समान कही। यहां सौधर्म कल्पके समान जघन्य स्थिति कहनेसे यह प्रयोजन है कि जिस प्रकार सौधर्म स्वर्गमें उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थिति प्राप्त करनेके लिये विशेषताका कथन किया है उसी प्रकार यहां भी जानना। तथा पीत और पद्म लेश्यावाले तथा संयतासंयतोंके परिहारविशुद्धि संयतोंके समान जघन्य स्थितिका कथन करना चाहिये। क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तमें सूक्ष्म लोभकी जघन्य स्थिति एक समय रह जाती है जो उस समय उदयरूप होती है, अतः इस संयमवालेके लोभकी जघन्य स्थिति एक समय कही। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कको छोड़ कर शेष प्रकृतियोंका सत्त्व सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानमें उपशमश्रेणीकी अपेक्षासे पाया जाता है, अतः जिस प्रकार अकषायी जीवोंके शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति बतला आये उसी प्रकार सूक्ष्मसंपराय संयमवाले जीवोंके जानना। असंयतोंमें एकेन्द्रिय तिर्यंच मुख्य हैं और उन्हींके मिथ्यात्वको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंकी असंयतोंकी अपेक्षा जघन्य स्थिति सम्भव है, अतः असंयतोंके मिथ्यात्वके बिना शेष सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति सामान्य तिर्यंचोंके समान कही। किन्तु असंयत मनुष्य भी होते हैं और मनुष्य असयत दर्शनमोहनीयकी क्षपणा भी करते हैं अतः असंयतोंके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति ओघके समान एक समय कही।

§ ४००. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके इक्कीस प्रकृतियोंका ओघके समान भंग है। वेदक सम्यग्दृष्टियोंके परिहारविशुद्धिसंयतोंके समान भंग है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंके अकषायी जीवोंके समान भंग है। सम्यग्मिथ्यात्वमें सोलह कषाय, नौ नोकषायोंका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्वकाल सागर पृथक्त्व है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंके अकषायी जीवोंके समान भंग है।

विशेषार्थ—क्षायिकसम्यग्दृष्टिके २१ प्रकृतियां ही पाई जाती हैं और क्षपक श्रेणीका अधिकारी यही है अतः इसके २१ प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान बन जाती है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें विशुद्धिकी अपेक्षा परिहारविशुद्धिसंयत मुख्य है अतः इनके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति परिहारविशुद्धिसंयतोंके समान कही। इसी प्रकार उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें अकषायी जीव मुख्य हैं, अतः इनके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अकषायी जीवोंके समान कही। किन्तु इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति ओघके समान जानना; क्योंकि यहां पर विसंयोजना संभव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण ही होती है। किन्तु जिसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्त्व सागरपृथक्त्व है वह मिथ्यादृष्टि जोव भी सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है, अतः सम्यग्मिथ्यादृष्टिके इन दोनोंकी जघन्य स्थिति पृथक्त्व सागर कही। तथा जो अकषायी जीव आकर सासादनसम्यग्दृष्टि होता है उसके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ी

एवमद्धाछेदो समत्तो।

§ ४०१. सव्वट्ठिदिविहत्ति० णोसव्वट्ठिदिविहत्ति०। सव्वाओ ट्ठिदीओ सव्वट्ठिदिविहत्ती। तदूणं णोसव्वट्ठिदिविहत्ती। एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति।

§ ४०२. उक्कस्स०विहत्ति-अणुक्कस्स०विहत्तिअणुगमेण दुविहो०। ओघे० सव्वुक्कस्सट्ठिदी उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती। तदूणमणुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती। उक्कस्सट्ठिदिविहत्ति-सव्वट्ठिदिविहत्तीणं को भेदो ? ण, सव्वणिसेगट्ठिदीणं समुदाओ सव्वट्ठिदिविहत्ती णाम। उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती पुण उक्कस्सकालुवलक्खिओ चरिमणिसेओ एक्को चेव। तेण दोण्हमत्थि भेओ। उक्कस्सट्ठिदिणिसेयवदिरित्तसव्वणिसेया अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती णाम। सव्वणिसेयट्ठिदीसु अण्णदरणिसेगे अवणिदे सेसट्ठिदीओ णोसव्वट्ठिदिविहत्ती णाम। तेण ण पुणरुत्तदोसो त्ति सिद्धं। एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति।

§ ४०३. जहण्ण-अजहण्णट्ठिदि० दुवि०। ओघे० सव्वजहण्णट्ठिदी जहण्णट्ठिदिविहत्ती तदुवरि अजहण्णट्ठिदिविहत्ती। उक्कस्सअद्धाछेदे उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती किण्ण

सागर प्रमाण होते हुए भी कमसे कम पाई जाती है, अतः सासादनसम्यग्दृष्टियोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति अकषायी जीवोंके सामान कही।

इस प्रकार अद्धाच्छेद समाप्त हुआ।

§ ४०१ सर्वस्थितिविभक्ति और नोसर्वस्थितिविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सब स्थितियां सर्वस्थितिविभक्ति हैं और सब स्थितियोंसे न्यून स्थितियां नोसर्वस्थितिविभक्ति है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक ले जाना चाहिये।

§ ४०२ उत्कृष्टस्थितिविभक्ति और अनुत्कृष्टस्थितिविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सबसे उत्कृष्ट स्थिति उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति है और इससे न्यून अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति है।

शंका—उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति, और सर्वस्थितिविभक्तिमें क्या भेद है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सब निपेकोंकी स्थितियोंके समुदायका नाम सर्वस्थितिविभक्ति है परन्तु उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिउत्कृष्ट कालसे उपलक्षित एक अन्तिम निपेक कहलाता है, अतः इन दोनोंमे भेद है।

उत्कृष्ट स्थितिवाले निषेकोंके सिवा शेष सब निपेक अनुकृष्ट स्थितिविभक्ति कहलाते हैं। तथा सब स्थितिवाले निषेकोंमें से किसी एक निषेकके निकाल देने पर शेष स्थितियां नोसर्वस्थितिविभक्ति कहलाती हैं। इस लिये इनके कथनमें पुनरुक्त दोप नहीं है यह सिद्ध होता है। इसी प्रकार अनाहार मार्गणातक जानना चाहिये।

§ ४०३ जघन्य स्थितिविभक्ति और अजघन्य स्थितिविभक्ति अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सबसे जघन्य स्थितिको जघन्य स्थितिविभक्ति कहते हैं और इसके ऊपर अजघन्य स्थिति विभक्ति होती है।

अद्धाच्छेदो पुण उक्कस्सकालुवलक्खियएगणिसेगाविणाभाविसव्वणिसेयकलाओ तेण [ण] पविसदि त्ति घेत्तव्वं। एवं जहण्णट्ठिदि-जहण्णट्ठिदिअद्धाछेदाणं पि भेदो परूवेदव्वो। एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति।

§ ४०४. सादि-अणादि-धुव-अद्धुवाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० उक्क० अणुक्क० जह० किं सादि०४। सादि अद्धुवं। अजह० किं सादि० ४? अणादिओ धुवो अद्धुवो वा। सम्मत्त-

पविस्सदि? ण, उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती णाम उक्कस्सकालुवलक्खियएगणिसेगो उक्कस्स-

शंका—उत्कृष्ट अद्धाच्छेदमें उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिका अन्तर्भाव क्यों नहीं होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट कालसे उपलक्षित एक निषेकको उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति कहते हैं परन्तु उत्कृष्ट अद्धाच्छेद तो उत्कृष्ट कालसे उपलक्षित एक निषेकके अविनाभावी समस्त निषेकोंके समुदायका नाम है, इसलिये उत्कृष्ट अद्धाच्छेदमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका अन्तर्भाव नहीं होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिये। इसी प्रकार जघन्य स्थिति और जघन्य स्थिति अद्धाच्छेदके भेदका भी कथन करना चाहिये। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—किसी एक मनुष्यके चार बेटे हैं। इनमेंसे सबसे बड़ा बेटा ज्येष्ठ या उत्कृष्ट, शेष अनुत्कृष्ट, सबसे छोटा बेटा लघु या जघन्य और शेष अजघन्य बेटे कहे जायंगे। यही बात स्थितिके विषयमें भी जाननी चाहिये। अर्थात् उत्कृष्ट स्थितिसे सबसे अन्तिम निषेककी स्थिति ली जायगी। अनुत्कृष्ट स्थितिसे अन्तिम निषेककी स्थितिको छोड़कर शेष सब निषेकोंकी स्थितियां ली जायगी। जघन्य स्थितिसे सबसे कम स्थिति ली जाती है तथा अजघन्य स्थितिसे सबसे कम स्थितिको छोड़ कर शेष सब स्थितियां ली जाती हैं। इस प्रकार इस कथनसे यह भी जाना जाता है कि इन चारों प्रकारके स्थिति भेदोंमें अवयवकी मुख्यता है समुदायकी नहीं। अतः सर्व स्थितिमें समुदायरूपसे सब स्थितियोंका ग्रहण हो जाता है और नोसर्वस्थितिमें अविवक्षित किसी एक या एकसे अधिक निषेकोंकी स्थितियोंको छोड़ कर शेष स्थितियोंका ग्रहण हो जाता है। यहां यह शंका की जा सकती है कि यद्यपि उत्कृष्ट स्थिति अवयव प्रधान है अतः उससे सर्वस्थिति भिन्न सिद्ध हो जाती है पर अनुत्कृष्ट और अजघन्य स्थितिसे नोसर्व स्थिति कैसे भिन्न सिद्ध हो सकती है, क्योंकि इन तीनोंमें ऊन स्थितियों को ही ग्रहण किया गया है। पर ठीक तरहसे विचार करने पर यह शंका निर्मूल हो जाती है, क्योंकि जिस प्रकार अनुत्कृष्ट स्थितिमें केवल उत्कृष्ट स्थितिका और अजघन्य स्थितिमें केवल जघन्य स्थितिका अभाव इष्ट है वह बात नोसर्वस्थितिकी नहीं है किन्तु इसमें अविवक्षित किसी भी निषेककी स्थितिका अभाव इष्ट है। उदाहरणके लिये ऊपरके मनुष्यसे कहा जाय कि तुम अपने कुछ बेटोंको बुलाओ तो वह किसी भी बेटेको बुलानेसे छोड़ सकता है। यही बात नोसर्व स्थितिके विषयमें जानना चाहिये। इस प्रकार ओघ और आदेशकी अपेक्षा जहां जो स्थिति सम्भव हो, जानकर उसका कथन करना चाहिये।

§ ४०४ सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थिति विभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है? सादि और अध्रुव है। अजघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है, क्या

सम्मामि० उक्क० अणुक्क० जह० अजह० किं सादि०४ ? सादिओ अद्ध वो। [अणंताणुवंधिचउक्क० उक्क० अणुक्क० जह० किं सादि०४ ? सादि अद्ध वं] अज० किं सादि०४ ? सादिओ अणादिओ वा धुवो अद्ध वो वा। एवमचक्खु० भवसि०। णवरि भवसिद्धिएसु धुवं णत्थि। सेसाणं मग्गणाणं उक्क० अणुक्क० जह० अजह० किं सादि०४ ? सादिया अद्ध वा वा।

अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? अनादि, ध्रुव और अध्रुव है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है। अजघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनवाले और भव्योंके जानना चाहिये। पर इतनी विशेषता है कि भव्योंके ध्रुवभंग नहीं होता है। शेष मार्गणाओंमें उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्ति क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है।

विशेषार्थ—मोहनीयकी सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति कादाचित्क है तथा जघन्य स्थिति अपने अपने क्षय कालके अन्तिम समयमें ही प्राप्त होती है, अतः ये तीनों स्थितियाँ सादि और अध्रुव हैं। किन्तु सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके विषयमें विशेषता है जिसका खुलासा निम्न प्रकार है—यह तो हम पहले ही बतला आये हैं कि जघन्य स्थितिको छोड़कर शेष सब स्थितिविकल्प अजघन्य कहे जाते हैं, क्योंकि जघन्यके प्रतिषेध मुखसे अजघन्यमें जघन्यको छोड़कर शेष सबका ग्रहण हो जाता है। प्रकृतियोंके विषयमें दूसरी यह बात ज्ञातव्य है कि मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका क्षय होनेके पहले तक निरन्तर सत्त्व पाया जाता है और क्षय होनेके बाद पुनः इनका बन्ध नहीं होता। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अनादि मिथ्यादृष्टिके तो निरन्तर सत्त्व है किन्तु जिसने सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर लिया है उसके इसकी विसंयोजना भी हो जाती है और ऐसा जीव जब मिथ्यात्वमें आता है तो पुनः उनका बन्ध होने लगता है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व सादि ही हैं यह स्पष्ट ही है। इन सब विशेषताओंको ध्यानमें रखकर जब इन प्रकृतियोकी अजघन्य स्थितिके सादित्व आदिका विचार करते हैं तो मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अजघन्य स्थिति अनादि ध्रुव और अध्रुव प्राप्त होती है, क्योंकि अनादि कालसे इनकी अजघन्य स्थिति चली आरही है इसलिये अनादि है। तथा भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव और अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थिति सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव चारो प्रकारकी प्राप्त होती है, क्योंकि विसंयोजनासे जघन्य स्थितिके प्राप्त होनेके पहले तक वह अनादि है। विसंयोजना के पश्चात् पुनः बन्ध होनेपर सादि है तथा अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव और भव्योकी अपेक्षा अध्रुव है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दोनों प्रकृतियाँ मूलतः ही सादि हैं अतः इनकी अजघन्य स्थिति भी और स्थितियोके समान सादि और अध्रुव है। अचक्षुदर्शनमार्गणा छद्मस्थ अवस्थाके रहने तक और भव्य मार्गणा संसार अवस्थाके रहने तक निरन्तर पाई जाती है, अतः इसमें उक्त ओघप्ररूपणा बन जाती है। किन्तु भव्योंके ध्रुव

एवं अद्धुवाणुगमो समत्तो ।

❀ एयजीवेण सामित्तं ।

§ ४०५. सामित्ताणुगमेण सामित्तं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण उक्कस्ससामित्तं भणामि त्ति पइज्जासुत्तमेदं सुगमं ।

* मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती कस्स ? उक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्स ।

§ ४०६. एदस्स जइवसहाइरियमुहकमलविणिग्गयस्स सामित्तसुत्तस्स अत्थपरूवणं कस्सामो । तं जहा, मिच्छत्तस्से त्ति णिद्देसो सेसपयडिपडिसेहफलो । उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिणिद्देसो सेसट्ठिदिविहत्तिपडिसेहफलो । कस्से त्ति पुच्छा सयस्स कत्तारत्तपडिसेहफला । उक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्से त्ति वयणं अणुक्कस्सट्ठिदिबंधेण सह उक्कस्सट्ठिदिसंतपडिसेहफलं । अणुक्कस्सट्ठिदीए बज्झमाणाए वि उक्कस्सट्ठिदिणिसेयाणमधट्ठिदिगलणा णत्थि त्ति उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती किण्ण होदि ? ण, चरिमणिसेयस्स उक्कस्सकालुवलक्खियस्स उक्कस्सट्ठिदिसण्णिदस्स अधट्ठिदिगलणाए एगट्ठिदीए

विकल्प नहीं बनता। इन दो मार्गणाओंके अतिरिक्त शेष जितनी मार्गणाएं हैं उनमें चारों प्रकारकी स्थितियां सादि और अध्रुव हैं, क्योंकि एक तो मार्गणाएं परिवर्तनशील हैं और दूसरे सब मार्गणाओंमें यथायोग्य ओघ उत्कृष्ट स्थिति आदि न प्राप्त होकर आदेश उत्कृष्ट स्थिति आदि प्राप्त होती हैं।

इस प्रकार अध्रुवानुगम समाप्त हुआ।

❀ अब एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वानुगमको कहते हैं।

§ ४०५. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा स्वामित्व दो प्रकारका है-जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे पहले उत्कृष्ट स्वामित्वका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्वामित्वको कहते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र सरल है।

* मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्टस्थितिको बाँधनेवाले जीवके होती है।

§ ४०६. अब यतिवृषभ आचार्यके मुखसे निकले हुए इस स्वामित्वसूत्रके अर्थका कथन करते हैं जो इस प्रकार है- सूत्रमें मिथ्यात्व पदके देनेका फल शेष प्रकृतियोंका निषेध करना है। उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति पद देनेका फल शेष स्थिति विभक्तियोंका निषेध करना है। 'किसके होती है' इस प्रकार पृच्छाका आशय स्वकर्तृत्वका प्रतिषेध करना है। उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाले जीवके इस वचनके देनेका फल अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके साथ उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वका प्रतिषेध करना है।

शंका-अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होते हुए भी उत्कृष्ट स्थितिके निषेकोंका अधःस्थितिगलन नहीं होता है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति क्यों नहीं होती है।

समाधान-नहीं, क्योंकि जिसकी उत्कृष्ट स्थिति यह संज्ञा है ऐसे उत्कृष्ट कालसे उपलक्षित

गलिदाए वि उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिविणासादो। अहवा उक्कस्सट्ठिदिअद्धाछेदस्स एदं सामित्तं, सो च कालणिसेगपहाणो, तेण अणुक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती ण होदि किंतु उक्कस्ससंकिलेसेण उक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणस्स चेवे त्ति।

* एवं सोलसकसायाणं।

§ ४०७. जहा मिच्छत्तस्स उक्कस्ससामित्तं परूविदं तहा सोलसकसायाणं पि परूवेदव्वं; मिच्छादिट्ठिम्मि तिव्वसंकिलेसम्मि उक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणम्मि चेव एदेसिमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तीए संभवादो।

अन्तिम निषेककी अधःस्थिति गलनाके द्वारा एक स्थितिके गलित होजानेपर भी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका विनाश हो जाता है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति नहीं होती है ऐसा समझना चाहिये। अथवा यह उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका स्वामित्व न होकर उत्कृष्ट स्थितिअद्धाच्छेदका स्वामित्व है और वह कालनिषेक प्रधान होता है, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाले जीवके उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति नहीं होती है किन्तु उत्कृष्ट संक्लेशसे उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाले जीवके ही उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है।

* इसी प्रकार सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्वामित्व कहना चाहिये।

§ ४०७. जिस प्रकार मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्वामित्व कहा है उसी प्रकार सोलह कषायोंका भी कहना चाहिये, क्योंकि तीव्र संक्लेशवाले और उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके ही इन सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति संभव है।

विशेषार्थ—चूर्णिसूत्रमें यह बतलाया है कि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके ही मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। इसपर शंकाकारका कहना है कि जो प्रथमादि समयोंमें उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर द्वितीयादि समयोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने लगता है उसके उत्कृष्ट स्थितिके निषेकोंका अधःस्थिति गलन नहीं होता अतः अनुत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय भी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये। इस शंकाका वीरसेन स्वामीने दो प्रकारसे समाधान किया है। पहले समाधानका तात्पर्य यह है कि जिस अन्तिम निषेककी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति पड़ी है उस निषेककी उत्कृष्ट स्थिति संज्ञा है किन्तु द्वितीयादि समयोंमें उस निषेककी सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति न रहकर एक समय, दो समय आदि रूपसे कम हो जाती है, अतः अनुत्कृष्ट स्थिति बन्धके समय उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती किन्तु जिस समय उत्कृष्ट स्थिति बन्ध होता है उसी समय उत्कृष्ट स्थिति होती है। इस समाधानपर यह शंका होती है कि जब स्थिति निषेकप्रधान होती है और द्वितीयादि समयोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंज्ञावाले निषेकोंका गलन ही नहीं हुआ तब अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय उत्कृष्ट स्थिति क्यों न मानी जाय? इस शंकाका विचार करके वीरसेन स्वामी ने दूसरा समाधान किया है। उसका सार यह है कि उत्कृष्ट स्थिति कालकी प्रधानतासे कही गई है निषेकोंकी प्रधानतासे नहीं, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती, क्योंकि उस समय उत्कृष्ट काल सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरमेंसे एक, दो आदि समय कम हो जाते हैं। इसी प्रकार सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके सम्बन्धमें भी जानना चाहिये।

* सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४०८. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

* मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिं बंधिदूण अंतोमुहुत्तद्धं पडिभग्गो जो ट्ठिदिघादमकादूण सव्वलहुसम्मत्तं पडिवण्णो तस्स पढमसमयवेदयसम्मादिट्ठिस्स ।

§ ४०९. जदि वि एत्थ अट्ठावीससंतकम्मियग्गहणं ण कदं तो वि अट्ठावीससंतकम्मिओ त्ति णव्वदे; वेदगसम्मत्तग्गहणण्णहाणुववत्तीदो । सो वि मिच्छादिट्ठि त्ति णव्वदे; अण्णगुणट्ठाणम्मि मिच्छत्तस्स बंधाभावादो । सो तिव्वसंकिलेसो त्ति उक्कस्सट्ठिदिबंधण्णहाणुववत्तीदो णव्वदे । एदम्हादो चेव ण सुत्तो जग्गंतो त्ति णव्वदे, सुत्तम्मि तब्बंधासंभवादो । उक्कस्सट्ठिदिं बंधंतो पडिहग्गपढमादिसमएसु सम्मत्तं ण गेण्हदि त्ति जाणावणट्ठमंतोमुहुत्तद्धं पडिभग्गो त्ति भणिदं । पडिभग्गो उक्कस्सट्ठिदिबंधुक्कस्ससंकिलेसेहि पडिणियत्तो होदूण विसोहीए पडिदो त्ति भणिदं होदि । ट्ठिदिघादं कादूण वि वेदगसम्मत्तं के वि जीवा पडिवज्जंति तप्पडिसेहट्ठं ट्ठिदिघादमकाऊणे त्ति

---

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४०८. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

* मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर जिसे उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके कारणभूत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे निवृत्त हुए अन्तर्मुहूर्त हो गया है और जो स्थितिका घात न करके अतिशीघ्र सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उस वेदक सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४०९. यद्यपि सूत्रमें 'अट्ठावीससंतकम्मिय' पदका ग्रहण नहीं किया है तो भी ऐसा जीव अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला होता है यह जाना जाता है, क्योंकि अन्यथा वेदकसम्यक्त्वका ग्रहण नहीं बन सकता है । और वह भी मिथ्यादृष्टि ही होता है यह जाना जाता है, क्योंकि अन्य गुणस्थानमें मिथ्यात्वका बन्ध नहीं हो सकता है । तथा वह मिथ्यादृष्टि भी तीव्रसंक्लेशवाला होता है यह जाना जाता है, अन्यथा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं हो सकता है । इसीसे वह जीव सोता हुआ नहीं है किन्तु जागता हुआ है यह बात भी जानी जाती है, क्योंकि सोते हुएके मिथ्यात्वका उत्कृष्ट बन्ध नहीं हो सकता । उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाला जीव उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे च्युत होकर प्रथमादि समयोंमें सम्यक्त्वको ग्रहण नहीं करता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये 'जिसे उत्कृष्ट स्थितिबन्धसे निवृत्त हुए अन्तर्मुहूर्त हो गया है' ऐसा कहा है । प्रतिभग्न शब्दका अर्थ उत्कृष्ट स्थिति बन्धके योग्य उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे प्रतिनिवृत्त होकर विशुद्धिको प्राप्त हुआ होता है । कितने ही जीव स्थितिका घात करके भी वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करते हैं अतः इसके प्रतिषेध करनेके लिये सूत्रमें स्थितिका घात न करके यह कहा है । बहुतसे जीव ऐसे हैं जो स्थितिघात

भणिदं। ट्ठिदिघादमकुणमाणा वि दीहकालेण सम्मत्तं पडिवज्जंति। अत्थि तप्पडिसेहट्ठं सव्वलहुग्गहणं कदं। विदियादिसमएसु अधट्ठिदिगलणाए गलिदेसु उक्कस्सट्ठिदिसंतं ण होदि त्ति पढमसमए वेदगसम्मादिट्ठिस्से त्ति परूविदं। मिच्छाइट्ठिणा अट्ठावीससंतकम्मिएण तिव्वसंकिलेसेण सागार-जागारउवजुत्तेण बद्धमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेण तत्तो पडिवदिय अंतोमुहुत्तद्धं तप्पाओग्गविसोहीए अवट्ठिदेण अकदट्ठिदिघादेण सव्वलहुएण कालेण वेदगसम्मत्तग्गहणपढमसमए मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए सम्मत्तसम्मामिच्छत्तेसु संकामिदाए सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती जायदि त्ति भणिदं होदि। अवंधपयडीसु वंधपयडी कथं संकमइ ? ण एस दोसो; बंधपयडीणं चेव बंधे थक्के पडिग्गहत्तं फिट्टदि णाबंधपयडीणं, अण्णहा अबंधपयडीण सम्मत्तादीणमभावो हुज्ज। ण च एवं मोहणीयस्स अट्ठावीसपयडिसंतुवएसेण सह विरोहादो।

नहीं करके दीर्घकालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त होते हैं, अतः इसका प्रतिषेध करनेके लिये सूत्रमें सर्वलघु पदका ग्रहण किया है। सम्यक्त्व ग्रहण होनेके अनन्तर दूसरे आदि समयोंमे अधःस्थिति गलनाके द्वारा स्थितिके गलित हो जाने पर उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्व नहीं रहता है, अतः सूत्रमें वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयमें ऐसा कहा है। जो मिथ्यादृष्टि जीव अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला है, जो जाग्रत रहते हुए साकार उपयोगसे उपयुक्त है, जिसने तीव्र संक्लेशसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर उसकी सत्ता प्राप्त करली है वह जब तीव्र संक्लेशरूप परिणामोंसे च्युत होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धिके साथ अवस्थित रहता हुआ स्थितिघात न करके सबसे लघु कालके द्वारा वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके उसके पहले समयमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमण कर देता है तब उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है।

शंका–बन्धप्रकृति अबन्ध प्रकृतियोंमें संक्रमणको कैसे प्राप्त होती है ?

समाधान–यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि बन्ध प्रकृतियोंके ही बन्धके रुक जाने पर उनमें प्रतिग्रहशक्ति नष्ट हो जाती है अबन्ध प्रकृतियोंकी नहीं, अन्यथा सम्यक्त्वादिक अबन्ध प्रकृतियोंका अभाव हो जायगा। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा मानने पर उक्त कथनका मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके सत्त्वके प्रतिपादक उपदेशके साथ विरोध आता है। अतः जिन प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता किन्तु जो संक्रमण द्वारा ही अपने सत्त्वको प्राप्त होती हैं उनमें बन्ध प्रकृतिका संक्रमण हो सकता है इसमें कोई दोष नहीं है।

विशेषार्थ–ऐसा नियम है कि जिस समय किसी प्रकृतिका बन्ध होता है उसी समय अन्य सजातीय प्रकृतिका उस बंधनेवाली प्रकृतिरूपसे संक्रमण होता है, क्योंकि तभी वह बंधनेवाली प्रकृति प्रतिग्रह या पतद्ग्रहरूप होती है। और इसीका नाम परप्रकृति संक्रमण है। यह संक्रमण मूल प्रकृतियोंमें और चारों आयुओंमे परस्पर नहीं होता। तथा इस प्रकारका संक्रमण दर्शनमोहनीयका चारित्रमोहनीयमें और चारित्रमोहनीयका दर्शनमोहनीयमें भी नहीं होता। तथा इस प्रकारका संक्रमण होते समय संक्रमित होनेवाली प्रकृतिका स्थितिघात या अनुभागघात नहीं होता और न स्थिति तथा अनुभागमें वृद्धि ही होती है, क्योंकि स्थितिघात और अनुभागघात-

* णवणोकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४१०. सुगममेदं ।

* कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिदूण आवलियादीदस्स ।

§ ४११. किमट्ठमावलियादीदस्सुक्कस्ससामित्तं दिज्जदि ? ण; अचलावलियमेत्त-कालं बद्धसोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदीए णोकसाएसु संकमाभावादो । कुदो एसो

का सम्बन्ध अपकर्षणसे तथा स्थितिवृद्धि और अनुभागवृद्धिका सम्बन्ध उत्कर्षणसे है और अपकर्षण तथा उत्कर्षण एक ही प्रकृतिके कर्म परमाणुओंमें परस्पर होते हैं। इस नियमके अनुसार यहां शंकाकारका यह कहना है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व बन्धरूप प्रकृतियां नहीं होनेसे उनमें प्रतिग्रहपना नहीं पाया जाता, अतः मिथ्यात्वका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूपसे संक्रमण नहीं होना चाहिये। इस शंकाका वीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका सार यह है कि जो बँधनेवाली प्रकृतियां हैं उनका यदि बन्ध नहीं हो रहा है तो अबन्धकालमें उनमें ही प्रतिग्रहपना नहीं रहता है। उदाहरणके लिये जब साताका बन्ध होता है तभी वह प्रतिग्रहरूप है और तभी उसमें असातारूप कर्मपुंज संक्रमणको प्राप्त होता है। किन्तु जब साताका बन्ध नहीं होता तब उसका प्रतिग्रहपना नष्ट हो जाता है और ऐसी हालतमें असातारूप कर्मपुंज सातारूपसे संक्रमणको नहीं प्राप्त होता। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दोनों अबन्ध प्रकृतियां हैं, अतः इनके विषयमें संक्रमणका उक्त नियम लागू नहीं है। इनमें तो प्रतिग्रहपना बन्धके बिना भी पाया जाता है और इसलिये इनमें मिथ्यात्वके कर्मपुंजके संक्रमण होनेमें कोई आपत्ति नहीं है। पर इतनी विशेषता है कि सम्यग्दृष्टि जीवके ही मिथ्यात्वका कर्मपुंज इन दो प्रकृतियोंमें संक्रमित होता है। अब यहां इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति बतलाना है, अतः अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जिस मिथ्यादृष्टि जीवने मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके और संक्लेशपरिणामोंसे निवृत्त होकर तथा मिथ्यात्वका स्थितिकाण्डकघात किये बिना अन्तर्मुहूर्त कालमें वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया है उसके वेदकसम्यक्त्वके प्राप्त करनेके पहले समयमें अन्तर्मुहूर्त कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमण हो जाता है, अतः उस समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है। शेष बातोंका खुलासा मूलमें किया ही है।

* नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है।

§ ४१०. यह सूत्र सुगम है।

* जिसने कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर एक आवलीप्रमाण काल व्यतीत कर दिया है उसके नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है।

शंका–जिसने कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर एक आवली प्रमाण काल व्यतीत कर दिया है वही नौ नोकषायोंके उत्कृष्ट स्वामित्वका अधिकारी क्यों है ?

समाधान–नहीं, क्योंकि बंधी हुई सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अचलावली कालतक नौ नोकषायोंमें संक्रमण नहीं होता है, अतः सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबंधके बाद एक आवली काल व्यतीत होने पर ही नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्वामित्व प्राप्त होता है।

णियमो ? साहावियादो । जदि णोकसायाणमण्णेसिं कम्माणमावलिऊणुक्कस्सट्ठिदिसंकमेण उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि तो मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिपमाणं णोकसाएसु संकामिय उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती किण्ण परूविज्जदे ? ण, दंसणमोहणीयस्स चरित्तमोहणीयसंकमाभावादो । कसायाणं णोकसाएसु णोकसायाणं च कसाएसु कुदो संकमो ? ण एस दोसो, चरित्तमोहणीयभावेण तेसिं पच्चासत्तिसंभवादो । मोहणीयभावेण दंसणचरित्तमोहणीयाणं पच्चासत्ती अत्थि त्ति अण्णोण्णेसु संकमो किण्ण इच्छदि ? ण, पडिसेज्झमाणदंसणचरित्ताणं भिण्णजादित्तणेण तेसिं पच्चासत्तीए अभावादो । एवं जइवसहाइरियपरूविदउक्कस्ससामित्तं देसामासियभावेण सूचिदादेसं भणिय संपहि उच्चारणाइरियवक्खाणं पुणरुत्तभएण ओघं मोत्तूण आदेसविसयं वत्तइस्सामो ।

§ ४१२. सत्तसु पुढवीसु तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-पंचिं०-

शंका-विवक्षित समयमें बंधे हुए कर्मपुंजका अचलावली कालके अनन्तर ही पर प्रकृतिरूप से संक्रमण होता है ऐसा नियम क्यों है ?

समाधान-स्वाभावसे ही यह नियम है ।

शंका-यदि अन्य कर्मोंकी एक आवली कम उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमणसे नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है तो सत्तरकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको नोकषायोंमें संक्रमित करके उनकी उत्कृष्ट स्थिति आवलिकम सत्तरकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण क्यों नहीं कही जाती है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि दर्शनमोहनीयका चारित्रमोहनीयमें संक्रमण नहीं होता है ।

शंका-कषायोंका नोकषायोंमें और नोकषायोंका कषायोंमें संक्रमण किस कारणसे होता है ?

समाधान-यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि वे दोनों चारित्रमोहनीय हैं, अतः उनकी परस्परमें प्रत्यासत्ति पाई जाती है इसलिये उनका परस्परमें संक्रमण हो सकता है ।

शंका-दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ये दोनों मोहनीय हैं। इस रूपसे इनकी भी प्रत्यासत्ति पाई जाती है, अतः इनका परस्परमें संक्रमण क्यों नहीं स्वीकार किया जाता है ?

समाधान-नहीं, क्योंकि परस्परमें प्रतिषेध्यमान दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय के भिन्न जाति होनेसे उनकी परस्परमें प्रत्यासत्ति नहीं पाई जाती है, इसलिये उनका परस्परमें संक्रमण नहीं होता है ।

इस प्रकार जिसके द्वारा देशामर्षक भावसे आदेशकी सूचना मिलती है ऐसे यतिवृषभ-आचार्यके द्वारा कहे गये उत्कृष्ट स्वामित्वको कहकर अब पुनरुक्त दोषके भयसे उच्चारणाचार्यके द्वारा व्याख्यात ओघ स्वामित्वको छोड़कर आदेशविषयक स्वामित्वको कहते हैं—

§ ४१२. सातों पृथिवियोंके नारकी, सामान तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच

तिरि०जोणिणी-मणुस्सतिय०-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस०-तसपज्ज०-पंचमण०--पंचवचि०--कायजोगि-ओरालि०-वेउव्वि०--तिण्णिवेद-चत्तारिक०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचलेस्सा-भवसिद्धि०-सण्णि-आहारीणमोघभंगो।

§ ४१३. पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सहिदिं बंधिदूण हिदिघादमकादूण पंचिं०-तिरिक्खअपज्जत्तएसु पढमसमयउववण्णो तस्स उक्कस्सहिदिविहत्ती। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० कस्स ? अण्ण० तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सहिदिं बंधिदूण अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो सम्मत्तेण सह सव्वलहुं कालमच्छिय मिच्छत्तं गदो मिच्छत्तेण हिदिघादमकाऊण पंचिं०तिरि०अपज्जत्तएसु उववण्णो तस्स पढमसमयउववण्णस्स उक्कस्सहिदिविहत्ती। एवं मणुसअपज्ज०-बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिं०अपज्ज०-बादरपुढवि०अपज्ज०--सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-बादरआउअपज्ज०--सुहुमआउ०पज्जत्तापज्जत्त--बादरतेउ०पज्जत्तापज्जत्त-सुहुमतेउपज्जत्ता-

पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यिनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, वैक्रियिक काययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पाँच लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके ओघके समान भंग है।

विशेषार्थ--ऊपर जितनी मार्गणाएं गिनाई है उनमें मिथ्यात्व आदि सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति ओघके समान बन जाती है, अतः इनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा है।

§ ४१३. पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक तिर्यंच या मनुष्य उत्कृष्ट स्थिति बाँधकर और स्थितिघात न करके पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ है उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक तिर्यंच या मनुष्य उत्कृष्ट स्थिति बाँधकर अन्तर्मुहूर्तकालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ तथा सम्यक्त्वके साथ अतिलघु कालतक रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। पुनः मिथ्यात्वके साथ रहते हुए स्थितिघात न करके पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। इसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य,बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, बादर जलकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्तक,अग्निकायिक,बादर अग्निकायिक पर्याप्तक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्तक, वायुकायिक, बादर वायुकायिक पर्याप्तक, बादर वायुकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक,

पज्जत्त-बादरवाउपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवाउ०पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०अपज्ज०-सुहुमवणप्फदि०पज्जत्तापज्जत्त-सव्वणिगोद-तसअपज्जत्ता त्ति ।

§ ४१४. आणदादि जावुवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०णवणोक० उक्क० ? अण्ण० जो दव्वलिंगी तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमयउववण्णो तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सव्वपयडीणमुक्क० कस्स ? अण्ण० जो वेदय०दिट्ठी तप्पाओग्गउक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमयउववण्णो तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती ।

§ ४१५. एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो देवो उक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणो एइंदिएसु पढमसमयउववण्णो तस्स० उक्क० विहत्ती । सम्मत्त०

सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक, सब निगोद और त्रस अपर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जिस मनुष्य या तिर्यंचने मिथ्यात्व या सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबंध किया है ऐसा जीव अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् उस उत्कृष्ट स्थितिके साथ मर कर पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हो सकता है, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोके भवके पहले समयमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर कही है तथा नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति उस लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचके होती है जिसने पूर्व भवमें सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके और एक आवलिके पश्चात् उसका नौ नोकषायरूपसे संक्रमण करके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालके बाद पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमे जन्म लिया है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका खुलासा मूलमें ही किया है । मूलमे और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमे भी इसी प्रकार जानना ।

§ ४१४. आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकतक मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति किसके होती है ? आनतादिके योग्य उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो कोई एक द्रव्यलिंगी मुनि मरकर आनतादिकमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? अनुदिशादिकके योग्य उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो कोई एक वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अनुदिश आदिमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४१५. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थिति बाँधनेवाला जो कोई एक देव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व-

सम्मामि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० जो तिगदिओ उक्कस्सट्ठिदिं बंधिदूण अंतोमुहुत्त-पडिहग्गो संतो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो तेण सम्मत्तेण सह सव्वलहुअमंतोमुहुत्तादमच्छिय मिच्छत्तं गदो। तदो मिच्छत्तेण ट्ठिदिघादमकादूण पढमसमयएइंदिओ जादो तस्स उक्क० विहत्ती। णवणोक० उक्क० कस्स ? अण्णदरस्स जो देवो उक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणो कालं कादूण एइंदिओ जादो पढमसमयमादिं कादूण जाव आवलियउववण्णस्स तस्स उक्क० ट्ठिदिविहत्ती। एवमेइंदियपज्ज०-बादरएइंदिय-बादरेइंदियपज्ज०-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविपज्ज०-आउ०-बादरआउ०-बादरआउपज्ज०-वणप्फदि०-बादरवणप्फदि०-बादरवणप्फदिपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेय०-बादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज०-असण्णि त्ति। ओरालियमिस्स० एवं चेव। णवरि देव णेरइयपच्छायदाणं कादव्वं।

की उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? तीन गतियोंका जो कोई एक जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर अन्तर्मुहूर्त कालमें प्रतिभग्न होकर तथा सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धिको प्राप्त होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पुनः अतिलघु कालतक वेदकसम्यक्त्वके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। तदनन्तर मिथ्यात्वके साथ स्थितिघात न करके एकेन्द्रिय हुआ। उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक देव कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर मरा और एकेन्द्रिय हुआ। उसके उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर एक आवली प्रमाण कालके भीतर नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय पर्याप्तक, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर, पृथिवीकायिक पर्याप्तक, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक पर्याप्तक, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्तक और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। औदारिक मिश्रकाययोगी जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि जो देव और नारक पर्यायसे वापिस आकर औदारिक मिश्रकाययोगी हुए हैं उनके उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति कहनी चाहिये।

विशेषार्थ—मूलमें एकेन्द्रिय आदि ऐसी मार्गणाएं गिनाई हैं जिनमें देव पर्यायसे आकर जीव उत्पन्न हो सकते हैं, अतः इन सबमें एकेन्द्रियोंके समान सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति बन जाती है। किन्तु औदारिकमिश्रकाययोगमें उत्कृष्ट स्थिति कहते समय देव और नारक पर्यायसे आकर जो औदारिकमिश्रकाययोगी हुए हैं उनके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। यहां यह शंका की जा सकती है कि जो उक्त मार्गणाओंमें देव पर्यायसे आकर उत्पन्न हुए हैं और औदारिकमिश्रकाययोगमें देव या नारक पर्यायसे आकर उत्पन्न हुए हैं उन्हींके उत्कृष्ट स्थिति क्यों प्राप्त होती है जो तिर्यंच या मनुष्य पर्यायसे आकर उक्त मार्गणाओंमें उत्पन्न हुए हैं उनके उत्कृष्ट स्थिति क्यों नहीं प्राप्त होती है। सो इसका समाधान यह है कि अतिसंक्लेशसे मरा हुआ तिर्यंच और मनुष्य नारक पर्यायमें उत्पन्न होगा अतः यहां देव और नारक पर्यायसे यथायोग्य उत्पन्न कराकर ही उक्त मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थिति कही है।

§ ४१६. वेउव्वियमिस्स० मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणो मदो णेरइएसु पढमसमयउववण्णो तस्स उक्क०विहत्ती। सम्मत्त-सम्मामि० पंचिं०तिरिक्खअपज्जत्तभंगो। णवणोक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो तिरिक्खो मणुस्सो वा उक्कस्सट्ठिदिं बंधिदूण कालं गदो णेरइएसु उववण्णो पढमसमयमादिं कादूण जाव आवलियउववण्णस्स तस्स उक्क०विहत्ती।

§ ४१७ आहार० सव्वपयडीणमुक्क० कस्स ? अण्ण० जो वेदय०दिट्ठी उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमयपज्जत्तयदो तस्स उक्क०विहत्ती। एवमाहारमिस्स०। णवरि पढमसमयआहारमिस्सयस्स।

§ ४१८. कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो चदुगदिओ उक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणो कालं गदो समयाविरोहेण तिरिक्ख-णेरइएसु पढमसमयकम्मइयकायजोगी जादो तस्स उक्क०विहत्ती। सम्मत्त०-सम्मामि० ओरालियमिस्सभंगो। णवरि चदुसु गदीसु सम्मत्तं दादव्वं। णवणोक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो चदुगदिओ उक्क०ट्ठिदिं० बंधमाणो कालं गदो जहासंभवं तिरिक्ख-णेरइएसु पढमविदियसमयउव-

§ ४१६. वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक तिर्यंच या मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिको बाँध कर मरा और नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान है। नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक तिर्यंच या मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर मरा और नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर एक आवलीप्रमाण कालके भीतर नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है।

§ ४१७. आहारककाययोगियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो कोई वेदकसम्यग्दृष्टि जीव आहारककाययोगी हुआ उसके पर्याप्त होनेके पहले समयमें सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि आहारकमिश्रकाययोगके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है।

§ ४१८. कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाला जो कोई चार गतिका जीव मरा और यथानियम तिर्यंच और नारकियोंमें उत्पन्न होकर कार्मणकाययोगी हो गया उसके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वको चारों गतियोंमें देना चाहिये। अर्थात् उसकी उत्कृष्टस्थिति विभक्ति चारों गतियोंमें कार्मणकाययोगियोंके होती है। नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिको बांधनेवाला जो कोई एक चारों गतियोंका जीव मरा और यथायोग्य तिर्यंच तथा नारकियोंमें पहले और दूसरे समयमें उत्पन्न

वण्णो तस्स उक्क० विहत्ती ।

§ ४१९. अवगद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमयअवगदवेदो जादो तस्स उक्क० विहत्ती । एवमकसा०-सुहुम०-जहाक्खादसंजदे त्ति ।

§ ४२०. मदि-सुदअण्णा० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ओघभंगो । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छत्तउक्कस्सट्ठिदिं बंधिय अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो । पुणो सम्मत्तेण सव्वलहुअमंतोमुहुत्तद्धमच्छिय मिच्छत्तं गदो तस्स पढमसमए उक्क० विहत्ती । एवं विहंग० ।

§ ४२१. आभिणि०-सुद०-ओहि० सव्वपयडीणमुक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छाइट्ठी देवो णेरइओ वा उक्क० ट्ठिदिं बंधिदूण ट्ठिदिघादमकादूण अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स पढमसमयसम्माइट्ठिस्स उक्क० विहत्ती । एवमोहिदंस०-सम्मादि०-वेदय० दिट्ठि त्ति । मणपज्जव० सव्वपयडि० उक्क० कस्स ? अण्ण० वेदय०-दिट्ठी उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ तस्स पढमसमयमणपज्जवणाणिस्स उक्कस्सट्ठिदि-विहत्ती । एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजदे त्ति ।

हुआ उसके उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है ।

४१९ अपगतवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो कोई जीव अपगतवेदवाला हो गया उसके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है । इसी प्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयतके जानना चाहिये ।

४२० § मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः सम्यक्त्वके साथ सबसे लघु अन्तर्मुहूर्त काल तक रह कर मिथ्यात्वमें गया उसके पहले समयमें उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार विभंगज्ञानियोंके जानना चाहिये ।

§ ४२१ आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियों की उत्कृष्टस्थिति विभक्ति किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि देव या नारकी जीव उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और स्थितिघात न करके अन्तर्मुहूर्त कालमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उस सम्यग्दृष्टि जीवके पहले समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो कोई वेदक सम्यग्दृष्टि जीव है उसके मनःपर्ययज्ञानको प्राप्त होनेके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार संयत, समायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयतके जानना चाहिये ।

§ ४२२. सुक्कले० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छाइट्ठी उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय ट्ठिदिघादमकाऊण लेस्सापरावत्तिं गदो तस्स उक्क० विहत्ती। सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० कस्स० ? अण्ण० जो मिच्छाइट्ठी उक्क०ट्ठिदिं बंधिय अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो। पुणो अंतोमुहुत्तेण लेस्सापरावत्तिं गदो तस्स पढमसमए उक्क०विहत्ती।

§ ४२३. अभविय० देवोघं। णवरि सम्म०-सम्मामि० णत्थि। खइय० बारसक०-णवणोक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो उक्क०ट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमयखीणदंसणमोहणीओ जादो तस्स उक्क०विहत्ती। उवसम० सव्वपयडि० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो उक्क०ट्ठिदिसंतकम्मिओ पढमसमयउवसंतदंसणमोहणीओ जादो तस्स उक्क०विहत्ती। सासण० सव्वपयडि० उक्क० कस्स ? अण्ण० तस्सेव पढमसमयसासणं गदस्स तस्स उक्कस्स०विहत्ती। सम्मामि० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छाइट्ठी उक्क०ट्ठिदिं बंधिदूण ट्ठिदिघादमकाऊण अंतोमुहुत्तेण सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो तस्स उक्क०विहत्ती। सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० कस्स ? अण्ण० जो मिच्छत्तउक्कस्सट्ठिदिं बंधिदूण ट्ठिदिघादमकाऊण

---

§ ४२२ शुक्ललेश्यामें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और स्थितिघात न करके लेश्यापरावृत्तिसे शुक्ललेश्याको प्राप्त हुआ है उसके उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बांध कर अन्तमुहूर्त कालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है। पुनः अन्तमुहूर्त कालके द्वारा लेश्यापरावृत्तिसे शुक्ललेश्याको प्राप्त हुआ है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है।

§ ४२३ अभव्योंके सामान्य देवोंके समान कथन जानना चाहिये। पर इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कर्म नहीं होते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो जीव क्षीणदर्शनमोह हो गया है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला जो जीव उपशान्तदर्शनमोहनीय हो गया है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई वही पूर्वोक्त जीव सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उसके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और स्थितिघात न करके अन्तमुहूर्त कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर और स्थितिघात

सम्मत्तं पडिवण्णो सम्मत्तेण सव्वलहुअमद्धमच्छिय ट्ठिदिघादमकाऊण सम्मामिच्छत्तं गदो तस्स पढमसमयसम्मामिच्छादिट्ठिस्स उक्क० विहत्ती। अणाहारीणं कम्मइयभंगो।

एवमुक्कस्ससामित्तं समत्तं।

❀ एत्तो जहण्णयं।

§ ४२४. जहण्णसामित्तं भणामि त्ति सिस्ससंभालणं कदमेदेण सुत्तेण। तस्स दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य चेदि। तत्थ ओघेण परूवणट्ठं जइवसहाइरिओ उत्तरसुत्तं भणदि—

मिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४२५. सुगममेदं

* मणुसस्स वा मणुसिणीए वा खविज्जमाणयमावलियं पविट्ठं जाधे दुसमयकालट्ठिदिगं सेसं ताधे।

§ ४२६. मणुस्सो त्ति वुत्ते पुरिसणवुंसयवेदोदइल्लाणं गहणं। मणुस्सिणि त्ति वुत्ते इत्थिवेदोदयजीवाणं गहणं। जहा अप्पसत्थवेदोदएण मणपज्जवणाणादीणं ण

न करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है। पुनः सम्यक्त्वके साथ अतिलघु काल तक रहकर और स्थिति-घात न करके सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है। अनाहारकोंका कार्मणकाययोगियोंके समान स्वामित्व जानना चाहिये।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्वामित्व समाप्त हुआ।

* इसके आगे जघन्य स्वामित्वको कहते हैं।

§ ४२४. अब जघन्य स्वामित्वको कहते हैं। इस प्रकार इस सूत्र द्वारा शिष्योंकी सम्हाल की है। इस जघन्य स्वामित्वकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघके कथन करनेके लिये यतिवृषभ आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं—

* मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४२५. यह सूत्र सुगम है।

* मनुष्य या मनुष्यिनीके उदयावलिमें प्रविष्ट होकर क्षयको प्राप्त होता हुआ जो मिथ्यात्व कर्म है उसकी जब दो समय प्रमाण स्थिति शेष रहती है तब जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

§ ४२६. सूत्रमें मनुष्य ऐसा कहने पर उससे पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयवाले मनुष्योंका ग्रहण होता है। मनुष्यिनी ऐसा कहने पर उससे स्त्रीवेदके उदयवाले मनुष्य जीवोंका ग्रहण होता है। जिस प्रकार अप्रशस्त वेदके उदयके साथ मनःपर्ययज्ञानादिकका होना संभव नहीं है

संभवो तहा दंसणमोहणीयक्खवणाए तत्थ किं संभवो अत्थि णत्थि त्ति संदेहेण घुलंत-हियस्स सिस्ससंदेहविणासणट्ठं मणुस्सस्स मणुस्सणीए वा त्ति भणिदं । खविज्ज-माणयं ति वुत्ते मिच्छत्तस्स गहणं, अण्णस्सासंभवादो । आवलियं ति वुत्ते उदयावलि-याए गहणं; मिच्छत्तचरिमफालियाए परसरूवेण गदाए उदयावलियपविट्ठणिसेगे मोत्तूण अण्णेसिमवट्ठाणाभावादो । एत्थ जमावलियं पविट्ठं खविज्जमाणयं मिच्छत्तं अधट्ठिदि-गलणाए गलिय जाधे तं दुसमयकालट्ठिदिगं सेसं ताधे तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि त्ति संबंधो कायव्वो । कधं सुत्तम्मि असंताणं पदाणमज्झाहारो कीरदे ? ण, सुत्त-स्सेव अवयवभूदाणं सुगमत्तणेण तत्थ अणुच्चारिज्जमाणाणं तत्थ अभावविरोहादो ।

इसी प्रकार अप्रशस्त वेदके उदयमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा क्या संभव है या नहीं है इस प्रकार सन्देहसे जिसका हृदय घुल रहा है उस शिष्यके सन्देहको दूर करनेके लिये सूत्रमें 'मणुस्सस्स मणुस्सणीए वा' यह पद कहा है। सूत्रमें 'खविज्जमाणयं' ऐसा कहने पर उससे मिथात्वका ग्रहण करना चाहिये, यहां अन्यका ग्रहण नहीं हो सकता है। सूत्रमें 'आवलियं' ऐसा कहने पर उससे उदयावलिका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके पररूपसे संक्रमित हो जाने पर उदयावलिमें प्रविष्ट हुए निषेकोंको छोड़कर अन्य निषेकोंका सद्भाव नहीं पाया जाता है। यहाँ पर जो उदयावलिमें प्रविष्ट होकर क्षयको प्राप्त होनेवाला मिथ्यात्व कर्म है वह अधःस्थिति-गलना रूपसे गलित होकर जब दो समय काल स्थितिप्रमाण शेष रहता है तब उसकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ऐसा सम्बन्ध कर लेना चाहिये।

शंका—जो पद सूत्रमें नहीं है उनका अध्याहार कैसे किया जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जो सूत्रके ही अवयवभूत हैं पर सुगम होनेसे जिनका वहां उच्चारण नहीं किया है उनका अस्तित्व यदि वहाँ नहीं स्वीकार किया जाता है तो विरोध आता है।

विशेषार्थ—यद्यपि ऐसा नियम है कि स्त्रीवेदवाले और नपुंसकवेदवाले मनुष्यके मनः-पर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धिसंयम, आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगकी प्राप्ति नहीं होती फिर भी क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायिकचारित्रकी प्राप्ति तीनों वेदोंके रहते हुए हो सकती है, इसी बातका ज्ञान करानेके लिए सूत्रमे मनुष्य और मनुष्यिनी इन दोनों पदोंका ग्रहण किया है। यहां मनुष्य पदसे पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये और मनुष्यिनी पदसे स्त्रीवेदी मनुष्योंका ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार जब इन तीन वेदवालोंमेंसे कोई एक वेदवाला मनुष्य दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करता हुआ मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिमें स्थित उदयावलि-प्रमाण निषेकोंको गलाता हुआ अन्तमें दो समय स्थितिवाला एक निषेक शेष रखता है तब उसके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है। मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके प्रतिपादक उक्त चूर्णिसूत्रका समुदायार्थ कहते समय वीरसेन स्वामीने 'अधट्ठिदिगलणाए गलिय' इतना पद और जोड़ा है। इस पर शंकाकारका कहना है कि ये पद पूर्ववर्ती सूत्रोंमें तो पाये नहीं जाते, अतः यहां इनका अध्याहार कैसे किया जा सकता है, क्योंकि अध्याहार तो उन्हीं पदोंका होता है जो पूर्ववर्ती सूत्रोंमें आ चुके हैं। इस शंकाका वीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका सार यह है कि कोई पद यदि पूर्ववर्ती सूत्रोंमे न आया हो तो भी उसका अध्याहार करनेमें कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि

✻ सम्मत्तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४२७. सुगममेदं ।

✻ चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।

§ ४२८. चरिमसमयअक्खीणसम्मत्तस्से त्ति वत्तव्वं तेणेत्थ अहियारादो ण चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्से त्ति ? ण एस दोसो, मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ते खइय पच्छा सम्मत्तं खविज्जदि त्ति कम्माण क्खवणक्कमजाणावणट्ठं चरिमसमय-अक्खीणदंसणमोहणीयस्से त्ति णिद्देसादो। मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तेसु कं पुव्वं खविज्जदि ? मिच्छत्तं । कुदो, अच्चसुहत्तादो । असुहस्स कम्मस्स पुव्वं चेव खवणं होदि त्ति कुदो णव्वदे ? सम्मत्तस्स लोहसंजलणस्स य पच्छा खयण्णहाणुववत्तीदो ।

ऐसा कोई नियम नहीं है कि जो पद पूर्ववर्ती सूत्रोंमें आये हो उन्हींका केवल अध्याहार किया जा सकता है । किन्तु सरल होनेसे जो पद सूत्रमें नहीं कहे गये हो पर जिनके कथन करनेसे अर्थ बोधमें सुगमता आती हो ऐसे पदोको ऊपरसे भी जोड़ा जा सकता है, क्योंकि अध्याहारका अर्थ भी यही है कि जिस वाक्यका अर्थ अस्पष्ट हो उसे शब्दान्तरकी कल्पना द्वारा स्पष्ट कर देना चाहिये । अब यदि ऐसे पद पूर्ववर्ती सूत्रोंमें मिल जाते हैं तो अच्छा ही है और यदि नहीं मिलते हैं तो कल्पनाद्वारा उन्हें ऊपरसे भी जोड़ा जा सकता है ।

✻ सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४२७. यह सूत्र सुगम है ।

✻ जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं किया है ऐसे जीवके दर्शनमोहनीयके क्षय होनेके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४२८ **शंका**—सूत्रमें 'जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' यह न कहकर 'जिसने सम्यक्त्वका क्षय नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि सम्यक्त्वका यहां अधिकार है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वको क्षय करके अनन्तर सम्क्त्व का क्षय करता है इस प्रकार कर्मोंके क्षपणके क्रमका ज्ञान करनेके लिये 'जिसने दर्शन मोहनीयका क्षय नहीं किया है ऐसे जीवके अन्तिम समयमें' यह कहा है ।

शंका—मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें पहले किसका क्षय होता है ?

समाधान—पहले मिथ्यात्वका क्षय होता है ।

शंका—पहले मिथ्यात्वका क्षय किस कारणसे होता है ?

समाधान—क्योंकि मिथ्यात्व अत्यन्त अशुभ प्रकृति है ।

शंका—अशुभ कर्मका पहले ही क्षय होता है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—अन्यथा सम्यक्त्व और लोभ संज्वलनका पश्चात् क्षय बन नहीं सकता है, इस प्रमाणसे जाना जाता है कि अशुभ कर्मका क्षय पहले होता है ।

* सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४२९. सुगममेदं ।

* सम्मामिच्छत्तं खविज्जमाणं वा उव्वेल्लिज्जमाणं वा जस्स दुसमयकालट्ठिदियं सेसं तस्स ।

§ ४३०. खवेंतस्स वा उव्वेल्लंतस्स वा जस्स दुसमयकालट्ठिदियं सम्मामिच्छत्तं सेसं तस्सेव जीवस्स जहण्णसामित्तं होदि त्ति वयणेण सेससम्मामिच्छत्तसंतकम्मियाणं पडिसेहो कदो । एवकारेण विणा कधमेसो णियमो अवगम्मदे ? ण एस दोसो, एवकाराभावे वि तदट्ठो तत्थ अत्थि त्ति सावहारणअवगमुप्पत्तीए विरोहाभावादो । एगसमयकालट्ठिदियमिदि किण्ण वुच्चदे ? ण, उदयाभावेण उदयणिसेयट्ठिदी परसरूवेण गदाए विदियणिसेयस्स दुसमयकालट्ठिदियस्स एगसमयावट्ठाणविरोहादो । विदियणिसेओ सम्मामिच्छत्तसरूवेण एगसमयं चेव अच्छदि उवरिमसमए मिच्छत्तस्स सम्मत्तस्स वा उदयणिसेयसरूवेण परिणामुवलंभादो । तदो एयसमयकालट्ठिदिसेसं

---

* सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४२९ यह सूत्र सुगम है ।

* जिसके क्षयको प्राप्त होते हुए व उद्वेलनाको प्राप्त होते हुए सम्यग्मिथ्यात्वकी दो समय काल प्रमाण स्थिति शेष रहती है उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४३० क्षय करनेवाले या उद्वेलना करनेवाले जिस जीवके दो समय काल स्थिति प्रमाण सम्यग्मिथ्यात्व शेष रहता है उसी जीवके जघन्य स्वामित्व होता है । इस वचनके द्वारा शेष सम्यग्मिथ्यात्व सत्कर्मवाले जीवोंका प्रतिषेध कर दिया है ।

शंका—एवकारके विना यह नियम कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि एवकारके नहीं रहने पर भी एवकार शब्दका अर्थ सूत्रमें अन्तर्निहित है इसलिये अवधारण सहित अर्थके ज्ञानके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति एक समय काल प्रमाण क्यों नहीं कही जाती है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि जिस प्रकृतिका उदय नहीं होता उसकी उदय निषेकस्थिति उपान्त्य समयमें पररूपसे संक्रमित हो जाती है अतः दो समय कालप्रमाण स्थितिवाले दूसरे निषेककी जघन्य स्थिति एक समय प्रमाण माननेमें विरोध आता है ।

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वका दूसरा निषेक सम्यग्मिथ्यात्व रूपसे एक समय काल तक ही रहता है, क्योंकि अगले समयमें उसका मिथ्यात्व या सम्यक्त्वके उदय निषेकरूपसे परिणमन पाया जाता है अतः सूत्रमें 'दुसमयकालट्ठिदिसेसं' के स्थान पर 'एक समयकालट्ठिदिसेसं' ऐसा कहना चाहिये ?

ति वत्तव्वं ? ण, एगसमयकालट्ठिदिए णिसेगे संते विदियसमए चेव तस्स णिसेगस्स अदिण्णफलस्स अकम्मसरूवेण परिणामप्पसंगादो । ण च कम्मं सगसरूवेण परसरूवेण वा अदत्तफलमकम्मभावं गच्छदि, विरोहादो । एगसमयं सगसरूवेणच्छिय विदियसमए परपयडिसरूवेणच्छिय तदियसमए अकम्मभावं गच्छदि त्ति दुसमयकालट्ठिदिणिद्देसो कदो।

* अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४३१. सुगममेदं ।

* अणंताणुबंधी जेण विसंजोइदं आवलियं पविट्ठं दुसमयकालट्ठिदिगं सेसं तस्स ।

समाधान—नहीं, क्योंकि इस निषेकको यदि एक समय काल प्रमाण स्थितिवाला मान लेते हैं तो दूसरे ही समयमें उसे फल न देकर अकर्मरूपसे परिणमन करनेका प्रसंग प्राप्त होता है । और कर्म स्वरूपसे या पररूपसे फल बिना दिये अकर्मभावको प्राप्त होते नहीं, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है । किन्तु अनुदय रूप प्रकृतियोंके प्रत्येक निषेक एक समय तक स्वरूपसे रहकर और दूसरे समयमें पर प्रकृतिरूपसे रहकर तीसरे समयमें अकर्मभावको प्राप्त होते हैं ऐसा नियम है अतः सूत्रमें दो समय कालप्रमाण स्थितिका निर्देश किया है ।

विशेषार्थ—यहां यह शंका उठाई गई है कि जिस कर्मका स्वोदयसे क्षय नहीं होता उसका अन्तिम निषेक उपान्त्य समयमें ही पर प्रकृतिरूप हो जाता है, अतः अनुदयरूप प्रकृतिकी जघन्य स्थिति एक समय ही कहनी चाहिये । इस शंकाका वीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि यद्यपि ऐसा निषेक उपान्त्य समयमें ही परप्रकृतिरूप हो जाता है पर वह कर्मरूपसे दो समय तक रहता है और तीसरे समयमें ही अकर्मभावको प्राप्त होता है, अतः उस निषेककी जघन्य स्थिति दो समय कहना ही युक्त है । यदि उसकी स्थिति एक समय मानी जाती है तो दूसरे समयमें बिना फल दिये उसे अकर्मरूप हो जाना चाहिये । पर ऐसा होता नहीं, क्योंकि कोई भी कर्म फल दिये बिना अकर्मरूप होता नहीं और उपान्त्य समय उसका उदयकाल नहीं है, अतः उपान्त्य समयमें वह फल दे नहीं सकता । इसलिये यही निश्चित होता है कि जो निषेक जितने काल तक कर्मरूपसे रहता है उसकी उतनी स्थिति होती है । स्थितिका विचार करते समय यह नहीं देखा जाता कि वह अमुक समयमें अन्य प्रकृतिरूप होनेवाला है इसलिये इसकी स्थिति अन्य प्रकृतिरूप होनेसे पहले तक हो । किन्तु जिस समय जिस कर्मकी जितनी स्थिति कही जाती है उस समय उस कर्मरूप परमाणुमें निषेकोंके सद्भावकालको देख कर ही वह स्थिति कही जाती है । अब यदि वे निषेक उसी समय या अन्य समयमें अन्य प्रकृतिरूप होते हों तो हो जायं, इससे उस कर्मकी स्थितिका कथन करनेमें कोई बाधा नहीं आती ।

* अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४३१ यह सूत्र सुगम है ।

* जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है और तदनन्तर उदयावलीमें प्रविष्ट होकर जब उसकी दो समय काल प्रमाण स्थिति शेष रहती है तब उसकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४३२. अणंताणुबंधी जेण खविदं ति अभणिय जेण विसंजोइदं ति किमट्ठं वुच्चदे ? ण, जस्स कम्मस्स परसरूवेण गयस्स पुणरुप्पत्ती णत्थि तस्स कम्मस्स विणासो खवणा णाम । ण च अणंताणुबंधीणमट्ठकसायाणं व पुणरुप्पत्ती णत्थि; पुणो वि परिणामवसेण सासणादिसु बंधुवलंभादो । तम्हा अणंताणुबंधी जेण विसंजोइदं ति सुहासियमेदं; तस्स पुणरुप्पत्तिजाणावणट्ठं परूविदत्तादो । जदि अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइदं तो तेण जीवेण अणंताणुबंधिचउक्कं पडि णिस्संतकम्मेण होदव्वं ण तत्थ जहण्णसामित्तस्स संभवो; अभावे भावविरोहादो त्ति ? ण एस दोसो, चरिमट्ठिदिखंडय-चरिमफालियाए परसरूवेण गदाए समाणिदअणियट्टिकरणस्स विसंजोइदत्ताविरोहादो। अणंताणुबंधिकम्मक्खंधे सेसकसायसरूवेण परिणामेंतओ विसंजोएंतओ णाम । ण च एवंविहा विसंजोयणा आवलियपविट्ठणिसेयाणमत्थि; तेसिं संकमाभावादो । तम्हा अणंताणुबंधी जेण विसंजोइदं ति सुहासियमेदं । जमुदयावलियपविट्ठमणंताणुबंधिचउक्क-संतकम्मं तं जाधे दुसमयकालट्ठिदिगं सेसं ताधे तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती ।

---

§ ४३२ शंका—सूत्रमें 'जिसने अनन्तानुबन्धीका क्षय कर दिया है' ऐसा न कह कर 'जिसने उसकी विसंयोजना कर दी है' ऐसा किसलिये कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पररूपसे प्राप्त हुए जिस कर्मको पुनः उत्पत्ति नहीं होती है उस कर्मके विनाशको क्षपणा कहते हैं । पर जिस प्रकार आठ कषायोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती उस प्रकार चार अनन्तानुबन्धीकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती यह बात तो है नहीं किन्तु परिणामोंके वशसे सासनादिकमें इसका पुनः बन्ध पाया जाता है अतः जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है यह सूत्रमें उचित कहा है क्योंकि उसकी पुनः उत्पत्तिका ज्ञान करानेके लिये ऐसा कथन किया है ।

शंका—यदि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना हो गई तो उस जीव को अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा कर्मरहित हो जाना चाहिये, अतः ऐसे जीवके जघन्य स्वामित्व संभव नहीं है, क्यों कि अभावमें भावके माननेमें विरोध आता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पर-रूपसे प्राप्त हो जानेपर अनिवृत्तिकरणको प्राप्त हुए जीवके अनन्तानुबन्धीको विसंयोजित माननेमें कोई विरोध नहीं आता है । अनन्तानुबन्धीके कर्मस्कन्धोंको शेष कषायरूपसे परिमानेवाला जीव विसंयोजक कहलाता है । पर इस प्रकारकी विसंयोजना आवली प्रविष्ट कर्मोंकी तो होती नहीं, क्योंकि उनका संक्रमण नहीं होता है, अतः सूत्रमें 'जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है' यह योग्य कहा है । जो उदयावलिमें प्रविष्ट अनन्तानुबन्धी चतुष्क सत्कर्म है वह जिससमय दो समय स्थितिप्रमाण शेष रहता है तब उसकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

विशेषार्थ—यहां विसंयोजना और क्षपणामें अन्तर बतलाते हुए यह लिखा है कि पर प्रकृतिरूपसे संक्रमणको प्राप्त हुए जिस कर्मकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती उस कर्मके विनाशका नाम क्षपणा है और जिस कर्मकी पुनः उत्पत्ति हो सकती है उस कर्मके विनाशका नाम विसंयोजना है

सो इसका यह तात्पर्य है कि जो कर्म स्वोदयसे क्षयको नहीं प्राप्त होते हैं उनके द्वितीय स्थितिमें स्थित कर्मपुंजका उस समय बंधनेवाली अपनी सजातीय प्रकृतिरूपसे संक्रमण होता रहता है और जो कर्मपुंज उदयावलिमें स्थित है उसके प्रत्येक अन्तिम निषेकका स्तिवुक संक्रमणके द्वारा उपान्त्य समयमें उदयगत सजातीय प्रकृतिरूपसे संक्रमण होता रहता है और इस प्रकार उस कर्मकी क्षपणा होती है। क्षपणाका यह लक्षण परोदयसे जिन प्रकृतियोंका क्षय होता है उनके क्षयमें ही घटित होता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी क्षपणा भी इस लक्षणमें आ जाती है फिर भी उसके क्षयको क्षपणा न कहकर विसंयोजना इसलिये कहा है, क्योंकि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी यद्यपि इस प्रकारसे क्षपणा हो जाती है फिर भी परिणामोंके वशसे सासादन और मिथ्यात्व गुणस्थानमें उसकी पुनः उत्पत्ति देखी जाती है। अब यहां थोड़ा इस बातका विचार कर लेना भी आवश्यक है कि जिस जीवने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर ली है ऐसा जीव क्या सासादन गुणस्थानको भी प्राप्त हो सकता है? जिस जीवने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं की है किन्तु केवल दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोकी उपशमना की है ऐसा प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है इसमें किसीको विवाद नहीं। हां, जिस वेदकसम्यग्दृष्टिने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी उपशमना की है ऐसा द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे च्युत होकर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है इसमें अवश्य विवाद है। धवला बन्धसामित्त विचयखण्डमें बतलाया है कि जिस जीवने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसा जीव यदि मिथ्यात्व में आता है तो उसके एक आवलिकाल तक अनन्तानुबन्धी चतुष्कमेंसे किसी एक प्रकृतिका उदय नहीं होता है। इसका यह अभिप्राय है कि ऐसा जीव यदि मिथ्यात्वमें आता है तो उसके पहले समयसे ही यद्यपि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका बन्ध होने लगता है और अन्य प्रकृतियोंका अनन्तानुबन्धी रूपसे संक्रमण होने लगता है किन्तु बन्धावलि और संक्रमावलि करणोंके अयोग्य होती है इस नियमके अनुसार एक आवलि कालतक न तो बंधे हुए कर्मोंका ही उदय हो सकता है और न बन्धके साथ संक्रमको प्राप्त हुए कर्मोंका ही एक आवलि काल तक उदय हो सकता है। जब मिथ्यात्व गुणस्थानकी यह स्थिति है तब ऐसा जीव सासादन गुणस्थानको कैसे प्राप्त कर सकता है, क्योंकि सासादन गुणस्थान अनन्तानुबन्धी चतुष्कमेंसे किसी एक प्रकृतिकी उदीरणा हुए बिना होता नहीं। पर जब अनन्तानुबन्धीका सत्त्व ही नहीं और बन्धके बिना अन्य प्रकृतियां अनन्तानुबन्धीरूपसे संक्रमणको नहीं प्राप्त हो सकतीं तथा अनन्तानुबन्धी का बन्ध मिथ्यात्व और सासादन प्राप्त किये बिना हो नहीं सकता। कदाचित् यह मान लिया जाय कि जिस समय ऐसा जीव सासादनको प्राप्त हो उसी समय अनन्तानुबन्धीका बन्ध होने लगे और शेष कषाय और नोकषाय अनन्तानुबन्धीरूपसे संक्रमित होकर उदीरणाको प्राप्त हो जायं तो ऐसे जीवके भी सासादन गुणस्थान बन जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि जैसा कि हम पहले बतला आये हैं कि इस नियमके अनुसार संक्रमित कर्मपुंज भी एक आवलिके पश्चात् ही उदीरित हो सकता है। अतः यह सिद्ध हुआ कि षट्खण्डागमके अभिप्रायानुसार ऐसा जीव सासादन गुणस्थानको नहीं प्राप्त होता है। श्वेताम्बरोंके यहां प्रसिद्ध कर्म प्रकृतिमें बतलाया है कि ऐसा जीव सासादन गुणस्थानको भी प्राप्त होता है। पर इसकी टीकामें इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है कि जिन आचार्योंके मतसे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उपशमना होती है उनके मतानुसार उपशमश्रेणीसे च्युत हुआ जीव सासादन गुणस्थानको भी प्राप्त होता है। टीकाकारने मूलका इस प्रकार अर्थ बिठलाया है। किन्तु मूलकारका यही अभिप्राय रहा होगा यह कहना जरा कठिन है क्योंकि सो कर्मप्रकृतिके प्रकृतिस्थान संक्रम नामक प्रकरणको देखनेसे मालूम

* अट्ठण्हं कसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४३३. सुगममेदं।

* अट्ठकसायक्खवयस्स दुसमयकालट्ठिदियस्स तस्स ।

§ ४३४. ट्ठिदी णिसेओ त्ति एयट्ठो, दुसमओ कालो जिस्से सा दुसमयकाला, दुसमयकालट्ठिदी जस्स अट्ठकसायक्खवयस्स सा दुसमयकालट्ठिदियस्स अट्ठकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती । चारित्तमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिय अधापवत्तकरण-अपुव्वकरणद्धाओ जहाविहिविसिट्ठाओ परिवाडीए गमिय अणियट्टिकरणं पविसिय ट्ठिदिअणुभागपदेसाणं बहुवाणं घादं काद्ण अणियट्टिअद्धाए संखे०भागे गदे अट्ठकसायाणं खवणमाढविय आढत्तपढमसमयादो असंखेज्जगुणाए सेढीए कम्मप्पदेसक्खंधे गालयंतेण

होता है कि जिस जीवने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसा जीव भी सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो सकता है। वहां बतलाया है कि इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका इक्कीस प्रकृतिक पतद्ग्रहमें भी संक्रमण होता है। विचार करके देखनेसे यह स्थिति सासादन गुणस्थानमें ही प्राप्त होती है, अन्यत्र नहीं, क्योंकि मोहनीयका इक्कीस प्रकृतिक बन्ध सासादनमें ही होता है, अतः यह निश्चित हुआ कि जिस जीवने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर ली है ऐसा जीव जब सासादनको प्राप्त होता है तब उसके एक आवलिकाल तक अनन्तानुबन्धी चतुष्कका संक्रमण नहीं होता है। परन्तु जो बारह कषाय और नौ नोकषाय अनन्तानुबन्धीरूपसे संक्रमित होती हैं, उनकी पहले समयसे ही उदीरणा होने लगती है। इस व्यवस्थाको मानलेनेपर संक्रमावलि सकल करणोंके अयोग्य है यह बात नहीं रहती है ? कर्मप्रकृतिका यह विवेचन कषायप्राभृतके विवेचनसे मिलता हुआ है। अतः चूर्णिसूत्रकारने भी अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना किये हुए जीवके दूसरे गुणस्थानमें जाने का विधान किया है।

* आठ कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४३३ यह सूत्र सुगम है।

* आठ कषायोंका क्षय करनेवाले जिस क्षपक जीवके दो समय कालप्रमाण स्थिति शेष रह गई है उसके उनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

§ ४३४ स्थिति और निषेक ये दोनों एकार्थवाची शब्द हैं। जिस स्थितिको दो समय काल है उसको दो समय कालवाली स्थिति कहते हैं। आठ कषायोंकी क्षपणा करनेवाले जिस जीवके दो समय कालप्रमाण स्थिति होती है वह दो समय काल प्रमाण स्थितिवाला कहलाता है। उसके आठ कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

कोई जीव जिसने चारित्रमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ किया अनन्तर जिसने जिसकी जैसी विशेषता बतलाई है उसके अनुसार अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणके कालको क्रमसे व्यतीत करके अनिवृत्तिकरणमें प्रवेश किया और वहां बहुतसी स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका घात करके अनिवृत्तिकरणके संख्यातवें भाग कालके व्यतीत होने पर आठ कषायोंके क्षयका प्रारम्भ किया और इस प्रकार आठ कषायोके क्षयका आरम्भ करनेके प्रथम समयसे लेकर

संखेज्जट्ठिदि-अणुभागखंडयसहस्साणि पादिदाणि। एवं पादिय अट्ठकसायाणं चरिमट्ठिदिअणुभागकंडयाणि घेत्तु माढत्ताणि। तेसिं चरमफालीसु णिवदिदासु उदयावलियब्भंतरे समयूणावलियमेत्ता णिसेया लब्भंति; उदयाभावेण पढमणिसेयस्स परसरूवेण गदस्स अट्ठकसायसरूवेण अभावादो। तेसु णिसेगेसु जहाकमेण अधट्ठिदीए गलमाणेसु जाधे जस्स एया ट्ठिदी दुसमयकाला सेसा ताधे तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि त्ति घेत्तव्वं। एसो पिंडत्थो।

* कोधसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४३५. सुगममेदं।

* खवयस्स चरिमसमयअणिल्लेविदे कोहसंजलणे।

§ ४३६. खवयस्से त्ति ण वत्तव्वं, पडिसेज्झाभावादो। णोवसामयपडिसेहट्ठं; तस्स कोहसंजलणस्स णिल्लेवणाभावादो। तम्हा चरिमसमयअणिल्लेविदे कोहसंजलणे त्ति एत्तियं चेव वत्तव्वं ? ण एस दोसो, कोहसंजलणस्स णिल्लेवओ खवओ चेव ण उवसामओ त्ति जाणावणट्ठं खवयस्से त्ति णिद्देसादो। ण च सुत्तमंतरेण

असंख्यातगुणी श्रेणीके द्वारा कर्मप्रदेशस्कन्धोंका गालन करता हुआ हजारों स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकों का पतन किया। इस प्रकार हजारों काण्डकोंका पतन करके आठ कषायोंके अन्तिम स्थिति और अनुभाग काण्डकोंके घात करने का प्रारम्भ किया और इस प्रकार उनकी अन्तिम फालियोंका पतन हो जाने पर उदयावलिके भीतर एक समय कम आवली प्रमाण निषेक प्राप्त होते हैं, क्योंकि उदय न होनेके कारण प्रथम निषेक परप्रकृतिरूप हो जाता है अतः उसका आठ कषायरूपसे अभाव हो जाता है। अनन्तर उन उदयावलीमें प्रविष्ट निषेकोंका यथा क्रमसे अधःस्थितिके द्वारा गलन होते हुए जिस समय एक स्थिति दो समय कालप्रमाण शेष रहती है उस समय उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये। यह उक्त सूत्रका समुदायार्थ है।

* क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४३५. यह सूत्र सुगम है।

* क्रोधसंज्वलनकी सत्त्वव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें विद्यमान क्षपक जीवके क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

§ ४३६. शंका–सूत्रमें 'क्षपकके' यह नहीं कहना चाहिये, क्योंकि प्रतिषेध करने योग्य कोई और दूसरा नहीं है। यदि कहा जाय कि, उपशामकका प्रतिषेध करनेके लिये उक्त पद दिया है सो भी बात नहीं है, क्योंकि उपशामकके क्रोधसंज्वलनका अभाव नहीं होता है। अतः 'चरिमसमयअणिल्लेविदे कोहसंजलणे' इतना ही कहना चाहिये ?

समाधान–यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि क्रोधसंज्वलनका अभाव करनेवाला क्षपक ही होता है उपशामक नहीं। इस बातका ज्ञान करानेके लिये सूत्रमें 'खवयस्स' पदका निर्देश किया

एसो अत्थो णव्वदे; तहाणुवलंभादो। चरिमसमयअणिल्लेविदस्सेवे त्ति किमट्ठं वुच्चदे ? ण, दुचरिमादिसमएसु बंधट्ठिदीणं गालणट्ठं तदुत्तीदो। कोहसंजलणे चरिमसमयअणिल्लेविदे संते जो खवओ ताए अवत्थाए वट्टमाणो तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती होदि त्ति संबंधो कायव्वो। बे मासा अंतोमुहुत्तूणा त्ति जहण्णट्ठिदिपमाणमेत्थ किण्ण परूविदं ? ण; जहण्णट्ठिदिअद्धाच्छेदे परूविदस्स परूवणाए फलाभावादो।

* एवं माण-मायासंजलणाणं।

§ ४३७. जहा कोहसंजलणस्स जहण्णसामित्तं वुत्तं तहा माणमायासंजलणाणं वत्तव्वं। चरिमसमयअणिल्लेविदे माणसंजलणे जो खवओ तस्स माणसंजलणजहण्णट्ठिदिविहत्ती। चरिमसमयअणिल्लेविदे मायासंजलणे जो खवओ तस्स मायासंजलणजहण्णट्ठिदिविहत्ति त्ति भणिदं होदि। अंतोमुहुत्तूणमासद्धमासट्ठिदिपमाणपरूवणा एत्थ ण कायव्वा। कुदो ? अद्धाच्छेदपरूवणाए तत्थ वावारादो।

है। परन्तु सूत्रके बिना यह अर्थ जाना नहीं जाता है, क्योंकि सूत्रके बिना इस प्रकारके अर्थका ज्ञान होना शक्य नहीं।

शंका—सूत्रमें 'चरिमसमयअणिल्लेविदस्स' यह किसलिये कहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि द्विचरम आदि समयोंमें बन्धस्थितियोंके गालन करनेके लिये 'चरिमसमयअणिल्लेविदस्स' यह पद कहा है।

क्रोधसंज्वलनकी सत्त्वव्युच्छित्तिके अन्तिम समयके प्राप्त होनेपर जो क्षपक उस अवस्थामे विद्यमान है उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है इस प्रकार उक्त सूत्रका सम्बन्ध करना चाहिये।

शंका—यहाँ पर जघन्य स्थितिका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना है ऐसा क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जघन्य स्थितिके प्रमाणका जघन्य स्थिति अद्धाच्छेद प्रकरणमे कथन कर आये हैं, अतः यहाँ उसका पुनः कथन करनेसे कोई लाभ नहीं है।

* इसी प्रकार उस क्षपकके संज्वलन मान और संज्वलन मायाकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ?

§ ४३७. जिस प्रकार क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्वामित्व कहा है उसी प्रकार मान और माया सज्वलनका जघन्य स्वामित्व कहना चाहिये। जो क्षपक मान संज्वलनकी सत्त्वव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमे विद्यमान है उसके मान संज्वलनकी जघन्य स्थिति विभक्ति होती है। तथा जो क्षपक मायासंज्वलनकी सत्त्वव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके माया संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है, यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है।

यहाँ पर मानसंज्वलनकी अन्तर्मुहूर्त कम एक महीना और मायासंज्वलनकी अन्तर्मुहूर्त कम आधा महीना प्रमाण स्थितिका कथन नहीं करना चाहिये, क्योंकि उसे अद्धाच्छेदकी प्ररूपणामें बतला आये हैं।

* लोहसंजलणस्स जहण्णहिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४३८. सुगममेदं ।

* खवयस्स चरिमसमयसकसायस्स ।

§ ४३९. दुचरिमादिसमयपडिसेहट्ठो चरिमसमयसकसायणिद्देसो। किमट्ठं तप्पडिसेहो कीरदे ? दोतिण्णिआदिणिसेगेसु हिदेसु जहण्णहिदिविहत्ती ण होदि त्ति जाणावणट्ठं । चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स अवहिदिगलणाए गालिददुचरिमादिणिसेयस्स हिदिकंडयघादेण घादिदासेसउवरिमहिदिणिसेयस्स एगोदयणिसेगे वट्टमाणस्स जहण्णहिदिविहत्ति त्ति भणिदं होदि ।

* इत्थिवेदस्स जहण्णहिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४४०. सुगमं० ।

* चरिमसमयइत्थिवेदोदयखवयस्स ।

§ ४४१. दुचरिमसमयसवेदो किण्ण जहण्णहिदिसामिओ ? ण, पढमहिदीए

---

* लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४३८. यह सूत्र सुगम है ।

* कषायसहित क्षपक जीवके अन्तिम समयमें लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४३९. द्विचरमसमय आदिका निषेध करनेके लिये सूत्रमें 'चरिमसमयसकसायस्स' पदका निर्देश किया है ।

शंका—द्विचरमसमय आदिका निषेध किसलिये किया है ?

समाधान—दो, तीन आदि निषेकोके स्थित रहनेपर जघन्य स्थितिविभक्ति नहीं होती है इस बातका ज्ञान करानेके लिये द्विचरमसमय आदिका निषेध किया है ।

जिसने द्विचरम आदि निषेकोको अधःस्थिति गलनाके द्वारा गालित कर दिया है, जिसने स्थितिकाण्डकघातके द्वारा ऊपरके समस्त स्थितिनिषेकोंका घात कर दिया है और जो एक उदयरूप निषेकमें विद्यमान है उस सूक्ष्मसांपरायिकसंयत जीवके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिविभक्ति होती है यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है ।

* स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४४०. यह सूत्र सुगम है ।

* क्षपक जीवके स्त्रीवेदके उदयके अन्तिम समयमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४४१. शंका—द्विचरम समयवाला सवेद जीव जघन्य स्थितिका स्वामी क्यों नहीं होता है ?

दोण्हमित्थिवेदणिसेयाणं विदियट्ठिदीए वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्त-णिसेयाणं चरिमफालिसरूवेण अवट्ठिदाणं तत्थुवलंभादो। अण्णवेदोदयक्खवयस्स जहण्णसामित्तं किण्ण दिज्जदे ? ण, उदयाभावेण पढमट्ठिदिविरहियस्स विदियट्ठिदीए चेव अवट्ठिदस्स पलिदो० असंखेज्जदिभागमेत्तणिसेगेसु इत्थिवेदस्स चरिमफालीए अवट्ठाणुवलंभादो। एगाए णिसेगट्ठिदीए उदयगदाए सुद्धपुव्वुत्तरासेसणिसेगाए वट्ट-माणो जहण्णट्ठिदिसामि त्ति भणिदं होदि।

* पुरिसवेदस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ?

§ ४४२. सुगमं०।

* पुरिसवेदक्खवयस्स चरिमसमयअणिल्लेविदपुरिसवेदस्स।

§ ४४३. जस्स पुव्वमेत्थेव भवे पुरिसवेदो उदयमागदो सो जीवो पुरिसवेदो; साहचज्जादो। तस्स पुरिसवेदक्खवयस्स चरिमसमयअणिल्लेविदपुरिसवेदस्स जहण्ण-सामित्तं होदि; तत्थ अंतोमुहुत्तूणअट्ठवस्समेत्तट्ठिदीए उवलंभादो। इत्थिवेदस्स भण्ण-

---

समाधान—नहीं, क्योंकि द्विचरम समयमें स्त्रीवेद सम्बन्धी प्रथम स्थितिके दो निषेक पाये जाते हैं और द्वितीय स्थितिके भी अन्तिम फालिरूपसे पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण निषेक पाये जाते हैं अतः द्विचरम समयवाला सवेद जीव जघन्य स्थितिका स्वामी नहीं होता है।

शंका—अन्य वेदके उदयमें स्थित क्षपक जीवको स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ऐसे जीवके स्त्रीवेदका उदय नहीं होता अतः उसकी प्रथम स्थिति नहीं पाई जाती किन्तु केवल द्वितीय स्थिति ही पाई जाती है पर उसकी अन्तिम फालिके निषेकों का प्रमाण पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है, अतः अन्य वेदके उदयमें स्थित क्षपक जीव स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी नहीं हो सकता।

जो स्त्रीवेदी क्षपक जीव स्त्रीवेदके पूर्वोत्तर सब निषेकोंसे रहित है और उदय प्राप्त एक निषेक स्थितिमें विद्यमान है वह स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी होता है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है।

* पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?

§ ४४२. यह सुगम है।

* जिसके पुरुषवेदका अभाव नहीं हुआ है ऐसे पुरुषवेदी क्षपक जीवके अन्तिम समयमें पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

§ ४४३ जिसके पहले इसी भवमें पुरुषवेद उदयको प्राप्त हुआ है वह जीव पुरुषवेदके साहचर्यसे पुरुषवेदी कहलाता है। उस पुरुषवेदी क्षपक जीवके पुरुषवेदके सत्त्वके अन्तिम समयमें जघन्य स्वामित्व होता है, क्योंकि वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त कम आठवर्ष प्रमाण स्थिति पाई जाती है।

माणे जहा इत्थिवेदोदयखवगस्से त्ति परूविदं तहा पुरिसवेदोदयक्खवगस्से त्ति किण्ण परूविदं ? ण, अवगदवेदकालब्भतरे दुसमऊणदोआवलियमेत्तकालं गंतूण ट्ठिदजहण्ण-ट्ठिदिसामियस्स सवेदत्तविरोहादो।

*** णवुंसयवेदस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ?**

§ ४४४. सुगमं।

*** चरिमसमयणवुंसयवेदोदयक्खवयस्स**

§ ४४५. कुदो ? चरिमसमयणवुंसयवेदस्स गालिददुचरिमादिसयलगुणसेढि-णिसेयस्स सवेदियदुचरिमसमए इत्थिवेदचरिमफालीए सह परसरूवेण संकामिदणवुंसय-वेदविदियट्ठिदिसयलणिसेयस्स एगुदयगोवुच्छुवलंभादो।

*** छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ?**

§ ४४६. सुगमं०।

*** खवयस्स चरिमे ट्ठिदिखंडए वट्टमाणस्स**

शंका—स्त्रीवेदका जघन्य स्वामित्व कहते समय जिस प्रकार स्त्रीवेदके उदयको प्राप्त क्षपकको उसका स्वामी बतलाया है उसी प्रकार पुरुषवेदके उदयको प्राप्त क्षपकको पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अपगतवेद कालके भीतर दो समय कम दो आवली प्रमाण काल जाकर जो पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका स्वामी विद्यमान है उसे सवेद कहनेमें विरोध आता है।

*** नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?**

§ ४४४. यह सूत्र सुगम है।

*** क्षपक जीवके नपुंसकवेदके उदयके अन्तिम समयमें नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।**

§ ४४५. **शंका**—क्षपक जीवके नपुंसकवेदके उदयके अन्तिम समयमें नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्ति क्यो होती है ?

समाधान—जिसने नपुंसकवेद सम्बन्धी द्विचरम आदि सम्पूर्ण गुणश्रेणीके निषेकोंको गला दिया है और जिसने सवेद भागके द्विचरम समयमें स्त्रीवेदकी अन्तिम फालिके साथ द्वितीय स्थितिमें स्थित नपुंसकवेदके समस्त निषेकोका पररूपसे संक्रमण कर दिया है उसके अन्तिम समयमें एक उदयरूप गोपुच्छा पाया जाता है, अतः नपुंसकवेदके उदयके अन्तिम समयमें उसकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

*** छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है।**

§ ४४६. यह सूत्र सुगम है।

*** छह नोकषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान क्षपक जीवके उनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।**

§ ४४७. कुदो ? तत्थ संखेज्जवाससहस्समेत्तचरिमफालिट्ठिदीए उवलंभादो ।

§ ४४८. एवं मणुस०-मणुसपज्ज०-पंचिंदिय०-पंचिं०पज्ज०-तस०-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि० ओरालिय०-लोभकसाय०-चक्खु०-अचक्खु०-सुक्कले०-भवसि०-आहारए त्ति । णवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० जण्णट्ठिदिविहत्ती खवगस्स चरिमट्ठिदिखंडगे वट्टमाणस्स ।

*** णिरयगईए णेरइएसु सम्मत्तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ।**

§ ४४९. सुगमं० ।

*** चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।**

§ ४५०. कुदो ? मणुस्समिच्छाइट्ठिस्स तिव्वारंभपरिणामेहि णिरयगईए सह

---

§ ४४७. **शंका**—अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान क्षपक जीवके छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति क्यों होती है ?

समाधान—क्योंकि वहाँ पर अन्तिम फालिकी संख्यात हजार वर्ष प्रमाण जघन्य स्थिति पाई जाती है ।

§ ४४८. इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभकषायी, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य और आहारकके जानना चाहिये । पर इतनी विशेषता है कि मनुष्यपर्याप्तमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डकमें विद्यमान क्षपक जीवके होती है ।

विशेषार्थ—मूलमें जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें ओघके समान प्ररूपणा बन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है । किन्तु मनुष्यपर्याप्तके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति एक समय नहीं होती, क्योंकि जो जीव स्त्रीवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है वही जीव स्त्रीवेदके उदयके अन्तिम समयमें एक समयवाली जघन्य स्थितिका स्वामी होता है । किन्तु जो पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है वह जीव जब स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिको पुरुषवेदरूपसे संक्रमित करता है तब उसके स्त्रीवेदकी पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य स्थितिविभक्ति होती है इससे कम नहीं और इसलिये मनुष्य पर्याप्तको स्त्रीवेदकी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिरूप जघन्य स्थितिविभक्तिका स्वामी कहा है ।

*** नरकगतिमें नारकियोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ।**

§ ४४९. यह सूत्र सुगम है ।

*** जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं किया है उसके दर्शनमोहनीयके क्षय करनेके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।**

§ ४५०. **शंका**—दर्शन मोहनीयकी क्षपणाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति क्यों होती है ?

बद्धणिरयाउअस्स पच्छा तित्थयरपादमूलमुवणमिय सम्मत्तं घेत्तूण अंतोमुहुत्तावसेसे आउए अधापवत्तापुव्वाणियट्टिकरणाणि कादूण मिच्छत्तसम्मामिच्छत्ताणि अणियट्टि-कालब्भंतरे खविय अणियट्टिकरणद्धाए चरिमसमयम्मि सम्मत्तचरिमट्ठिदिखंडयचरिम-फालिं घेत्तूण उदयादिगुणसेढिसरूवेण घेत्तिय ट्ठिदस्स कदकरणिज्जे त्ति सण्णा कया; सेसदंसणमोहक्खवणाविसयकज्जत्तादो। तस्स काउलेस्सं परिणमिय पढमपुढवीए उप्पज्जिय अधट्ठिदिगलणाए चरिमगोवुच्छं मोत्तूण गलिदासेसगोवुच्छस्स एगसमय-कालेगट्ठिदिदंसणादो।

* **सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स?**

§ ४५१. सुगमं०।

* **चरिमसमयउव्वेल्लमाणस्स।**

§ ४५२. कुदो? सम्मादिट्ठिणा मिच्छत्तं गंतूण अंतोमुहुत्तमच्छिय सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुव्वेल्लणमाढविय पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तट्ठिदिखंडयाणि जहाकमेण पाडिय उव्वेल्लिदसम्मत्तेण पुणो सम्मामिच्छत्तस्स पलिदो० असंखे०भाग-मेत्तट्ठिदिकंडए पादिय चरिमगुव्वेल्लणकंडयस्स चरिमफालीए पादिदाए समऊणा-

---

समाधान—जो मिथ्यादृष्टि मनुष्य जीव तीव्र आरम्भरूप परिणामोंके द्वारा नरकगतिके साथ नरकायुका बन्ध करनेके अनन्तर तीर्थंकरके पादमूलको प्राप्त होकर और सम्यक्त्वको ग्रहण करके आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंको करके तथा अनिवृत्तिकरणके कालके भीतर मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय करके अनिवृत्तिकरणके कालके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी अन्तिम स्थिति काण्डककी अन्तिम फालिको ग्रहण करके और उदयसे लेकर गुणश्रेणीरूपसे उसका निक्षेप करके स्थित है उसे कृतकृत्य यह संज्ञा प्राप्त होती है, क्योंकि इसका कार्य शेष दर्शनमोहनीयकी क्षपणा है। अनन्तर जिसने कापोतलेश्यासे परिणत होकर और पहली पृथिवीमें उत्पन्न होकर अधःस्थिति गलनाके द्वारा अन्तिम गोपुच्छको छोड़कर बाकीके समस्त गोपुच्छको गला दिया है उसके एक समय कालप्रमाण एक स्थिति देखी जाती है। अतः प्रतीत होता है कि नारकीके दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

* नारकियोंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है?

§ ४५१ यह सूत्र सुगम है।

* सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

§ ४५२. शंका—उद्वेलनाके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिविभक्ति क्यों होती है?

समाधान—कोई एक सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और वहां अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर उसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका आरम्भ करके पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिकाण्डकोंका यथाक्रमसे पतन करके सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर ली। पुनः उसके सम्यग्मिथ्यात्वके पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति काण्डकोंका पतन करके अन्तिम

वलियमेत्तगोवुच्छाओ चिट्ठंति। पुणो तासु दुसमऊणावलियमेत्तासु अधट्ठिदिगलणाए गालिदासु दुसमयकालेगणिसेयट्ठिदिदंसणादो।

*** अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ?**

§ ४५३. सुगमं०।

*** जस्स विसंजोइदे दुसमयकालट्ठिदियं सेसं तस्स।**

§ ४५४. सुगममेदं; ओघम्मि परूविदत्तादो।

*** सेसं जहा उदीरणाए तहा कायव्वं।**

§ ४५५. एदस्स अत्थो वुच्चदे-मिच्छत्त-बारसकसाय-भय-दुगुंछाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती कस्स ? जो असण्णिपंचिंदिओ सागरोवमसहस्समेत्तउक्कस्सट्ठिदिबंधादो पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण जहा ऊणं होदि उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मं तहा घादिय जहण्णट्ठिदिसंतं करिय पुणो जहण्णसंतादो हेट्ठा अंतोमुहुत्तकालं संखे०भागहीणं पुव्वं बंधमाणो अच्छिदो जहण्णट्ठिदिसंतकदसमए चेव जहण्णट्ठिदिसंतसमाणं बंधिय तदो से काले जहण्णट्ठिदिसंतं वोलेदूण बंधिहिदि त्ति तावणिरयगदीए दुसमयविग्गहं काऊण णेरइएसुववण्णो तत्थ दोसु वि विग्गहसमएसु असण्णिपंचिंदियट्ठिदिं चेव बंधदि असण्णि-

उद्वेलना काण्डककी अन्तिम फालिके पतन करने पर एक समय कम आवलिप्रमाण गोपुच्छ शेष रहते हैं। पुनः उसके दो समय कम आवलिप्रमाण उन गोपुच्छोंके अधःस्थितिगलनाके द्वारा गला देने पर एक निषेककी दो समय कालप्रमाण स्थिति देखी जाती है। इससे प्रतीत होता है कि अपनी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

*** नारकियोंमें अनन्तानुबन्धिचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ?**

§ ४५३ यह सूत्र सुगम है।

*** विसंयोजना करने पर जिस नारकीके अनन्तानुबन्धीकी दो समय काल प्रमाण स्थिति शेष है उसके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।**

§ ४५४ यह सूत्र सरल है, क्योंकि इसका कथन ओघप्ररूपणामें कर आये हैं।

*** नारकियोंके उपर्युक्त प्रकृतियोंके अतिरिक्त शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति जिस प्रकार उदीरणामें होती है उस प्रकार कहनी चाहिये।**

§ ४५५. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं-मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति किस नारकीके होती है ? जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव हजार सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें से पल्योपमका संख्यातवाँ भागप्रमाण कम जिस प्रकार होवे उस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मका घात करके जघन्य स्थिति सत्कर्मको प्राप्त करता है। तथा जघन्य स्थिति सत्कर्मके नीचे पहले अन्तर्मुहूर्त कालतक पल्योपमके संख्यातवें भाग प्रमाण कम स्थितिको बांधता हुआ स्थित है पुनः जघन्य स्थितिसत्त्वके होनेके समय ही जघन्य स्थितिसत्त्वके समान स्थितिको बांधकर उसके अनन्तर कालमें जब जघन्य स्थितिसत्त्वको उल्लंघकर बांधेगा तब दो समयका विग्रह करके नरकगतिमें नारकियोंमें उत्पन्न हुआ। पर वहां विग्रहके दोनों ही समयोंमें असंज्ञी

पंचिंदियपच्छायदस्स सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु उप्पज्जिय अगहिदसरीरस्स अंतोकोडाकोडिट्ठिदिबंधणसत्तीए अभावादो। तत्थ दोसु विग्गहसमएसु असण्णिपंचिंदियजहण्णट्ठिदिसंतादो सरिसमहियमूणं पि बंधदि। तत्थ एसो जहण्णट्ठिदिसंतदो हेट्ठा बंधावेदव्वो। एवं बंधिय विदियविग्गहे वट्टमाणस्स मिच्छत्त-बारसकसाय-भय-दुगुंछाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती। णवरि मिच्छत्तस्स सागरोवमसहस्सं पलिदो० संखे०भागेणूणं। सेसाणं सागरोवमसहस्सस्स चत्तारि सत्तभागा पलिदो० संखे०भागेणूणा। सरीरे गहिदे जहण्णसामित्तं किण्ण दिज्जदि? ण, तत्थ अंतोकोडाकोडिसागरोवममेत्तट्ठिदिबंधुवलंभादो। सत्तणोकसायाणमेवं चेव। णवरि असण्णिपंचिंदियचरिमसमए सागरोवमसहस्सस्स चत्तारि सत्तभागो पलिदो० संखेज्जदिभागेणूणो बंधावलियादिक्कंतसमए चेव कसायट्ठिदिसंतकम्मं असण्णिपंचिंदियपाओग्गजहण्णे पडिच्छिय पुणो तत्थेव बंधवोच्छेदं करिय णिरएसुप्पण्णपढमसमयप्पहुडि पडिवक्खपयडीओ बंधाविय पुणो अप्पप्पणो पडिवक्खपयडिबंधगद्धाणं चरिमसमए जहण्णट्ठिदिविहत्तिसामित्तं होदि। तिरिक्खगइपडिवक्खपयडिबंधगद्धाओ तिरिक्खेसु चेव गालिय णेरइएसुप्पण्णपढमसमए

पंचेन्द्रियकी स्थितिको ही बांधता है क्योंकि जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यायसे आकर संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके शरीर ग्रहण करनेके पूर्वसमय तक अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिके बन्ध करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती है। फिर भी वहां विग्रहके दो समयोंमें असंज्ञी पंचेन्द्रियके जघन्य स्थितिसत्वके समान या उससे हीन या अधिक स्थितिका भी बन्ध करता है पर इसके जघन्य स्थितिसत्त्वसे हीन स्थितिका बन्ध कराना चाहिये। इस प्रकार बांधकर जो दूसरे विग्रहमें स्थित है उस नारकीके मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति पल्यके संख्यातवें भागसे न्यून हजार सागरप्रमाण होती है। तथा शेष कर्मोंकी हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भागप्रमाण होती है।

शंका--जिस नारकीने शरीरको ग्रहण कर लिया है उसे जघन्य स्थितिका स्वामी क्यों नहीं कहा?

समाधान--नहीं, क्योंकि नारकीयोंके शरीरके ग्रहण करने पर अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिबन्ध पाया जाता है।

सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति इसी प्रकार होती है। किन्तु इतनी विशेषता है जिसने असंज्ञी पर्यायके रहते हुए एक हजारके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भागसे न्यून चार भाग प्रमाण कषायकी जघन्य स्थितिका बन्ध किया। पुनः बन्धावलिप्रमाण कालके व्यतीत होनेके पश्चात् तदनन्तर समयमें ही असंज्ञी पंचेन्द्रियके योग्य कषायके जघन्य स्थितिसत्कर्मका विवक्षित नोकषायमें संक्रमण किया पुनः जो उस विवक्षित प्रकृतिकी वहीं असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यायके अन्तिम समयमें बन्धव्युच्छित्ति करके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ। वह यदि वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयसे लेकर प्रतिपक्ष प्रकृतियोंको बांधता है तो उसके अपनी-अपनी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धकालके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिविभक्तिका स्वामित्व प्राप्त होता है।

शंका--तिर्यंचगति सम्बन्धी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धकालको तिर्यंचोंमें ही बिताकर जो

जहण्णट्ठिदिसामित्तं किण्ण दिज्जदि ? ण, तिरिक्खगइपडिवक्खबंधगद्धाहिंतो णिरयगइपडिवक्खबंधगद्धाणं बहुवत्तादो। तेसिं बहुअत्तं कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव जहण्णसामित्तुच्चारणादो। एवं पढमपुढवि-देव०-भवण०-वाण०देवे त्ति। णवरि भवण०-वाण० सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो।

❀ एवं सेसासु गदीसु अणुमग्गिदव्वं।

§ ४५६. एवं जइवसहाइरिएण सूचिदअत्थस्स उच्चारणाइरियवक्खाणं वत्तइस्सामो। ओघो ण वुच्चदे चुण्णिसुत्तेण परूविदत्तादो भेदाभावादो च।

§ ४५७. विदियादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्त-बारसकसाय-णवणोक० ज० कस्स ? अण्णदरस्स जो उक्कस्साउट्ठिदीए उववण्णो अंतोमुहुत्तेण पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तेण अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय सम्मत्तेणेव अप्पप्पणो उक्कस्साउअमणुपालिय चरिमसमयणिप्पिदमाणसम्मादिट्ठी तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। सम्मामि०-अणंताणु०४ णिरओघं। सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो।

नारकियोंमें उत्पन्न होता है उसके वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही विवक्षित प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका स्वामित्व क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि तिर्यंचगति सम्बन्धी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धनकालसे नरकगति सम्बन्धी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका बन्धक काल बहुत है।

शंका—नरकगति सम्बन्धी प्रतिपक्ष प्रकृतियोंका बन्धकाल बहुत है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी जघन्य स्वामित्वसम्बन्धी उच्चारणासे जाना जाता है।

इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि भवनवासी और व्यन्तर देवोमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। अर्थात् भवनवासी और व्यन्तर देवोंके सम्यक्त्वकी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें उसकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

❀ इसी प्रकार शेष गतियोंमें विचार कर समझना चाहिये।

§ ४५६. इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा सूचित अर्थका जो उच्चारणाचार्यने व्याख्यान किया है, उसे बताते हैं फिर भी यहाँ पर उच्चारणाचार्यके द्वारा कहे गये ओघका कथन नहीं करते हैं, क्योंकि उसका कथन चूर्णिसूत्रके द्वारा किया जा चुका है तथा उससे इसमे कोई भेद भी नहीं है।

§ ४५७. दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवीतक मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो उत्कृष्ट आयुको लेकर द्वितीयादिक पृथिवियोंमे उत्पन्न हुआ है और अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके सम्यक्त्वके साथ ही अपनी-अपनी उत्कृष्ट आयुका पालन करके नरकसे निकला है उस सम्यग्दृष्टिके नरकसे निकलनेके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सामान्य नारकियोंके समान है। तथा सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है।

§ ४५८. सत्तमाए पुढवीए मिच्छत्त-बारसक० जह० कस्स ? अण्ण० जो उक्कसाउट्ठिदिं बंधिय सत्तमाए उववण्णो। पुणो अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवज्जिय अवरेण अंतोमुहुत्तेण अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय थोवावसेसे जीविए मिच्छत्तं गदो। मिच्छत्तेण जावदि सक्कं तावदियकालं ट्ठिदिसंतकम्मस्स हेट्ठदो बंधिय समट्ठिदिं बोलेहदि त्ति तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। भयदुगुंछाणमेवं चेव। णवरि समट्ठिदिं बंधिय आवलियाइक्कंतस्स तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। सत्तणोक० एवं चेव। णवरि पडिवक्खबंधगद्धाओ बंधाविय तेसिं चरिमसमए वट्टंतस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं विदियपुढविभंगो।

§ ४५९. तिरिक्खेसु मिच्छत्त-बारसक० ज० कस्स ? अण्ण० जो बादरएइंदिओ जहासत्तीए ट्ठिदिघादं कादूण जावदियं सक्कं तावदियं कालं ट्ठिदिसंतकम्मस्स हेट्ठा बंधिय समट्ठिदिबंधं से काले वोलेहदि त्ति तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। भय-दुगुंछाणमेवं चेव। णवरि समट्ठिदिबंधादो आवलियाइक्कंतस्स। सत्तणोकसाय० जह० कस्स ? अण्ण० जो बादरेइंदिओ समट्ठिदिबंधमाणकाले पंचिंदियतिरिक्खेसु उववण्णो दीहपडिवक्खबंधगद्धामेत्तट्ठिदिगालणट्ठं अंतोमुहुत्तेण अप्पप्पणो पडिवक्खबंधगद्धाणचरिमसमए

---

§ ४५८. सातवी पृथिवीमें मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो उत्कृष्ट आयुको बाँधकर सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ है। पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर एक दूसरे अन्तर्मुहूर्तके द्वारा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके जीवितके थोड़ा शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। पुनः मिथ्यात्वमें जितने कालतक शक्य हो उतने कालतक स्थितिसत्कर्मसे कम स्थितिका बन्ध करके जो अगले समयमें सत्त्वस्थितिसे अधिक बन्धस्थिति करेगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। भय और जुगुप्साकी इसी प्रकार जाननी चाहिये। इतनी विशेषता है कि समान स्थितिको बाँधकर एक आवलीप्रमाण कालको अतिक्रान्त करनेवाले जीवके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। सात नोकषायोंकी इसी प्रकार जाननी चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धक कालतक उन्हें बँधाकर उनके अन्तिम समयमें रहनेवाले जीवके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। यहाँ सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग दूसरी पृथिवीके समान है।

§ ४५९. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई बादर एकेन्द्रिय जीव शक्त्यनुसार स्थितिघात करके जितने कालतक शक्य हो उतने कालतक स्थितिसत्कर्मसे हीन नवीन स्थितिको बाँधकर अनन्तर समयमें समान स्थितिबन्धको उल्लंघन करेगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। भय और जुगुप्साकी इसी प्रकार जाननी चाहिये। किन्तु इतनी विशेता है कि समान स्थितिबन्धके बाद जिसने एक आवली काल व्यतीत कर दिया है उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक बादरएकेन्द्रिय जीव स्थितिसत्त्वके समान स्थितिबन्धके होनेके समय पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ। पुनः दीर्घ प्रतिपक्ष बन्धक कालप्रमाण स्थितियोंको गलानेके लिये अन्तर्मुहूर्त कालतक अपने-अपने प्रतिपक्ष बन्धककालमें रहकर प्रतिपक्ष बन्धककाल-

जो वट्टमाणो तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं णिरओघं ।

§ ४६०. पंचिंदियतिरिक्ख – पंचिं०तिरिक्खपज्जत्त – पंचि०तिरि०जोणिणीसु मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछाणं ज० कस्स? अण्ण० जो बादरेइंदिओ हदसमुप्पत्तिय-कम्मेण पंचिंदियतिरिक्खेसु उववण्णो तस्स पढमविदियविग्गहे वट्टमाणस्स जहण्ण-ट्ठिदिविहत्ती । सम्मत्त०-सम्मामिच्छत्त०-अणंताणु०चउक्काणं तिरिक्खोघं । सत्तणोक० ज० कस्स ? अण्ण० जो बादरेइंदिओ हदसमुप्पत्तियकम्मेण पंचिंदियतिरिक्खेसु उव-वण्णो एवमुववज्जिय अंतोमुहुत्तमच्छिय से काले अप्पणो बंधमाढविहदि त्ति तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती । णवरि पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्त-भंगो । पंचिं०तिरि०अपज्ज० पंचिं०तिरि०जोणिणीभंगो । णवरि अणंताणु०चउक्कस्स मिच्छत्तभंगो । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिं०अपज्ज०-तसअपज्जत्ते त्ति ।

§ ४६१. मणुसिणीसु अट्ठणोक० ज० कस्स ? अण्ण० अणियट्टिखवयस्स चरिमट्ठिदिखंडए वट्टमाणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती । सेसमोघं ।

§ ४६२. जोइसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छत्त० ज० कस्स ? अण्ण० जो दो वारे कसाए उवसामेदूण चउवीससंतकम्मिओ

के अन्तिम समयमें जो विद्यमान है उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सामान्य नारकियोंके समान है।

§ ४६०. पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? जो कोई एक बादर एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्ति कर्मके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ। पहले और दूसरे विग्रहमें विद्यमान उस जीवके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सामान्य तिर्यंचोंके समान है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? जो कोई एक बादर एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ इस प्रकार उत्पन्न होकर और अन्तर्मुहूर्त कालतक वहाँ रहकर तदनन्तर कालमें अपने बन्धका आरम्भ करेगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंचोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतीके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्तकोंके जानना चाहिये।

§ ४६१. मनुष्यनियोंमें आठ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान किसी अनिवृत्तिकरण क्षपकके होती है। शेष कथन ओघके समान है।

§ ४६२. ज्योतिषियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है। सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके जीवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? दो बार कषायोंको

उक्कस्साउट्ठिदिएसु अप्पप्पणो विमाणेसु उववज्जिय चरिमसमयणिप्फिदमाणो तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। सम्मत्त-सम्मामि०अणंताणु०चउक्काणं णिरओघभंगो। बारसक०-णवणोक० ज० कस्स? अण्ण० जो संजदो जहासंभवेण उवसमसेढिं चढिय हेट्ठा ओयरिय दंसणमोहणीयं खविय उक्कस्साउएण अप्पप्पणो विमाणेसु उववण्णो तस्स चरिमसमयणिप्फिदमाणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति एवं चेव। णवरि सम्मामि० मिच्छत्तभंगो।

§ ४६३. एइंदिएसु मिच्छत्त-बारसकसाय-भय-दुगुंछा-सम्मामिच्छत्ताणं तिरिक्खोघं। अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। सत्तणोक० ज० कस्स? जो एइंदिओ हदसमुप्पत्तियं कादूण समट्ठिदिं बंधिय अंतोमुहुत्तमच्छिय से काले अप्पप्पणो बंधमाढवेहदि त्ति तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो। एवं सव्वएइंदिय-पंचकाए त्ति।

§ ४६४. ओरालियमिस्स० तिरिक्खोघं। णवरि अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्त-भंगो। वेउव्विय० सोहम्मभंगो। णवरि सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो।

§ ४६५. वेउव्वियमिस्स० मिच्छत्त० ज० कस्स? अण्ण० जो जहासंभवेण

उपशमा कर जो कोई जीव चौबीस कर्मोंकी सत्तावाला होता हुआ उत्कृष्ट आयुको लेकर अपने अपने विमानोंमें उत्पन्न हुआ उसके वहांसे निकलनेके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सामान्य नारकियोंके समान है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? जो कोई संयत यथासंभव उपशमश्रेणी पर चढ़कर और नीचे उतर कर तथा दर्शनमोहनीयका क्षय करके उत्कृष्ट आयुके साथ अपने अपने विमानोंमें उत्पन्न हुआ उसके वहाँसे निकलनेके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितक इसी प्रकार कथन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है।

§ ४६३ एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सामान्य तिर्यंचोंके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? जो एकेन्द्रिय हतसमुत्पत्तिक होकर, समान स्थितिको बांधकर और अन्तर्मुहूर्त काल तक रह कर तदनन्तर समयमें अपने अपने बन्धको आरम्भ करेगा उसके जघन्य स्थिति विभक्ति होती है। सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय और पांच स्थावरकाय जीवोंके जानना चाहिये।

§ ४६४ औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जघन्य स्थितिविभक्ति सामान्य तिर्यंचोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। वैक्रियिक काययोगमें सौधर्मके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि इसमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्व के समान है।

§ ४६५. वैक्रियिक मिश्रकाययोगी जीवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती

उवसमसेढिं चडिदूण देवेसु उववण्णो से काले सरीर पज्जत्तिं गाहिदि त्ति तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। अणंताणु०चउक्क० ज० कस्स? अण्ण० जो अट्ठावीससंतकम्मिओ संजदो देवेसुववण्णो से काले सरीरपज्जत्तिं गाहदि त्ति तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। बारसक०-भय-दुगुंछ० मिच्छत्तभंगो। णवरि खइयसम्माइट्ठी देवेसु उप्पाएदव्वो। सम्मत्त-सम्मामि०-सत्तणोक० पढमपुढविभंगो।

§ ४६६. आहार० मिच्छत्त-समत्त-सम्मामि० ज० कस्स? अण्ण० जो चउवीससंतकम्मिओ चरिमसमयआहारसरीरो तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। एवं बारसक०-णवणोक०। णवरि खइयसम्मादिट्ठिस्स वत्तव्वं। अणंताणु० ४ ज० कस्स? अण्ण० अट्ठावीससंतकम्मियस्स। एवमाहारमिस्स०। णवरि से काले सरीरपज्जत्तिं गाहदि त्ति तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती।

§ ४६७. कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० कस्स? अण्ण० जो बादरेइंदिओ हदसमुप्पत्तियकम्मेण विदियं विग्गहं गदो तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। सम्मत्त-सम्मामि० ओघं। णवरि सम्मामि० उव्वेल्लणाए कायव्वं।

§ ४६८. वेदाणुवादेण इत्थिवेदे मणुस्सिणीभंगो। णवरि सत्तणोक०-चत्तारि

है? जो यथासंभव उपशमश्रेणी पर चढ़कर देवोंमें उत्पन्न हुआ और तदन्तर कालमें शरीर पर्याप्ति को प्राप्त होगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विभक्ति किसके होती है? अट्ठाइस सत्कर्मवाला जो कोई एक संयत जीव देवोंमें उत्पन्न होकर तदन्तर समयमें शरीरपर्याप्तिको प्राप्त होगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। इसके बारह कषाय, भय और जुगुप्साका भंग मिथ्यात्वके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थितिविभक्ति कहते समय क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवको देवोंमें उत्पन्न कराना चाहिये। तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकषायोंका भंग पहली पृथिवीके समान है।

§ ४६६. आहारककाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? जो चौवीस सत्कर्मवाला जीव आहारकशरीरी हुआ उसके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। इसी प्रकार बारह कषाय और नौ नोकषायोंका कथन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इन कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवके कहनी चाहिये। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? अट्ठाईस सत्कर्मवाले किसी एक जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि जो तदनन्तर कालमें शरीर पर्याप्तिको प्राप्त करेगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

§ ४६७ कार्मण काययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? जो कोई एक बादर एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिक कर्मके साथ द्वितीय विग्रहको प्राप्त हुआ है उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। इसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति उद्वेलनामें कहनी चाहिये।

§ ४६८. वेद मार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदमें मनुष्यनीके समान भंग है। किन्तु इतनी

संजलण० जह० कस्स ? अण्ण० अणियट्टिखवयस्स सवेदचरिमसमए वट्टमाणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। एवं णवुंस०। णवरि इत्थिवेद०चरिमट्ठिदिखंडए वट्टमाणस्स। पुरिस० पंचिंदियभंगो। णवरि चत्तारिसंजलण–पुरिस० ज० कस्स ? अण्ण० सवेद-चरिमसमए वट्टमाणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। इत्थि-णवुंस० ज० कस्स ? अण्ण० अणियट्टिखवयस्स चरिमट्ठिदिखंडए वट्टमाणस्स। अवगद० मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० ज० कस्स ? अण्ण० जो चउवीससंतकम्मिओ उवसमसेढिमारुहिय ओयरमाणो से काले सवेदो होहदि त्ति तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। एवमट्ठकसाय-इत्थि०-णवुंस०। णवरि खइय०दिट्ठिस्स वत्तव्वं। सत्तणोक०-चत्तारिसंज० ओघं।

§ ४६९. कसायाणुवादेण कोधक० ओघं। णवरि अणियट्टिम्मि चरिमसमय-कोधकसायम्मि चदुण्णं संजलणाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ती। एवं माण०। णवरि तिण्हं संजलणाणं चरिमसमयमाणवेदयस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। एवं माय०। णवरि दोण्हं संजलणाणं चरिमसमयमायवेदयस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। अकसा० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० जह० क० ? अण्ण० चउवीससंतकम्मिओ जो से काले सकसाओ

विशेषता है कि सात नोकषाय और चार संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? सवेद भागके अन्तिम समयमें विद्यमान अन्यतर अनिवृत्तिकरण क्षपकके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। इसी प्रकार नपुंसकवेदीके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान जीवके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। पुरुषवेदीके पंचेन्द्रियके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि चार संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? सवेद भागके अन्तिम समयमें विद्यमान किसी जीवके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान अन्यतर अनिवृत्तिकरण क्षपकके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। अपगतवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? चौबीस सत्कर्म वाला जो कोई जीव उपशमश्रेणी पर चढ़कर और उतरता हुआ तदनन्तर कालमें सवेदी होगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। इसी प्रकार आठ कषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति जाननी चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थितिविभक्ति क्षायिकसम्यग्दृष्टिके कहनी चाहिये। तथा सात नोकषाय और चार संज्वलनकी जघन्य स्थिति-विभक्ति ओघके समान है।

§ ४६९. कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायमें जघन्य स्थितिविभक्ति ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनिवृत्तिकरणमें क्रोध कषायके अन्तिम समयमें चार संज्वलनों की जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। इसी प्रकार मानकषायमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मानवेदकके अन्तिम समयमें तीन संज्वलनोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। इसी प्रकार माया कषायमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मायावेदकके अन्तिम समयमें दो संज्वलनोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। अकषायी जीवमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई एक जीव चौबीस

होहदि त्ति तस्स जह० ट्ठिदिविहत्ती। एव वारसक०-णवणोक०। णवरि खइय०दिट्ठीसु वत्तव्वं। एवं जहाक्खाद०।

§ ४७०. मदि-सुदअण्णाणीणं तिरिक्खोघं। णवरि सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० एइंदियभंगो। एवमसण्णि०। विहंगणाणीसु मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० ज० कस्स? अण्णद० जो उवरिमगेवज्जम्मि मिच्छत्तं गदो चरिमसमयणिप्पिदमाणओ तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती। सम्मत्त०-सम्मामि एइंदियभंगो।

§ ४७१. आभिणि०-सुद०-ओहि० ओघं। णवरि सम्मामि० जह० खवणाए दायव्वं। एवं संजद०-ओहिदंस०-सम्मादिट्ठि त्ति। मणपज्जव० एव चेव। णवरि इत्थि०-णवुंस० पुरिस०भंगो।

§ ४७२. सामाइय-छेदो० ओहिभंगो। णवरि लोहसंजल० जह० कस्स? अण्ण० चरिमसमयम्मि अणियट्टिक्खवयस्स। परिहार० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० ओहिभंगो। वारसक०-णवणोक० जह० क०? जो खइयसम्मादिट्ठी जहासंभवेण उवसमसेढिं चढिय ओयरिय परिणामपच्चएण परिहार० जादो से काले

सत्कर्मवाला तदनन्तर कालमें सकषायी होगा उसके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। इसी प्रकार बारह कषाय और नौ नोकषयोकी जघन्य स्थितिविभक्ति जाननी चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनकी जघन्य स्थितिविभक्ति क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके कहनी चाहिये। इसी प्रकार यथाख्यातसंयतोंके जानना चाहिये।

§ ४७०. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानीके सामान्य तिर्यंचोंके समान जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति एकेन्द्रियोंके समान होती है। इसी प्रकार असंज्ञी पचेन्द्रियके जानना चाहिये। विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? जो कोई एक उपरिमग्रैवेयकमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके वहांसे निकलनेके अन्तिम समयमें उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है।

§ ४७१. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति केवल क्षपकके कहनी चाहिये। इसी प्रकार संयत, अवधिदर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। मनःपर्ययज्ञानमें भी इसी प्रकार कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भंग पुरुषवेदके समान है।

§ ४७२. सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें अवधिज्ञानके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? किसी अनिवृत्तिकरण क्षपक जीवके अन्तिम समयमें लोभ संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। परिहार विशुद्धिसंयममें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति अवधिज्ञानियोंके समान होती है। तथा बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है? जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव यथायोग्य उपशमश्रेणी पर चढ़कर और उतरकर परिणामोंके अनुसार परिहारविशुद्धिसंयत हो गया और तदनन्तर कालमें क्षपक

खवगसेढिअभिमुहो होहदि त्ति तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती । एवं संजदासंजद० । णवरि से काले संजमं पडिवज्जिदूण अंतोमुहुत्तेण सिज्झहिदि त्ति तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती । सुहुमसांपराइय० अकसाइभंगो । णवरि लोभसंजल० ओघं । असंजद० तिरिक्खोघं । णवरि मिच्छत्त०-सम्मामि० ओघं ।

§ ४७३. तिण्णिले० तिरिक्खोघं । णवरि किण्ह-णीललेस्सासु सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो । अणंताणु०चउक्क० ओघं । सेसलेस्साणं परिहार०भंगो । अभव० छव्वीसपयडीणं मदिअण्णाणिभंगो ।

§ ४७४. खइय० एक्कवीस० ओहिभंगो । वेदयसम्मादि० मिच्छत्त-सम्मामि० अणंताणु०चउक्कं ओघं । णवरि सम्मामि० उव्वेल्लणाए णत्थि । सम्मत्त-बारसक०-णवणोक० ज० कस्स ? अण्ण० चरिमसमयअक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।

§ ४७५. उवसम० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० जह० क० ? अण्ण० जहासंभवेण उवसमसेढिं चडिय सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तद्धमच्छिय से काले वेदगं पडिवज्जिहदि त्ति तस्स जहण्णट्ठिदिविहत्ती । अणंताणु०चउक्क० ज०

श्रेणीके सन्मुख होगा उस परिहारविशुद्धिसंयतके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । इसी प्रकार संयतासंयतोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि जो संयतासंयत तदनन्तर कालमें संयमको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सिद्ध होगा उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । सूक्ष्मसांपरायिक संयत जीवोंके कषायरहित जीवोंके समान जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति ओघके समान है । असंयतोंके सामान्य तिर्यंचोंके समान सब कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति जाननी चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है, कि इनके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति ओघके समान है ।

§ ४७३. कृष्णादि तीन लेश्याओंमें सामान्य तिर्यञ्चोंके समान जघन्य स्थितिविभक्ति होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नीललेश्यामें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति ओघके समान है । शेष लेश्याओंमें जघन्य स्थितिविभक्ति परिहारविशुद्धि संयमके समान है । अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति मत्यज्ञानियोंके समान है ।

§ ४७४. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति अवधिज्ञानियोंके समान है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति उद्वेलनामें नहीं होती, क्योंकि यहाँ उसकी उद्वेलना संभव नहीं है । सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय नहीं किया है ऐसे किसी जीवके दर्शनमोहनीयके क्षय होनेके अन्तिम समयमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है ।

§ ४७५. उपशमसम्यक्त्वमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? यथासंभव जो कोई जीव उपशमश्रेणी पर चढ़कर और सबसे उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कालतक वहाँ रहकर तदनन्तर समयमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होगा

कस्स ? अण्ण० दंसणमोहउवसामयस्स से काले वेदयं पडिवज्जहिदि त्ति तस्स ज० ट्ठिदिविहत्ती। अथवा विसंजोएमाणस्स एयट्ठिदिदुसमयकालमेत्ते सेसे।

§ ४७६. सासण० सव्वपयडीणं जहण्ण कस्स ? अण्ण० जो चारित्तमोहउवसामओ सासणं पडिवण्णो से काले मिच्छत्तं गाहदि त्ति तस्स ज०ट्ठिदिविहत्ती। सम्मामिच्छा० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० ज० कस्स ? अण्ण० चउवीससंतकम्मियस्स सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णस्स चरिमसमयसम्मामिच्छादिट्ठिस्स। सम्मत्त-सम्मामि० जह० कस्स ? अण्ण० सागरोवमपुधत्तसंतकम्मेण सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जिय जो चरिमसमयसम्मामिच्छादिट्ठी जादो तस्स० जह०विहत्ती। अणंताणु०चउक्क० ज० कस्स ? अण्ण० अट्ठावीससंतकम्मिओ चरिमसमयसम्मामिच्छादिट्ठी तस्स ज० विहत्ती। मिच्छादि० एइंदियभंगो। अणाहारि० कम्मइयभंगो।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो।

❀ [कालो।]

§ ४७७. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण—

उसके जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? दर्शनमोहनीयका उपशामक जो कोई जीव तदनन्तर कालमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होगा उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। अथवा विसंयोजना करनेवाले जीवके एकस्थितिके दो समय कालप्रमाण शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है।

§ ४७६. सासादन सम्यक्त्वमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? चारित्रमोहनीयकी उपशमना करनेवाला जो कोई जीव सासादनको प्राप्त हुआ है और तदनन्तर समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होगा उसके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। सम्यग्मिथ्यात्वमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? जो कोई चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है उसके सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम समयमें उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? सागरपृथक्त्वप्रमाण सत्कर्मवाला जो कोई जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर जो अन्तिम समयवर्ती सम्यग्मिथ्यादृष्टि है उसके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति किसके होती है ? अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो कोई जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो गया है उसके सम्यग्मिथ्यात्वके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति होती है। मिथ्यादृष्टिके एकेन्द्रियोंके समान भंग है। अनाहारकोंके कार्मणकाययोगियोंके समान भंग है।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ।

❀ कालका अधिकार है।

§ ४७७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा—

ॐ मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ४७८. एत्थ मिच्छत्तग्गहणेण सेसपयडिपडिसेहो कदो । उक्कस्सग्गहणेण जहण्णट्ठिदिपडिसेहो कदो । सेसं सुगमं ।

ॐ जहण्णेण एगसमओ ।

§ ४७९. कुदो ? एगसमयमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय विदियसमए पडिहग्गस्स उक्कस्सट्ठिदीए एगसमयकालुवलंभादो । विदियसमए ट्ठिदिखंडयघादेण विणा कथमुक्कस्सत्तं फिट्टदि ? ण अधट्ठिदिगलणाए एगसमए गलिदे उक्कस्सत्ताभावादो । उक्कस्सट्ठिदिसमयपबद्धस्स एगो वि णिसेगो ण गलिदो; सत्तवाससहस्समेत्तआबाहाए उवरि तस्स अवट्ठाणादो । गलिदणिसेगो वि चिराणसंतकम्मस्स । तम्हा जाव ट्ठिदिखंडओ ण पददि ताव उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेण होदव्वमिदि ? ण एस दोसो, जहण्णट्ठिदिअद्धाछेदो णिसेगपहाणो । तं कथं णव्वदे ? कोधसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिअद्धाछेदो वेमासा अंतोमुहुत्तूणा त्ति सुत्तणिद्देसादो । उक्कस्सट्ठिदी पुण कालपहाणा तेण णिसेगेण विणा एगसमए गलिदे वि उक्कस्सत्तं फिट्टदि । तदो जहण्णकालस्स सिद्धमेगसमयत्तं ।

* मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मवाले जीवका कितना काल है ?

§ ४७८ यहाँ सूत्रमें मिथ्यात्व पदके ग्रहण करनेसे शेष प्रकृतियोंका निषेध कर दिया है। उत्कृष्ट पदके ग्रहण करनेसे जघन्य स्थितिका निषेध कर दिया है। शेष कथन सुगम है।

* जघन्य काल एक समय है।

§ ४७९. शंका—जघन्य काल एक समय क्यों है।

समाधान—क्योंकि एक समयतक उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर दूसरे समयमें उत्कृष्ट संक्लेशसे च्युत प्राप्त हुए जीवके उत्कृष्ट स्थितिका एक समय प्रमाण काल पाया जाता है।

शंका—दूसरे समयमें स्थितिकाण्डकघातके विना स्थितिके उत्कृष्टत्वका नाश कैसे हो जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि अधःस्थितिगलनाके द्वारा एक समयके गल जाने पर स्थितिमें उत्कृष्टत्व नहीं रहता है।

शंका—उत्कृष्टस्थितिप्रमाण समयप्रबद्धका एक भी निषेक नहीं गला है, क्योंकि सात हजार वर्षप्रमाण आबाधाके बाद निषेक पाया जाता है और जो निषेक गला भी है वह सत्तामें स्थित प्राचीन सत्कर्मका है अतः जबतक स्थितिकाण्डकका पतन नहीं होता है तबतक उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म होना चाहिये ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जघन्य स्थितिअद्धाच्छेद निषेकप्रधान है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्रोध संज्वलनका जघन्य स्थितिअद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना प्रमाण है इस सूत्रके निर्देशसे जाना जाता है। किन्तु उत्कृष्ट स्थिति कालप्रधान है, इसलिये निषेकके विना एक समयके गल जाने पर भी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्टत्वका नाश हो जाता है, अतः उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय है यह बात सिद्ध होजाती है।

* उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ४८०. कुदो ? दाहट्ठिदिं बंधमाणो उक्कस्सदाहं गंतूण उक्कस्सट्ठिदिं बंधदि; तिस्से बंधकालस्स उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तपमाणत्तादो ।

* एवं सोलसकसायाणं ।

§ ४८१. मिच्छत्तस्सेव सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिकालो जहण्णेण एगसमओ,

---

विशेषार्थ—यहां मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति जघन्य रूपसे कितने काल तक पाई जाती है इसका विचार किया है। बात यह है कि जब कोई एक जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके दूसरे समयमें उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके योग्य उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे च्युत होकर विशुद्धिको प्राप्त होने लगता है तो उसके उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्व एक समय तक देखा जाता है; क्योंकि दूसरे समयमें उसमेंसे एक समय कम हो जाता है, इसलिये उसमें उत्कृष्ट स्थितिपना नहीं रहता है। इस विषयमें शंकाकारका कहना यह है कि एक तो स्थितिकाण्डकघातसे स्थिति कम होती है और दूसरे प्रथमादि निषेकोंके गल जानेसे स्थिति कम होती है। किन्तु मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होनेके दूसरे समयमें न तो उसका स्थितिकाण्डकघात ही होता है; क्योंकि बन्धावलि सकल करणोंके अयोग्य होती है ऐसा नियम है और न प्रथमादि निषेक ही गलते हैं, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका आबाधाकाल सात हजार वर्ष है और आबाधाकालमें निषेक रचना नहीं होती, अतः सात हजार वर्षके समयोंको छोड़ कर ही प्रथमादि निषेकों का सद्भाव पाया जाता है। यद्यपि उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय और बादमें निषेक गलते हैं पर वे नवीन स्थितिबन्धके न होकर प्राचीन सत्कर्मके होते हैं, अतः जिस समय मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है उस समय उसकी उत्कृष्ट स्थितिका न तो स्थितिकाण्डक घात ही हो रहा है और न प्रथमादि निषेक ही गलते हैं यह सच है, फिर भी उत्कृष्ट स्थिति निषेकप्रधान न होकर कालप्रधान होती है, अतः दूसरे समयमें सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर में से एक समय कम होजानेके कारण उसमें उत्कृष्ट स्थितिपना नहीं रहता। हां जघन्य स्थिति अवश्य निषेकप्रधान होती है, यदि ऐसा न माना जाय तो क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना नहीं बन सकती है; क्योंकि यह क्रोधसंज्वलनके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिकी स्थिति है जो कि उसी समय मान संज्वलनरूपसे संक्रमित हो जाती है। अतः कालकी अपेक्षा वह क्रोधरूप एक ही समय रही पर उस समय उस अन्तिम फालिमें निषेक अवश्य अन्तर्मुहूर्त कम दो माहके समय प्रमाण होते हैं और इसलिये इस अन्तिम फालिकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम दो माह कही जाती है। उक्त कथनका सार यह है कि उत्कृष्ट स्थितिमें कालकी प्रधानता है और जघन्य स्थितिमें निषेकोंकी। अतः सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरमें से एक समयके घट जाने पर भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं रहती।

* उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ४८०. शंका—उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

समाधान—क्योंकि, दाहस्थितिको बाँधनेवाला जीव उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तब उस उत्कृष्ट स्थितिके बन्धकालका उत्कृष्ट प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है।

* इसी प्रकार सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल जानना चाहिये।

§ ४८१. मिथ्यात्वके समान सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमेत्तो; परपयडीदो संकंतट्ठिदीए विणा सगुक्कस्सबंधं चेव अस्सिदूण उक्कस्सट्ठिदिग्गहणादो ।

* णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणमेवं चेव ।

§ ४८२. एगसमयमेत्तजहण्णकालेण अंतोमुहुत्तमेत्तुकस्सकालेण च सोलस-कसाएहिंतो भेदाभावादो । कसायउक्कस्सट्ठिदीए बंधावलियादिक्कंताए अप्पप्पणो उवरि संकंताए उक्कस्सट्ठिदिं पडिवज्जमाणाणं णोकसायाणं कथं कालेण समाणदा ? ण, उक्कस्सबंधेण सह अविरुद्धबंधाणं बंधकमेणेव पडिच्छिदउक्कस्सट्ठिदिसंतकम्माणं कालेण समाणत्ताविरोहादो ।

और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है; क्योकि यहाँ पर प्रकृतिसे संक्रमण होकर प्राप्त होनेवाली स्थितिको छोड़कर अपने उत्कृष्ट बन्धकी अपेक्षा ही उत्कृष्ट स्थितिका ग्रहण किया है ।

विशेषार्थ–पहले मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालका निर्देश करते समय जो टीकामे दाह शब्द आया है वह सक्लेशरूप परिणामोके अर्थमे आया है । दाहका मुख्यार्थ ताप या संताप होता है, जो कि संक्लेशके होने पर होता है, अतः यहाँ दाहसे संक्लेशरूप परिणामो का ग्रहण किया है । उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके प्रयोजक ऐसे संक्लेशरूप परिणाम अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त कालतक ही होते हैं अतः उत्कृष्ट स्थितिका काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । चूँकि उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणाम कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक होते हैं, अतः सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है । यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बन्धसे ही प्राप्त होती है संक्रमणसे नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वमें संक्रमित होनेवाली सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति यदि सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर हो और सोलह कषायोंमें संक्रमित होनेवाली अन्य प्रकृतियोंकी स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर हो तो संक्रमणसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोड़ाकोड़ी सागर प्राप्त हो सकती है पर अन्य प्रकृतियोंकी सत्तर और चालीस कोड़ाकोड़ी सागरसे कम ही स्थिति होती है, अतः इन मिथ्यात्व आदिककी बन्धकी अपेक्षा ही उत्कृष्ट स्थिति जाननी चाहिये ।

* नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिका काल इसी प्रकार होता है ।

§ ४८२. क्योकि एक समय प्रमाण जघन्य काल और अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा सोलह कषायोसे इनके कालमे कोई भेद नहीं है ।

शंका–कषायोकी उत्कृष्ट स्थिति बन्धावलिको व्यतीत करके नौ नोकषायोंमें संक्रान्त होती है और तब जाकर नौ नोकषाएँ उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होती है अतः इनकी कालकी अपेक्षा कषायोके साथ समानता कैसे हो सकती है ?

समाधान–नहीं, क्योकि उत्कृष्ट बन्धके साथ जिनका बन्ध अविरुद्ध है तथा बन्धक्रमसे ही जिन्होने उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मको प्राप्त कर लिया है उनकी कालकी अपेक्षा कषायोंके साथ समानता माननेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

*** सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तीओ केवचिरं कालादो होदि ?**

§ ४८३. सुगमं ।

*** जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ ।**

§ ४८४. कुदो ? अट्ठावीससंतकम्मिएण मिच्छादिट्ठिणा तिव्वसंकिलेसेण चउट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि अंतोकोडाकोडिमेत्तदाहट्ठिदिं बंधमाणेण उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय अंतोमुहुत्तपडिभग्गेण वेदगसम्मत्ते गहिदे तग्गहणपढमसमए चेव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिदंसणादो ।

*** इत्थिवेद-पुरिसवेद-हस्स-रदीणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तीओ केवचिरं कालादो होदि ?**

विशेषार्थ—भय और जुगुप्सा तो ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, अतः उनका बन्ध तो सर्वदा होता रहता है। किन्तु नपुंसकवेद, अरति और शोक, इन नोकषायोंका बन्ध अन्य समयमें होता भी है और नहीं भी होता है परन्तु उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय अवश्य होता है। अब किसी जीवने कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय तक बन्ध किया और वह जीव कषायकी उत्कृष्ट स्थिति बन्धके पश्चात् एक आवलि कालतक इन पांच नोकषायोंका बन्ध करता रहा तो उसके एक आवलिके पश्चात् कषायोंकी वह उत्कृष्ट स्थिति पांच नोकषायोंमें संक्रमित हो जाती है और इस प्रकार उक्त पाँच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय काल तक पाई जाती है। तथा किसी अन्य जीवने अन्तर्मुहूर्त काल तक सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाँधी और वह जीव कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बन्धके पश्चात् एक आवलि कालतक उक्त पाँच नोकषायोंका बन्ध करता रहा तो उसके कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धके प्रारम्भ होनेके एक आवलि कालसे लेकर बन्ध समाप्त होनेके एक आवलि काल तक सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति पांच नोकाषायोंमें संक्रमित होती रहती है और इस प्रकार पांच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अवस्थानकाल कषायोंके समान अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है।

*** सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालेका कितना काल है ?**

§ ४८३ यह सूत्र सुगम है।

*** जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।**

§ ४८४ **शंका**—इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय क्यों है ?

समाधान—जो अट्ठाईस कर्मोंकी सत्तावाला है और जो तीव्र संक्लेशरूप परिणामोंके कारण चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तः कोड़ाकोड़ी प्रमाण दाहस्थितिका बन्ध कर रहा है ऐसा कोई मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे निवृत्त होकर अन्तर्मुहूर्त कालतक विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ जब वेदक सम्यक्त्वको स्वीकार करता है तब उसके वेदक सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है। अतः इन दोनोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है।

*** स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालेका कितना काल है ?**

§ ४८५. सुगमं।

* जहण्णेण एगसमओ।

§ ४८६. कुदो? कसायाणमेगसमयमावलियमेत्तकालं वा उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गपढमसमए पडिहग्गावलियाए वा इच्छिदणोकसायं बंधाविय गलिदसेसकसा-युक्कस्सट्ठिदीए तत्थ संकमिदाए एदासिं चदुण्हं पयडीणमुक्कस्सट्ठिदिकालस्स एगसमय-दंसणादो।

* उक्कस्सेण आवलिया।

§ ४८७. कुदो? पडिहग्गकाले चेव एदासिं चदुण्हं पयडीणं बंधणियमादो। उक्कस्सट्ठिदिबंधकाले एदाओ किण्ण बज्झंति? अच्चसुहत्ताभावादो साहावियादो वा। अहियो कालो किण्ण लब्भदि? ण, बंधगद्धाचरिमावलियाए बद्धसमयपबद्धाणं चेव तत्थुक्कस्सत्तुवलंभादो।

---

§ ४८५ यह सूत्र सरल है।

* जघन्य काल एक समय है।

§ ४८६. शंका—इनका जघन्य काल एक समय क्यों है?

समाधान—क्योंकि जिसने कषायोंकी एक समय तक अथवा एक आवलीप्रमाण काल तक उत्कृष्ट स्थितिको बांधा है उसके प्रतिभग्न होनेके पहले समयमें अथवा प्रतिभग्न होनेके आवली प्रमाण कालके भीतर इच्छित नोकषायका बन्ध कराकर अनन्तर गलकर शेष रही कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके इच्छित नोकषायमें संक्रमण कराने पर इन चारों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल एक समय देखा जाता है।

* उत्कृष्ट काल एक आवली है।

§ ४८७. शंका—उत्कृष्ट काल एक आवली क्यों है?

समाधान—क्योंकि प्रतिभग्न कालके भीतर ही इन चार प्रकृतियोंके बन्धका नियम है।

शंका—उत्कृष्ट स्थितिके बन्धकालमें ये चारों प्रकृतियां क्यों नहीं बंधती हैं?

समाधान—क्योंकि ये प्रकृतियां अत्यन्त अशुभ नहीं हैं इसलिये उस कालमें इनका बन्ध नहीं होता। अथवा उस समय नहीं बंधनेका इनका स्वभाव है।

शंका—उत्कृष्ट काल अधिक क्यों नहीं पाया जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि बन्धककालकी अन्तिम आवलीमें बंधे हुए समयप्रबद्धोंकी ही इन चारों प्रकृतियोंमें संक्रमण होनेके कालमें उत्कृष्टता पाई जाती है, इसलिये इनकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एक आवलीसे अधिक नहीं हो सकता।

विशेषार्थ—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलीकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है और इनका बन्ध कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय होता नहीं, किन्तु जिस समय उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे जीव निवृत्त होने लगता है उसी समयसे होता है, अतः इनकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अवस्थान काल एक समय और उत्कृष्ट

* एवं सव्वासु गदीसु ।

§ ४८८. जहा ओघम्मि उक्कस्सद्विदिकालपरूवणा कदा तहा सव्वासिं गदीण-मोघम्मि परूवणा कायव्वा ण आदेसम्मि; तत्थ ओघादो विसेसदंसणादो ।

§ ४८९. एवं चुण्णिसुत्तपरूवणं काऊण संपहि एदेण सूचिदत्थजाणावणट्ठ-मुच्चारणाइरियवक्खाणमोघादो चेव भणिस्सामो ।

§ ४९०. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सोलकसायाणमुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । पंचणोकसायाण-मुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । कुदो ? सोलसकसाय-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं सरिसं संकिलेसं पूरेदूण उक्कस्सट्ठिदिं बंधदि । ताधे कसायाण-

---

अवस्थान काल एक आवलि प्राप्त होता है, क्योंकि जो एक समय तक कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बांधकर और दूसरे समयसे इन स्त्रीवेद आदिका बन्ध करने लगता है उसके एक आवलीके पश्चात् एक आवलिकम कषायकी उत्कृष्ट स्थिति स्त्रीवेद आदि रूपसे संक्रमित हो जाती है। तथा जो एक आवलि या एक आवलिसे अधिक काल तक कषायकी उत्कृष्ट स्थिति बांध कर पश्चात् स्त्रीवेद आदिका बंध करने लगता है उसके एक आवलिके पश्चात् एक आवलि काल तक ही एक आवलिकम कषायकी उत्कृष्ट स्थिति स्त्रीवेद आदि रूपसे संक्रमित होती है। इसके पश्चात् बांधी हुई कषायकी उत्कृष्ट स्थिति का स्त्रीवेद आदिमें संक्रमण होने पर भी उसमें एक एक समय उत्तरोत्तर कम होता जाता है, अतः इनकी उत्कृष्ट स्थिति जघन्य रूपसे एक समय तक और उत्कृष्ट रूपसे एक आवली कालतक पाई जाती है।

* इसी प्रकार सभी गतियोंमें जानना चाहिये ।

§ ४८८. जिस प्रकार ओघमें उत्कृष्ट स्थितिके कालकी प्ररूपणा की है उसी प्रकार सभी गतियों की प्ररूपणा ओघमें ही करनी चाहिये आदेशमें नहीं, क्योंकि आदेशमें ओघकी अपेक्षा विशेषता देखी जाती है।

विशेषार्थ—यहां चूर्णिसूत्रकारने सब गतियोंमें काल सम्बन्धी ओघप्ररूपणाको स्वीकार किया है। इसका यह तात्पर्य है कि कालसम्बन्धी उपर्युक्त ओघप्ररूपणा चारों गतियोंमें बन जाती है, अतः चारों गतियोंमें कालसम्बन्धी प्ररूपणा ओघप्ररूपणा ही है। आदेशप्ररूपणा तो वह है जिसमें ओघसे कुछ विशेषता हो, किन्तु चारों गतियोंमें कालसम्बन्धी प्ररूपणा ओघप्ररूपणासे कुछ भी विशेषता नहीं रखती, अतः चारों गतियोंमें कालसम्बन्धी प्ररूपणा भी ओघ प्ररूपणा ही है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है।

§ ४८९. इस प्रकार चूर्णिसूत्रोंका कथन करके अब इनके द्वारा सूचित अर्थका ज्ञान करानेके लिये उच्चारणाचार्यके व्याख्यानका ओघकी अपेक्षा ही कथन करते हैं।

§ ४९०. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन पांच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि समान संक्लेशको प्राप्त होकर जीव सोलह कषायोंकी तथा नपुंसकवेद, अरति, शोक,

मुक्कस्सट्ठिदिविहत्तीए आदी होदि। णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं पुण तत्तो आवलियमेत्तकाले गदे उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि; कसायाणमुक्कस्सट्ठिदीए असंकंताए एदासिमुक्कस्सत्ताभावादो। तदो सव्वेसिमुक्कस्सट्ठिदिबंधकालं सरिसं गंतूण सोलस-कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधो थक्कदि। तदो तम्मि थक्के वि आवलियमेत्तकालं पंचणोकसा-याणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि। पुणो इमं पच्छिमावलियं घेत्तूण पुव्वुत्तावलिऊणउक्कस्स-ट्ठिदिबंधकालम्मि पक्खित्ते कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिकालमेत्तस्स पंचणोकसायाणमुक्कस्स-ट्ठिदिकालस्सुवलंभादो। इत्थि-पुरिस-हस्स-रदीणं पुण उक्क० जह० एगस०, उक्क० एगावलिया; पडिहग्गावलियाए चेव एदासिमुक्कस्सट्ठिदिदंसणादो।

§ ४६१. मिच्छत्त-सोलकसायाणमणुक्क० जह० अंतोमुहुत्तं णवणोक० जह०

भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधता है। उस समय कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका प्रारम्भ होता है और नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति इससे एक आवलि कालके जाने पर होती है, क्योंकि जबतक कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका इनमें संक्रमण नहीं होता तबतक इनकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती, अतः सभीकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्धकाल समान जाकर सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध रुक जाता है और सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके रुक जाने पर भी एक आवली कालतक पांच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है, अतः इस पीछेकी आवलीको ग्रहण करके इन पाँच नोकषायोके पूर्वोक्त एक आवलिकम उत्कृष्ट स्थितिबन्धकालमें मिला देने पर कषायोंके उत्कृष्ट स्थिति बन्धकाल प्रमाण पांच नोकषायोका उत्कृष्ट स्थितिकाल हो जाता है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल एक आवलि है, क्योंकि प्रतिभग्नावलिकालमे ही इनकी उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है।

विशेषार्थ—सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके साथ नपुंसकवेद आदि पांच नोकषायोंका ही बन्ध होता है यह बात पहले ही बतला आये हैं। अब यदि किसी एक जीवने सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त काल तक किया तो उसके उत्कृष्ट स्थिति बन्धके प्रारम्भ होनेके एक आवली कालसे लेकर सोलह कषायोंकी एक आवलि कम उत्कृष्ट स्थितिका पांच नोकाषायोंमें संक्रमण होता रहेगा। और यदि यह जीव कषायोकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धके बाद एक आवलि कालतक उक्त पांच नोकषायोंका और बन्ध करता रहे तो उस समय भी कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका इनमें संक्रमण होता रहेगा, क्योंकि बन्ध हुई प्रकृतिके निषेकोंका एक आवलिके बाद अन्य प्रकृतिमें (यदि अन्य प्रकृतिका बन्ध होता हो तो) संक्रमण होता है ऐसा नियम है। इस नियमके अनुसार जो अन्तिम आवलिमें कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बँधी है उसका संक्रमण एक आवलिके बाद पांच नोकषायोंमें एक आवली तक अवश्य होता रहेगा, अतः जिस प्रारम्भकी आवलीमें कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका पांच नोकषायोंमें संक्रमण नहीं हुआ था उसे कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध कालमेंसे घटा देने पर और इस अन्तिम आवलिके जोड़ देने पर पांच नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्वकाल सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके सत्त्व कालके समान प्राप्त हो जाता है। शेष कथन सुगम है।

§ ४६१ मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त

एगसमओ, उक्क० सव्वासिमणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । सम्मत्त-सम्मामिच्छ-त्ताणमुक्क० जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ । अणुक्क० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० वेछावट्ठि-सागरोवमाणि सादिरेयाणि । एवं अचक्खु०-भवसि० ।

§ ४९२. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-सोलक०-णवणोक० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । णवरि इत्थि-पुरिस-हस्स-रदीणमावलिया ।

है तथा नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और सभी प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति का उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जिस का प्रमाण असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक एकसौ बत्तीस सागर है। इस प्रकार अचक्षुदर्शनवाले और भव्य जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—जो जीव उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके कारणभूत उत्कृष्ट संक्लेश परिणामोंसे निवृत्त हो गया है उसे पुनः उन परिणामोंको प्राप्त करनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल लगता है और इस मध्यके कालमें इस जीवके मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका ही बन्ध होगा, अतः इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा। यदि कोई जीव एकेन्द्रिय पर्यायमें निरन्तर परिभ्रमण करता रहे तो वह वहां अनन्त काल तक रह सकता है और एकेन्द्रियके मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता, इसलिये इसके नौ नोकषायोंकी भी उत्कृष्ट स्थिति नहीं पाई जा सकती, अतः उक्त २६ प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अनन्त काल कहा। जब कोई एक जीव एक एक समयके अन्तरसे क्रोधादिककी एक समय आदि कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है और उसका उसी प्रकारसे नौ नोकषायोंमें संक्रमण करता है तब नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। जो जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मि-थ्यात्वकी सत्ताको प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्तमें उनकी क्षपणा कर देता है उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है। तथा जो जीव उद्वेलना कालके अन्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त होता है और छ्यासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ रह कर पुनः मिथ्यात्वमें जा कर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करने लगता है तथा उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः एक आवलिकम छ्यासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ रहता है तथा अन्तमें मिथ्यात्वमें जाकर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक एकसौ बत्तीस सागर पाया जाता है। चूर्णिसूत्रोंमें चारों गतियोंमे उत्कृष्ट स्थितिकी काल प्ररूपणा ओघके समान कही है और उच्चारणामें चारों गतियोंको आदेश प्ररूपणामें ले लिया है। इसका कारण यह है कि उच्चारणामें उत्कृष्ट स्थितिके कालके साथ अनुत्कृष्ट स्थितिका काल भी सम्मिलित है, अतः यहाँ चारों गतियोंमें ओघ प्ररूपणा नहीं बनती। यही कारण है कि उच्चारणामें चारों गतियोंको आदेश प्ररूपणामें परिगणित किया है। किन्तु उच्चारणाकी ओघ प्ररूपणा अचक्षुदर्शन और भव्य मार्गणामें घटित हो जाती है, अतः उच्चारणामें इनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा है। यद्यपि इन दोनों मार्गणाओंमें चूर्णिसूत्रोंकी ओघ प्ररूपणा भी बन जाती है फिर भी चूर्णिसूत्रका 'एवं सव्वासु गदीसु' यह वचन देशामर्षक है, अतः वहां अन्य मार्गणाएं नहीं गिनाई हैं।

§ ४९२. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु इतनी

अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी। कत्थ वि देसूणा त्ति भणंति; तत्थ पविसिय अणुक्कस्सट्ठिदीए आदिकरणादो। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० [एगसमओ। अणुक्क०] जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। पढमादि जाव सत्तमा त्ति एवं चेव। णवरि सगसगुक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा।

विशेषता है कि स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एक आवलि प्रमाण है। तथा उक्त सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। कहीं पर कुछ आचार्य नारकियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे कुछ कम है ऐसा कहते हैं सो वहाँ पर नरकमें प्रवेश कराके अनुत्कृष्ट स्थितिका प्रारम्भ किया है ऐसा जानना चाहिये। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक इसी प्रकार कथन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सब कर्मोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व आदि सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालका खुलासा जिस प्रकार ओघमें कर आये हैं उसी प्रकार नारकियोंके कर लेना चाहिये। तथा जिसने अपने भवके उपान्त्य समयमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तिम समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया उस नारकीके मिथ्यात्व और सोलह कषायों की अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा जो पूरी पर्यायमें अनुत्कृष्ट स्थितिको बांधता है उसके मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण पाया जाता है। तथा जिस नारकीने भवके उपान्त्य समयमें एक समयतक नौ नोकषायोंमें सोलह कषायोंकी एक आवलिकम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण किया है उस नारकीके भवके अन्तिम समयमें नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। अथवा जिस प्रकार ओघमें नौ नोकषायोंका जघन्यकाल घटित किया है उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिये। तथा जिसके पूरी पर्यायमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध नहीं हुआ और न पूर्व पर्यायमें मरते समय एक आवलि कालके भीतर उक्त प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हुआ उस नारकीके नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण पाया जाता है। यहां मूलमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है सो इसका कारण यह बताया है कि नरकमें प्रवेश कराके अनुत्कृष्ट स्थितिका प्रारम्भ कराना चाहिये। जो मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके अन्तर्मुहूर्तमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है, अतः यहाँ इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। जो जीव नरकमें उत्पन्न होते ही सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर लेता है उसके नरकमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है। तथा जो प्रारम्भके और अन्तके अन्तर्मुहूर्त कालको छोड़कर जीवन भर वेदक सम्यक्त्वके साथ रहा है। या जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होनेके मध्य या अन्तमें पुनः पुनः यथायोग्य सम्यक्त्वको प्राप्त किया है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल नरककी

§ ४९३. तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । णवणोक० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० एगावलिया । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखे० पोग्गलपरियट्टा । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ४९४. पंचिंदियतिरिक्ख०-पंचिं०तिरि०पज्ज०-पंचिं०तिरि०जोणिणीसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोकसाय० उक्क० ओघभंगो । अणुक्क० जहण्ण० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि । एवं मणुसतिय० ।

उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण पाया जाता है । इसी प्रकार प्रथमादि पृथिवियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितियोंका काल कहना चाहिये । किन्तु सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपने अपने नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये ।

§ ४९३. तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और नपुंसकवेद आदि पाँचका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और स्त्रीवेद आदि चारका उत्कृष्ट काल एक आवलि प्रमाण है । तथा नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है ।

§ ४९४. पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल ओघके समान है । तथा उक्त सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनीके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—तिर्यंच गतिमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान घटित कर लेना चाहिये । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल जिस प्रकार नारकियोंमें घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये । हाँ अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । तिर्यंच पर्यायमें निरन्तर रहनेका उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है, अतः मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल भी इतना ही प्राप्त होता है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है, क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें रहनेका उत्कृष्ट काल पृथक्त्व पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य है अतः उस कालमें पुनः पुनः सम्यक्त्वके होनेसे सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वका

§ ४६५. पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ। अणुक्क० ज० खुद्दाभवग्गहणं समऊणं; उक्क० अंतोमु०। सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ। अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं मणुसअपज्ज०-पंचिं०अपज्ज०-तसअपज्जत्ताणं।

सत्त्व बना रहता है। अतः सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पृथक्त्व पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य कहा है। पंचेन्द्रियपर्याप्त और पचेन्द्रिय तिर्यच योनिमती जीवोंके सब कर्मोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालको छोड़कर शेष सब काल पूर्ववत् है। किन्तु मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। यहाँ पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंकी पंचानवे पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तककी सैंतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतीकी पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य उत्कृष्ट कायस्थिति जाननी चाहिये। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है जिसका खुलासा पहले किया ही है। सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनीके इसी प्रकार कथन करना चाहिये। किन्तु इनके मिथ्यात्व आदिकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय क्रमसे सैंतालीस, पन्द्रह और सात पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य उत्कृष्ट काल कहना चाहिये।

§ ४६५. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समयकम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—जो संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाँधकर और स्थितिघात न करके अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होता है उसके पहले समयमे उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है अतः पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। इसी प्रकार नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय जानना चाहिये पर यह संक्रमणसे प्राप्त होता है। तथा इस एक समयको छोड़कर शेष खुद्दाभवग्रहण प्रमाण काल उक्त सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल है और लब्धपर्याप्त अवस्थामें रहनेका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अब यदि कोई जीव उत्कृष्ट स्थितिके विना ही पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त हुआ और अपने उत्कृष्ट कालतक उसने वह पर्याय न बदली, पुनः पुनः उसीमें उत्पन्न होता रहा तो उसके उक्त सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। इसी प्रकार भवके प्रथम समयमे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय घटित कर लेना चाहिये। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा जानना चाहिये। मूलमें और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये।

§ ४९६. देवेसु णिरओघं। भवणादि जाव सहस्सार त्ति एवं चेव। णवरि अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा। आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० जह० सगसगजहण्णाउअं समऊणं, उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी। अणंताणुबंधिचउक्क० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ज० अंतोमु० एयसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ। [अणुक्क० जह० एगसमओ] उक्क० सगट्ठिदी। अणुद्दिसादि जाव सवट्ठे त्ति मिच्छत्त-सम्मामि०-बारसक-णवणोक० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ। अणुक्क० जह० जहण्णट्ठिदीए समयूणा, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी। सम्मत्त० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठि०। अणंताणु०चउक्क० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० जह०-अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी।

§ ४९६ देवोंमें सामान्य नारकियोंके समान कथन है। भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये। आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम अपनी अपनी जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थिति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तथा सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—सामान्य देव तथा भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें सब कर्मोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल सामान्य नारकियोंके समान है, किन्तु अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय अपने-अपने कल्पकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। आनतसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें भवके पहले समयमें ही मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम अपने-अपने कल्पकी

§ ४९७. इंदियाणुवादेण एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ। अणुक्क० ज० खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गल-परियट्टा। णवणोक० उक्क० ज० एगस०, उक्क० आवलिया। अणुक्क० ज० एयस०, उक्क० अणंतकालमसंखे० पो०परियट्टा। सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ। अणुक्क० ज० एयस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं बादरेइंदियाणं। णवरि अणुक्कस्सुक्कस्समंगुलस्स असंखेज्जदि-

जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थिति भी भवके पहले समयमे हो सकती है अतः इनकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इन प्रकृतियोकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है, क्योंकि जो अनुत्कृष्ट स्थितिके साथ आनतादि कल्पोमे उत्पन्न होता है। वह यदि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वलना नहीं करता है और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं करता है तो उसके जीवन भर इनकी अनुत्कृष्ट स्थिति बनी रहती है। तथा जो जीव आनतादिकोंमें पैदा हुआ और पर्याप्त होकर अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर ली उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना किया हुआ कोई एक देव सासादनमे आया और दूसरे समयमें मरकर अन्य गतिमें चला गया तो उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय क्रमसे उद्वेलना और कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वकी अपेक्षा घटित कर लेना चाहिये। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं अतः इनमें अनन्तानुबन्धी और सम्यक्त्वके अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य कालके कथनमे कुछ विशेषता है। शेष कथन पूर्ववत् ही जानना चाहिये। बात यह है कि यहाँ अनन्तानुबन्धीकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय नहीं बनता केवल भवके प्रारम्भमे जिसने अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर ली है उसके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त ही पाया जाता है। तथा जो कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि अनुदिशादिकमे उत्पन्न हुआ और एक समयतक सम्यक्त्व प्रकृतिके साथ रहकर दूसरे समयमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो गया उसके सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा यहाँ सम्यग्मिथ्यात्वके कालका कथन मिथ्यात्व आदिके साथ करना चाहिये, क्योंकि यहाँ इस प्रकृतिकी उद्वेलना सम्भव नहीं है।

§ ४९७. इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमे मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। नौ नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवली प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण

भागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणिउस्सप्पिणीओ। बादरेइंदियपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० एइंदियभंगो। अणुक्क० ज० अंतोमु० णवणोकसायाणं एगसमओ, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी। बादरेइंदियअपज्ज० सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो। णवरि सुहुमेइंदियपज्जत्ताणं अणुक्क० ज० अंतोमुहुत्तं। सुहुम० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० जह० खुद्दाभवग्गहणं समयूणं, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो।

§ ४९८. सव्वविगलिंदिय० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० जहण्णुक्क० एयस०। अणुक्क० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमु० समऊणं, उक्क० सगट्ठिदी। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगसम०। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी।

है जिसका प्रमाण असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी होता है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके कालका भंग एकेन्द्रियोंके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है पर नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और सबका उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है।

§ ४९८ सब विकलेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और एक समय अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंके मिथ्यात्व और सोलह कषायकी उत्कृष्ट स्थिति भवके पहले समयमें ही होती है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। पर यह उत्कृष्ट स्थिति पर्याप्त एकेद्रियोंके ही प्राप्त होती है और इस अपेक्षासे लब्ध्यपर्याप्तकोंके उक्त कर्मोंकी सब स्थिति अनुत्कृष्ट कही जाती है, अतः सामान्य एकेन्द्रियोंके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल खुद्दा भवग्रहण प्रमाण कहा। तथा एकेन्द्रिय पर्यायमें जीव असंख्यात पुद्गल परिवर्तन काल तक लगातार रह सकता है और ऐसे जीवके बीचमें उक्त

§ ४६६. पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० एगावलिया। अणुक्क० ज० एगस० उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क०

प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती, अतः अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा। जो देव सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय तक बन्धकरके एक आवली कालके भीतर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है और जो देव एक आवली या इससे अधिक काल तक सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अनन्तर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एक आवलि प्रमाण पाया जाता है। तथा जिस देवने सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया और एक आवलीमें एक समय शेष रहने पर वह मर कर एकेन्द्रियोंमे उत्पन्न हुआ उसके भवके पहले समयमें नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति और दूसरे समयमे उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है, अतः नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा। तथा नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल मिथ्यात्व आदिके समान जानना चाहिये। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल भवके पहले समयमें होता है अतः एकेन्द्रियोंमे इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमे जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर ली है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा। तथा उद्वेलनाके कालकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा। बादर एकेन्द्रियोंके भी इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल जानना। किन्तु एक जीवका निरन्तर बादर एकेन्द्रिय पर्यायमें रहनेका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है अतः इनके मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके अपनी पर्यायमे रहनेका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है अतः इस अपेक्षासे इनके अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालमें एकेन्द्रियोंसे विशेषता आ जाती है। शेष कथन एकेन्द्रियोंके समान जानना। बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान काल कहना चाहिये। किन्तु सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके अपनी पर्यायमें रहनेका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहना चाहिये। तथा सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमे पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों प्रकारके जीव गर्भित हैं अतः इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुद्दा भवग्रहण प्रमाण कहना चाहिये। शेष कथन सुगम है। इसी प्रकार विकलत्रयोंमें यथा सम्भव उनकी स्थितिका विचार करके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित कर लेना चाहिये।

§ ४६६. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्व और सोलह कषायोंका अन्तर्मुहूर्त और नौ नोकषायोंका एक आवलीप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थिति का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल ओघके समान है। इसी प्रकार पुरुषवेदवाले,

ज० एगस०, उक्क० ओघभंगो । एवं पुरिस०-चक्खु-सण्णि त्ति ।

§ ५००. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-बादरवणप्फदिपत्तेय० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० एइंदियभंगो । अणुक्क० जह० खुद्दाभवग्गहणं एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो । बादरपुढवि०-बादरआउ० एवं चेव । णवरि अणुक्कस्सुक्कस्सं सगट्ठिदी । बादरपुढविपज्ज०-बादरआउपज्ज० बादरेइंदिय-पज्जत्तभंगो । एवं बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्जत्ताणं । बादरपुढविअपज्ज०-बादर-आउअपज्ज०-तेउ०-बादरतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फ-दिपत्तेयसरीरअपज्ज०-णिगोद०-बादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्त-सव्वसुहुमाणं छव्वीसं पय-डीणं उक्क० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं समऊणं,

---

चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ५००. कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक और बादर प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अपेक्षा खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा एक समय है तथा उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है । बादर पृथिवीकायिक और बादर जलकायिक जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके उद्वेलनाकी अपेक्षा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय बन जाता है । भय जुगुप्सा, अरति शोक व नपुन्सक वेदकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल ओघके समान अन्तर्मुहूर्त भी जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है । ऊपर पुरुषवेदी आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित कर लेना चाहिये । तथा पृथिवीकायिक बादर पृथिवीकायिक और बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त आदिके अपनी-अपनी पर्यायमें निरन्तर रहनेके कालका विचार करके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहना चाहिये । शेष कथन सुगम है, क्योंकि इसका पहले अनेक बार खुलासा किया जा चुका है, अतः यहाँ व आगे भी उसका विचार करके यथासम्भव कथन करना चाहिये ।

बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और बादर जलकायिक पर्याप्त जीवोंका भंग बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान जानना चाहिये । इसी प्रकार बादर वनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये । बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, निगोदजीव, बादरनिगोद, बादरनिगोद पर्याप्त जीव, बादर निगोद अपर्याप्तजीव और सब सूक्ष्म जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और एक समय कम अन्तर्मुहूर्त है

उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखेज्जदिभागो । णवरि बादरपुढविआदिअपज्जत्ताणं सुहुमपुढविआदिपज्जत्तापज्जत्ताणं च सगट्ठिदी वत्तव्वा ।

§ ५०१. पंचमण०-पंचवचि० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोकसाय० उक्क० पंचिंदियभंगो । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ । अणुक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । ओरालिय० एवं चेव णवरि सगट्ठिदी वत्तव्वा ।

§ ५०२. कायजोगि० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० ओघं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० एइंदियभंगो । सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो । ओरालियमिस्स० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० जहण्णुक्क० एइंदियभंगो । मिच्छत्त-सोलसक० अणुक्क० जह० खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं । णवणोकसाय० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । सम्मत्त-सम्मामि० पंचिंदियअपज्जत्तभंगो । एवं वेउव्विय० णवरि मिच्छत्त-सोलसक० अणुक० ज० एगसमओ उक्क० अंतोमु० ।

तथा उत्कृष्टकाल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बादर पृथिवीकायिक आदि अपर्याप्त जीवोंकी तथा सूक्ष्म पृथिवीकायिक आदि पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिये ।

§ ५०१ पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भंग पंचेन्द्रियोंके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । औदारिककाययोगी जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल अपनी स्थिति प्रमाण कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—पांचों मनोयोग और पांचों वचनयोगोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तथा औदारिककाय योगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष है, अतः इनके अनुसार अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कहना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ५०२ काययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिका काल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोंके समान है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है ।

औदारिक मिश्र काययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एकेन्द्रियोंके समान है । तथा मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल तीन समयकम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है और नौ नोकषायोंका जघन्यकाल एक समय है तथा सबकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है । इस प्रकार वैक्रियक काययोगी जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्व और सोलह

वेउव्वियमिस्स० मिच्छत्त० सोलसक० णवणोक० उक्क० एइंदियभंगो। अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमु०। णवरि णवणोकसाय० अणुक्क० जह० एयसमओ। सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो। णवरि अणुक्क० जह० एयसमओ।

§ ५०३. आहार० सव्वपयडीणमुक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ज० एगसमओ उक्क० अंतोमुहुत्तं। एवमवगद०-अकसा०-सुहुमसांप०-जहाक्खादसंजदेत्ति। आहारमिस्स० सव्वपयडीणमुक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० जहण्णुक्क० अंतोमु०। एवमुवसम०-सम्मामि०।

§ ५०४. कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक०-सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया। णवणोकसाय० उक्क० ज० एगस०, उक्क० बेसमया। अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया। एवमणाहार०।

कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियक मिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलहकषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका भंग एकेन्द्रियोंके समान है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु इतनी विशेषता है कि नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है।

§ ५०३. आहारक काययोगी जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अपगतवेद वाले, अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत और यथाख्यात-संयत जीवोंके जानना चाहिये। आहारकमिश्रकाययोगियोंमे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार उपशम सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

§ ५०४. कार्मणकाययोगी जीवोंमे मिथ्यात्व, सोलह कषाय, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। तथा नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंके एक काययोग ही होता है, अतः काययोगमें अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोंके समान जानना चाहिये। औदारिक मिश्रका जघन्य काल तीन समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें मिथ्यात्व और सोलह कषाय की अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल तीन समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार एकेन्द्रियोंमें घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहां भी जानना। शेष कथन सुगम है। तथा जिस वैक्रियिककाययोगीने वैक्रियिककाययोग के उपान्त समयमें उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया और अन्त समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध

§ ५०५. वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० ओघं। अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० सगहिदी। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० पणवण्णपलिदो० सादिरेयाणि। णवुंस० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० उक्क० ओघं। अणुक्क० ज० एगस०,

---

किया उसके मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा वैक्रियिककाययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः यहां अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है शेष कथन पूर्ववत् जानना। वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त तथा नौ नोकषाय मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है। नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल पूर्ववत् जानना। शेष कथन सुगम है। आहारक काययोगके पहले समयमें ही सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः यहां सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। जो जीव एक समय तक आहारक काययोगके साथ रहे और दूसरे समयमें मर गये या मूल शरीरमें प्रविष्ट हो गये उनके सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा आहारक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायिक संयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके आहारककाययोगियोंके समान काल जानना। क्योंकि उपशम श्रेणीकी अपेक्षा उक्त मार्गणाओंमें उक्त काल बन जाता है। आहारकमिश्रकाययोगीका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है। तथा उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये। कार्मणकाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। अतः इसमें नौ नोकषायोंको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और सर्व प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय बन जाता है। किन्तु नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि नौ नोकषायोंकी उत्कृष्टस्थिति अपर्याप्त अवस्थामें एक आवलिकाल तक भी पाई जासकती है पर ऐसा जीव अधिकसे अधिक दो विग्रहसे ही उत्पन्न होता है, अतः इसके कार्मणकाययोग दो समय पाया जाता है और इसीलिये कार्मणकाययोगमें नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल दो समय कहा है। नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय तो स्पष्ट ही है। तथा अनाहारक जीवोंके इसी प्रकार जानना, क्योंकि संसार अवस्थामें जहां कार्मणकाययोग होता है वहीं अनाहारक अवस्था पाई जाती है।

§ ५०५. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यात्व, सोलहकषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक पचपन पल्य है। नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यात्व, सोलहकषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल

उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०, अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादिरेयाणि। असंजद० णवुंसयभंगो णवरि मिच्छ० सोलसक० अणुक्क० जह० अंतोमु०।

§ ५०६. चत्तारि कसाय० मणजोगिभंगो। मदिसुदअण्णा० ओघं। णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० अणुक्क० उक्क० एइंदियभंगो। एवं मिच्छादि०। अभव० एवं चेव णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० णत्थि। विहंग० सत्तमपुढविभंगो। णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमेइंदियभंगो।

एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। असंयत सम्यग्दृष्टियोंका भंग नपुंसकोंके समान है। किन्तु विशेषता इतनी है कि इनमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदका उत्कृष्ट काल सौ पल्यपृथक्त्व है, अतः इसमें उपर्युक्त छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण जानना चाहिये। जो अट्ठाईस या चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव पूर्व पर्यायमें स्त्रीवेदी है और वहांसे मरकर तथा अट्ठाइस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि होकर पचवन पल्यकी उत्कृष्ट आयुके साथ देवपर्यायमें स्त्रीवेदी हुआ उसके साधिक पचवन पल्य तक सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति पाई जासकती है, अतः स्त्रीवेदमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पल्य कहा है। शेष कथन सुगम है। एक जीव निरन्तर नपुंसकवेदके साथ अनन्त काल तक रह सकता है अतः नपुंसकवेदमें मिथ्यात्व आदि छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा। तथा जो पूर्व पर्यायमें अट्ठाइस प्रकृतियोंकी सत्तावाला नपुंसकवेदी है और वहां से च्युत होकर तेतीस सागरकी आयुवाले नारकियोंमें उत्पन्न हुआ उसके साधिक तेतीस सागर काल तक सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता पाई जा सकती है अतः इन दो प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है शेष कथन सुगम है। असंयतोंका सब कथन नपुंसकोंके समान है किन्तु मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि जिस नारकीने भवके उपान्त्य समयमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति बांधी अन्तिम समयमें अनुत्कृष्ट स्थिति बांधी उसके नपुंसकवेदमें उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय बन जाता है पर ऐसा जीव मरकर भी असंयत ही रहता है, अतः असंयतके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

§ ५०६. चार कषायवालोंका भंग मनोयोगियोंके समान है। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंके ओघके समान जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोंके समान है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टिजीवोंके जानना चाहिये। अभव्योंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व नहीं हैं। विभंगज्ञानियोंका भंग सातवीं पृथिवीके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है।

विशेषार्थ—एक समय और अन्तर्मुहूर्त सामान्यकी अपेक्षा चारों कषायों और मनोयोगका काल समान है, अतः चारों कषायोंमें मनोयोगके समान कथन करनेकी सूचना की। मत्यज्ञानी

§ ५०७. आभिणि०-सुद०-ओहि० मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क०-बारसक०-णवणोक० उक्क० जहण्णुक्क० एगसमओ। अणुक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० छावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। अणंताणु०चउक्क० देसूणाणि वा। एवमोहिदंस०-सम्मादि०। वेदय० एवं चेव। णवरि सम्म०-बारसक० [णवणोक०] छावट्ठिसाग० पडिवुण्णाणि। सेसाणं देसूणाणि। मणपज्ज० सव्वपयडीणमुक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। एवं संजद०-परिहार०-संजदासंजद०। सामाइयछेदो० एवं चेव। णवरि चउवीसप० अणुक्क० जह० एगस०।

और श्रुतज्ञानी जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही पाया जाता है, अतः इनके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एकेन्द्रियोंके समान कहा। शेष कथन सुगम है। अभव्योंमें भी छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान बन जाता है। इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता नहीं होती यह स्पष्ट ही है। विभंगज्ञानमें सातवीं पृथिवीके समान और सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तो बन जाता है किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल नहीं बनता, क्योंकि विभंगज्ञान मिथ्यादृष्टिके होता है और मिथ्यादृष्टिके इन दो प्रकृतियोंकी सत्ता पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही पाई जाती है।

§ ५०७. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है अथवा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका कुछ कम छयासठ सागर है। इसी प्रकार अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पूरा छयासठ सागर है शेषका कुछ कम छयासठ सागर है। मनःपर्ययज्ञानियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि है। इसी प्रकार संयत, परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयतोंके जानना चाहिये। सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें चौबीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है।

विशेषार्थ—सम्यग्दृष्टि जीवके सम्यक्त्व ग्रहण करनेके पहले समयमें ही सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है अतः मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा इन मार्गणाओंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर है, अतः सबकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर कहा। किन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम छ्यासठ सागर भी प्राप्त होता है, क्योंकि वेदकसम्यक्त्व के कालमें से मिथ्यात्व आदि तीन प्रकृतियोंके क्षपण कालको घटा देने पर और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके विसंयोजन कालको मिला देने पर देशोन छ्यासठ सागर प्राप्त होते हैं। अब यदि

§ ५०८. किण्ह-णील-काउ० तेउपम्मलेस्सासु मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० उक्क० ओघं, अणुक्क० जह० एगस०। णवरि किण्हणीलकाउ० मिच्छ० सोलस० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी। सुक्कले० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ज० अंतोमु०। अणंताणु० एगसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी।

इसमें प्रारम्भ में हुए उपशम सम्यक्त्वके कालको मिला दिया जाता है तो साधिक छ्यासठ सागर प्राप्त हो जाते हैं और यही सबब है कि अवधिज्ञानी आदि मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर भी स्वीकार किया है। अवधिदर्शन अवधिज्ञानका अविनाभावी है अतः अवधिदर्शनमें अवधिज्ञानके समान व्यवस्था जानना। तथा सम्यग्दृष्टि जीवोंके भी इसी प्रकार जानना। वेदकसम्यक्त्वमें यद्यपि इसी प्रकार जानना पर इसके सम्यक्त्व और बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पूरा छ्यासठ सागर होता है क्योंकि कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्व तक वेदक सम्यक्त्वका काल पूरा छ्यासठ सागर है और उक्त प्रकृतियोंका वहां तक सत्त्व पाया जाता है। इससे यह भी तात्पर्य निकल आया कि उक्त प्रकृतियोंको छोड़ कर वेदकसम्यक्त्वमें शेष प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम छ्यासठ सागर है। मनःपर्ययज्ञानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन पूर्वकोटि है। अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण कहा है शेष कथन सुगम है। ऊपर संयत आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं इनमें भी इसी प्रकार जानना। यद्यपि सामायिक और छेदोपस्थापनामें काल सम्बन्धी उक्त व्यवस्था बन जाती है पर जो जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर और नौवें गुणस्थानमें एक समय तक रह कर मर जाता है उसके सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें चौबीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है।

§ ५०८. कृष्ण, नील कापोत पीत और पद्म लेश्याओंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिकाल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है। किन्तु इतनी विशेषता है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओंमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है और उपर्युक्त सभी लेश्याओंमें उपर्युक्त सभी प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। शुक्ललेश्यामें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनन्तानुबन्धीका एक समय भी है। और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—कृष्णादि पांच लेश्याओंके रहते हुए मिथ्यात्व और सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हो सकता है तथा सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका नौ नोकषायोंमें संक्रमण हो

§ ५०९. खइय० बारसक०-णवणोक० [उक्क०] जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि । सासण० सव्वपयडी० उक्क० जहण्णुक्क० एगस० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० छावलियाओ । असण्णी० एइंदियभंगो ।

सकता है, अतः इनमें मिथ्यात्वादि छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान कहा है। जो पीत और पद्मलेश्यावाला जीव मर कर तिर्यंचोंमें उत्पन्न होता है यदि वह मरनेके पहले उपान्त्य समयमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करके अन्तमें अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है तो उसके पीत और पद्म लेश्यामें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। किन्तु कृष्णादि तीन अशुभ लेश्याएं मरनेके पश्चात् भी एक अन्तर्मुहूर्त काल तक बनी रहती हैं, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है। तथा पांचों लेश्याओंमें उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह सुगम है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदक सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके पहले समयमें ही हो सकती है अतः पांचों लेश्याओंमें उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा उद्वेलनाके अन्तिम समयमें जो कृष्णादि लेश्याओंको प्राप्त होते हैं उनके कृष्णादि लेश्याओंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। पर सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कृष्ण और नील लेश्यामें उद्वेलनाकी अपेक्षा और कापोत आदि तीन लेश्याओंमें कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वकी अपेक्षा जानना चाहिये। तथा उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। शुक्ललेश्यामें मिथ्यात्व आदि छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पहले समयमें ही सम्भव है, अतः इसमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा शुक्ल लेश्याका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें उक्त छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना किया हुआ जो शुक्ललेश्यावाला जीव मिथ्यादृष्टि हो गया और दूसरे समयमें उसकी लेश्या बदल गई उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय भी पाया जाता है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल पूर्ववत् घटित कर लेना चाहिये उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है।

§ ५०९. क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागरप्रमाण है। सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलीप्रमाण है। असंज्ञियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है।

विशेषार्थ—क्षायिक सम्यक्त्वके प्राप्त होनेके पहले समयमें ही, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है अतः इसमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा क्षायिक सम्यक्त्वका संसारमें जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है अतः इसमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर कहा है। सासादन सम्यक्त्वके पहले

§ ५१०. आहारि० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० ओघं। अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० सगद्विदी। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जहण्णुक्क० एगस०। अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० वेछावद्विसागरो० सादिरेयाणि।

एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो।

* जहण्णट्ठिदिसंतकम्मियकालो।

§ ५११. अहियारसंभालणवक्कमेदं सुगमं।

* मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-सोलसकसाय-तिवेदाण' जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ।

§ ५१२. कुदो? जहण्णट्ठिदिसंतुप्पण्णविदियसमए चेव एदासिं पयडीणं जहण्णट्ठिदीए विणासुवलंभादो। सो वि ण अजहण्णट्ठिदिगमणेण विणासो; विदिय-

समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति हो सकती है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा सासादनसम्यक्त्वका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि है अतः इसमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलि प्रमाण कहा है। असंज्ञियोंमें एकेन्द्रिय प्रधान हैं अतः असंज्ञियोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल एकेन्द्रियोंके समान कहा है।

§ ५१०. आहारकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक दो बार छयासठ सागर है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व आदि छब्बीस प्रकृतियोंकी ओघके समान उत्कृष्ट स्थिति आहारक जीवोंके ही हो सकती है अतः आहारकोंके उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान कहा है। जो उपान्त्य समयमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त करके अन्तसमयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है और तीसरे समयमें अनाहारक हो जाता है उस आहारकके उक्त छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय होता है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ।

* अब जघन्य स्थितिसत्कर्मका काल कहते हैं।

§ ५११. अधिकारके सम्हालनेके लिए यह सूत्र वाक्य आया है। जो कि सरल है।

* मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और तीन वेदोंकी जघन्य स्थिति सत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

§ ५१२. **शंका**—इनका जघन्य काल एक समय क्यों है?

समाधान—जघन्य स्थितिसत्त्वके उत्पन्न होनेके दूसरे समयमें ही इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका विनाश हो जाता है। यह विनाश भी अजघन्य स्थितिको प्राप्त करनेसे नहीं होता।

समए णिस्संतभावुवलंभादो ।

* छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंतकम्मियकालो जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ५१३. अद्धाछेदो णिसेयपहाणो, तस्स जदि एसो कालो घेप्पदि तो छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदीए कालस्स अंतोमुहुत्तं जुज्जदे; विदियट्ठिदीए ट्ठिदछण्णोकसायट्ठिदीए चरिमकंडयसरूवेण अवट्ठिदाए चरिमट्ठिदिकंडयउक्कीरणद्धामेत्तकालम्मि सव्वणिसेयाणं गलणेण विणा अवट्ठाणुवलंभादो। ण जहण्णट्ठिदीए अंतोमुहुत्तत्तमुवलब्भदे; तत्थ कालस्स पहाणत्तुवलंभादो त्ति ? ण एस दोसो, जहण्णट्ठिदि-जहण्णट्ठिदिअद्धच्छेदाणं जइवसहुच्चारणाइरिएहि णिसेगपहाणाणं गहणादो। उक्कस्सट्ठिदी उक्कस्सट्ठिदिअद्धाछेदो च उक्कस्सट्ठिदिसमयपबद्धणिसेगे मोत्तूण णाणासमयपबद्धणिसेगपहाणा तेण अंतोमुहुत्तकालावट्ठाणं छण्णोकसायजहण्णट्ठिदीए जुज्जदि त्ति। पुव्विल्लवक्खाणमेदेण सुत्तेण सह किण्ण विरुज्झदे ? सच्चमेदं विरुज्झदे चेव, किंतु उक्कस्सट्ठिदि-उक्क० ट्ठिदिअद्धाछेद-जहण्णट्ठिदि-ज० ट्ठिदिअद्धाछेदाणं भेदपरूवणट्ठं तं वक्खाणं कयं वक्खाणाइरिएहि। चुण्णिसुत्तुच्चारणाइरियाणं पुण एसो णाहिप्पाओ;

किन्तु दूसरे समयमें इनका निःसत्त्वभाव पाया जाता है। अतः उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा।

* छह नोकषायोंके जघन्य स्थिति सत्कर्मका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ५१३. **शंका**–अद्धाच्छेद निषेकप्रधान है। उसका यदि यह काल लिया जाता है तो छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है क्योंकि द्वितीय स्थितिमें स्थित छह नोकषायोंकी स्थितिके अन्तिम काण्डकरूपसे अवस्थित रहनेपर अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीरण काल प्रमाण काल तक सब निषेकोंका गलनेके बिना अवस्थान पाया जाता है। पर जघन्य स्थितिका अवस्थान अन्तर्मुहूर्त तक नहीं बन सकता है, क्योंकि उसमें कालकी प्रधानता स्वीकार की गई है ?

समाधान–यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जघन्य स्थिति और जघन्य स्थितिअद्धाच्छेदको यतिवृषभ आचार्य और उच्चारणाचार्यने निषेकप्रधान स्वीकार किया है। तथा उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट स्थितिअद्धाच्छेद उत्कृष्ट स्थितिवाले समयप्रबद्धके निषेकोंकी अपेक्षा न हो कर नाना समयप्रबद्धोंके निषेकोंकी प्रधानतासे होता है. अतः छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर्मुहूर्तकाल तक अवस्थान बन जाता है।

शंका–पूर्वोक्त व्याख्यान इस सूत्रके साथ विरोधको क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान–यह सच है कि पूर्वोक्त व्याख्यान इस सूत्रके साथ विरोधको प्राप्त होता ही है किन्तु उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट स्थिति अद्धाच्छेदमें तथा जघन्य स्थिति और जघन्य स्थितिअद्धाच्छेदमें भेदके कथन करनेके लिये व्याख्यानाचार्यने वह व्याख्यान किया है। पर चूर्णिसूत्र-

छण्णोकसायजहण्णट्ठिदीए अंतोमुहुत्तकालुवदेसादो। पुव्विल्लवक्खाणं ण भद्दयं, सुत्तविरुद्धत्तादो। ण, वक्खाणभेदसंदरिसणट्ठं तप्पवुत्तीदो पडिवक्खणयणिरायरण-मुहेण पउत्तणओ ण भद्दओ। ण च एत्थ पडिवक्खणिरायरणमत्थि तम्हा वे वि णिरवज्जे त्ति घेतव्वं। ट्ठिदि-ट्ठिदिअद्धच्छेदाणं वित्तिसुत्तकत्ताराणमहिप्पाएण कथं भेदो? वुच्चदे-सयलणिसेयगयकालपहाणो अद्धाछेदो, सयलणिसेगपहाणा ट्ठिदि त्ति ण दोण्हं पुणरुत्तदा। एवं चुण्णिसुत्तोवं परूविय संपहि जहण्णाजहण्णट्ठिदीणं काल-परूवणट्ठमुच्चारणाइरियवक्खाणं भणिस्सामो।

§ ५१४. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेणादेसेण य। मिच्छत्त-बारसक०-तिण्णिवेद० ज० के०? जहण्णुक्क० एगसमओ। अजहण्ण० केव०? अणादि-अपज्ज० अणादिसपज्जवसिदा। सम्मत्त-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क० एगसमओ। अज० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० बे छावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। अणंताणु०चउक्क० [जह०] जहण्णुक्क० एगसमओ। अजह० केव०? अणादिअपज्जवसिदा अणादि-सपज्जवसिदा सादिसपज्जवसिदा। जो सो सादिसपज्जवसिदो भंगो तस्स इमो णिद्देसो-

कार और उच्चारणाचार्यका यह अभिप्राय नहीं है, क्योंकि उन्होंने छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

शंका—पूर्वोक्त व्याख्यान समीचीन नहीं है, क्योंकि वह सूत्रविरुद्ध है।

समाधान—नहीं, क्योंकि व्याख्यानभेदके दिखलानेके लिये पूर्वोक्त व्याख्यानकी प्रवृत्ति हुई है। जो नय प्रतिपक्षनयके निराकरणमें प्रवृत्ति करता है वह समीचीन नहीं होता है। परन्तु यहाँ पर प्रतिपक्ष नयका निराकरण नहीं किया है, अतः दोनों उपदेश निर्दोष हैं ऐसा प्रकृतमें ग्रहण करना चाहिये।

शंका—तो फिर वृत्तिसूत्रके कर्ताके अभिप्रायानुसार स्थिति और स्थितिअद्धाच्छेदमें भेद कैसे हो सकता है?

समाधान—सर्वनिषेकगत कालप्रधान अद्धाच्छेद होता है और सर्वनिषेकप्रधान स्थिति होती है इसलिये दोनोंके कथनमें पुनरुक्त दोष नहीं आता है।

इस प्रकार चूर्णिसूत्रकी अपेक्षा ओघका कथन करके अब जघन्य और अजघन्य स्थितियोंके कालका कथन करनेके लिये उच्चारणाचार्यके व्याख्यानको कहते हैं—

§ ५१४. अब जघन्य स्थितिके कालका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमें से ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और तीन वेदोंकी जघन्य स्थितिका काल कितना है? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिका काल कितना है? अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त काल है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य स्थिति-का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य स्थितिका काल कितना है? अनन्तानुबन्धी की अजघन्य स्थितिके कालके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन विकल्प होते हैं। इनमें जो सादि-सान्त भंग है उसकी अपेक्षा यह प्रकृतमें

जहण्ण० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। छण्णोकसायाणं जह० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अजह० केव० ? अणादिअपज्जवसिदा अणादिसपज्जवसिदा। एवं भवसि०। णवरि अणादिअपज्जव० णत्थि।

§ ५१५. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त०-बारस०-भय-दुगुंछाणं ज० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी। सम्मत्त-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क०

कथन किया जा रहा है। जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण है। छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य स्थितिका कितना काल है ? अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त काल है। इसी प्रकार भव्योंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि उनके किसी भी प्रकृतिका अनादि-अनन्त काल नहीं है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सोलह कषाय और तीन वेदोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है इसका खुलासा पहले किया ही है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर इनकी अजघन्य स्थिति अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त होती है, क्योंकि अभव्योंके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थिति अनादि-अनन्त काल तक पाई जाती है। तथा जिन्होंने दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षपणा करते हुए उक्त प्रकृतियों की जघन्य स्थितिको प्राप्त कर लिया है उनके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका काल अनादि-सान्त है। किन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्कका काल सादि-सान्त भी पाया जाता है। जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्त कालमें उनकी क्षपणा कर दी है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट सत्त्वकाल पल्यके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक एकसौ बत्तीस सागर है, अतः इनकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण समझना चाहिये। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका काल अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त इस तरह तीन प्रकारका पहले बतलाया ही है। जो अनादि कालसे अनन्त कालतक मिथ्यात्वमें पड़ा है उसके अनादि-अनन्त काल पाया जाता है। जिसने अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करते हुए जघन्य स्थिति प्राप्त कर ली उसके अनादि-सान्त काल पाया जाता है। तथा जिसने विसंयोजनाके पश्चात् पुनः अनन्तानुबन्धीका सत्त्व प्राप्त कर लिया उसके सादि-सान्त काल पाया जाता है। इनमें से सादि-सान्त कालकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि अनन्तानुबन्धीका सत्त्व प्राप्त होने पर एक अन्तर्मुहूर्तके भीतर विसंयोजना द्वारा पुनः उसका क्षय किया जा सकता है। तथा अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है यह पहले बतला ही आये हैं। तथा मिथ्यात्व आदिके समान छह नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका काल अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त घटित कर लेना चाहिये। यह सब व्यवस्था भव्योंके बन जाती है, इसलिये इनके कथनको ओघके समान कहा। किन्तु इतनी विशेषता है कि भव्योंके सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका अनादि-अनन्त यह विकल्प नहीं पाया जाता।

§ ५१५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी

एगस०, अज० ज० एगस० । उक्क० सगट्ठिदी । सत्तणोक० ज० जहण्णुक्क० एयस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । अणंताणु० जह० जहण्णुक्क० एयस० । अज० जह० अंतोमु० एयसमयो वा, उक्क० सगट्ठिदी । एवं पढमाए । णवरि सगट्ठिदी० ।

जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये।

विशेषार्थ—जो असंज्ञी अपने योग्य जघन्य स्थितिके साथ दो मोड़े लेकर नरकमें उत्पन्न होता है उसके दूसरे मोड़में मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति पाई जा सकती है अतः नरकमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इसके पहले मोड़में अजघन्य स्थिति पाई जाती है अतः उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा जो उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके साथ नरकमें उत्पन्न होता है उसके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण पाया जाता है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति नारकीके कृतकृत्य-वेदक सम्यक्त्वके अन्तिम समयमें और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः नारकियोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा जिसके कृतकृत्यवेदकके कालमें दो समय शेष हैं ऐसा जीव यदि मरकर नरकमें उत्पन्न होता है तो उसके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा जिसके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें दो समय शेष हैं ऐसा जीव यदि मरकर नरकमें उत्पन्न होता है तो उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। इन दोनों प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। नरकमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति वहाँ उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् एक समयके लिये प्राप्त हो सकती है, अतः सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इसके पहले अन्तर्मुहूर्त काल तक अजघन्य स्थिति होती है, अतः सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है। अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति विसंयोजनाके अन्तिम समयमें होती है, अतः नरकमें इसकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा जिसने विसंयोजनाके पश्चात् पुनः अनन्तानुबन्धीकी सत्ता प्राप्त कर ली है और अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर पुनः उसकी विसंयोजना कर दी है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। तथा विसंयोजना किया हुआ जो जीव सासादनमें जाकर और दूसरे समयमें अन्य गतिको प्राप्त हो जाता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी पाया जाता है। तथा उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। पहले नरकमें इसी प्रकार

§ ५१६. विदियादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० ज० जहण्णुक० एगस० । अजहण्ण० [जहण्णुक०] जहण्णुक्कस्सट्ठिदी कायव्वा । सम्मत्त-सम्मामि० ज० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । अणंताणु०चउक्क० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु० एगसमओ वा, उकक० सगट्ठिदी । सत्तमाए मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछा० जह० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । [सम्मत्त-] सम्मामि० णिरओघं । अणंताणु०-सत्त-णोक० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी ।

जानना चाहिए। किन्तु अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल कहते समय इसे पहले नरककी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये।

§ ५१६. दूसरी से लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण करना चाहिये। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है। सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिका काल सामान्य नारकियोंके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है।

विशेषार्थ—द्वितीयादि पृथिवियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति अन्तिम समयमें ही प्राप्त हो सकती है, अतः यहां उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। पर यह जघन्य स्थिति उसी जीवके होती है जिसने उत्कृष्ट आयुके साथ नरकमें उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर उपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके जो जीवन भर वेदक सम्यग्दृष्टि बना रहा है। शेष जीवोंके तो उक्त कर्मोंकी अजघन्य स्थिति ही होती है, अतः द्वितीयादि नरकोंमें उक्त कर्मोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा। यहां सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा घटित कर लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है क्योंकि उसका पहले खुलासा कर आये हैं, उसी प्रकार यहां भी कर लेना चाहिये। सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति पर्यायके अन्तमें एक समय तक या अन्तर्मुहूर्त काल तक प्राप्त हो सकती है अतः इसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति विसंयोजनाके अन्तिम समयमें तथा सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति भवके अन्तिम अन्तर्मुहूर्तके भीतर प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धकालके

§ ५१७. तिरिक्खेसु मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछा जह० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । सम्मत्त०-सम्मामि० ज० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि । अणंताणु०चउक्क० [ज०] जहण्णुक्क० एयस० । अज० ज० अंतोमु० एयसमओ वा, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । सत्तणोक० ज० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० अणंतकालमसंखे० पो०-परियट्टा ।

§ ५१८. पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-पंचिं०तिरि०जोणिणीसु मिच्छत्त०-बारसकसाय-भय-दुगुंछ० जह० ज० एगस०, उक्क० बेसमया । अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं [अंतोमुहुत्तं] बिसमऊणं एयमओ वा, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । अणंताणु०चउक्क० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । एवं सत्तणोकसायाणं । णवरि अणंताणु० अज० ज० एगसमओ वा ।

अन्तिम समयमें प्राप्त होती है अतः इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ५१७. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है ।

§ ५१८ पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल दो समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण, दो समय कम अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थिति प्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी स्थिति प्रमाण है । इसी प्रकार सात नोकषायोंका जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी है ।

§ ५१६. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० मिच्छत्त०-सोलसक०-भय-दुगुंछाणं जह० ज० एगस०, उक्क० वे समया। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं दुसमऊणं एयसमओ वा, उक्क० अंतोमु०। सम्मत्त-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सत्तणो० ज० जहण्णुक्क० एगस०। अज० जहण्णुक्क० अंतोमु०। एवं मणुसअपज्ज०-पंचिंदियअपज्ज०-तसअपज्जत्ताणं।

§ ५१६. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल दो समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण या एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति बादर एकेन्द्रियोंमें कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक प्राप्त होती है, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा जो तिर्यंच जघन्य स्थितिके पश्चात् एक समय तक उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके साथ रहा और दूसरे समयमें मर कर अन्य गतिमें उत्पन्न हो गया उसके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय होता है। तिर्यंचोंमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके साथ रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है, क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें जघन्य स्थिति नहीं होती और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है, अतः उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक कहा। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल नारकियोंके समान जानना। किन्तु अजघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालमे विशेषता है। बात यह है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके साथ कोई जीव तिर्यंचपर्यायमें अधिकसे अधिक साधिक (पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक) तीन पल्य तक रह सकता है, अतः इनमें उक्त दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्य कहा। तिर्यंचपर्यायमें अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिके साथ निरन्तर रहनेका काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है अतः इनमे अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा। अन्तानुबन्धीकी अपेक्षा शेष कथन सामान्य नारकियोंके समान जानना। जो कषायोकी जघन्य स्थितिका बन्ध करके पश्चात् प्रतिपक्ष प्रकृतियोका दीर्घकाल तक बन्ध करता है उसके प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धके अन्तिम समयमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है, अतः सात नोकषायोकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा तिर्यंच पर्यायमें रहनेका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, अतः सात नोकषायोकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण कहा। पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकके पहले और दूसरे विग्रहके समय जघन्य स्थिति हो सकती है अतः इनके मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय कहा। तथा

§ ५२०. मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुस्सिणीसु मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जह० ओघं०। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी। सम्मत्त-सम्मामि० पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तभंगो। अणंताणु०चउक्क० जह० जहण्णुक्क० एगसमओ। अजह० ज० अंतोमु० एगसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी। णवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० छण्णोकसायभंगो। मणुस्सिणीसु अट्ठणोक० जह० जहण्णुक्क० अंतोमुहुत्तं।

§ ५२१ देवाणं णेरइयभंगो। भवण०-वाणवेंतराणमेवं चेव। णवरि सगट्ठिदी।

इन दो समयोंको घटा देने पर पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके दो समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और शेष दो प्रकारके तिर्यञ्चोंके दो समय कम अन्तमुहूर्त अजघन्य स्थितिका जघन्य काल होता है। तथा जिस पंचेन्द्रियतिर्यंच त्रिकके भवके दूसरे समयमें जघन्य स्थिति हुई उसके पहले समयमें अजघन्य स्थिति होती है अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी सम्भव है। शेष कथन सुगम है। इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यंचके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति और अजघन्य स्थितिका जघन्य काल उद्वेलनाकी अपेक्षा ही घटित करना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल तिर्यंचोंके समान घटित कर लेना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त अवस्थामें रहनेका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त कहा। शेष प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल पूर्वमें कहे हुए कालको ध्यानमें रखकर घटित कर लेना चाहिये। मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोकी स्थिति और पर्याय पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान है अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान कहा।

§ ५२०. मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति ओघके समान है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल सामान्य मनुष्योंमें खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और शेष दोमें अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्तकोके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदका भंग छह नोकषायोके समान है और मनुष्यनियोमें आठ नोकषायोकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्योंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण तथा पर्याप्त और मनुष्यनियोंका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है, अतः सामान्य मनुष्योंमें मिथ्यात्व आदि बाईस प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और पर्याप्त तथा मनुष्यनियोमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा। तथा मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदके अन्तिम काण्डकके शेष रहने पर जघन्य स्थिति प्राप्त होती है, अतः इनके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल छह नोकषायोके समान अन्तमुहूर्त कहा। इसी प्रकार मनुष्यनियोके आठ कषायोकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त जानना। शेष कथन सुगम है।

§ ५२१. देवोंमें नारकियोंके समान जानना चाहिये। भवनवासी और व्यन्तर देवोके भी

जोदिसियादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० जहण्णट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्काणं देवोघभंगो । णवरि अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदी वतव्वा । अणुदिसादि जाव अवराजिद० मिच्छत्त-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० ज० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० ज०ट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी कायव्वा । सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० देवोघं । णवरि अणंताणु० अज० एयसमयो णत्थि । सव्वट्ठ० मिच्छ०-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० जह० जहण्णुक्क० एयसमओ । अज० जह० तेत्तीसं सागरोव० समऊणाणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि संपुण्णाणि । सम्मत्त०-अणंताणु० जह० जहण्णुक्क० एयस० । अज० जह० एअसमओ अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० ।

इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अपनी स्थिति कहनी चाहिये । ज्योतिषियोसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकतकके देवोमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग सामान्य देवोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण करना चाहिये । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका काल सामान्य देवोके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय नहीं है । सर्वार्थसिद्धिमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कम तेतीस सागर और उत्कृष्ट काल पूरा तेतीस सागर है । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल सम्यक्त्वका एक समय और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल दोनोका तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार सामान्य नारकियोके सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतला आये हैं उसी प्रकार सामान्य देवोके जानना । तथा भवनवासी और व्यन्तर देवोंके भी इसी प्रकार जानना । विशेष बात इतनी है कि इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण जानना चाहिये । ज्योतिषियोसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक के देवोंके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंको जघन्य स्थिति भवके अन्तिम समयमे सम्भव है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । पर यह जघन्य स्थिति उत्कृष्ट स्थितिवाले सम्यग्दृष्टि देवोंके सम्भव है, अतः उक्त कर्मोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अपनी-अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा । शेष कथन सुगम है । अनुदिश आदिकमें इसी प्रकार जानना चाहिये । पर इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका काल मिथ्यात्वके समान घटित करके कहना चाहिये, क्योंकि अनुदिशसे लेकर ऊपरके सब देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं,

§ ५२२. एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछाणं [जह०] जह० एयसमओ, उक० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक० असंखेज्जा लोगा । सम्मत्त-सम्मामि० ज० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक० पलिदो० असंखेज्ज०भागो । सत्तणोक० ज० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक० असंखेज्जा लोगा । एवं सुहुमेइंदियाणं । बादरेइंदियाणमेवं चेव । णवरि सगट्ठिदी । बादरेइंदियपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० ज० एगस०; उक० अंतोमु० । अज० ज० एगस०, उक० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्सभंगो । सत्तणोक० जह० जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक० संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० ज० ज० एगसमओ, उक० अंतोमु० । अज० ज० एगसमओ, उक० अंतोमु० । सम्मत्त०-सम्मामि०-सत्तणोक० ज० जहण्णुक० एगसमओ । अज० ज०

अतः इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना सम्भव नहीं । तथा जो उपशमसम्यग्दृष्टि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनावाला जीव भवके अन्तमें सासादनमें जाता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । पर यहाँ कोई भी जीव सम्यक्त्वसे च्युत नहीं होता अतः यहाँ अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय सम्भव नहीं । सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य और उत्कृष्ट आयुका भेद नहीं ! तथा वहाँ भवके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व आदि तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति सम्भव है अतः वहाँ जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा इस एक समयको कम कर देने पर अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कम तेतीस सागर प्राप्त होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५२२. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व-की जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-का जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है । इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये । बादर एकेन्द्रियोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिये । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग उत्कृष्ट स्थितिके समान है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट

एगसमओ, उक्क० अंतोमु० ।

§५२३. सव्वविगलिंदिय० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० ज० ज० एगसमओ, उक्क० वेसमया। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं विसमऊणं एयसमयो वा, उक्क० अप्पप्पणो उक्कस्सहिदी। सम्मत्त-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० सगहिदी। सत्तणोक० ज० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगहिदी।

§५२४. पचिंदिय-पंचि०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक०

काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है।

विशेषार्थ–एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंके अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिका विचार करके सब प्रकृतियों की अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल कहना चाहिये। परन्तु एकेन्द्रियोंमें जघन्य स्थिति केवल बादर पर्याप्तके ही होती है सूक्ष्मके जघन्य नहीं होती और सूक्ष्मोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है अतः एकेन्द्रियोंमें अजघन्यका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक कहा है। यद्यपि एकेन्द्रियोंमें अजघन्यकी उत्कृष्ट स्थिति असंख्यात लोक प्रमाण है, फिर भी इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीवके इससे अधिक काल तक इनकी सत्ता नहीं पाई जाती। तथा इन पूर्वोक्त एकेन्द्रियादि जीवोंमें जो जघन्य स्थितिके पश्चात् एक समय तक अजघन्य स्थितिके साथ रहा और दूसरे समयमें मर गया उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके बिना शेष सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। तथा इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा कहा है। तथा मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त तथा सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय सामान्य तिर्यंचोंके समान अपनी अपनी पर्यायमें घटित करके जानना चाहिये।

§५२३. सब विकलेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय है तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल पर्याप्तकोंको छोड़ कर शेषमें दो समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और पर्याप्तकोंमें दो समय कम अन्तमुहूर्त अथवा एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ–विकलत्रयोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल दो समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और दो समय कम अन्तमुहूर्त या एक समय पंचेन्द्रिय तिर्यंच त्रिकके समान घटित कर लेना चाहिये। तथा अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। शेष कथन सुगम है।

§५२४. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय

ज० ओघं। अज० ज० खुद्दाभवग्गहणं अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी। सम्मत्त-सम्मामि० ज० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० एगस०, उक्क० वे छावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। अणंताणु०चउक्क० ज० जहण्णुक्क० एगस०। अज० ज० अंतोमु० [एगसमओ वा], उक्क० सगट्ठिदी। एवं चक्खु०-सण्णि त्ति।

§ ५२५. कायाणुवादेण पुढवि०-आउ०-तेउ०-वाउ०-वणप्फदि०-णिगोद०

और नौ नोकषायोकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान है तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल पर्याप्तकोके विना शेषमें खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और पर्याप्तकोंमें अन्तमुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोकी जघन्य स्थितिका काल जो ओघमें कहा है वह पंचेन्द्रियादिकी प्रधानतासे कहा है, अतः इन चारोमे उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान जानना। तथा पंचेन्द्रिय और त्रसोंमें उक्त प्रकृतियोकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और पचेन्द्रिय पर्याप्त तथा त्रस पर्याप्तकोमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त होगा। तथा उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होगा। इनमें पंचेन्द्रियोंकी कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक हजार सागर, पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी कायस्थिति सौ पृथक्त्व सागर, त्रसकायिकोंकी कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागर और त्रस पर्याप्तकोंकी कायस्थिति दो हजार सागर है। अतः इतने काल तक उक्त जीवोंको उक्त प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिके साथ रहनेमे कोई बाधा नहीं है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय कृतकृत्य वेदकके अन्तिम समयमे होगा। तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट एक समय काल उद्वेलना और कृतकृत्यवेदक इन दोनोकी अपेक्षा हो सकता है। तथा इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व साधिक एक सौ बत्तीस सागर तक रह सकता है अतः उक्त दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर कहा। विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है और उक्त चारों प्रकारके जीवोके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना हो सकती है अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसा जीव यदि मिथ्यात्वमे जाय और वहां अतिलघु काल तक रह कर और पुनः वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर ले तो उसे ऐसा करनेमे अन्तमुहूर्त काल लगता है अतः अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त कहा। परन्तु आयुके अन्तिम समयमें एक समय कालवाला सासदन हुआ और मरकर एकेन्द्रियोमे उत्पन्न होनेवाले किसी भी चौबीसकी सत्तावाले पंचेन्द्रिय या त्रसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी प्राप्त होता है। तथा उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है।

§ ५२५. कायमार्गणाके अनुवादसे सभी पृथिवीकायिक, सभी जलकायिक, सभी अग्नि-

एइंदियभंगो । णवरि सगसगुक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा ।

§ ५२६. पंचमण०-पंचवचि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० जह० ओघं। णवरि छण्णोक० ज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सव्वेसिमज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । ओरालि० एवं चेव। णवरि सगट्ठिदी । एवं वेउव्विय० । णवरि छण्णोक० ज० जहण्णुक्क० एयस० । कायजोगि० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० मणजोगिभंगो । अज० ज० एगस०, उक्क० अणंतकालो । सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो । ओरालियमिस्स० बादरेइंदिय-अपज्जत्तभंगो । णवरि सत्तणोक० अज० जह० अंतोमु० । वेउव्वियमिस्स० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० ज० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । णवरि सम्मत्त-सम्मामि० अज० ज० एगसमओ। एवमाहार-मिस्स० । णवरि सम्मत्त-सम्मामि० अज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । आहार० वेउव्वियभंगो । एवमकसाय-सुहुम०-जहाक्खादसंजदे त्ति । कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछा०

कायिक, सभी वायुकायिक और सभी निगोद जीवोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग हैं। इतनी विशेषता है कि इनके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहना चाहिये। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार एकेन्द्रियोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल बतला आये हैं उसी प्रकार इनके यथायोग्य जान लेना चाहिये।

§ ५२६. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है तथा सभी प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। औदारिककाययोगी जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अपनी स्थिति कहनी चाहिये। इसी प्रकार वैक्रियिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। काययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका भंग मनोयोगियोंके समान है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एकेन्द्रियोंके समान भंग है। औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय है। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आहारककाययोगियोंमें वैक्रियिककाययोगियोंके समान भंग है। इसी प्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिए। कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति और अजघन्य स्थितिका जघन्य

जहण्णट्ठिदि० अजहण्णट्ठिदि० च जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया। सम्मत्त-सम्मामि०-सत्तणोक० ज० जहण्णुक्क० एगसमओ। अज० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया। एवमणाहारि०।

काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। इसी प्रकार अनाहारकोंके जानना।

विशेषार्थ–पांचों मनोयोग और पांचों वचनयोगोंमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय तथा सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय योग परिवर्तनकी अपेक्षा कहा है। शेष कथन सुगम है। औदारिक काययोगका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष है। अतः औदारिक काययोगमें सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण प्राप्त होता है। शेष कथन मनोयोगके समान जानना। जो देव दो बार उपशम श्रेणी पर चढ़कर सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न होनेवाले भवके अन्तिम समयमें वैक्रियिककाययोगी होता है उसीके वैक्रियिक काययोगमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थिति सम्भव है अतः वैक्रियिककाययोगमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा इसके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनासे ही प्राप्त होगी क्योंकि जो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि देव या नारकियोंमें उत्पन्न होता है उसके वैक्रियिक मिश्रकाययोगके कालमें ही कृतकृत्यवेदकका काल समाप्त हो जाता है। काययोगका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है अतः इसमें मिथ्यात्व आदि छब्बीस प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा। काययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल एकेन्द्रियोंके समान कहा इसका यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है उसी प्रकार काययोगमें भी जानना। औदारिकमिश्रकाययोगमें सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय न कहकर अन्तर्मुहूर्त बतलाया है उसका कारण यह है कि यह जघन्य स्थिति उस जीवके होती है जो कोई बादर एकेन्द्रिय जघन्य स्थिति सत्त्वके साथ पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्त काल तक अपने अपने प्रतिपक्ष बन्धक कालमें रहकर प्रतिपक्ष बन्धक कालके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके औदारिकमिश्रमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है। औदारिकमिश्रका काल प्रतिपक्ष प्रकृतिके बन्ध कालसे बहुत अधिक है। जघन्य स्थितिसे पूर्व व पश्चात् काल अन्तर्मुहूर्त होता है अतः सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति वैक्रियिक मिश्रकाययोगके अन्तिम समयमें सर्वार्थसिद्धिमें सम्भव है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति अपना प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धकालके अन्तिम समयमें प्रथम नरकमें सम्भव है तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति किसी भी समय सम्भव है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा जिस वैक्रियिकमिश्रकाययोगीके दूसरे समयमें सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। शेष कथन सुगम है। आहारकमिश्रकाययोगमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी न तो उद्वेलना होती है और न क्षपणा, अतः

§ ५२७. वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु मिच्छत्त-अट्ठकसाय-अट्ठणोकसाय-चत्तारि-संजलण० जह० जहण्णुक्क० एयस० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । एवं णवुंस० । णवरि जह० जहण्णुक्क० अंतोमु० । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० पणवण्णपलिदोवमाणि सादिरेयाणि । अणंताणु०चउक्क० ज० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु० एयसमयो वा, उक्क० सगट्ठिदी ।

इनके उक्त दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । तथा इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय पर्याप्त योग होनेके पूर्ववर्ती समयमें होगा । आहारककाययोगमें वैक्रियिक काययोगके समान सब प्रकृतियोंकी स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये । मूलमें अकषाय आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये । कार्मण काययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है अतः इसमें मिथ्यात्व आदि उन्नीस प्रकृतियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण बन जाता है । जो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव कार्मणकाययोगके रहते हुए क्षायिक-सम्यग्दृष्टि हो जाता है उसके कार्मणकाययोगमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय पाया जाता है । तथा जिसने कार्मणकाययोगमें सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की है उसके उक्त प्रकृतिकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय पाया जाता है । सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति कार्मणकाययोगके दूसरे समयमें प्राप्त होती है अतः इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । तथा कार्मण काययोगमें उक्त नौ प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय कार्मणकाय-योगके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा बन जाता है । मोहनीयकी सत्तावाले जो जीव कार्मणकाययोगी होते हैं वे ही अनाहारक होते हैं, अतः अनाहारकोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल कार्मणकाययोगियोंके समान कहा ।

§ ५२७. वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदवालोंमें मिथ्यात्व, आठ कषाय, आठ नोकषाय और चार संज्वलनकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार नपुंसक-वेदका जानना । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पल्य है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदवाले जीवोंके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति मिथ्यात्वकी क्षपणाके अन्तिम समयमें और आठ कषायोंकी जघन्य स्थिति आठ कषायोंकी क्षपणाके अन्तिम समयमें तथा आठ नोकषाय और चार संज्वलनकी जघन्य स्थिति सवेदभागके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है अतः इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । स्त्रीवेदी जीव जब नपुंसक वेदके अन्तिम काण्डकका पतन करता है तब उसके नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति होती है पर इसका उत्कीरणकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इसके नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा । जो जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर एक समय तक स्त्रीवेदके उदयके साथ रहा और

§ ५२८. पुरिस० मिच्छत्त-बारसक०-पुरिस० ज० जहण्णुक्क० एयस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० ज० एगस०, उक्क० बे छावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि । अट्ठणोक० ज० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । अणंताणु० जह० जहण्णु० एयस० । अज० जह० अंतोमु० एयसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी ।

दूसरे समयमें मरकर देव हो गया उसके उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है तथा उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण है यह स्पष्ट ही है। स्त्रीवेदके साथ निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल सौ पल्यपृथक्त्व प्रमाण है। अतः यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसे यही काल लेना चाहिये। जो स्त्रीवेदी जीव दर्शनमोहनीय की क्षपणा कर रहा है उसके अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। इसी प्रकार विसंयोजनाकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय जानना। जो द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर एक समय तक स्त्रीवेदके साथ रहा और दूसरे समयमें देव हो गया उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। एक जीव स्त्रीवेदके रहते हुए निरन्तर वेदकसम्यक्त्वके साथ कुछ कम पचवन पल्य काल तक रह सकता है। अब यदि कोई जीव पचवन पल्यकी आयुके साथ देवी हो गया और वहाँ उसने वेदक सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया तो उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक पचवन पल्य पाया जाता है। जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यात्वमें जाकर अन्तर्मुहूर्तके भीतर सम्यग्दृष्टि हो कर पुनः अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर लेता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। तथा जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला स्त्रीवेदी जीव जीवनके अन्तिम समयमें सासादनको प्राप्त होता है और दूसरे समयमें मर कर अन्यवेदी हो जाता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिकी उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ ५२८. पुरुषवेदवालोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है। आठ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—पुरुषवेदवाले जीवोंके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति मिथ्यात्वकी क्षपणाके अन्तिम समयमें, आठ कषायोंकी जघन्य स्थिति आठ कषायोंकी क्षपणाके अन्तिम समयमें तथा चार संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति सवेदभागके अन्तिम समयमें होती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियों-

§ ५२९. णवुंस० मिच्छत्त-अट्ठक०-अट्ठणोक०-चत्तारिसंजल० ज०. जहण्णुक० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पो०परियट्टा । सम्मत्त-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि । अणंताणु०चउक्क० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु०

की जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। कोई मनुष्य उपशमश्रेणीसे उतर कर एक समयके लिये पुरुषवेदी हुआ और दूसरे समयमें मरकर वह देव हो गया तो भी वह पुरुषवेदी ही रहता है अतः पुरुषवेदमें उक्त प्रकृतियोकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय नहीं बनता। किन्तु जो उपशमश्रेणीसे उतर कर और पुरुषवेदी हो कर अन्तमुहूर्तमें क्षपकश्रेणी पर चढ़कर उक्त प्रकृतियोकी जघन्य स्थितिको प्राप्त कर लेता है उसके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त पाया जाता है। इसी प्रकार आठ नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त घटित कर लेना चाहिये। दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवके अन्तिम समयमे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल जिस प्रकार ओघमे घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ घटित कर लेना चाहिये। जो जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर और पुरुषवेदी होकर अन्तर्मुहूर्तमे दर्शनमोहनीयकी क्षपणा कर देता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। या जिसने उद्वेलनाके बाद अन्तर्मुहूर्तमे क्षायिकसम्यग्दर्शनको प्राप्त किया है उसके भी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। अतः उसे यहाँ ग्रहण नहीं करना चाहिये किन्तु उद्वेलना करता हुआ जो कोई जीव उपान्त्य समयमें पुरुषवेदी हो गया उसके सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। पुरुषवेदी जीवके आठ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति अन्तिम काण्डकके समय प्राप्त होती है और उसका उत्कीरणकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः यहाँ आठ नोकषायोकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। विसंयोजनाके अन्तिम समयमे अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसका जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। चौबीस प्रकृतियोकी सत्तावाला जो पुरुषवेदी जीव मिथ्यात्वमे गया और अन्तर्मुहूर्त में सम्यग्दृष्टि हो कर पुनः अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर लेता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। तथा जो चौबीस प्रकृतियोकी सत्तावाला उपशमसम्यग्दृष्टि सासादनको प्राप्त हुआ और दूसरे समय मे मरकर अन्यवेदी होगया उस पुरुषवेदीके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी पाया जाता है। स्त्रीवेदमे भी इस प्रकार एक समय काल प्राप्त किया जा सकता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ ५२९. नपुंसकवेदवालोंमे मिथ्यात्व, आठ कषाय, आठ नोकषाय और चार संज्वलनकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल

एगसमओ वा, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पो०परियट्टा । इत्थि० जह० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अज० जह० एगसमओ, उक्क० अणंत०कालमसं०पो०परि० । अवगदवेद० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० जह० ओघं । अज० जह० [-एगस०,] उक्क० अंतोमु० ।

§ ५३०. कसायाणुवादेण सव्वकसाईसु मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्क० मणजोगिभंगो । बारसक०-णवणोक० ज० ओघं । अज० जहण्णुक्क० अंतोमु० ।

अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अपगत-वेदवालोंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—नरकमें जीव सम्यग्दर्शनके साथ कुछ कम तेतीस सागर काल तक रह सकता है। अब यदि कोई अट्ठाईस प्रकृतियोकी सत्तावाला नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि जीव नरकमें उत्पन्न हुआ और वहाँ कुछ कम तेतीस सागर काल तक सम्यग्दर्शनके साथ रहा तो उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर पाया जाता है। तथा इनके अतिरिक्त शेष प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरि-वर्तनप्रमाण है, क्योंकि नपुंसकवेदका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण है। यहाँ सब प्रकृतियोंकी जघन्य आदि स्थितियोका शेष काल स्त्रीवेदियोंके समान घटित कर लेना चाहिये। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका काल कहते समय वह नपुंसकवेदीके स्त्रीवेदके अन्तिम काण्ड-कघातके समय प्राप्त होता है जिसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। जो अपगतवेदी जीव उपशमश्रेणी से उतर कर अवेदभागके अन्तिम समयमे विद्यमान है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है अतः इसके उक्त तीन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान एक समय कहा। जो अपगतवेदी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर अपगतवेदके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और आठ कषायोंकी जघन्य स्थिति होती है अतः इसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान एक समय कहा। तथा जो अपगतवेदी जीव छह नोकषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकमे तथा पुरुषवेद और चार संज्वलन की क्षपणाके अन्तिम समयमें विद्यमान है उसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान पाया जाता है। अपगतवेदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः अपगतवेदमें अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है।

§ ५३०. कषाय मार्गणाके अनुवादसे सब कषायवालोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मनोयोगियोके समान है। बारह कषाय और नौ नोकषायोकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ५३१. णाणाणुवादेण मदि-सुदअण्णा० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछा० ज० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। सत्तणोक० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसं० पो० परि० । सम्मत्त-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । विहंग० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार मनोयोगी जीवके मिथ्यात्वादि सात प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार चारों कषायवाले जीवोंके घटित कर लेना चाहिये। जो क्रोधादि कषायवाले जीव आठ कषाय और नौ नोकषायोंकी क्षपणा कर रहे हैं उनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति होती है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान कहा। क्रोधकषायीके क्रोधवेदक कालके अन्तिम समयमें चार संज्वलनोंकी, मानकषायीके मानवेदक कालके अन्तिम समयमें तीन संज्वलनोंकी, मायाकषायवालेके मायावेदककालके अन्तिम समयमें दो संज्वलनोंकी और लोभकषायवाले जीवके लोभकषायवेदककालके अन्तिम समयमें लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थिति होती है। तथा मानादि कषायवाले जीवोंके शेष कषायोंकी जघन्य स्थिति अपनी-अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें होती है, अतः इनके चार संज्वलनोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान एक समय कहा। तथा क्रोधादि कषायवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा।

§ ५३१. ज्ञान मार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है।

विशेषार्थ—मत्यज्ञान और श्रुताज्ञान एकेन्द्रियोंसे लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय तकके सब मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके होते हैं। किन्तु यहाँ जघन्य स्थितिका प्रकरण है अतः मुख्यतः एकेन्द्रियोंकी स्थितिका ग्रहण किया है। एकेन्द्रियोंमें भी सबसे कम बादर एकेन्द्रियों की जघन्य स्थिति होती है। जिसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। मिथ्यात्व गुणस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल

§ ५३२. आभिणि०-सुद०-ओहि० उक्कस्सभंगो। णवरि छण्णोक० जह० जहण्णुक्क० अंतोमु०। एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०। णवरि खवगसेढिम्मि छण्णोक० ज० ओघं। मणपज्ज० अट्ठणोक० पुरिस०भंगो। सेस० उक्कस्सभंगो।

अन्तर्मुहूर्त कहा। तथा सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यायमे निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक है और सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके मत्यज्ञान और श्रुताज्ञानकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थिति होती है अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा। जो बादर एकेन्द्रिय जीव जघन्य स्थितिके बन्धकालमें मरकर पंचेन्द्रियोंमे उत्पन्न हुआ उसके अपनी प्रतिपक्ष प्रकृतिके बन्धकालके अन्तिम समयमें सात नोकषायोकी जघन्य स्थिति होती है अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। मिथ्यात्व गुणस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और एकेन्द्रिय पर्यायमे निरन्तर रहनेका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। अब कोई जीव इतने कालतक निरन्तर एकेन्द्रिय पर्यायमें रहा और अन्तमें बादर एकेन्द्रिय हुआ तथा वहाँ सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका बन्ध व सत्त्व करके पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ अपनी प्रतिपक्ष प्रकृतिके बन्धकालके अन्तमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिको प्राप्त हुआ। इस प्रकार इस जीवके उक्त काल तक सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थिति पाई जाती है, अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवके सात नोकषायों की अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा मिथ्यात्वमें उक्त दोनों प्रकृतियोंका सत्त्व पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही पाया जाता है, अतः इनके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। जो उपरिम ग्रैवेयकका जीव अन्तिम समयमें सासादनको प्राप्त हो जाता है उसके विभंगज्ञानके रहते हुए मिथ्यात्व आदि छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति होती है अतः विभंगज्ञानीके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा उपरिम ग्रैवेयकके देवको छोड़ कर अन्य देव तथा नारकी जीवके अन्तिम समयमें सासादनको प्राप्त होने पर विभंगज्ञानमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। विभंग ज्ञानका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है अतः इसमे उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जिस प्रकार एकेन्द्रियोंके घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये।

§ ५३१. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें जघन्य स्थितिका भंग उत्कृष्ट स्थितिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि क्षपकश्रेणीमें छह नोकषायोंका जघन्य स्थितिका काल ओघके समान है। मनःपर्ययज्ञानियोंमे आठ नोकषायोंका भंग पुरुषवेदके समान है। शेष प्रकृतियोंका भंग अपनी उत्कृष्ट स्थितिके समान है।

§ ५३३. असंजद० मिच्छत्त० जह० जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० केवचिरं ? अणादिअपज्जवसिदो, अणादिसपज्जवसिदो सादिसपज्जव० । जो सो सादिसपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो—जह० अंतोमु०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । सम्मत्त०-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क० एगसमओ । अज० ज० एगस० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं साग० सादिरेयाणि । अणंताणु०चउक्क० ओघं । बारसक०-णवणोक० मदि०भंगो । अचक्खु० ओघं ।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणीमें जब छह नोकषायोंका अन्तिम काण्डक प्राप्त होता है तब उनकी जघन्य स्थिति होती है और इसका काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। शेष कथन सुगम है। इसी प्रकार संयत आदि मार्गणाओंमें जानना। इसका यह तात्पर्य है कि इन मार्गणाओंमें जिस प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल कह आये हैं उसी प्रकार यहाँ जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल कहना चाहिये, क्योंकि इनमें परस्पर कालकी अपेक्षा समानता देखी जाती है। किन्तु इनमेंसे जिन मार्गणाओंमें क्षपकश्रेणी सम्भव हो उन्हींमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान जानना चाहिये शेषमें नहीं। मनःपर्ययज्ञान पुरुषवेदी जीवके ही होता है अतः इनके आठ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल पुरुषवेदियोंके समान कहा। शेष सुगम है।

§ ५३३. असंयतोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिका कितना काल है ? अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त इस प्रकार तीन तरहका काल है। उनमें जो सादि-सान्त काल है उसका यह कथन है। वह जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टसे उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका काल ओघके समान है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंका काल मत्यज्ञानियोंके समान है। अचक्षुदर्शनमें ओघके समान है।

विशेषार्थ—जो असंयत मिथ्यात्वकी क्षपणा कर रहा है उसके मिथ्यात्वकी क्षपणाके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति होती है, अतः असंयतके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। मूलमें असंयतके मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिके अनादि-अनन्त, अनादिसान्त और सादिसान्त ये तीन भंग कहे हैं सो वास्तवमें ये असंयतत्वके साथ मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिके तीन भंग हैं अतः उसके सम्बन्धसे मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिको तीन भागोंमें बाँट दिया है, क्योंकि ऐसा किये विना असंयतके मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाना कठिन था। इनमेंसे सादि-सान्त असंयतका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, अतः असंयतके मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा। असंयतके अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें भी जघन्य स्थिति होती है, अतः इसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। जब कोई संयत कृतकृत्यवेदकके कालमें दो समय शेष रहने पर असंयत हो जाता है तब

§ ५३४. लेस्साणुवादेण किण्ह-णील-काउ० मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछ० जह० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अज० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी। सत्तणोक० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी। सम्मत्त०-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । अणंताणु०चउक्क० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी ।

§ ५३५. तेउ-पम्म० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० जह० जहण्णुक्क० एगस० । अज० जह० अंतोमु० अणंताणु० एगसमओ वा, उक्क० सगट्ठिदी । सम्मत्त०-सम्मामि० ज० जहण्णुक्क० एगस० । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी । सुक्क०

उसके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा असंयतका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा। कोई जीव असंयतभावके रहते हुए सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके साथ अधिकसे अधिक साधिक तेतीस सागर काल तक ही रह सकता है अतः असंयतके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा। जो असंयत अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर रहा है उसके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति होती है अतः असंयतके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान एक समय कहा। इसी प्रकार ओघमें बताये अनुसार असंयतके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका काल भी घटित कर लेना चाहिये। तथा असंयत जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल मत्यज्ञानियोंके समान बन जाता है अतः इसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल मत्यज्ञानियोंके समान कहा। छद्मस्थ जीवोंके अचक्षुदर्शन निरन्तर रहता है अतः अचक्षुदर्शनमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान कहा।

§ ५३४. लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्ण, नील और कापोतलेश्यामें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है।

§ ५३५. पीत और पद्म लेश्यामें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या अनन्तानुबन्धी चतुष्कका एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। शुक्ल-

उक्कस्सभंगो। णवरि छण्णोक० जह० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अभव० मदि०भंगो। णवरि सम्मत्त-सम्मामि० णत्थि।

लेश्यामें उत्कृष्ट स्थितिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अभव्योंमें मत्यज्ञानियोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ नहीं हैं।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंके कृष्णादि तीनों लेश्याएँ सम्भव हैं, अतः जिस प्रकार एकेन्द्रियोंके मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय बतला आये हैं उसी प्रकार कृष्णादि तीन लेश्याओंमें घटित कर लेना चाहिये। किन्तु इनके अजघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालमें विशेषता है। बात यह है कि कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर, नील लेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक सत्रह सागर और कापोत लेश्याका उत्कृष्ट काल साधिक सात सागर है, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण ही प्राप्त होगा। उक्त तीनों लेश्याओंमेंसे कोई एक लेश्यावाला जो बादर एकेन्द्रिय जीव जघन्य स्थितिके साथ पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होता है उसके प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धकालके अन्तमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है, अतः कृष्णादि तीनों लेश्याओंमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। अब यदि उक्त जीव दूसरे समयमें अजघन्य स्थितिके साथ रहा और तीसरे समयमें उसके विवक्षित लेश्या बदल गई तो उक्त लेश्याओंमें सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है इस अपेक्षासे उक्त तीन लेश्याओंमें सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा। तथा उत्कृष्ट काल स्पष्ट ही है। कृष्ण और नील लेश्यामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाकी अपेक्षा तथा कापोत लेश्यामें सम्यक्त्वका कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वकी अपेक्षा और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाकी अपेक्षा जघन्य स्थिति प्राप्त होता है जिसका काल एक समय है, अतः उक्त तीनों लेश्याओंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। जिस जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें दो समय शेष रहने पर कृष्णादि तीन लेश्याएँ प्राप्त होती हैं उसके कृष्णादि तीन लेश्याओंमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थिति एक समय तक पाई जाती है, अतः इनके उक्त दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा। किन्तु इतनी विशेषता है कि कापोत लेश्यामें एक समय तक सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थिति कृतकृत्य वेदकके दो अन्तिम समयकी अपेक्षा घटित करनी चाहिये। तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्वकी क्षपणाके दो अन्तिम समयमें कापोत लेश्या प्राप्त करावे और इस प्रकार कापोत लेश्यामें सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहे। तथा उत्कृष्ट काल स्पष्ट ही है। विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है जो तीनों लेश्याओंमें सम्भव है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीका जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा उक्त लेश्याओंके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा उनमें अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहा। जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीसे उतर कर पीत और पद्मलेश्याको प्राप्त हुआ है वह यदि तदनन्तर शुक्ललेश्याको प्राप्त होकर क्षपकश्रेणीपर चढ़े तो उसके पीत और पद्मलेश्याके अन्तिम समयमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है।

§ ५३६. उवसम० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० जह० जहण्णुक्क० एगस०। अज० जहण्णुक्क० अंतोमु०। सम्मत्त-सम्मामि० जह० जहण्णुक्क० एगस०। अज० जहण्णुक्क० अंतोमु०। एवं सम्मामि०। सासण० सव्वपयडीणं जह० जहण्णुक्क० एगस०। अज० जह० एगस०, उक्क० छावलियाओ। मिच्छादिट्ठी० मदि०भंगो। असण्णि० तिरिक्खोघं। णवरि अणंताणु०चउक्क०-सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो।

तथा इन दोनों लेश्यावाले जीवोंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति इनकी क्षपणाके अन्तिम समयमें और अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, अतः इनके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। यहां इतना विशेष जानना कि उक्त लेश्याओंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनाकी अपेक्षा भी प्राप्त होती है। तथा उक्त लेश्याओंके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा इनमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल कहा। किन्तु चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव पीत और पद्मलेश्याके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हो सकता है अतः इनमें अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी कहा। जो जीव कृतकृत्यवेदकके उपान्त्य समयमें और उद्वेलनाके उपान्त्य समयमें पीत और पद्मलेश्याको प्राप्त होते हैं उनके क्रमसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थिति एक समय तक पाई जाती है, अतः उक्त लेश्याओंमे उक्त दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा। तथा उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण होता है यह स्पष्ट ही है। शुक्ल लेश्यामें छह नोकषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय उनकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है जो अन्तर्मुहूर्त काल तक रहती है, अतः इसके छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ५३६ उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलीप्रमाण है। मिथ्यादृष्टियोंमें मत्यज्ञानियोंके समान भंग है। असंज्ञियोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि असंज्ञियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है।

विशेषार्थ—जो उपशमसम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणीसे उतर कर अनन्तर वेदकसम्यग्दृष्टि होनेवाला है उसके अन्तिम समयमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति होती है, अतः उपशमसम्यग्दृष्टिके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा उपशमसम्यक्त्वके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। किन्तु इतनी विशेषता है कि उपशमश्रेणीमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः जो प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि जीव तदनन्तर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति होती है। या जिन आचार्योंके मतसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानु-

§ ५३७. आहारीसु मिच्छत्त-सम्मत्त०-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० जह० ओघं। अज० जह० खुद्दाभवग्गहणं तिसमऊणं, उक्क० सगट्ठिदी। सम्मत्त०-सम्मामि० पंचिंदियभंगो। अणंताणु०चउक्क० जह० जहण्णुक्क० एगस०। अज० जह० अंतोमु० एगसमयो वा, उक्क० सगट्ठिदी।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

बन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करता है उसके विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति होती है। जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है, अतः सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी पृथक्त्वसागर स्थितिकी सत्तावाला जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होता है उसके अन्तिम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है, अतः सम्यग्मिथ्यादृष्टिके इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें होती है, अतः इसके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा इसके सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होता है यह स्पष्ट ही है। जो उपशमश्रेणीसे गिरकर सासादनभावको प्राप्त होता है उसके सासादनके अन्तिम समयमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति होती है, अतः सासादनसम्यग्दृष्टिके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा। तथा सासादन गुणस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल छह आवलिप्रमाण कहा। मिथ्यादृष्टियोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल मत्यज्ञानियोंके समान होता है यह स्पष्ट ही है। असंज्ञी तिर्यञ्च ही होते हैं अतः सामान्य तिर्यञ्चोंके समान असंज्ञियोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल जानना चाहिये। किन्तु सामान्य तिर्यञ्चोंमें संज्ञी तिर्यञ्च भी सम्मिलित हैं और उनके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना भी होती है तथा उनमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि भी उत्पन्न होता है, अतः असंज्ञियोंमें सम्यग्मिथ्यात्व सहित उक्त छह प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थिति सामान्य तिर्यंचोंके समान नहीं बन सकती है, फिर भी यहाँ जघन्य और अजघन्य स्थितिके कालकी मुख्यता है जो यथायोग्य एकेन्द्रियोंके सम्भव है, अतः असंज्ञियोंके उक्त प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल एकेन्द्रियोंके समान कहा।

§ ५३७. आहारकोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल तीन समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका भंग पंचेन्द्रियोंके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी

ॐ अंतरं । मिच्छत्त-सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिगं अंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ५३८. कुदो ? भणिदकम्माणमुक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणो जीवो अणुक्कस्सबंधओ होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो एदेसिं कम्माणमुक्कस्सट्ठिदिबंधुवलंभादो । दोण्हमुक्कस्सट्ठिदाणं विच्चालम्मि अणुक्कस्सट्ठिदिबंधकालो तासिमंतरं ति भणिदं होदि । एगसमओ जहण्णंतरं किण्ण होदि ? ण, उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गस्स पुणो अंतोमुहुत्तेण विणा उक्कस्सट्ठिदिबंधासंभवादो ।

जघन्य स्थिति आहारकोंके ही सम्भव है, अतः आहारकोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान कहा । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति अनाहारकोंके भी होती है यहाँ इतना विशेष जानना । आहारकोंका जघन्य काल तीन समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी काल प्रमाण है, अतः इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल तीन समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल जिस प्रकार पंचेन्द्रियोंके घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार आहारकोंके जानना, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । आहारक अवस्थामें ही अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना होती है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा । अनन्तानुबन्धीका जघन्य सत्त्वकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा । चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमसम्यग्दृष्टि जीव जीवनके अन्तिम समयमें सासादन हुआ और दूसरे समयमें मरकर अनाहारक हो गया तो उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थिति एक समय भी पाई जायगी, अतः आहारक के अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी कहा । तथा अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल आहारकके उत्कृष्ट काल प्रमाण होता है यह स्पष्ट है ।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।

* अब अन्तरका प्रकरण है । उसमें मिथ्यात्व और सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ५३८. शंका—उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

समाधान—क्योंकि चूर्णिसूत्रमें कहे हुए कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाला जो जीव अनुत्कृष्ट स्थितिका कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक बन्ध करता है उसके अन्तर्मुहूर्तके बाद पुनः पूर्वोक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध पाया जाता है । इस कथनका यह तात्पर्य है कि दोनों उत्कृष्ट स्थितियोंके मध्यमें जो अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बन्धकाल है वह उन दोनों उत्कृष्ट स्थितियोंका अन्तरकाल है ।

शंका—जघन्य अन्तर एक समय क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिको बाँध कर उससे च्युत हुए जीवके पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके बिना उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं हो सकता, अतः जघन्य अन्तर एक समय नहीं होता ।

❀ उक्कस्समसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा ।

§ ५३९. कुदो? उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गो होदूण अणुक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणो ताव अच्छदि जाव अणुक्कस्सट्ठिदिबंधगद्धाए उक्कस्सियाए चरिमसमओ त्ति । तदो एइंदिएसुववज्जिय असंखेज्जाणि पोग्गलपरियट्टाणि तत्थ परिभमिय पुणो पंचिंदिय-तसपज्जत्तएसु उप्पज्जिय पज्जत्तयदो होदूण उक्कस्सदाहं गंतूण उक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए आवलियाए असंखेज्जदिभागपमाणपोग्गलपरियट्टाणमंतरेणुवलंभादो ।

❀ एवं णवणोकसायाणं । णवरि जहण्णेण एगसमओ ।

§ ५४०. णवणोकसायाणमुक्कस्सट्ठिदीए अंतरकालो मिच्छत्तादीणमुक्कस्सट्ठिदि-अंतरकालेण सरिसो, किंतु जहण्णंतरकालो एगसमओ । कुदो? कसाएसु अण्णदरकसायस्स उक्कस्सट्ठिदिमेगसमयं बंधिदूण पुणो विदियसमए सव्वेसिं कसाया-णमणुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय तदियसमए उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय एवमग्गदो अग्गदो य उक्कस्स-ट्ठिदिसंतमज्झे अणुक्कस्सट्ठिदिसंतं कादूण बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदीए णोक-साएसु संकंताए उक्कस्सट्ठिदीए आदी जादा । तदो विदियसमए अणुक्कस्सट्ठिदीए

❀ उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

§ ५३९. शंका—उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण क्यों है ।

समाधान—किसी एक जीवने उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया अनन्तर उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके कारणभूत उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे निवृत्त होकर उसने अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया और यह बन्ध अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट बन्धकालके अन्तिम समय तक करता रहा। तदनन्तर यह जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ असंख्यात पुद्गल परिवर्तन काल तक परिभ्रमण करके पुनः पंचेन्द्रिय त्रस पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ और पर्याप्त होकर उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंको प्राप्त हुआ तब जाकर इसके उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है और इसलिये उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर आवलीके असंख्यातवें भागके जितने समय हों उतने पुद्गल परिवर्तनप्रमाण पाया जाता है ।

❀ इसी प्रकार नौ नोकषायोंका अन्तर है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है ।

§ ५४०. नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल मिथ्यात्वादिककी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरकालके समान है । किन्तु जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

शंका—नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय क्यों है ?

समाधान—जिस जीवने सोलह कषायोंमेंसे किसी एक कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको एक समय तक बाँधा पुनः दूसरे समयमें सब कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिको बाँधा और तीसरे समयमें अन्य कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधा इस प्रकार जो जीव आगे आगे कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके मध्यमें कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वको करता है । तदनन्तर जिसके बन्धावलिके पश्चात् कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके नोकषायोंमें संक्रांत होने पर नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका

अंतरिय पुणो तदियसमए णोकसाएसु बंधावलियाइक्कंतकसायुक्कस्सट्ठिदीए संकंताए एगसयमेत्तंतरुवलंभादो ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्साणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मियंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ५४१. कुदो ? मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेण वेदगसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मं कादूण विदियसमए अणुक्कस्सट्ठिदिं गंतूणंतरिय सव्वजहण्णसम्मत्तकालमच्छिय मिच्छत्तेण परिणमिय पुणो उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय अंतोमुहुत्तं पडिहग्गो होदूणच्छिय वेदगसम्मत्तपाओग्गमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेण वेदगसम्मत्ते पडिवण्णे सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्ममुवगयस्स उक्कस्सट्ठिदीए अंतोमुहुत्तमेत्तजहण्णंतरुवलंभादो ।

❀ उक्कस्समुवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

§ ५४२. तं जहा एगो अणादियमिच्छाइट्ठी छव्वीससंतकम्मियो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । पुणो उवसमसम्मत्तेण अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गो होदूण ट्ठिदिघादमकरिय वेदगसम्मत्तं घेत्तूण सम्मत्त-

---

प्रारम्भ हुआ । तथा जो दूसरे समयमे अनुत्कृष्ट स्थितिको अन्तरित करके पुनः तीसरे समयमे बन्धावलिके पश्चात् कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको नोकषायोंमे संक्रान्त करता है उसके नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय प्रमाण पाया जाता है ।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ५४१. शंका—जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कैसे है ?

समाधान—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले किसी एक जीवने वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म किया । तदनन्तर वह दूसरे समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हुआ और इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका अन्तर करके सबसे जघन्य सम्यक्त्वके कालतक वहाँ रहा । तदनन्तर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और वहाँ पुनः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और संक्लेश परिणामोंसे च्युत हो विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ अन्तर्मुहूर्त कालतक वहाँ रहा । तदनन्तर वेदकसम्यक्त्वके योग्य मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला वह जीव जब वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर लेता है तब पुनः उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है और इस प्रकार उस जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

* उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है ।

§ ५४२. वह इस प्रकार है—छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः वह उपशमसम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त कालतक रहकर मिथ्यात्वमे गया और वहाँ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और संक्लेश परिणामोंसे च्युत होकर स्थितिघात न करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः वहाँ सम्यक्त्व और सम्य-

सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मं कादूण सम्मत्तेण अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण देसूणद्धपोग्गलपरियट्टं परिभमिय पुणो तिण्णि वि करणाणि करिय पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय मिच्छत्तं गंतूणुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय अंतोमुहुत्तेण वेदगसम्मत्तमुवगयपढमसमए मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए सम्मत्तसम्मामिच्छत्तेसु संकंताए लद्धमंतरं होदि । एवं पुव्विल्लंतिल्लअंतोमुहुत्तेणूणमद्धपोग्गलपरियट्टमुक्कस्संतरं । ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ति घेत्तव्वं ।

§ ५४३. संपहि चुण्णिसुत्तपरूवणं काऊण विसेसोवलद्धिं पडुच्च पुणरुत्तभयं छंडिय सोघमुच्चारणं भणिस्सामो । अंतरं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-बारसक० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० अणंतकाल० । अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० उवड्ढपो०परियट्टं । अणंताणु०चउक्क० उक्क० अंतरं केवचिरं० ? ज० अंतोमु०, उक्क० अणंतकाल० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० बेछावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि । पंचणोक० उक्क० जह० एगस०, उक्क० अणंतकाल० । अणुक्क०

मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मको करके तथा सम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त कालतक रहकर मिथ्यात्वमें गया । पुनः वह मिथ्यात्वके साथ कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन कालतक परिभ्रमण करके पुनः तीनों करण करके प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । तदनन्तर उसने मिथ्यात्वमें जाकर और वहाँ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रथम समयमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमण किया । तब जाकर उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है । इस प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर पहलेके और अन्तके अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण प्राप्त होता है । यहाँ सूत्रमें जो उपार्ध पुद्गल परिवर्तन पदका ग्रहण किया है सो उससे कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनरूप कालका ग्रहण करना चाहिये ।

§ ५४३. इस प्रकार चूर्णिसूत्रका कथन करके अब विशेष ज्ञान करानेके लिये पुनरुक्त दोषके भयको छोड़कर ओघसहित उच्चारणाका कथन करते हैं—अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य अन्तर और उत्कृष्ट अन्तर । उनमेंसे उत्कृष्ट अन्तरका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है । अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गलपरिवर्तन काल है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गल परिवर्तनकाल है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एकसौ बत्तीस सागरप्रमाण है । पांच नोकषायोंकी

ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । चत्तारिणोक० उक्क० ज० एगस०, उक्क० अणंत-काल० । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० एगावलिया । एसो चुण्णिसुत्तउवएसो । उच्चारणाए पुण वे उवएसा— एगावलिया आवलियाए असंखेज्जदिभागो चेदि । पडि-हग्गसमए चेव जे आइरिया चदुणोकसायाणं बंधो होदि त्ति भणंति तेसिमहिप्पाएण एगावलियमेत्तो चदुणोकसायाणमणुक्कस्सट्ठिदीए उक्कस्संतरकालो । पडिहग्गपढम-समयप्पहुडि आवलियाए असंखेज्जेसु भागेसु गदेसु असंखे०भागावसेसे चदुणोकसाया वज्झंति त्ति जे आइरिया भणंति तेसिमहिप्पाएण अणुक्कस्सट्ठिदीए उक्कस्संतरं आवलियाए असंखे० भागो । एवमचक्खु०-भवसिद्धि० ।

उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है। चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एक आवली काल है। चार नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल एक आवलीप्रमाण है यह उपदेश चूर्णिसूत्रके अनुसार है। उच्चारणाकी अपेक्षा तो दो उपदेश पाये जाते हैं। एक उपदेश एक आवली कालका है और दूसरा उपदेश आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालका है। जो आचार्य उत्कृष्ट स्थिति-बन्धके कारणभूत उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे निवृत्त होकर तदनन्तर समयमें ही चार नोकषायोंका बन्ध होता है ऐसा कहते हैं उनके अभिप्रायानुसार चार नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल एक आवलिप्रमाण प्राप्त होता है। तथा जो आचार्य उत्कृष्ट स्थिति-बन्धके कारणभूत उत्कृष्ट संक्लेशरूप परिणामोंसे निवृत्त होकर पहले समयसे लेकर आवलिके असंख्यात बहुभाग कालको बिताकर असंख्यातवें भागप्रमाण कालके शेष रहने पर चार नोकषायोंका बन्ध होता है ऐसा कहते हैं उनके अभिप्रायानुसार चार नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। इसी प्रकार चक्षुदर्शनवाले और भव्य जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व आदि सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरका खुलासा मूलमें किया ही है, अतः यहां अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य और, उत्कृष्ट अन्तरका खुलासा किया जाता है। जब किसी जीवके एक समय तक मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है तब उसके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है। तथा,जब किसीके मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध अन्तर्मुहूर्तकाल तक होता है तब उसके उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। जो जीव सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके तीसरे समयमें उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है। तथा जो जीव अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके प्रारम्भमें उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके और मिथ्यात्वमें जाकर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता है। पुनः अर्धपुद्गल परिवर्तन कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल उपार्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण पाया जाता है। जिसने अनन्ता-

§ ५४४. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-बारसक० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अणुक्क० ओघं। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अणुक्क० एवं चेव। णवरि जह० एगस०। अणंताणु०चउक्क० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। पंचणोक० उक्क० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। चत्तारिणोक० उक्क० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० आवलियाए असंखे०भागो एगा-

---

नुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसा जीव यदि पुनः मिथ्यात्वमें आवे तो उसे मिथ्यात्वमें आनेके लिये कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल और अधिकसे अधिक कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर काल लगता है अतः अनन्तानुबन्धीकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर प्राप्त होता है। नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। तथा शेष चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल एक आवली है, अतः इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एक आवलि है। यहाँ चार नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका एक आवलिप्रमाण जो उत्कृष्ट अन्तर बतलाया है वह चूर्णिसूत्रके उपदेशानुसार बतलाया है। परन्तु इस विषयमें उच्चारणामें दो उपदेश पाये जाते हैं। पहले उपदेशका सार यह है कि सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके हो चुकनेके दूसरे समयसे ही चार नोकषायोंका बन्ध होने लगता है। तथा दूसरे उपदेशका सार यह है कि सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके हो चुकनेके पश्चात् दूसरे समयसे चार नोकषायोंका बन्ध नहीं होता किन्तु जब आवलिका असंख्यातवां भाग काल शेष रह जाता है तब वहांसे बन्ध होता है। इनमेंसे पहले उपदेशके अनुसार चार नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर एक आवलि प्राप्त होता है और दूसरे उपदेशके अनुसार आवलीका असंख्यातवां भागप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है। अचक्षुदर्शन और भव्यमार्गणा छद्मस्थ जीवोंके सर्वदा पाई जाती हैं, अतः इनमें ओघके समान सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर बन जाता है।

§ ५४४. आदेश निर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम तेतीस सागर है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम तेतीस सागर है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल भी इसी प्रकार है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य अन्तर काल एक समय है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। पाँच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है। चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य

वलिया वा। एत्थ उवएसं लद्धूण एगयरणिण्णओ कायव्वो। पढमादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि, सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा त्ति वत्तव्वं।

§ ५४५. तिरिक्ख० मिच्छत्त०-बारसक०-णवणोक० ओघं। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अंतरं जह० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। अणुक्क० एवं चेव। णवरि जह० एगस०। अणंताणु०चउक्क० उक्क० ओघं। अणुक्क० अंतरं ज० एगस०, उक्क० तिण्ण पलिदो० देसूणाणि। पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-

अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण अथवा एक आवली है। यहाँ पर उपदेशको प्राप्त करके किसी एकका निर्णय करना चाहिये। पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंके इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये।

विशेषार्थ—जिसने नरकमें उत्पन्न होकर और पर्याप्त होकर मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया। अनन्तर जो अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता रहा किन्तु नरकसे निकलनेक पहले जिसने पुनः उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया उसके उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका कुछ कम तेतीस सागर उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये। जिसने नरकमे उत्पन्न होकर और अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी वह यदि नरकमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त होता है तो उसके अनन्तानुबन्धीकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है। जिसने पर्याप्त होकर और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मुहूर्त कालमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त किया उसके सम्यक्त्व ग्रहण करनेके समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है। अनन्तर जो नरकमे रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाने पर पुनः इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है। जिस नारकीने नरकमे उत्पन्न होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर किया। अनन्तर नरकम रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाने पर जिसने उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त किया उसके उक्त दोनों प्रकृतियोकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है। तथा बारह कषायोंके समान नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर घटित कर लेना चाहिये। सब प्रकृतियोकी शेष स्थितियोंका उत्कृष्ट और जघन्य अन्तर जो ओघमें बतला आये हैं उसी प्रकार जानना चाहिये। तथा प्रथमादि नरकोमे अपने अपने नरककी विशेष स्थितिका ख्याल करके इसी प्रकार कथन करना चाहिये।

§ ५४५. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर भी इसी प्रकार है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य अन्तर एक समय है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त

पंचिं०तिरि०जोणिणीसु मिच्छत्त-बारसक० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। अणुक्कस्स० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० अंतरं ज० अंतो०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। अणंताणु०चउक्क० उक्क० मिच्छत्तभंगो। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि। पंचणोक० उक्क० ज० एगस०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। अणुक० ज० एगस०, उक० अंतोमु०। चत्तारिणोक० उक० ज० एगस०, उक० पुव्वकोडिपुधत्तं। अणुक० ज० एगस०, उक० आवलि० असंखे०भागो एगावलिया वा। एवं मणुसतिय०।

और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंमें मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व है। अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर मिथ्यात्वके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। पांच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण अथवा एक आवली है। इसी प्रकार अर्थात् पंचेन्द्रिय आदि उक्त तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंके समान सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनी जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—जिस तिर्यंचने अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कालके शेष रहने पर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त किया पश्चात् मिथ्यात्वमें जाकर और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मुहूर्त कालमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त किया। पश्चात् मिथ्यात्वमें जाकर पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की। अनन्तर जो अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके और मिथ्यात्वमें जाकर तथा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मुहूर्तमें वेदकसम्यग्दृष्टि होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करता है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल प्रमाण पाया जाता है। तथा इसी प्रकार अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल घटित कर लेना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यह अन्तर उद्वेलना कालके अन्तसे प्रारम्भ होता है और अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करनेके समय समाप्त होता है। कोई एक जीव भोगभूमिके तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ और दो माह गर्भमें रहा। अनन्तर गर्भसे निकल कर अन्तर्मुहूर्तमें जिसने वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की। पश्चात् जीवन भर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके साथ रह कर अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अनन्तानुबन्धीका बन्ध किया। उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर

§ ५४६. पंचि०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं। एवं मणुसअपज्ज० अणुदिसादि जाव सव्वट्ठ०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचि०अपज्ज०-पंचकाय०-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-कम्मइय०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-[असण्णि-]अणाहारि त्ति। णवरि एइंदिय-बादरेइंदियपज्ज०-पुढवि०-आउ० तेसिं बादर-पज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेय०-तप्पज्जत्त-ओरालियमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-असण्णि०

कुछ कम तीन पल्य प्रमाण पाया जाता है। भोगभूमिमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंका जो उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य बतलाया है उसमें भोगभूमिका काल भी सम्मिलित है अतः इसमेंसे तीन पल्य कम कर देने पर जो पूर्वकोटि पृथक्त्व प्रमाण काल शेष बचता है वह उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंमे मिथ्यात्व आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल जानना चाहिये। यहां किस तिर्यंचके पूर्वकोटि पृथक्त्वसे कितनी पूर्वकोटियोंका ग्रहण करना चाहिये इसका कथन अन्यत्र किया है, इसलिये वहांसे जान लेना चाहिये। उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोमें जिस तिर्यंचने अपनी पर्यायके प्रथम समयमे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की अनन्तर वह अपनी अपनी कायस्थितिके उत्कृष्ट कालतक मिथ्यादृष्टि रहा पर अन्तमें उपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त कर ली उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य प्रमाण पाया जाता है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अन्तरका कथन जिस प्रकार सामान्य तिर्यंचोंके कर आये हैं उसी प्रकार इन तीन प्रकारके तिर्यंचोंके कर लेना चाहिये। इसका प्रमाण कुछ कम तीन पल्य है। शेष कथन ओघके समान जानना चाहिए। समान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य और मनुष्यनियोंके भी उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंके समान अन्तर काल जानना चाहिये। किन्तु पूर्वकोटियां जिसकी जितनी हों उतनी कहनी चाहिये।

§ ५४६. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पांचों स्थावर काय, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और

णवणोक० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० आवलिया दुसमयूणा। अणु० जह० एगस०, उक्क० आवलिया समयूणा।

§ ५४७. देवगदि० मिच्छत्त-बारसक० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० अट्ठारस सागरो० सादिरेयाणि। अणुक्क० ज० एयस०, उक्क० अंतोमु०। सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० अट्ठारस साग० सादिरेयाणि। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० एक्कतीस सागरो० देसूणाणि। अणंताणु०चउक्क० उक्क० मिच्छत्तभंगो। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० एक्कत्तीस सागरो० देसूणाणि। णवणोक० उक्क० ज० एयस०, उक्क० अट्ठारस सागरो० सादिरेयाणि। अणुक्क० ओघं। भवणादि जाव सहस्सार त्ति एवं चेव। णवरि सगट्ठिदी देसूणा। आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० उक्कस्साणुक्क० णत्थि अंतरं णिरंतरं। सम्मत्त-

असंज्ञी जीवोंमें नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल दो समय कम आवलिप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल एक समय कम आवलिप्रमाण है।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त और मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तसे लेकर मूलमें और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं पाया जाता। इसका कारण यह है कि इनके प्रथम समयमें उत्कृष्ट स्थिति होती है अतः उस उस पर्यायके रहते हुए दो बार उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती। किन्तु एकेन्द्रिय आदि मूलमें गिनाई हुई कुछ ऐसी मर्गणाएं हैं जिनमे नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर सम्भव है। यद्यपि उत्कृष्ट स्थितिबन्धके विषयमे सामान्य नियम तो यह है कि जिस कर्मका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध रुक जाता है उसका यदि पुनः उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हो तो अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् ही हो सकता है परन्तु कषायोंको बदल बदल कर उनका एक या एकसमयसे अधिक कालके अन्तरसे भी उत्कृष्ट स्थितिबन्ध हो सकता है। अब यदि किसी जीवने इस प्रकार कषायकी उत्कृष्ट स्थिति बांधी और वह एकेन्द्रियादिक उक्त मार्गणाओंमेसे किसी एक मार्गणामे उत्पन्न हुआ तो उसके नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कम एक आवलिकाल प्रमाण बन जाता है। और इसके विपरीत अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर एक समय कम आवलि प्रमाण भी बन जाता है।

§ ५४७. देवगतिमें मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरका भंग मिथ्यात्वके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है। भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये।

सम्मामि० उक्क० णत्थि अंतरं। अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणंताणु०चउक्क० उक्क० णत्थि अंतरं। अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा।

§ ५४८. पंचिं०-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मिच्छत्त०-बारसक० उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुक्क० ओघं। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० ज० अंतोमु०। उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुक्क० एवं चेव। णवरि जह० एगस०। अणंताणु०चउक्क० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० बेछावट्ठिसागरो० देसूणाणि। णवणोक० उक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुक्क० ओघं। एवं पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति।

आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है किन्तु पूर्वोक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका काल निरन्तर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है।

विशेषार्थ—देवोंमें सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंके ही मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध और संक्रमण सम्भव है, अतः सामान्यसे देवोंमें मिथ्यात्व आदि अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर कहा। तथा नौ ग्रैवेयक तकके देव मिथ्यात्वमें जा सकते हैं और सम्यग्दृष्टि भी हो सकते हैं अतः सामान्य देवोंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर कहा। शेष कथन ओघके समान है। तथा भवनवासियोंसे लेकर सहस्रारस्वर्ग तकके देवोंमें अपनी अपनी स्थितिका विचार करके इसी प्रकार अन्तर काल जानना चाहिये। आनतसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल तो होता ही नहीं, क्योंकि इनके पर्यायके प्रथम समयमें ही उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है। हाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उद्वेलनाकी अपेक्षा और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका विसंयोजनाकी अपेक्षा अन्तरकाल सम्भव है जो मूलमें बतलाया ही है।

§ ५४८. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर इसी प्रकार है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर है। नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण

§ ५४९. पंचमण०-पंचवचि० उक्क० णत्थि अंतरं। णवरि पंचणोक० [ज०] एयसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। चदुणोक० [उक्क०] ज० एगस०, उक्क० आवलिया दुसमऊणा। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० आवलि० असंखे०भागो एगावलिया वा। एवं कायजोगि०-ओरालिय०-वेउव्विय०-चत्तारिकसाए त्ति।

है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है। इसी प्रकार पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—कोई भी जीव पंचन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंकी कायस्थिति प्रमाण काल तक मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके साथ रह सकता है पर यहाँ इनकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल बतलाना है, अतः इनके प्रारम्भ और अन्तमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करावे और इस प्रकार उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल ले आवे जो उक्त जीवोंकी कुछ कम कायस्थितिप्रमाण होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतने काल तक लगातार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व सम्यक्त्व प्राप्तिकी अपेक्षा बन सकता है, अन्यथा मध्यमे इनकी उद्वेलना भी हो जायगी। जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसा जीव यदि पुनः अनन्तानुबन्धीका सत्त्व प्राप्त करे तो वह अनन्तानुबन्धी चतुष्कके बिना अधिकसे अधिक कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर तक रह सकता है, अतः उक्त जीवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर कहा। शेष कथन ओघके समान है। पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थिति क्रमशः सौ सागर पृथक्त्व, दो हजार सागर और सौ सागर पृथक्त्व है, अतः इनमें भी उक्त क्रमसे अन्तर काल बन जाता है।

§ ५४९. पाँचों मनोयोगी और पाँचो वचनयोगी जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें पाँच नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय कम एक आवलि है। तथा सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चार नोकषायोंके सिवा शेषका अन्तर्मुहूर्त तथा चार नोकषायोंका आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण अथवा एक आवलिप्रमाण है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और चारों कषायवाले जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पांचों मनोयोग और पांचों वचनयोगोमे नौ नोकषायोंको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता। इसका कारण यह है कि इन योगोंका काल थोड़ा है, अतः इनमें दो बार उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना सम्भव नहीं है। किन्तु सोलह कषायोंका बदल बदल कर अन्तरसे भी उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है, अतः उनके संक्रमणकी अपेक्षासे नौ नोकषायोंमे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट और जघन्य अन्तर बन जाता है जो मूलमें बतलाया ही है। इसी प्रकार यहां शेष प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका भी अन्तर घटित कर लेना चाहिये। मूलमे काययोगी आदि जितनी मार्गणाएं बतलाई हैं उनमे भी यथायोग्य जानना चाहिये। यद्यपि काययोगका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है और औदारिक काययोगका काल कुछ कम बाईस हजार वर्ष प्रमाण है पर यह काल एकेन्द्रिय और पृथिवीकायिक जीवोंके ही प्राप्त होता है, अतः इनमें भी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल

§ ५५०. इत्थि० पंचिंदियभंगो। णवरि सगट्ठिदी देसूणा। अणंताणु०चउक्क० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुक्क० जह० एगस०, उक्क० पणवण्ण पलिदोवमाणि देसूणाणि। णवुंसओघं। णवरि अणंताणु०चउक्क० अणुक्क० [उक्क०] तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि।

§ ५५१. मदि०सुदअण्णा० ओघं। णवरि सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं। अणंताणु०चउक्क० बारसकसायभंगो। विहंग० सत्तमपुढविभंगो। णवरि सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं। अणंताणु०चउक्क० बारसकसायभंगो। असंजद० णवुंस०भंगो।

सम्भव नहीं।

§ ५५०. स्त्रीवेदवालोंमें पंचेन्द्रियोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पल्य है। नपुंसकवेदमें ओघके समान जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है।

विशेषार्थ—स्त्रीवेदीकी उत्कृष्ट कायस्थिति सौ पल्य पृथक्त्व प्रमाण है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछकम सौ पल्य पृथक्त्वप्रमाण प्राप्त होता है। तथा स्त्रीवेदी जीव सम्यक्त्वके साथ कुछकम पचवन पल्य तक रह सकता है और कुछकम इतने कालतक उसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना पाई जा सकती है, अतः इसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पचवन पल्य प्रमाण कहा। शेष कथन सुगम है। नपुंसकवेदमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अन्तर कालको छोड़ कर शेष सब कथन ओघके समान बन जाता है। किन्तु नपुंसकवेदी लगातार कुछ कम तेतीस सागर तक ही सम्यग्दर्शनके साथ रह सकता है अतः इसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण प्राप्त होता है।

§ ५५१. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें ओघके समान अन्तर है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरका भंग बारह कषायोंके समान है। विभंगज्ञानियोंमें सातवीं पृथिवीके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थितिके अन्तरका भंग बारह कषायोंके समान है। असंयतोंमें नपुंसकोंके समान भंग है।

विशेषार्थ—मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना ही होती जाती है। अतः इनके इन दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता। शेष कथन सुगम है। इसी प्रकार विभंगज्ञानी जीवोंके भी उक्त दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं पाया जायगा। असंयतोंमें नपुंसकवेद प्रधान है, अतः असंयतोंका कथन नपुंसकोंके समान कहा।

§ ५५२. तिण्णिले० मिच्छत्त०-बारसक० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणुक्क० ओघं० । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अंतरं ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणुक्क० एवं चेव । णवरि जह० एगसमओ । णवणोक० उक्क० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणुक्क० ओघं । अणताणु०चउक्क० उक्क० बारसकसायभंगो । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । तेउ०-पम्म० मिच्छत्त-बारसक० ज० अंतोमु० । उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणुक्क० ओघं । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणुक्क० एवं चेव । णवरि जह० एगस० । णवणोक० उक्क० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणुक्क० ओघं । सुक्कले० सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० एक्कत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि । अणंताणु०चउक्क० उक्क० णत्थि अंतरं । अणुक्क० ज० अंतोमु० । उक्क० एक्कतीस सा० देसूणाणि । सेस० उक्क० अणुक्क० णत्थि अंतरं ।

§ ५५२. कृष्ण आदि तीन लेश्यावालोंमें मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है । नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरका भंग बारह कषायो के समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । पीत और पद्मलेश्यावालों मे मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य अन्तर एक समय है । नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है । शुक्ललेश्यावालोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । शेष प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—कृष्णादि पांच लेश्याओंका उत्कृष्ट काल क्रमशः साधिक तेतीस सागर, साधिक सत्रह सागर, साधिक सात सागर, साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है । और इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण बन जाता है । तथा

§ ५५३. अभव० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० ओघं। णवरि अणंताणु०-चउक्क० मिच्छत्तभंगो। मिच्छादि० मदि०भंगो। आहार० मिच्छत्त-वारसक० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुक्क० ओघं। सम्मत्त०-सम्मामि० पंचिंदियभंगो। अणंताणु० चउक्क० उक्क०मिच्छत्तभंगो। अणुक्क० पंचिंदियभंगो। णवणोक० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणुक्क० ओघं।

एवमुक्कस्संतराणुगमो समत्तो।

❀ एत्तो जहण्णयंतरं।

§ ५५४. सुगमं।

सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल उद्वेलनाकी अपेक्षा और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल विसंयोजनाकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण बन जाता है। शेष कथन सुगम है। शुक्ल लेश्यामें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर नौवें ग्रैवेयकके समान घटित कर लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ ५५३. अभव्योंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थितिके अन्तरका भंग मिथ्यात्वके समान है। मिथ्यादृष्टियोंमें सभी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तर का भंग मत्यज्ञानियोंके समान है। आहारक जीवों में मिथ्यात्व और बारह कषायों की उत्कृष्ट स्थिति का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग पंचेन्द्रियोंके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरका भंग मिथ्यात्वके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर पंचेन्द्रियोके समान है। नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर ओघके समान है।

विशेषार्थ—अभव्योंके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती, अतः इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल मिथ्यात्वके समान बन जाता है। आहारकका उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी प्रमाण है, अतः इनमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोका उत्कृष्ट स्थिति का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम उक्त काल प्रमाण बन जाता है। यहाँ जो लगातार आहारक होनेका उत्कृष्ट काल बतलाया है सो वह पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियके पश्चात् चौइन्द्रिय और चौइन्द्रियके पश्चात् तेइन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय जीव जितने काल तक लगातार आहारक होते रहते हैं उन सब आहारक कालोंको जोड़ कर बतलाया है। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर काल पंचेन्द्रियोंमें ही प्राप्त हो सकता है अन्यत्र नहीं, अतः आहारकके इनके अन्तर कालको पंचेन्द्रियोके समान कहा। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

❀ इसके आगे जघन्य अन्तरका प्रकरण है।

§ ५५४. यह सूत्र सरल है।

❀ मिच्छत्त-सम्मत्त-बारसकसाय-णवणोकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्तियस्स णत्थि अंतरं।

§ ५५५. कुदो? खविदकम्माणं पुणरुप्पत्तीए अभावादो।

❀ सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिविहत्तियस्स अंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

§ ५५६. तं जहा—उव्वेल्लणाए सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंतकम्मं कुणमाणो सम्मत्ताहिमुहो होदूणंतरचरिमफालीए सह उव्वेल्लणचरिमफालिमवणिय तत्तोप्पहुडि मिच्छत्तपढमट्ठिदीए समयूणावलियमेत्तमणुप्पविसिय तत्थ पयदजहण्णट्ठिदिसंतकम्मस्सादिं कादूणंतरिय कमेण मिच्छत्तपढमट्ठिदिं गालिय पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तमच्छिय वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तेण अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय पुणो अधापवत्तअपुव्वकरणाणि करिय अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु मिच्छत्तं खविय पुणो अंतोमुहुत्तेण सम्मामिच्छत्तचरिमफालिं परसरूवेण संकामिय जहाकमेण अधट्ठिदिगलणाए उदयावलियणिसेगेसु गलमाणेसु एगणिसेगट्ठिदीए दुसमयकालाए सेसाए अंतोमुहुत्तपमाणं सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णंतरं होदि। एव-

---

* मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका अन्तर नहीं है।

§ ५५५. शंका उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर क्यों नहीं होता?

समाधान—क्योंकि क्षयको प्राप्त हुए कर्मोंकी पुनः उत्पत्ति नहीं होती है और इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति क्षपणाके अन्तमें ही प्राप्त होती है, अतः इनकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं होता।

* सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

§ ५५६. वह इस प्रकार है—उद्वेलनाके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसत्कर्म करनेवाला कोई एक जीव सम्यक्त्वके सन्मुख हुआ और इसने अन्तरकरणकी अन्तिम फालिके साथ उद्वेलनाकी अन्तिम फालिको अन्य प्रकृतिमें खिपाया। फिर वहाँसे लेकर मिथ्यात्वकी स्थितिमें एक समय कम आवलिप्रमाण कालको बिताकर सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसत्कर्मका आदि किया और इस प्रकार उसका अन्तर कर दिया। फिर क्रमसे मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिको गलाकर प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त किया और वहाँ अन्तर्मुहूर्त रह कर वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त किया। पुनः अन्तर्मुहूर्तकालके द्वारा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की। पुनः अधःकरण और अपूर्वकरणको करके अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात बहुभाग व्यतीत हो जाने पर मिथ्यात्वका क्षय किया। पुनः अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिका पररूपसे संक्रमण करके यथाक्रमसे अधःस्थितिगलनाके द्वारा उदयावलिके निषेकोंको गलाते हुए जब एक निषेककी स्थिति दो समय कालप्रमाण शेष रह जाती है तब उस जीवके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य

मणंताणुबंधिचउक्कस्स वि । णवरि अंतोमुहुत्तब्भंतरे दो वारं तेसिं विसंयोजणं काउण जहण्णंतरं वत्तव्वं ।

❀ उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

§ ५५७. सुगममेदं । एवं चुण्णिसुत्तमस्सिदूण ओघंतरपरूवणं करिय संपहि तेण सूचिदसेसमग्गणाओ अस्सिदूण अंतरपरूवणाए कीरमाणाए उच्चारणमस्सिदूण कस्सामो ।

§ ५५८. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण ओदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जह० अजह० णत्थि अंतरं । सम्मत्त० जह० णत्थि अंतरं । अज० अणुक्कस्सभंगो । सम्मामि० जह० ज० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोग्ग० देसूणं । अज० अणुक्क०भंगो । अणंताणु०चउक्क० जह० ज० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोग्ग० देसूणं । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० बेछावट्ठिसागरो० देसूणाणि । एवमचक्खु०-भवसि० ।

स्थितिका जघन्य अन्तर प्राप्त होता है जिसका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर दोवार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कराके जघन्य अन्तर कहना चाहिये ।

❀ तथा उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है ।

§ ५५७. यह सूत्र सरल है । इस प्रकार चूर्णिसूत्रका आश्रय लेकर ओघ अन्तरका कथन करके अब सभी मार्गणाओंमें इसके द्वारा सूचित होनेवाले अन्तरका कथन उच्चारणाके आश्रयसे करते हैं—

§ ५५८. जघन्य अन्तरका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर प्रमाण है । इसी प्रकार अचक्षुदर्शनवाले और भव्योंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सब प्रकृतियों की जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरका उल्लेख चूर्णिसूत्रों की व्याख्या करते समय किया ही है अतः यहां अजघन्य स्थिति के जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरका उल्लेख किया जाता है—उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त हो जानेके बाद उससे न्यून जितनी स्थितियां प्राप्त होती हैं उन सबको अनुत्कृष्ट स्थिति कहते हैं तथा जघन्य स्थितिके अतिरिक्त जितनी स्थितियाँ होती हैं उन्हें अजघन्य स्थिति कहते हैं । इसके अनुसार ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अजघन्य स्थितियोंका अन्तर नहीं प्राप्त

§ ५५९. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-बारसक० णवणोक० जह० णत्थि अंतरं। अज० जहण्णुक्क० एगस०। सम्मत्त० जह० णत्थि अंतरं। अज० अणुक्क०भंगो। सम्मामि० जह० जह० पलिदो०असंखे०भागो। अज० जह० एगस०, उक्क० दोण्हं पि तेत्तीस० देसूणाणि। अणंताणु०चउक्क० ज० अज० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। पढमाए मिच्छत्त-बारसक०णवणोक० जह० णत्थि अंतरं। अज० जहण्णुक्क० एगस०। सम्मत्त० ज० णत्थि अंतरं। अज० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। सम्मामि० जह० जह० पलिदोवमस्स असं०भागो। अज० जह० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणंताणु०चउक्क० जह० अजह० जह० अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। विदियादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जह० अज० णत्थि अंतरं। सम्मत्त०-सम्मामि० जह० ज० पलिदो० असंखे०

होता, क्योंकि ओघसे उन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितियाँ क्षपणाके अन्तमें ही प्राप्त होती हैं और क्षय होनेके पश्चात् पुनः इनका सत्त्व नहीं पाया जाता। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उद्वेलनाके पश्चात् सम्यक्त्वके होने पर नियमसे सत्त्व हो जाता है और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका विसंयोजनाके पश्चात् पुनः सत्त्व हो सकता है अतः इन प्रकृतियोंकी ओघसे अजघन्य स्थितियों का भी अन्तर पाया जाता है। उनमेसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिके अन्तरका खुलासा इनके अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान जानना चाहिये। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाके बाद पुनः उसका सत्त्व प्राप्त करनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल लगता है। तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर है, क्योंकि जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना कर दी है वह यदि मिथ्यात्वमें आकर पुनः उसका सत्त्व प्राप्त करे तो उसे ऐसा करनेमें सबसे अधिक काल कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर लगता है।

§ ५५९. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है और दोनों स्थितियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। पहली पृथिवीमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषयोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य

भागो। अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणंताणु०चउक्क० जह० अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। सत्तमाए मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछ० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सत्तणोक० जह० णत्थि अंतरं। अज० जहण्णुक्क० एगस०। सम्मामि०-अणंताणु० णिरओघं। सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो।

स्थितिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और दोनों जघन्य अजघन्यका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग सामान्य नारकियोंके समान है। तथा सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है।

विशेषार्थ—नरक में मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति दूसरे विग्रहके समय एक बार ही प्राप्त हो सकती है, अतः यहाँ जघन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं कहा। किन्तु इस जीवके पहले विग्रहमें और तृतीयादि समयों में अजघन्य स्थिति रहेगी अतः नरकमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर काल एक समय कहा है। नरकमें उत्पन्न हुए कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीवके ही सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है, अतः इसकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं। तथा इसकी अजघन्य स्थितिका अन्तर काल अनुत्कृष्ट स्थितिके समान घटित कर लेना चाहिये। जिस नारकीने उद्वेलना करके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्त की है वह उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके और मिथ्यात्वमें आकर पुनः उद्वेलना करके यदि पुनः उसकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करे तो उसे ऐसा करनेमें पल्यका असंख्यातवां भागप्रमाण काल लगता है, अतः सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा। जिस नारकीने सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिके बाद जघन्य स्थितिको प्राप्त किया और तीसरे समयमें उपशमसम्यक्त्वी होकर पुनः अजघन्य स्थितिको प्राप्त कर लिया उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है। जो नारकी नरक में उत्पन्न होनेके पहले समयमें और अपनी आयुके अन्तिम समय मे उद्वेलनाद्वारा सम्यग्मिथ्यात्व की जघन्य स्थितिको प्राप्त करता है उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होता है। तथा जिस नारकीने उत्पन्न होनेके बाद दूसरे समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर दी और अन्तमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहनेपर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त किया उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है। तथा नरकमें सम्भव विसंयोजनाके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर प्रमाण प्राप्त होता है। प्रथम नरकके कथनमें सामान्य नारकियोंके कथनसे कोई विशेषता नहीं है। किन्तु जहां सामान्य नारकियोंके कथनमें कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थिति कही हो वहां प्रथम नरककी कुछ कम उत्कृष्ट स्थिति जाननी चाहिये। दूसरेसे लेकर छठे नरक

§ ५६०. तिरिक्खेसु मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछा० जह० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सम्मत्त० जह० णत्थि अंतरं। अज० अणुक्कस्सभंगो। सम्मामि० जह० ज० पलिदो० असंखे०भागो। अज० ज० एगस०, उक्क० ओघं। अणंताणु०चउक्क० जह० ओघं। अज० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि। सत्तणोक० ज० ज० पलिदो० असंखे०-भागो, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अज० जहण्णुक्क० एयस०।

तकके नारकियोंके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति अन्तिम समयमें ही प्राप्त हो सकती है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता। द्वितीयादि पृथिवियोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि नहीं उत्पन्न होता है अतः यहां सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अन्तरका कथन समान है। वह सामान्य नारकियोंके समान यहां भी घटित कर लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है। सातवें नरकमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति अन्तके अन्तर्मुहूर्तमें कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक प्राप्त हो सकती है। अब जिसने इस अन्तर्मुहूर्तके मध्यमें एक समयके लिये जघन्य स्थिति प्राप्त की उसके अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है। तथा जिसने अन्तर्मुहूर्त तक जघन्य स्थिति प्राप्त करके अन्तमें अजघन्य स्थिति प्राप्त की उसके अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। तथा सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है, अतः इनकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय प्राप्त होता है। शेष कथन ओघके समान है। किन्तु यहां भी कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि उत्पन्न नहीं होता, अतः यहां सम्यक्त्वका कथन सम्यग्मिथ्यात्वके समान जानना।

§ ५६०. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका भंग अनुत्कृष्ट स्थितिके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका अन्तर ओघके समान है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गल परिवर्तनप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है।

विशेषार्थ—पहले तिर्यंचोंके मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल असंख्यात लोकप्रमाण बतला आये हैं अतः वही यहां इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये। तथा पहले इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त बतला आये हैं अतः वही यहां इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल जानना चाहिये। तिर्यंचोंके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके प्राप्त होती है अतः इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिके अन्तरकालका निषेध किया है। तिर्यंचोंके

§ ५६१. पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-पंचि०तिरि०जोणिणीसु मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछ० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक० एयस० । सम्म० जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एयस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण-

सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण बतला आये हैं उसी प्रकार यहां उसकी अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिये । किसी एक तिर्यंचने उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिको प्राप्त किया । पुनः वह दूसरे समयमें उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया तो उसे मिथ्यात्वमें जाकर उद्वेलनाके द्वारा पुनः सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करनेमें पल्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण काल लगता है, अतः तिर्यंचके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा । जो तिर्यंच सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके साथ एक समय तक रहा और दूसरे समयमें वह उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय कहा । तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान जानना, क्योंकि ओघमें कहा गया उत्कृष्ट अन्तरकाल तिर्यंचोंके ही घटित होता है । एक अन्तर्मुहूर्तमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना दो बार प्राप्त हो सकती है और ओघसे विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति होती है जो तिर्यंचोंके भी सम्भव है अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल ओघके समान अन्तर्मुहूर्त कहा । तिर्यंचोंमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका उत्कृष्ट अन्तरकाल अर्ध पुद्गलपरिवर्तन है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल ओघके समान कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तन कहा । तथा तिर्यंचोंके चौबीस प्रकृतिक स्थानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा तिर्यंचोंके चौबीस प्रकृतिक स्थानका सत्त्वकाल कुछ कम तीन पल्य है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पल्य कहा । जो एकेन्द्रिय जीव सोलह कषायोंकी जघन्य स्थितिके साथ पंचेन्द्रियोंमे उत्पन्न होता है उसके प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्ध कालके अन्तिम समयमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है । अब यदि दूसरी बार यह जीव इसी स्थितिको प्राप्त करना चाहे तो उसे कमसे कम पल्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण काल लगेगा, क्यों कि किसी एकेन्द्रियको पंचेन्द्रियके योग्य स्थितिका घात करके एकेन्द्रियके योग्य जघन्य स्थितिको प्राप्त करनेमें पल्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण काल लगता है, अतः तिर्यंचोंके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा । तथा एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है । अब यदि किसी एकेन्द्रियने उक्त कालके प्रारम्भ और अन्तमें पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिको प्राप्त किया तो उसके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका उक्त काल प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर काल पाया जाता है । तिर्यंचोंके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति एक समयके लिये प्राप्त होती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा ।

§ ५६१. पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है । तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वसे

ब्भहियाणि। सम्मामि० जह० ज० पलिदो० असंखे०भागो। अज० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। अणंताणु०चउक्क० ज० ज० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अज० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि। सत्तणोक० जह० णत्थि अंतरं। अज० जहण्णुक्क० एगस०। णवरि पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो।

अधिक तीन पल्यप्रमाण है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है।

विशेषार्थ—उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंके मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती पर्यायके रहते हुए नहीं प्राप्त होता, क्योंकि जो बादर एकेन्द्रिय हत समुत्पत्तिक्रमसे उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंमें उत्पन्न होता है उसीके इनकी जघन्य स्थिति पाई जाती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंका जघन्य अन्तर काल नहीं कहा। इनके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके अन्तरके नहीं होनेका भी यही कारण जानना चाहिए। तथा इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति एक समयके लिये होती है, अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा। तिर्यंचोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टिके होती है और ऐसे जीवके पुनः सम्यक्त्वका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः अन्तिम भेदको छोड़कर उक्त दो प्रकारके तिर्यंचोंके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा। जिस तिर्यंचने सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके एक समयके अन्तरालसे उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त किया है उसके सम्यक्त्वका अन्तर एक समय पाया जाता है, अतः विवक्षित तिर्यंचोंके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय कहा। उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य है। अब यदि किसीने अपने कालके प्रारम्भमें सम्यक्त्वकी उद्वेलना की और अन्तमें उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिको प्राप्त किया तो उसके उक्त काल तक सम्यक्त्वका अन्तर पाया जाता है, अतः उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल उक्त प्रमाण कहा। तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल सम्यक्त्वके समान घटित कर लेना चाहिये और सामान्य तिर्यंचोंके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल जिस प्रकार घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिए, इसलिये इसका अलगसे खुलासा नहीं किया। किन्तु यहां इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यंचके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्यग्मिथ्यात्वके समान ही प्राप्त होता है, क्योंकि इनमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता। उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंचोंके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति विसंयोजनाके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है और जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसा जीव मिथ्यात्वमें आकर और सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः विसंयोजना करे तो कमसे कम

§ ५६२. पंचिं०तिरि० [अ] पज्ज० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० पंचिं०-तिरिक्खभंगो। अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहण्णाजहण्ण० णत्थि अंतरं। एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-तस-अपज्जत्तो त्ति।

§ ५६३. मणुसतिय० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जह० अज० णत्थि अंतरं। सेसाणं पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि सम्मामि० जह० ओघं।

अन्तर्मुहूर्त काल लगता है, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंका जो उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य बतला आये हैं सो इसके आदि और अन्तमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करावे और इस प्रकार उभयत्र अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थिति ले आवे, अतः इनके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण कहा। किसीने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके अन्त समयमें अजघन्य स्थितिका अन्तर किया और अन्तर्मुहूर्तके बाद मिथ्यात्व में जाकर उसने पुनः अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थिति प्राप्त करली तो उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है इसीलिये उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है यह स्पष्ट ही है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति एक समय तक पाई जाती है, अतः इनके सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा।

§ ५६२. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग पंचेन्द्रियतिर्यंचोंके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके मिथ्यात्व आदि २२ प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय है और यह सब व्यवस्था पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है, अतः इस कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान करनेकी सूचना की। पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तरके सम्बन्धमें यही व्यवस्था जाननी चाहिये, अतः इसके कथनको मिथ्यात्वके समान कहा। पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना तो होती है पर इसी पर्यायके रहते हुए पुनः इनकी प्राप्ति नहीं होती, अतः इनके उक्त दो प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं बनता। मूलमें मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान कहा।

§ ५६३. सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतियोंका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर ओघके समान है।

विशेषार्थ—मनुष्य त्रिकके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समय

§ ५६४. देव० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जह० णत्थि अंतरं। अज० जहण्णुक्क० एयस०। सम्मत्त० जह० णत्थि अंतरं। अज० जह० एगस०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि। सम्मामि० जह० जह० पलिदो० असंखे०भागो। उक्क० एक्कत्तीससागरो० देसूणाणि। अजह० जह० [एगसमओ,] उक्क० एक्कत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि। अणंताणु० ज० अज० ज० अंतोमु०, उक्क० एक्कत्तीस० देसूणा०।

तथा बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति चारित्रमोहनीयकी क्षपणाके समय प्राप्त होती है तथा इसके बाद इनका पुनः सत्त्व सम्भव नहीं, अतः इनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा। अब शेष जो छह प्रकृतियां बचती हैं सो उनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तरके विषयमें जिस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंचके खुलासा कर आये हैं उसी प्रकार यहां भी खुलासा कर लेना चाहिये। किन्तु इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल ओघके समान बन जाता है, क्योंकि इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके समान क्षपणा भी पाई जाती है।

§ ५६४. देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है।

विशेषार्थ—जो असंज्ञी दो मोड़ा लेकर देवोंमें उत्पन्न होता है उसके दूसरे विग्रहके समय ही मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति सम्भव है। तथा इसी जीवके प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धकालके अन्तमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति सम्भव है, अतः सामान्य देवोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं कहा। तथा इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति एक समय तक पाई जाती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय कहा। देवोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होते हैं अतः इनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं है। कारण स्पष्ट है। जिस देवके उद्वेलनाके एक समयके अन्तरालसे उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है, उसके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका अन्तर एक समय पाया जाता है अतः सामान्य देवोंके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय कहा। देवोंमें उपरिम ग्रैवेयक तकके देव ही मिथ्यादृष्टि होते हैं। अब जिस देवने वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयमें सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके अजघन्य स्थितिका अन्तर किया और अन्तर्मुहूर्तकालके शेष रह जाने पर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिको प्राप्त किया उसके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल कुछकम इकतीस सागर पाया जाता है, अतः सामान्य देवोंके उक्त प्रकृतिकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि

§ ५६५. भवण०वाण० मिच्छत्त०-बारसक०-णवणोक० जह० अज० देवोघं। सम्मत्त०-सम्मामि० जह० ज० पलिदो० असंखे०भागो। उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अज० ज० एयस०, उक्क० सग० देसूणा। अणंताणु०चउक्क० जह० अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। जोइसियादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं। सम्मत्त ज० णत्थि अंतरं। अज० अणुक्कस्सभंगो। सम्मामि० जह० ज० पलिदो० असंखे०भागो। उक्क० सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा। अज० अणुक्कस्सभंगो। अणंताणु०चउक्क० ज० अज० ज०

जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त करते समय जीवनमें पल्यके असंख्यातवें भाग कालके शेष रह जाने पर उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करावे और वहांसे निकलनेके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति प्राप्त करावे। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण जिस प्रकार तिर्यंचके घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार सामान्य देवोंके घटित कर लेना चाहिये। तथा जिस देवने सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके पहले समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है, अतः देवोंके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय कहा। अनन्तानुबन्धीकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके जघन्य अन्तरकालको जिस प्रकार तिर्यंचोंके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण घटित करके लिख आये हैं उसी प्रकार सामान्य देवोंके घटित कर लेना चाहिये। एक देव है जिसने जीवनके प्रारम्भमें विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिको प्राप्त किया अनन्तर वह मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया और जब जीवनमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रह जाय तब वह पुनः अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करे तो उसके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका अन्तर कुछकम इकतीस सागर बन जाता है, अतः समान्य देवोंके अनन्तानुबन्धीकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त प्रमाण कहा। तथा जिस देवने प्रारम्भमें विसंयोजना द्वारा विसंयोजनाके अन्तिम समयमें अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका अन्तर किया और जीवन भर वह सम्यक्त्वके साथ रहा। पुनः जीवनके अन्तिम समयमें वह मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ तो उसके अनन्तानुबन्धीकी अजघन्य स्थितिका अन्तर कुछकम इकतीस सागर पाया जाता है, अतः इसका उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण कहा।

§ ५६५. भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर सामान्य देवोंके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। ज्योतिषियोंसे लेकर उपरिमग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम

अंतो०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। णवरि जोइसिएसु सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ० सव्वपयडीणं ज० अज० णत्थि अंतरं। कम्मइय-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-विहंग०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-अणाहारए त्ति णत्थि अंतरं।

§ ५६६. एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सम्मत्त०-सम्मामि० ज० अज० णत्थि० अंतरं। सत्तणोक० ज० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा। अज० जहण्णुक्क० एगस०। एवं सुहुम०। बादराणमेवं चेव। णवरि सगट्ठिदी देसूणा। एवं बादरपज्जत्ता-

अपनी स्थितिप्रमाण है। किन्तु इतनी विशेषता है कि ज्योतिषियोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार कार्मणकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, विभंगज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अनाहारक जीवोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—भवनवासी और व्यन्तरदेवोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते, अतः इनके वहाँ सम्भव सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल बन जाता है, क्योंकि एक बार सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करके पुनः उसी स्थितिको प्राप्त करनेमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल लगता है। शेष कथन सुगम है। ज्योतिषियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका प्राप्त होना जीवनके अन्तिम समयमें सम्भव है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता। ज्योतिषियोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता, अतः उनके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल भवनवासियोंके समान बन जाता है, शेषके नहीं। अनुदिशादिकमें सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं, अतः वहां किसी भी प्रकृतिका अन्तरकाल सम्भव नहीं है। इसी प्रकार आहारककाययोगसे लेकर सम्यग्मिथ्यादृष्टि तकके जीवोंमें अपने अपने कालके अन्तिम समयमें जघन्य स्थिति होनेके कारण अन्तर संभव नहीं है। कार्मणकाययोग और अनाहारक ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें सम्भव सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं, क्योंकि वहां अन्तरालके साथ दो बार जघन्य या अजघन्य स्थिति नहीं पाई जाती।

§ ५६६. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिका

पज्जत्ताणं। सुहुमपज्जत्तापज्जत्तएसु मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सत्तणोकसाय० ज० जहण्णुक्क० अंतोमु०। अज० जहण्णुक्क० एगसमओ। [सम्मत्त-सम्मा० ज० अज० णत्थि अंतरं।]

§ ५६७. पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस०-तसपज्ज० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जह० अज० णत्थि अंतरं। सम्मत्त० ज० णत्थि अंतरं। अज० अणुक्क०भंगो। सम्मामि० ज० ज० अंतोमु०। अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अणंताणु०-

---

जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये। बादर एकेन्द्रियोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये। इसी प्रकार बादर पर्याप्तक और बादर अपर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिये। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—जो बादर एकेन्द्रिय मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिको प्राप्त करके पुनः उसे प्राप्त करना चाहता है उसे वैसा करनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्तकाल लगता है अतः एकेन्द्रियोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। तथा यदि ऐसा जीव सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें अपने उत्कृष्ट काल तक परिभ्रमण करे और फिर बादर एकेन्द्रिय हो कर जघन्य स्थिति प्राप्त करे तो असंख्यात लोकप्रमाण काल लगता है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण कहा। तथा एकेन्द्रियोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इनके अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। इनके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वोक्त रीतिसे ही घटित कर लेना चाहिये। किन्तु अजघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि इनके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय प्रमाण ही होता है, अतः अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय प्रमाण ही प्राप्त होगा। एकेन्द्रियोंको सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं होती, अतः उनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल सम्भव नहीं, यह स्पष्ट ही है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय और बादर एकेन्द्रियोंके मिथ्यात्वादिकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण होता है। शेष कथन पूर्वोक्त प्रमाण ही है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है, अतः इनके उक्त सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है। शेष कथन पूर्वोक्त प्रमाण ही है।

§ ५६७. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है।

चउक्क० ज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० बे छावट्ठिसागरो० देसूणाणि। एवं पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति।

§ ५६८. कायाणुवादेण पंचकाय० एइंदियभंगो। णवरि सगसगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा। पंचमण०-पंचवचि० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं। सम्मत्त० सम्मामि० ज० णत्थि अंतरं। अज० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। काय-जोगि०-ओरालि०-वेउव्विय० मणजोगिभंगो। ओरालियमिस्स० सुहुमेइंदियअपज्जत्त-भंगो। णवरि सत्तणोक० जह० णत्थि अंतरं। अज० जहण्णुक्क० एगसमओ। वेउ-व्वियमिस्स० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० ज० अज० णत्थि अंतरं। सत्तणोक० ज० णत्थि अंतरं। अज० जहण्णुक्क० एगस०।

तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर है। इसी प्रकार पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय आदि चार मार्गणाओंमें दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षपणाके समय मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकाषायोंकी जघन्य स्थिति पाई जाती है, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा। तथा इनके कृतकृत्यवेदकके अन्तिम समय में सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति पाई जाती है अतः इसकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल भी सम्भव नहीं। जिसने सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की और सम्यग्दृष्टि होकर अन्तर्मुहूर्त मे उसकी क्षपणा की उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है, अतः इसका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ५६८ काय मार्गणाके अनुवादसे पांच स्थावर कायोमे एकेन्द्रियोके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेपता है कि कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये। पांचों मनोयोगी और पांचो मनोयोगी जीवोमे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। काययोगी, औदारिककाययोगी और वैक्रियिककाययोगी जीवोमें मनो-योगियोके समान भंग है। औदारिक मिश्रकाययोगियोंमे सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेपता है कि इनके सात नोकषायोकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोमे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय हे।

विशेषार्थ—पांचों मनोयोगों और पांचो वचनयोगोमे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका तथा सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है सो इसका खुलासा पंचेन्द्रिय मार्गणामे जिस प्रकार कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए। तथा उक्त योगोमेसे एक योगके रहते हुए अनन्तानुबन्धीकी दो बार विसंयोजना सम्भव नहीं, अतः

§ ५६९. इत्थिवेदेसु मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं। सम्मत्त० ज० णत्थि अंतरं। अज० अणुक्क०भंगो। सम्मामि० ज० ज० अंतोमु०। अज० ज० एगस०, उक्क० सगहिदी देसूणा। अणंताणु०चउक्क० ज० सम्मामिच्छत्त-भंगो। अज० ज० अंतोमु०, उक्क० पणवण्णपलिदो० देसूणाणि।

§ ५७०. णवुंस० मिच्छत्त०-बारसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं। सेसमोघं। णवरि अणंताणु०चउक्क० अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। एवमसंजद०। णवरि बारसक०-णवणोक० तिरिक्खभंगो। चत्तारिक० मणजोगिभंगो।

§ ५७१. मदि-सुदअण्णा० तिरिक्खोघं। णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० ज० अज० णत्थि अंतरं। अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। एवमभव०-मिच्छा०।

इनमें अनन्तानुबन्धीकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा। इसी प्रकार उक्त योगोंमेंसे किसी एक योग के रहते हुए सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका दो बार प्राप्त होना सम्भव नहीं, अतः इनमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं कहा। सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके अनन्तर समयमें या अन्तर्मुहूर्तके बाद विवक्षित योगके रहते हुए उपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति सम्भव है अतः इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा। औदारिकमिश्रकाययोग में सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति पंचेन्द्रियके एक बार ही प्राप्त होती है, अतः उसका अन्तरकाल नहीं है। किन्तु इस जघन्य स्थितिके कारण अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय बन जाता है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल एक समय प्रमाण घटित कर लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ ५६९. स्त्रीवेदवालोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्यका भंग अनुत्कृष्टके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है। तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्यस्थितिके अन्तरका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पल्य है।

§ ५७०. नपुंसकवेदवालोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। इसी प्रकार असंयतोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग तिर्यंचोंके समान है। चारों कषायवालोंका भंग मनोयोगियोंके समान है।

§ ५७१. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंका भंग सामान्य तिर्यंचोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार अभव्य और मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

§ ५७२. किण्ह-णील-काउ० मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछ० ज० णत्थि अंतरं । अज० ज० एयस०, उक्क० अंतोमु० । सत्तणोक० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक्क० एगसमओ । सम्मत्त-सम्मामि० ज० जह० पलिदो० असंखे०भागो । अज० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणंताणु०चउक्क० ज० अज० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । णवरि काउ० सम्मत्त० जह० णत्थि अंतरं । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्सारभंगो । सुक्के० मिच्छत्त०-बारसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं । सेसमुवरिमगेवज्जभंगो । असण्णि० मिच्छाइट्ठिभंगो । आहार० ओघं । णवरि सगुक्कस्सट्ठिदी देसूणा ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

❀ णाणाजीवेहि भंगविचओ ।

§ ५७३. एदमहियारसंभालणसुत्तं सुगमं ।

❀ तत्थ अट्ठपदं । तं जहा—जो उक्कस्सियाए ट्ठिदीए विहत्तिओ सो अणुक्कस्सियाए ट्ठिदीए ण होदि विहत्तिओ ।

§ ५७४. कुदो ? उक्कस्सट्ठिदीए समऊणुक्कस्सट्ठिदियादिकालविसेसाणमभावादो ।

---

§ ५७२. कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। तथा अजघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है। तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थिति प्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। किन्तु इतनी विशेषता है कि कापोतलेश्यामें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। पीतलेश्याका भंग सौधर्मके समान है। पद्मलेश्याका भंग सहस्रारके समान है। शुक्ललेश्यावालोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर नहीं है। शेष प्रकृतियोंका भंग उपरिमग्रैवेयकके समान है। असंज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टिके समान भंग है। आहारकोंमें ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम अपनी उत्कृष्ट स्थिति होती है।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

❀ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयका अधिकार है।

§ ५७३. यह सूत्र अधिकारके सम्हालनेके लिये आया है जो सुगम है।

❀ इस विषयमें यह अर्थपद है। यथा—जो उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला है वह अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला नहीं होता।

§ ५७४. शंका—उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला क्यों नहीं होता है ?
समाधान—क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिमें एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति इत्यादि काल विशेष

उक्कस्सट्ठिदिपडिसेहमुहेण अणुक्कस्सट्ठिदिपउत्तीदो वा ।

❀ जो अणुक्कस्सियाए ट्ठिदीए विहत्तिओ सो उक्कस्सियाए ट्ठिदीए ण होदि विहत्तिओ ।

५७५. कुदो ? परोप्परपरिहारसरूवेण उक्कस्साणुक्कस्सट्ठिदीणमवट्ठाणादो। एवमेदमेगमट्ठपदं । किमट्ठपदं णाम ? भणिस्समाणअहियारस्स जोणिभावेण अवट्ठिदअत्थो अत्थपदं णाम ।

❀ जस्स मोहणीयपयडी अत्थि तम्मि पयदं । अकम्मे ववहारो णत्थि ।

§ ५७६. सुगममेदं ।

❀ एदेण अट्ठपदेण मिच्छत्तस्स सव्वे जीवा उक्कस्सियाए ट्ठिदीए सिया अविहत्तिया ।

§ ५७७. एत्थ सियासद्दो कदाचिदित्यस्यार्थे द्रष्टव्यः, तेण कम्हि वि काले सव्वे जीवा मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए अविहत्तिया होंति त्ति सिद्धं । किमट्ठमुक्कस्सट्ठिदीए सव्वे जीवा अक्कमेण अविहत्तिया ? ण, तिव्वसंकिलेसाणं जीवाणं पाएण संभवाभावादो ।

नहीं पाये जाते । अथवा उत्कृष्ट स्थितिका प्रतिषेध करके अनुत्कृष्ट स्थितिकी प्रवृत्ति होती है, अतः जो उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला है वह उसी समय अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला नहीं हो सकता।

*** जो अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला है वह उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला नहीं होता ।**

§ ५७५. **शंका**—अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला क्यों नहीं होता ?

समाधान—क्योंकि एक दूसरेका परिहार करके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितियाँ रहती हैं, अतः जो अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला है वह उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला हो सकता ।

इस प्रकार यह एक अर्थपद है ।

शंका—अर्थपद किसे कहते हैं ?

समाधान—कहे जानेवाले अधिकारके योनिरूपसे अवस्थित अर्थको अर्थपद कहते हैं ।

*** जिसके मोहनीय प्रकृति है उसका यहाँ प्रकरण है, क्योंकि मोहनीय कर्मसे रहित जीवमें यह व्यवहार नहीं होता ।**

§ ५७६. यह सूत्र सुगम है ।

*** इस अर्थपदके अनुसार कदाचित् सब जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके अविभक्तिवाले हैं ।**

§ ५७७. यहाँ सूत्रमें आया हुआ 'स्यात्' शब्द 'कदाचित्' इस अर्थमें जानना चाहिये । इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी भी कालमें सब जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी अविभक्तिवाले होते हैं ।

शंका—सब जीव एक साथ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति के अविभक्तिवाले क्यों होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि तीव्र संक्लेशवाले जीव प्रायः करके नहीं पाये जाते हैं, अतः सब जीव एक साथ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी अविभक्तिवाले होते हैं ।

❀ सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च ।

§ ५७८. कुदो ? कम्हि वि काले तिहुअणासेसजीवेसु अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिएसु संतेसु तत्थ एगजीवस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिदंसणादो ।

❀ सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ।

§ ५७९. कुदो ? अणंतेसु अविहत्तिएसु संतेसु तत्थ संखेज्जाणमसंखेज्जाणं वा उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिजीवाणं संभवुवलंभादो ।

❀ ३ ।

§ ५८०. एत्थ तिण्हमंको किं कारणं ठविदो ? एवमेदे एत्थ तिण्णि चेव भंगा होंति त्ति जाणावणट्ठं ।

❀ अणुक्कस्सियाए ट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा विहत्तिया ।

§ ५८१. कुदो, उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिएहि विणा तिहुवणासेसजीवाणमणुक्कस्सट्ठिदीए चेव अवट्ठिदाणं कम्हि वि काले उवलंभादो ।

❀ सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च ।

---

* कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके अविभक्तिवाले होते हैं और एक जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला होता है ।

§ ५७८. शंका–ऐसा क्यों होता है ?

समाधान–क्योंकि किसी भी कालमें तीन लोकके सब जीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले रहते हुए उनमेंसे एक जीव उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला देखा जाता है ।

* कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिअविभक्तिवाले होते हैं और बहुत जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले होते हैं ।

§ ५७९. शंका–ऐसा क्यों होता है ?

समाधान–उत्कृष्ट स्थिति अविभक्तिवाले अनन्त जीवोंके रहते हुए उनमें कदाचित् संख्यात या असंख्यात जीव उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले पाये जाते हैं ।

* ३ ।

§ ५८० शंका–यहां पर तीनका अंक किसलिये रखा है ?

समाधान–इस प्रकार यहाँ पर ये तीन ही भंग होते हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिये यहां पर तीनका अंक रखा है ।

* कदाचित् सब जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले होते हैं ।

§ ५८१. शंका–ऐसा क्यों होता है ?

समाधान–क्योंकि किसी भी कालमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके बिना तीन लोकके सब जीव अनुत्कृष्ट स्थितिमें ही विद्यमान पाये जाते हैं ।

* कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले होते हैं और एक जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति अविभक्तिवाला होता है ।

§ ५८२. कुदो ? एक्केण अणुक्कस्सट्ठिदीए अविहत्तिएण सह सयलजीवाणमणुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाणमुवलंभादो।

❀ सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च।

§ ५८३. कुदो ? अणंतेहि अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिएहि सह संखेज्जासंखेज्जाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाणमुवलंभादो।

❀ एवं सेसाणं पि पयडीणं कायव्वो।

§ ५८४. जहा मिच्छत्तस्स णाणाजीवेहि भंगविचयपरूवणा कदा तहा सेसपयडीणं हि कायव्वा।

§ ५८५. एवं जइवसहाइरियसूचिदत्थस्स उच्चारणाइरिएण बालजणाणुग्गहट्ठकयपरूवणं भणिस्सामो। णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। तत्थ उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण अट्ठावीसण्हं पयडीणं उक्कस्सट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च। अणुकस्सट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया

---

§ ५८२. शंका—ऐसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि अनुत्कृष्ट स्थिति आविभक्तिवाले एक जीवके साथ सब जीव अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले पाये जाते हैं।

* कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले होते हैं और बहुत जीव मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति अविभक्तिवाले होते हैं।

§ ५८३. शंका—ऐसा क्यों होता है ?

समाधान—क्योंकि कदाचित् अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले अनन्त जीवोंके साथ संख्यात या असंख्यात उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव पाये जाते हैं।

* इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भी कथन करना चाहिये।

§ ५८४. जिस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी भंगविचयप्ररूपणा की है उसी प्रकार शेष प्रकृतियोंकी भी करनी चाहिये।

§ ५८५. इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा सूचित किये गये अर्थकी उच्चारणाचार्यने बालजनोंके अनुग्रहके लिये जो प्ररूपणा की है उसे कहते हैं—नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव अविभक्तिवाले होते हैं, कदाचित् बहुत जीव अविभक्तिवले और एक जीव विभक्तिवाला होता है। कदाचित बहुत जीव अविभक्तिवाले और बहुत जीव विभक्तिवाले होते हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव विभक्तिवाले होते हैं। कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले और एक जीव अविभक्तिवाला होता है। कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले और बहुत जीव अविभक्तिवाले होते हैं। इसी प्रकार अनाहारकमार्गणातक

च। एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति। णवरि मणुसअपज्ज० उक्कस्सट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया सव्वे जीवा विहत्तिया, सिया एगो जीवो अविहत्तिओ, सिया एगो जीवो विहत्तिओ। एवमेदे चत्तारि एगसंजोगभंगा। दुसंजोगभंगा वि एत्तिया चेव। सव्वभंगसमासो अट्ठ ८। अणुक्कस्सस्स वि एवं चेव परूवेदव्वं। एवं वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स० अवगद० अकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद०-उवसम०-सासण० सम्मामि०।

एवमुक्कस्सओ णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमो समत्तो।

* जहण्णए भंगविचए पयदं।

लेजाना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव अविभक्तिवाले, कदाचित् सब जीव विभक्तिवाले, कदाचित् एक जीव अविभक्तिवाला, कदाचित् एक जीव विभक्तिवाला इस प्रकार ये एक संयोगी चार भंग होते हैं। तथा द्विसंयोगी भंग भी इतने ही होते हैं। इस प्रकार सब भंगोंका जोड़ आठ होता है ८। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—नाना जीवोंकी अपेक्षा भंग विचयानुगममें दो बातें ज्ञातव्य हैं। प्रथम यह कि एक जीवमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति एक साथ नहीं पाई जाती। और दूसरी यह कि अनुत्कृष्ट स्थितिवाले नाना जीव तो सर्वदा रहते हैं किन्तु उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला कदाचित् एक भी जीव नहीं होता, कदाचित् एक होता है और कदाचित् अनेक होते हैं। इस प्रकार इन दो विशेषताओंको ध्यानमें रखकर यदि एक बार उत्कृष्ट स्थितिकी मुख्यतासे और दूसरी बार अनुत्कृष्ट स्थितिकी मुख्यतासे भंग प्राप्त किये जाते हैं तो वे छह होते हैं। यथा—कदाचित् सब जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले नहीं हैं कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट स्थिति अविभक्तिवाले और एक जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाला है, कदाचित् बहुत जीव उत्कृष्ट स्थिति अविभक्तिवाले और बहुत जीव उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले हैं, कदाचित् सब जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले हैं। कदाचित् बहुत जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थितिअविभक्तिवाला है तथा कदाचित् अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले और अनेक जीव अनुत्कृष्ट स्थिति अविभक्तिवाले हैं। यह क्रम मोहनीयकी मिथ्यात्व आदि सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा बन जाता है। आदेशकी अपेक्षा सब मार्गणाओंमें भी यही क्रम जानना चाहिये। किन्तु मनुष्य लब्ध्यपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि इन आठ सान्तर मार्गणाओंमें तथा मोहनीयके सत्त्वकी अपेक्षा अन्तरको प्राप्त हुई अपगतवेदी, अकषायी और यथाख्यातसंयत इन तीन मार्गणाओंमें एक और अनेक जीवोंके सत्त्वासत्त्वका आश्रय लेकर उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा आठ आठ भंग होते हैं। जो मूलमें गिनाये ही हैं।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट भंगविचयानुगम समाप्त हुआ।

* अब जघन्य भंगविचयका प्रकरण है।

§ ५८६. एदमहियारसंभालणसुत्तं सुगमं ।

* तं चेव अट्ठपदं ।

§ ५८७ जमट्ठपदमुक्कस्सम्मि परूविदं तं चेव एत्थ परूवेयव्वं विसेसाभावादो । णवरि जहण्णमजहण्णं ति वत्तव्वं एत्तियो चेव विसेसो ।

* एदेण अट्ठपदेण मिच्छत्तस्स सव्वे जीवा जहण्णियाए ट्ठिदीए सिया अविहत्तिया ।

§ ५८८. मिच्छत्तक्खवएहि दुसमयकालेगणिसेयधारएहि विणा मिच्छत्तअजहण्णट्ठिदीए चेव अवट्ठिदाणं सव्वेसिं जीवाणं कयाइ दंसणादो ।

* सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च ।

§ ५८९. कुदो ? मिच्छत्तअजहण्णट्ठिदिधारएहि सह कम्हि वि काले एक्कस्स जीवस्स जहण्णट्ठिदिधारयस्सुवलंभादो ।

* सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च ।

§ ५९०. कुदो ? कम्हि वि काले अजहण्णट्ठिदिविहत्तिएहि सह संखेज्जाणं जहण्णट्ठिदिविहत्तियाणमुवलंभादो । एवमेत्थ तिण्णि भंगा ।

---

§ ५८६. अधिकारके सम्हालनेके लिये यह सूत्र आया है जो सुगम है ।

* यहां भी वही अर्थपद है ।

§ ५८७. जो अर्थपद उत्कृष्टमें कहा है वही यहां कहना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट के स्थानमें जघन्य और अजघन्य कहना चाहिये ।

* इस अर्थपदके अनुसार कदाचित् सब जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अविभक्तिवाले हैं ।

§ ५८८. क्योंकि एक निषेककी दो समय काल प्रमाण स्थितिको धारण करनेवाले मिथ्यात्वके क्षपक जीवोंके विना मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिमें अवस्थित सब जीव कभी भी पाये जाते हैं ।

* कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अविभक्तिवाले हैं और एक जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाला है ।

§ ५८९. शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कालमें मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिको धारण करनेवाले जीवोंके साथ जघन्य स्थितिको धारण करनेवाला एक जीव पाया जाता है ।

* कदाचित् बहुत जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके अविभक्तिवाले हैं और बहुत जीव मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले हैं ।

§ ५९०. शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि किसी भी कालमें अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके साथ जघन्य स्थितिविभक्तिवाले संख्यात जीव पाये जाते हैं । इस प्रकार यहां तीन भंग होते हैं ।

* अजहण्णियाए ट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा विहत्तिया। सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च। सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च।

§ ५९१. एवमेदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि।

* एवं तिण्णि भंगा।

§ ५९२. एदं पि सुगमं।

* एवं सेसाणं पयडीणं कायव्वो।

§ ५९३. जहा मिच्छत्तस्स णाणाजीवभंगविचयपरूवणा कदा तहा सेसपयडीणं पि भंगविचओ कायव्वो।

§ ५९४. एवं जइवसहाइरिएण सूचिदत्थाणमुच्चारणाइरिएण मंदबुद्धिजणाणुग्गहट्ठं कयवक्खाणं भणिस्सामो।

§ ५९५. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण अट्ठावीसण्हं पयडीणं जहण्णियाए ट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा अविहत्तिया, सिया अविहत्तिया च विहत्तिओ च, सिया अविहत्तिया च विहत्तिया च। अजहण्णट्ठिदीए सिया सव्वे जीवा विहत्तिया, सिया विहत्तिया च अविहत्तिओ च, सिया विहत्तिया च अविहत्तिया च। एवं सत्तसु पुढवीसु पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-पंचिं०-

---

* मिथ्यात्वकीअजघन्य स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव विभक्तिवाले हैं। कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले हैं और एक जीव अविभक्तिवाला है। कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले हैं और बहुत जीव अविभक्तिवाले हैं।

§ ५९१. इस प्रकार ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं।

* इस प्रकार तीन भंग होते हैं।

§ ५९२. यह सूत्र भी सुगम है।

* इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंकी प्ररूपणा करनी चाहिये।

§ ५९३. जिस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी भंगविचयप्ररूपणा की है उसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भी भंगविचय करना चाहिये।

§ ५९४. इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा सूचित किये गये अर्थोंका उच्चारणाचार्यने मन्दबुद्धि जनोंके अनुग्रहके लिये जो व्याख्यान किया है अब उसे कहते हैं—

§ ५९५. अब जघन्य स्थितिका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव अविभक्तिवाले हैं। कदाचित् बहुत जीव अविभक्तिवाले हैं और एक जीव विभक्तिवाला है। कदाचित् बहुत जीव अविभक्तिवाले हैं और बहुत जीव विभक्तिवाले हैं। अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा कदाचित् सब जीव विभक्तिवाले हैं। कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले हैं और एक जीव अविभक्तिवाला है। कदाचित् बहुत जीव विभक्तिवाले हैं और बहुत जीव अविभक्तिवाले हैं। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें रहनेवाले नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय

तिरिक्खजोणिणि-पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसतिय-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय०-सव्व-पंचिंदिय-बादरपुढविपज्ज०-बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्ज०-बादरवण-प्फदिपत्तेयपज्ज०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्विय०-इत्थि०-पुरिस०-णवुंस०-चत्तारिक०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-तेउ०-पम्म०-सुक्क०-भवसिद्धि०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-सण्णि०-आहारए त्ति ।

§ ५९६. तिरिक्खगईए तिरिक्ख० मिच्छत्त०-बारसक०-भय-दुगुंछा० ज० अज० णियमा अत्थि । सेसपयडीणमोघं । मणुसअपज्ज० उक्क०भंगो सव्वपयडीणं । एवं वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०दिट्ठि त्ति ।

§ ५९७. एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० जह० अजह० णियमा अत्थि । सम्मत्त-सम्मामि० ओघं० । एवं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुम-पुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ-सुहुमआउपज्जत्ता-

तिर्यंच योनिमती, पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त, सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनी, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सब त्रस, पांचों मनोयोगी, पाचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, नपुंसकवेदवाले, चारों कषायवाले, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ५९६. तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमे मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । तथा शेष प्रकृतियोंका कथन ओघके समान है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमे सब प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ५९७. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है । इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादरपृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक, सूक्ष्मपृथिवीकायिकपर्याप्त, सूक्ष्मपृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादरजलकायिक, बादरजलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्मजलकायिकपर्याप्त,

पज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउ०अपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदि०-णिगोद-बादर-सुहुमपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअपज्ज०-ओरालियमिस्स-मदि-सुदअण्णाण०-मिच्छादि०-असण्णि त्ति। णवरि पुढवि-आउ०-तेउ०-वाउ०-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीराणं सगसगबादरपज्जत्तभंगो। ओरालियमिस्सादिसु सत्तणोकसायाणं तिरिक्खोघं। अभव० एवं चेव। णवरि सम्मत्त०-सम्मामिच्छत्तं णत्थि।

§ ५६८. कम्मइय० सम्म०-सम्मामि० अट्ठ भंगा। सेस० जहण्ण० णियमा अत्थि। एवमणाहारीणं। असंजद० तिरिक्खोघं। णवरि मिच्छत्तमोघं। किण्ह-णील-काउ० तिरिक्खोघं।

एवं जहण्णओ णाणाजीवभंगविचयाणुगमो समत्तो।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचओ समत्तो।

सूक्ष्मजलकायिकअपर्याप्त, अग्निकायिक, बादरअग्निकायिक, बादरअग्निकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्मअग्निकायिक, सूक्ष्मअग्निकायिकपर्याप्त, सूक्ष्मअग्निकायिकअपर्याप्त, वायुकायिक, बादरवायुकायिक, बादरवायुकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिक, सूक्ष्मवायुकायिकपर्याप्त, सूक्ष्मवायुकायिकअपर्याप्त, बादरवनस्पति कायिकप्रत्येकशरीर, निगोद, बादरनिगोद, बादरनिगोदपर्याप्त, बादरनिगोदअपर्याप्त, सूक्ष्मनिगोद, सूक्ष्मनिगोदपर्याप्त, सूक्ष्मनिगोदअपर्याप्त, बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येशरीर जीवोंके अपने अपने बादर पर्याप्तकोंके समान भंग है। तथा औदारिकमिश्रकाययोगी आदिमें सात नोकषायोंका भंग सामान्य तिर्यंचोंके समान है। अभव्योंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि उनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व नहीं हैं।

§ ५६८. कार्मणकाययोगियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा आठ भंग होते हैं। तथा शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार अनाहारकोंके जानना चाहिये। असंयतोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है। कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावालोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पहले ओघसे उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा जिस प्रकार छह भंग बतला आये हैं उसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा छह भंग जानने चाहिये। तथा यह ओघ प्ररूपणा सामान्य नारकियोंसे लेकर आहारक तक मूलमें जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें अपनी अपनी जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा घटित हो जाती है, अतः इनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा। तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी आदेशसे जो जघन्य और अजघन्य स्थिति बतलाई है उसकी अपेक्षा उनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले नाना जीव नियमसे हैं, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले और अविभक्तिवाले नाना जीव नियमसे हैं। तथा उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले और अविभक्तिवाले नाना जीव नियमसे हैं ये दो भंग ही बनते हैं। हाँ इनके अतिरिक्त शेष

§ ५९९. भागाभागाणुगमो दुविहो-जहण्णओ उक्कस्सओ च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण अट्ठावीसण्हं पयडीणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिया सव्वजीवाणं केवडिओ भागो ? अणंतिमभागो। अणुक्क० सव्वजी० के० ? अणंता भागा। णवरि सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० सव्वजी० असंखेज्जदिभागो। अणुक्क० सव्वजीवाणं असंखेज्जा भागा। एवं तिरिक्ख-सव्वएइंदिय-वणप्फदि-णिगोद-कायजोगि०-ओरालिय०-ओरालिय०मिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णा०-असंजद०-अचक्खु०-किण्ह०-णील०-काउ०-भवसिद्धि०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि-आहारि-अणाहारि त्ति। अभव० एवं चेव। णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि णत्थि।

§ ६००. आदेसेण णेरइएसु सव्वपयडीणमुक्क० सव्वजी० के० ? असंखेज्जदिभागो। अणुक्क० असंखेज्जा भागा। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुस-

---

प्रकृतियोंकी अपेक्षा ओघके समान छहों भंग बन जाते हैं। मनुष्य अपर्याप्तकोंसे लेकर सम्यग्मिथ्यादृष्टि तक जितनी भी मार्गणाएं मूलमें गिनाई हैं उनमें जिस प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा आठ आठ भंग बतला आये हैं उसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा आठ आठ भंग जानने चाहिये। एकेन्द्रियोंमें आदेशकी अपेक्षा जो उनकी जघन्य और अजघन्य स्थिति बतलाई है उसकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके सामान्य तिर्यंचोंके समान दो भंग प्राप्त होते हैं। वे दो भंग पहले बतलाये ही हैं। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा तो यहां भी ओघके समान छह भंग ही प्राप्त होते हैं। बादर एकेन्द्रियोंसे लेकर असंज्ञी तक मूलमें जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमेंसे सामान्य पृथिवी आदि पांच मार्गणाओंको छोड़कर शेषमें इसी प्रकार जानना चाहिये। इसी प्रकार आगे भी जिन मार्गणाओंमें जिन प्रकृतियोंकी स्थिति सम्बन्धी जो विशेषता बतलाई है उसको ध्यानमें रखकर भंगविचयकी प्ररूपणा करनी चाहिये।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य विचयानुगम समाप्त हुआ।

इस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय समाप्त हुआ।

§ ५९९. भागाभागानुगम दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। पहले यहां उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेसे ओघकी अपेक्षा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके असंख्यातवेंभाग हैं। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोके असंख्यात बहुभाग हैं। इसी प्रकार तिर्यंच, सब एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद, काययोगी, औदारिककाययगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले, कापोतलेश्यावाले, भव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। अभव्योंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियां नहीं हैं।

§ ६००. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असंख्यातवें भाग हैं। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यात बहुभाग हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य, मनुष्यअपर्याप्त, सामान्य देव,

अपज्ज०-देव०-भवणादि जाव अवराइद०-सव्वविगलिंदिय० सव्वपंचिंदिय-चत्तारिकाय-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीर-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्वि०-वेउ०मिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहि०-तेउ०-पम्म०-सुक्क०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि त्ति। मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु सव्वपयडीणमुक्क० सव्वजी० के० ? संखेज्जदिभागो। अणुक्क० सव्वजी० के० ? संखेज्जा भागा। एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०।

एवमुक्कस्सओ भागाभागाणुगमो समत्तो।

भवनवासियोंसे लेकर अपराजित तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, चारों स्थावरकाय, सभी बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, सब त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिक काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्ल-लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं? संख्यातवें भाग हैं। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं? संख्यात बहुभाग हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांप-रायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीव अनन्त हैं तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीव असंख्यात हैं। यह तो प्रकृतियोंके सत्त्वकी अपेक्षा संख्या हुई। किन्तु उत्कृष्ट स्थिति और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा विचार करने पर छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात प्राप्त होते हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले अनन्त, इसलिये भागाभागकी अपेक्षा यह बतलाया है कि छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंसे उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव अनन्तवें भाग प्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव प्रत्येक असंख्यात हैं फिर भी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंसे उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, इसलिये भागाभागकी अपेक्षा यह बतलाया है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जितने जीव हैं उनमेंसे असंख्यातवें भागप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिवाले हैं और असंख्यात बहुभाग प्रमाण अनुत्कृष्ट स्थितिवाले हैं। मार्गणाओंकी अपेक्षा सब जीव तीन भागोंमें बट जाते हैं कुछ मार्गणावाले जीव अनन्त हैं, कुछ मार्गणावाले जीव असंख्यात और कुछ मार्गणावाले जीव संख्यात। इनमेंसे अनन्त संख्यावाली जितनी भी मार्गणाएं हैं उनमें यह ओघ प्ररूपणा बन जाती है, इसलिये उनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा। वे मार्गणाएं मूलमें गिनाई ही हैं। किन्तु अभव्योंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं कहना चाहिये। अब रहीं असंख्यात संख्यावाली और संख्यात संख्यावाली मार्गणाएं सो असंख्यात संख्यावाली मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण और उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण

§ ६०१. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० जह० सव्वजी० के० ? अणंतिमभागो । अज० सव्वजी० के० ? अणंता भागा । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क०भंगो । एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति ।

§ ६०२. आदेसेण णेरइएसु सव्वपयडीणं जह० अज० उक्कस्सभंगो । एवं सव्वपंचिं० तिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-चत्तारिकाय-बादरवणप्फदिपत्तेय०-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउ०मिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसा०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिण्णिले०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि त्ति ।

§ ६०३. तिरिक्ख० णारयभंगो । णवरि अणंताणु०चउक्क०-सत्तणोक० ओघं ।

जानने चाहिये । तथा संख्यात संख्यावाली मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव संख्यात बहुभाग प्रमाण और उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव संख्यात एक भागप्रमाण होते हैं । असंख्यात संख्यावालीं और संख्यात संख्यावालीं मार्गणाओंके नाम मूलमें गिनाये ही हैं ।

इस प्रकार उत्कृष्ट भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६०१. अब जघन्य भागाभागका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्तवें भाग हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? अनन्त बहुभाग हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारकोंके जानना चाहिये ।

§ ६०२. आदेशकी अपेक्षा सब नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिकी अपेक्षा भंग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सब मनुष्य, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, सब चार स्थावरकाय, सब बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, सब त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, अपगतवेदवाले, अकषायी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यात संयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६०३. तिर्यंचोंमें नारकियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंकी अपेक्षा भंग ओघके समान है । इसी प्रकार कृष्ण, नील

एवं किण्ह०-णील-काउलेस्से त्ति । एइंदिय० णारयभंगो । एवं वणप्फदि०-णिगोद-कम्मइय०-अणाहारि त्ति । ओरालियमिस्स० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु० मिच्छत्त-भंगो । मदि-सुदअण्णा०-मिच्छादि० असण्णि त्ति । असंजद० तिरिक्खोघं । णवरि-मिच्छत्त० ओघं । अभव० छव्वीसपयडीणं ओरालियमिस्सभंगो ।

एवं भागाभागाणुगमो समत्तो ।

और कापोतलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये । एकेन्द्रियोंमें नारकियोंके समान भंग है । इसी प्रकार सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद जीव, कार्मणकाययोगी और अनाहारकोंके जानना चाहिये । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञियोंके जानना चाहिये । असंयतोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है । अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भंग औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायवाले जीव अनन्त हैं । किन्तु इनमें ओघसे जघन्य स्थितिवाले जीव संख्यात हैं और अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त हैं, अतः भागाभागकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीव अनन्तवें भाग प्राप्त होते हैं और अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त बहुभाग प्राप्त होते हैं । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिवाले जीव असंख्यात हैं और अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त । फिर भी भागाभागकी अपेक्षा इनका भी वही क्रम बन जाता है जो पूर्वमें मिथ्यात्व आदिकी अपेक्षा बतलाया है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीव असंख्यात हैं किन्तु इनमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिवाले जीव संख्यात और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवाले असंख्यात हैं तथा दोनोंकी अजघन्य स्थितिवाले जीव असंख्यात हैं । अतः यहां उत्कृष्ट के समान यह भागाभाग बन जाता है कि उक्त दोनों प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीव असंख्यातवें भाग प्रमाण और अजघन्य स्थितिवाले जीव असंख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । मूलमें काययोगी आदि जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें यह ओघ प्ररूपणा घटित हो जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंके भागाभागको जो उत्कृष्टके समान कहा उसका यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं और उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं उसी प्रकार यहां भी जानना चाहिए । तथा सब पंचेन्द्रियोंसे लेकर संज्ञी तक और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार जानना यह जो कहा है सो इसका यह तात्पर्य नहीं कि इनमें नारकियोंके समान भागाभाग होता है किन्तु इसका यह तात्पर्य है कि इन मार्गणाओंमें जिस प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा भागाभाग कहा है उसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी भागाभाग कहना चाहिये, क्योंकि इन मार्गणाओंमें बहुतसी मार्गणाएं अनन्त संख्यावाली हैं, बहुतसी असंख्यात संख्यावाली हैं तथा बहुतसी संख्यात संख्यातवाली हैं अतः इन सबमें नारकियोंके समान भागाभाग बन भी नहीं सकता । तथा इन मार्गणाओंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंकी संख्याको देखनेसे भी वही अभिप्राय फलित होता है जो हमने दिया है । तिर्यंचगतिमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंको छोड़कर शेष सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नारकियोंके समान है सो इसका यह अभिप्राय है कि जिस

§ ६०४. परिमाणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य । ओघेण छब्बीसपयडीणमुक्क० केत्तिया ? असंखेज्जा । अणुक्क० केत्तिया ? अणंता । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क०-अणुक्क० केत्ति० ? असंखेज्जा । एवं तिरिक्ख-सव्वएइंदिय-वणप्फदि-णिगोद-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स-कम्मइय०-णवुंस० चत्तारिक०-मदि-सुदअण्णा०-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि-अणाहारि त्ति । एवमभवसि० । णवरि सम्म०-सम्मामि० णत्थि ।

प्रकार नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा अजघन्य स्थितिवाले असंख्यात बहुभागप्रमाण और जघन्य स्थितिवाले असंख्यात एक भागप्रमाण हैं उसी प्रकार तिर्यंचोंमें जानना चाहिये । यद्यपि तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य दोनों प्रकारकी स्थितिवाले जीव अनन्त हैं फिर भी जघन्य स्थितिवालोंसे अजघन्य स्थितिवाले जीव असंख्यातगुणे होनेसे उक्त व्यवस्था बन जाती है । तथा तिर्यंचोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायवाले जीवोंमें जघन्य स्थितिवालोंसे अजघन्य स्थितिवाले अनन्तगुणे हैं, अतः इनके कथनको ओघके समान कहा । कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें तिर्यंचोंके समान व्यवस्था बन जाती है, अतः इनके भागाभागको तिर्यंचोंके समान कहा । एकेन्द्रियोंमें भागाभाग संबन्धी कुल व्यवस्था नारकियोंके भागाभागके समान बनती है, अतः इनके भागाभागको नारकियोंके भागाभागके समान कहा । वनस्पति आदि और जितनी मार्गणाएं मूलमें गिनाई हैं उनमें भी नारकियोंके समान भागाभाग जानना । औदारिकमिश्रकाययोगमें यद्यपि भागाभाग सामान्य तिर्यंचोंके समान है पर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका भागाभाग मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके भागाभागके समान है । अर्थात् तिर्यंचोंमें जिस प्रकार मिथ्यात्वकी अपेक्षा भागाभाग कहा है उसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगमें अनन्तानुबन्धीकी अपेक्षा जानना । मूलमें जो मत्यज्ञानी आदि मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी औदारिकमिश्रकाययोगके समान भागाभाग जानना चाहिए । असंयतोंके सामान्य तिर्यंचोंके समान जानना । किन्तु इनके मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका भागाभाग ओघके समान कहना चाहिये । अभव्योंके छब्बीस प्रकृतियोंका सत्त्व है, अतः इनके छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग औदारिकमिश्रकाययोगके समान जानना चाहिए ।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६०४. परिमाण दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । पहले यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार तिर्यंच, सब एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, निगोद, काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदी, चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, तीन लेश्यावाले, भव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । इसी प्रकार अभव्योंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व नहीं हैं ।

§ ६०५. आदेसेण णेरइएसु सव्वपयडि० उक्क०-अणुक्क० केत्ति० ? असंखेज्जा। एवं सव्वणेरइय०-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-सव्व-विगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-चत्तारिकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउव्वि-यमिस्स-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिण्णिले०-सम्मादि०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि त्ति।

§ ६०६. मणुसगईए मणुस० उक्क० केत्ति० ? संखेज्जा। अणुक्क० केत्ति० ? असंखेज्जा। एवमाणदादि जाव अवराइद०-खइयदिट्ठि त्ति। मणुसपज्ज०-मणुसिणी० सव्वपयडीणमुक्क०-अणुक्क० केत्ति० ? संखेज्जा। एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमिस्स० अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो० परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०।

एवमुक्कस्सओ परिमाणाणुगमो समत्तो।

---

§ ६०५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं। असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रियतिर्यंच, मनुष्यअपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रारस्वर्गतकके, देव सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, सभी चार स्थावरकाय, सब त्रस, पांचो मनोयोगी, पांचो वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये।

§ ६०६. मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार आनतकल्पसे लेकर अपराजित तकके देव और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें जानना चाहिये। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—गुणस्थान अप्रतिपन्न सभी संसारी जीव छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले हैं। किन्तु इनमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारणभूत परिणामवाले जीव थोड़े होते हैं, अतः ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव अनन्त कहे। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता उपशमसम्यग्दृष्टि या वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके पाई जाती है या जो इनसे च्युत हुए हैं उनके पाई जाती है। उसमें भी मिथ्यात्वमें इनका संचयकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीवोंकी सामान्यसे संख्या असंख्यात ही होगी। और इनकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंमें भी प्रत्येककी संख्या असंख्यात बन जाती है। मार्गणास्थानोंमें राशियां तीन भागोंमें बटी हुई हैं कुछ मार्गणाएं अनन्त संख्यावाली, कुछ मार्गणाएं असंख्यात संख्यावाली और कुछ मार्गणाएं संख्यात संख्यावाली हैं। उनमें जो अनन्त संख्यावाली मार्गणाएं हैं उनमें ओघके समान व्यवस्था बन जाती है। जो असंख्यात संख्यावाली मार्गणाएं हैं उनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात ही प्राप्त होता है। किन्तु इनमें मनुष्यगति आदि कुछ

§ ६०७. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जह० केत्ति० ? संखेज्जा। अज० केत्ति० ? अणंता। सम्मत्त० जह० केत्ति० ? संखेज्जा। अजह० केत्ति० ? असंखेज्जा। सम्मामि० जह० अजह० के० ? असंखेज्जा। अणंताणु०चउक्क० जह० के० ? असंखेज्जा। अजह० के० ? अणंता। एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारए त्ति।

§ ६०८. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० जह० अजह० के० ? असंखेज्जा। सम्मत्त० जह० केत्ति० ? संखेज्जा। अजह० के० ? असंखेज्जा। एवं पढमाए। विदियादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्त०-बारसक०-णवणोक० जह० केत्ति० ? संखेज्जा। अजह० केत्ति० ? असंखेज्जा। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०

मार्गणाएं अपवाद हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्योंमें पर्याप्त मनुष्योंके ही उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है। और उनकी संख्या संख्यात है, अतः सामान्यसे मनुष्योंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव संख्यात ही होंगे और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात। आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें भी यही व्यवस्था जानना चाहिये, क्यों कि इनके अपनी अपनी पर्यायके प्राप्त होनेके पहले समयमें ही उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है पर इनमें मनुष्यगतिसे ही जीव उत्पन्न होते हैं परन्तु अच्युत स्वर्गतक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच भी उत्पन्न होते हैं और ऐसे जीवोंकी संख्या संख्यात है, अतः उक्त मार्गणाओंमें भी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण संख्यात और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात बन जाता है। अब रहीं संख्यात संख्यावाली मार्गणाएं सो उनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण संख्यात होगा यह स्पष्ट ही है। अनन्त, असंख्यात और संख्यात संख्यावाली मार्गणाओंका मूलमें उल्लेख किया ही है।

इस प्रकार उत्कृष्ट परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

§ ६०७. अब जघन्य परिमाणानुगमका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी, चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ ६०८. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। सम्यक्त्व-की जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ?

चउक्क० ज० अज० केत्ति० ? असंखेज्जा। सत्तमाए उक्क०भंगो।

§ ६०९. तिरिक्खगइ० मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछ० ज० अज० के० ? अणंता। सम्मत्त० ज० के० ? संखेज्जा। अज० के० ? असंखेज्जा। सम्मामि० ज० अज० के० ? असंखेज्जा। अणंताणु०चउक्क०-सत्तणोक० ज० के० ? असंखेज्जा। अज० के० ? अणंता। एवं किण्ह०-णील०-काउ०। णवरि किण्ह-णील० सम्म० सम्मामि०भंगो। पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०-पंचिं०तिरि०जोणिणी० पढमपुढविभंगो। णवरि पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु सम्मत्त० सम्मामि०भंगो। पंचिं०तिरि०-अपज्ज० एवं चेव। एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-चत्तारि-काय-[सव्ववणप्फदिपत्तेय०-] तसअपज्ज०।

§ ६१०. मणुस० सव्वपयडीणं ज० केत्ति० ? संखेज्जा। अज० के० ? असंखेज्जा। णवरि सम्मामि० जह० असंखे०। मणुसपज्ज०-मणुसिणी० सव्वप० जह० अज० संखेज्जा।

§ ६११. देव० णारयभंगो। भवण०-वाण० एवं चेव। णवरि सम्मत्त० सम्मामि०-भंगो। जोदिसि० विदियपुढविभंगो। सोहम्मादि जाव अवराइद० मिच्छत्त-०बारसक०-

---

असंख्यात हैं। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। सातवीं पृथिवीमें उत्कृष्टके समान भंग है।

§ ६०९. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्क और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। इसी प्रकार कृष्ण, नील और कापोतलेश्यावाले जीवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नीललेश्यावालोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। पंचेन्द्रि तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें पहली पृथिवीके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिये। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, सभी चार स्थावरकाय, सभी वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और त्रस अपर्याप्तक जीवोंमें जानना चाहिये।

§ ६१०. मनुष्योंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं।

§ ६११. देवोंमें नारकियोंके समान भंग है। भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। ज्योतिषियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है। सौधर्म कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें

णवणोक० जह० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा । सम्मत्त० एवं चेव । सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० ज० अज० के० ? असंखे० । णवरि अणुदिसादि जाव अवराइद त्ति सम्मामि० जह० संखेज्जा । सव्वट्ठ० सव्वपयडि० ज० अज० के० ? संखेज्जा । एवमाहार-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खादसंजदे त्ति ।

§ ६१२. एइंदिय० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० अज० के० ? अणंता । सम्मत्त-सम्मामि० ज० अज० के० ? असंखेज्जा । एवं वणप्फदि-णिगोद० ।

§ ६१३. ओरालिय०मिस्स० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु०चउक्क० ज० अज० के० ? अणंता । वेउव्वियमिस्स० सोहम्मभंगो । णवरि अणंताणु०४ जह० संखेज्जा । कम्मइ० एइंदियभंगो । णवरि सम्मत्त० ज० के० ? संखेज्जा । अज० के० ? असंखेज्जा ।

§ ६१४. पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय० इत्थि०-पुरि०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-विहंग०संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तेउ०-पम्म०-सुक्क०-सम्मा०-वेदय० मणुसगइभंगो । णवरि विहंग०वज्जेसु अणंताणु०चउक्क०

मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । सम्यक्त्वकी अपेक्षा इसी प्रकार जानना चाहिये । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुदिशसे लेकर अपराजित कल्प तकके देवोंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिक-संयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६१२. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार वनस्पतिकायिक और निगोद जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६१३. औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सौधर्मके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं । कार्मणकाययोगियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं ।

§ ६१४. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्तक, त्रस, त्रसपर्याप्तक, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियककाययोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, विभंगज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमे मनुष्यगतिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि विभंग-

जह० असंखेज्जा। सम्म० जह० जम्मि खवणा णत्थि तम्मि असंखेज्जा। सम्मामि० सम्माइट्ठिपदेसु संखेज्जा। मदि-सुदअण्णा० सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० एइंदियभंगो। सेस० तिरिक्खोघं। एवं मिच्छादिट्ठि-असण्णि त्ति। असंजद० तिरिक्खोघं। णवरि मिच्छत्त० ओघं।

§ ६१५. अभव० छव्वीसपयडि० तिरिक्खोघं। णवरि अणंताणु० एइंदियभंगो। खइय० एक्कवीसपयडीणं ज० के० ? संखेज्जा। अज० के० ? असंखेज्जा। उवसम० चउवीसपयडी० ज० के० ? संखेज्जा। अज० के० ? असंखेज्जा। अणंताणु०चउक्क० ज० अज० के० ? असंखेज्जा। एवं सम्मामिच्छादिट्ठीणं। णवरि अणंताणु० जह० संखेज्जा। सम्म०-सम्मामि० जह० अज० असंखेज्जा। सासण० अट्ठावीस० ज० के० ? संखेज्जा। अज० के० ? असंखेज्जा। सण्णि० पंचिंदियभंगो। अणाहारि० कम्मइयभंगो।

एवं परिमाणाणुगमो समत्तो।

ज्ञानियोंको छोड़कर शेषमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। तथा जिस मार्गणास्थानमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा नहीं है उस मार्गणास्थानमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं और सम्यग्दृष्टि मार्गणाओंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवाले जीव संख्यात हैं। मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग एकेन्द्रियोंके समान है। शेष प्रकृतियोंका सामान्य तिर्यंचोंके समान है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें जानना चाहिये। असंयतोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है।

§ ६१५. अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भंग सामान्य तिर्यंचोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग एकेन्द्रियोंके समान है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यात हैं। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितितिभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं? संख्यात हैं। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। संज्ञियोंमें पंचेन्द्रियोंके समान भंग है। अनाहारकोंमें कार्मणकाययोगियोंके समान भंग है

विशेषार्थ—ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति क्षपकश्रेणीमें और सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है और ऐसे जीवोंका प्रमाण संख्यात है, अतः उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण संख्यात कहा। मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त हैं यह स्पष्ट ही है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनाके अन्तिम समयमें और कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वके उपान्त्य समयमें प्राप्त होती है और ऐसे जीवोंका प्रमाण असंख्यात है,

§ ६१६. खेत्तं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० केवडि खेत्ते? लोग० असंखे०भागे। अणुक्क० के० खेत्ते? सव्वलोए। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अणुक्क० के०? लोग० असंखेज्जदिभागे। एवमणंतरासीणं णेयव्वं जाव अणाहारए त्ति।

§ ६१७. पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-आउ०-बादरआउ०-बादरआउअपज्ज०-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेय०-तेसिमपज्ज०-सव्वसुहुम-तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणमेइंदियभंगो। सेससंखेज्ज-असंखेज्जरासीणमुक्क० अणुक्क० केवडि खेत्ते? लोग० असखे०भागे। णवरि बादरवाउपज्ज० अणु० लोग० संखे०भागे।

एवमुक्कस्सखेत्ताणुगमो समत्तो।

अतः सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात कहा। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण असंख्यात है यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार आगे भी जघन्य और अजघन्य स्थितिके स्वामीका विचार करके जहां जो संख्या सम्भव हो उसका कथन करना चाहिये।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

§ ६१६. क्षेत्र दो प्रकारका है—जघन्य क्षेत्र और उत्कृष्ट क्षेत्र। पहले यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवेंभाग क्षेत्रमें रहते हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सब लोकमें रहते हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवेंभाग क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक अनन्त राशियोंका क्षेत्र जानना चाहिये।

§ ६१७. पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिकअपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिकअपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिकअपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिकअपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्तक, तथा सब सूक्ष्म और उनके पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक जीवोंका भंग एकेन्द्रियोंके समान है। शेष संख्यात और असंख्यात राशिवालोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिकपर्याप्त जीवोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं।

विशेषार्थ—ओघ और आदेशसे जिसका जो क्षेत्र है, सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा यहां उसका वही क्षेत्र ले लिया गया है। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा तथा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा क्षेत्रमें विशेषता है। बात यह है कि ऐसे जीव कहीं असंख्यात और कहीं संख्यात होते हैं। तथा जहां असंख्यात हैं भी वहां वे अतिस्वल्प हैं, अतः इनका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग ही सर्वत्र प्राप्त होता है यह उक्त कथनका सार है।

इस प्रकार उत्कृष्ट क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ।

§ ६१८. जहण्णए पयदं । दुविहं—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० जह० केवडि खेत्ते ? लोग० असंखे०भागे । अज० के० खेत्ते ? सव्वलोए । सम्मत्त०-सम्मामि० ज० अज० के० खेत्ते ? लोग० असंखेज्जदिभागे । एवं कायजोगि०-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारए त्ति ।

§ ६१९. आदेसेण णेरइएसु अट्ठावीसण्हं पयडीणमुक्क०भंगो । एवं सत्तसु पुढवीसु सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-बादरपुढविपज्ज०-बादरआउपज्ज०-बादरतेउ०पज्ज०-बादरवाउ०पज्ज०-बादरवणप्फदि०पत्तेयपज्ज०-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि-वेउव्विय०-वेउ०मिस्स०-आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-अवगद०-अकसा०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिण्णिलेस्सा-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि त्ति । णवरि बादरवाउपज्ज० छब्बीसपयडीणं जह० अजह० लोगस्स संखेज्जदिभागे ।

§ ६२०. तिरिक्ख० मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछ० ज० अज० के० खेत्ते ? सव्वलोए । सेस० उक्कस्सभंगो । एवं सव्वएइंदिय० । णवरि अणंताणु०४-सत्तणोक०

---

§ ६१८. अब जघन्य क्षेत्रका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ६१९. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें रहनेवाले नारकी, सब पंचेन्द्रियतिर्यंच, सब मनुष्य, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादर जलकायिकपर्याप्त, बादर अग्निकायिकपर्याप्त, बादर वायुकायिकपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, सब त्रस, पांचो मनोयोगी, पांचो वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, अपगतवेदवाले, अकषायी, विभंगज्ञानवाले, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं ।

§ ६२०. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं । तथा शेष प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सब एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि

जह० अज० सव्वलोए। एवं पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-आउ०-बादर आउ०-बादरआउअपज्ज०-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सव्वेसिं सुहुम०-तेसिं पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद-बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-ओरालियमिस्स-कम्मइय०-मदि-सुदअण्णाण-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति। णवरि ओरालियमिस्स०-मदि-सुदअण्णा०-मिच्छादि०-असण्णि० सत्तणोकसाय० तिरिक्खोघं।

§ ६२१. एत्थ मूलुच्चारणाहिप्पाएण तिरिक्ख० मिच्छ०-बारसक०भय-दुगुंछ० जह० लोग० संखे०भागे, अज० सव्वलोए, सत्थाणविसुद्धबादरेइंदियपज्जत्तएसु जहण्णसामित्तावलंबणादो। एवमोरालियमिस्स०-मदि-सुदअण्णा०-मिच्छादि-असण्णि त्ति। एइंदिय०-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-तदपज्जत्तएसु छव्वीसपयडि०-एवं चेव। एदम्मि अहिप्पाए चत्तारिकाय-तेसिं बादर-तदपज्जत्ताणं छव्वीसपय० जह० लोग० असंखे०भागे। अज० सव्वलोगे। एतदणुसारेण च पोसणं णेदव्वमिदि। असंजद० तिण्णिलेस्सा० तिरिक्खोघं। णवरि असंजद० मिच्छ० ओघं। अभव०

इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्क और सात नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव सब लोकमें रहते हैं। इसी प्रकार पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिकअपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिकअपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिकअपर्याप्त, इन सबके सूक्ष्म, तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद जीव तथा इनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, और असंज्ञी जीवोंमें सात नोकषायोंका क्षेत्र सामान्य तिर्यंचोंके समान है।

§ ६२१. यहां पर मूलोच्चारणाका ऐसा अभिप्राय है कि तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले सब लोकमें रहते हैं। सो यह कथन स्वस्थान विशुद्ध बादरएकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें जघन्य स्थितिके स्वामित्वको स्वीकार करके किया गया है। इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रियपर्याप्त, बादर एकेन्द्रियअपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक और बादर वायुकायिकअपर्याप्त जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा इसी प्रकार क्षेत्र है। इसके अभिप्रायानुसार पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय, इनके बादर तथा इनके अपर्याप्त जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। तथा अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीव सब लोकमें रहते हैं। तथा इसीके अनुसार स्पर्शनका कथन करना चाहिये। असंयत और कृष्णादि तीन लेश्यावालोंमें सामान्यतिर्यंचोंके समान क्षेत्र है। किन्तु इतनी विशेषता है कि असंयतोंमें मिथ्यात्वका क्षेत्र ओघके समान

छव्वीसपयडि० तिरिक्खोघं। णवरि अणंताणु०चउक्क० एइंदियभंगो।

एवं खेत्ताणुगमो समत्तो।

है। अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भंग सामान्य तिर्यंचोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग एकेन्द्रियोंके समान है।

विशेषार्थ—ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिवाले जीव क्षपकश्रेणीमें ही होते हैं, अतः इनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा। तथा ओघसे उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त हैं, अतः इनका क्षेत्र सब लोक कहा। जब सामान्यसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है तब उनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होगा, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। यह ओघ प्ररूपणा मूलमें गिनाई हुई काययोगी आदि कुछ मार्गणाओंमें अविकल बन जाती है, इसलिये उनके कथनको ओघके समान कहा। सामान्य नारकियोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि नारकियोंकी संख्याको नारकियोंकी अवगाहनासे गुणित करने पर लोकका असंख्यातवां भाग ही प्राप्त होता है, अतः इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके समान जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा वर्तमान क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग ही कहा। इसी प्रकार मूलमें सातों पृथिवियोंके नारकियोंसे लेकर संज्ञी-तक और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी जानना चाहिए, क्यों कि सामान्यसे उनका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता। हां केवल वायुकायिक पर्याप्त जीव इसके अपवाद हैं सो इनके क्षेत्रका अनेक जगह खुलासा किया ही है। सामान्यसे तिर्यंचोंका वर्तमान क्षेत्र सब लोक है। तथा इनमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्क और सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण अनन्त बतला आये हैं, अतः तिर्यंचोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा सब लोक क्षेत्र बन जाता है। किन्तु शेष प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा क्षेत्र लोकका असंख्यातवां ही होता है। इसका कारण इनकी संख्याकी न्यूनता है। यद्यपि एकेन्द्रियोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान व्यवस्था बन जाती है किन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा कुछ विशेषता है। बात यह है कि सामान्य तिर्यंचोंसे एकेन्द्रियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति भिन्न बतलाई है। अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका प्रमाण अनन्त प्राप्त होता है और इसलिये इनका वर्तमान क्षेत्र सब लोक बन जाता है। पृथिवीकायिकसे लेकर अनाहारक तक मूलमें और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी एकेन्द्रियोंके समान व्यवस्था जानना चाहिए। किन्तु औदारिक मिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि और असंज्ञियोंमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा अपवाद है। बात यह है कि इनमें सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति पंचेन्द्रियोंके अपर्याप्त कालमें होती है! अतः जघन्य स्थितिवाले जीवोंकी संख्या एकेन्द्रियोंके समान न प्राप्त होकर सामान्य तिर्यंचोंके समान प्राप्त होती है अतः इस कारण इनके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा क्षेत्र सामान्य तिर्यंचोंके समान होता है। यद्यपि पहले यह बतलाया है कि तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका जघन्य क्षेत्र सब लोक है फिर भी मूल उच्चारणाका यह अभिप्राय है कि ऐसे जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। सो इसका यह कारण है कि तिर्यंचोंमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति बादर

§ ६२२. पोसणं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण०। तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० के० खे० पोसिदं? लोग० असंखेभागो अट्ठ-तेरह चोद्दसभागा वा देसूणा। अथवा इत्थि-पुरिसवेद० उक्क० अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा। अण्णेणाहिप्पाएण बारह चोद्दसभागा वा देसूणा। अणु० सव्वलोगो। सम्म०-सम्मामि० उक्क० लोग० असंखे०भागो अट्ठ चोद्द० देसूणा। अणुक्क० [लोग० असंखे०भागो] अट्ठ चोद्द० देसूणा सव्वलोगो वा। एवं [कायजोगि-] चत्तारिकसाय-मदि-सुदअण्णा०-असंजद०-अचक्खु०-भवसि०-मिच्छादि०-आहारि त्ति। अभव० एवं चेव। णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्ज०।

एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके ही प्राप्त होती है और बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका स्वस्थान क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण ही है अतः इस अपेक्षासे तिर्यंचोंमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण भी बन जाता है। और पहले जो सब लोक क्षेत्र बतलाया है सो इसका कारण यह है कि मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका क्षेत्र सब लोक है अतः उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले तिर्यंचोंका क्षेत्र भी सब लोक बन जाता है। यही क्रम औदारिकमिश्रकायोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके भी घटित कर लेना चाहिये, क्योंकि उनके इस प्रकार घटित करनेमें कोई बाधा नहीं आती है। तथा इसी प्रकार एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त तथा वायुकायिक, बादर वायुकायिक और उनके अपर्याप्त जीवोंमें भी घटित कर लेना चाहिये। किन्तु इस मूल उच्चारणाके अनुसार पृथिवी आदि चार स्थावरकाय, इनके बादर और बादर अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंने वर्तमान कालमें लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रको ही स्पर्श किया है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ।

§ ६२२. स्पर्शन दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। पहले यहां उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। अथवा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अन्य अभिप्रायानुसार त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम बारह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इन सबकी अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोने सब लोकका स्पर्श किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्तावें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार काययोगी, चार कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य, मिथ्यादृष्टि और आहारक जीवोंके जानना चाहिये। अभव्योंके इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर कहना चाहिये।

§ ६२३. आदेसेण णेरइएसु छब्बीसपयडि० उक्क० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो

विशेषार्थ—पहले मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान कालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतला आये हैं। तदनुसार मोहनीय कर्मके अवान्तर भेदोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है इससे अधिक नहीं। इसी बातको ध्यानमें रखकर यहां सब प्रकृतियोकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान कालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भाग प्रमाण स्पर्श अतीत कालकी अपेक्षा बतलाया है, क्योंकि विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदसे परिणत हुए उक्त जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग स्पर्श किया है और मारणान्तिक समुद्घातसे परिणत हुए उक्त जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह भागका स्पर्श किया है। यहां आठ भागसे नीचे दो और ऊपर छह राजु क्षेत्रका ग्रहण करना चाहिये। तथा तेरह भागमें नीचेका एक राजु छोड़ देना चाहिये। एक ऐसा नियम है कि जो जीव जिस वेदवालेमें उत्पन्न होता है मरणके समय अन्तर्मुहूर्त पहलेसे उसके उसी वेदका बन्ध होता है। अब जब इस नियमके अनुसार स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह कुछ कम तेरह बटे चौदह भाग नहीं प्राप्त होता, क्योंकि नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जो जीव नपुंसकवेदियोंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके यह स्पर्श सम्भव है, इसलिये विकल्पान्तर रूपसे स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण बतलाया है। किन्तु कुछ आचार्योंका मत है कि यह स्पर्श कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण प्राप्त होता है। उनके इस मतका यह कारण प्रतीत होता है कि नीचे सातवें नरक तक उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है और ऊपर विहारादिककी अपेक्षा अच्युत कल्प तक उत्कृष्ट स्थिति सम्भव है। अब यदि इस क्षेत्रका संकलन किया जाता है तो वह कुछ कम बारह बटे चौदह भाग प्राप्त होता है। अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सब लोकमें पाये जाते हैं यह स्पष्ट ही है अतः यहां अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान और अतीत दोनों प्रकारका स्पर्श सब लोक बतलाया है। अब रहीं सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियां सो इनकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान कालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण अन्य प्रकृतियोंके समान जान लेना चाहिये। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श जो कुछ कम आठबटे चौदह भागप्रमाण बतलाया है। उसका कारण यह है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यग्दृष्टियोंके पहले समयमें होती है और वेदक सम्यग्दृष्टियोंका अतीत कालीन स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण बतलाया है, अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका भी स्पर्श उक्त प्रमाण प्राप्त होता है। तथा इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श जो तीन प्रकारका बतलाया है सो उसमेंसे लोकका असंख्यातवाँ भाग प्रमाण स्पर्श वर्तमान कालकी अपेक्षा प्राप्त होता है। कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्श अतीत कालीन विहारादिककी अपेक्षा प्राप्त होता है और सब लोक प्रमाण स्पर्श मारणान्तिक तथा उपपाद पदकी अपेक्षा प्राप्त होता है। इस प्रकार यह सब प्रकृतियोंका सामान्यसे स्पर्श हुआ। कुछ मार्गणाएं भी ऐसी हैं जिनमें यह ओघ प्ररूपणा बन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है। जैसे चारों कषाय आदि। अभव्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता नहीं होती। शेष सब स्पर्श ओघके समान बन जाता है, अतः उनके भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेषका स्पर्श ओघके समान बतलाया है।

§ ६२३. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम

§ ६२६. पंचिं०तिरि०अपज्ज० सव्वपयडि० उक्क० लोग० असंखे०भागो, अणुक्क० लो० असं०भागो सव्वलोगो वा। एवं सव्वमणुस-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-बादरपुढविपज्ज०-बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्जत्त-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयपज्ज०-तसअपज्जत्ते त्ति। णवरि बादरपुढवि०-आउ०-वणप्फदिपत्तेय०पज्ज० उक्क० णव चोद्दसभागा वा देसूणा।

§ ६२७. देव० मिच्छत्त-सोलसक०-सत्तणोक० उक्क० अट्ठ-णव चो० देसूणा।

चाहिये। तथा 'अथवा' कह कर नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श जो कुछ कम बारह बटे चौदह भाग प्रमाण बतलाया है वह नीचे छह राजु और ऊपर छह राजुकी अपेक्षा जानना चाहिये। नीचेके छह राजु तो स्पष्ट हैं परन्तु ऊपरके छह राजु उपपाद पदकी अपेक्षा जानना चाहिये। बात यह है बारहवें कल्पतकके देव मर कर तिर्यंच होते हैं। अब नीचेके जो देव सोलहवें कल्पतक विहार करके गये और वहांसे मरकर तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुए उनकी अपेक्षा ऊपर छह राजु प्राप्त हो जाते हैं। शेष कथन सुगम है।

§ ६२६. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार सब मनुष्य, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादर जलकायिक, बादर जलकायिकपर्याप्त, बादरअग्निकायिक, बादर अग्निकायिकपर्याप्त, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादर जलकायिकपर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम नौ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है।

विशेषार्थ—जो तिर्यंच या मनुष्य मोहनीयकी २८ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हो कर और स्थितिघात किये बिना पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होते हैं उन्हीं पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है। अब यदि इनके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है, इसलिये यहां उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा। तथा इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान कालीन स्पर्श तो लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि इनका वर्तमान निवास लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें ही है। पर अतीतकालीन स्पर्श सब लोक बन जाता है, क्योंकि मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदके द्वारा इन्होने सब लोकका स्पर्श किया है। कुछ मार्गणाएं और हैं जिनमें पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श प्राप्त होता है, अतः उनके कथनको इसी प्रकार कहा है। जैसे सब मनुष्य आदि। किन्तु इनमेंसे बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त और वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त इन तीन मार्गणाओंमें कुछ अपवाद है। बात यह है कि इनमें देव मर कर भी उत्पन्न होते है, अतः इनकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछकम नौ बटे चौदह भाग प्राप्त होता है। यहाँ नौ भागसे नीचेके दो राजु और ऊपरके सात राजु लेना चाहिये।

§ ६२७. देवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले

इत्थि-पुरिसवेद०-सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क० अट्ठ चोद्द० देसूणा । अणुक्क० अट्ठ-णव चो० देसूणा । एवं सोहम्मीसाणदेवाणं । भवण०-वाण० एवं चेव । णवरि अद्धुट्ठ-अट्ठ-णव चोद्दस भागा देसूणा । सणक्कुमारादि जाव सहस्सारो त्ति सव्वपय० उक्क० अणुक्क० अट्ठ चोद्दस० देसूणा । आणद-पाणद-आरणच्चुद० सव्वपयडीणं उक्क० लो० असंखे०भागो । अणुक्क० छ चोद्दस० देसूणा । उवरि खेत्तभंगो ।

§ ६२८. एइंदिय० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० उक्क० णव चोद्द० देसूणा । अणुक्क० सव्वलोगो । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्क० णव चो० । अणुक्क० ओघं । एवं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्ज०-वणप्फदि-बादरवणप्फदि-तप्पज्जत्त-कम्मइ-अणाहारए त्ति ।

जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । स्त्रीवेद, पुरुषवेद, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-वाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंके जानना चाहिये । भवनवासी और व्यन्तर देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन भाग, कुछ कम आठ भाग और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श जानना चाहिये । सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसके आगेके देवोंमें क्षेत्रके समान भंग है ।

विशेषार्थ—सामान्य देवोंका या पृथक् पृथक् देवोंका जो स्पर्श बतलाया है वही यहां प्राप्त होता है, अतः तदनुसार उसे यहां भी घटित कर लेना चाहिये । हां सामान्य देवोंमें स्त्रीवेद, पुरुषवेद, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंके स्पर्शमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवाले देव एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात नहीं करते अतः इनका स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौदह भाग ही प्राप्त होता है । तथा वेदकसम्यग्दृष्टियोंके पहले समयमें ही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । अब देवोंमें इसका विचार करते हैं तो ऐसे देव नीचे तीसरे नरक तक और ऊपर सोलहवें कल्प तक पाये जा सकते हैं, अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श भी कुछकम आठ बटे चौदह भाग प्राप्त होता है । यही कारण है कि यहां सामान्य देवोंमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण बतलाया है ।

§ ६२८. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति-वाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श ओघके समान है । इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रियपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पति-

णवरि कम्मइय०-अणाहार० उक्क० तेरह चो० भागा वा देसूणा।

§ ६२९. बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-सुहुमवणप्फदि-णिगोद-बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त० उक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। णवरि बादरपुढवि-तेउ-वणप्फदिअपज्ज० सव्वलोगो णत्थि। कुदो? उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेण पडिणियदखेत्ते चेव एदेसिमुप्पत्तीदो। अणुक्क० सव्वलोगो। [ओरालिय० तिरिक्खोघं।] ओरालियमिस्स० खेत्तभंगो।

कायिकपर्याप्त, कार्मणकाययोगी और अनाहरक जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमे मिथ्यात्व आदि कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति उन्हींके पायी जाती है जो देव पर्यायसे च्युत होकर एकेन्द्रिय हुए हैं, अतः एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछ कम नौ बटे चौदह राजु बतलाया है जो उपपादपदकी प्रधानतासे प्राप्त होता है। तथा एकेन्द्रिय जीव सब लोकमें पाये जाते हैं, अतएव अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक बतलाया है। आगे जो बादर एकेन्द्रिय आदि मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा है। किन्तु कार्मणकायोग और अनाहारकोंमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि जो देव तद्योग्य उत्कृष्ट स्थितिके साथ एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके भी कार्मणकाययोग और अनाहारक अवस्था सम्भव है तथा जो तियच और मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिके साथ नारकियोंमे उत्पन्न होते हैं उनके भी कार्मणकाययोग और अनाहारक अवस्था सम्भव है। अब यदि इन दोनोंके स्पर्शका संकलन किया जाता है तो वह कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु प्राप्त होता है। यही कारण है कि कार्मणकाययोग और अनाहारक अवस्थामें उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श उक्तप्रमाण बतलाया है।

§ ६२९. बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रि अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिकअपर्याप्त, बादरजलकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिकअपर्याप्त, बादर अग्निकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिकअपर्याप्त, बादर वायुकायिकअपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिकपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिकअपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक व निगोद तथा इनके बादर, बादर पर्याप्त, बादर अपर्याप्त, सूक्ष्म, सूक्ष्म पर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बादर पृथिवीकायिकअपर्याप्त, बादर अग्निकायिकअपर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिकअपर्याप्तकोंमें सब लोक स्पर्श नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मके साथ इन जीवोंकी प्रतिनियत क्षेत्रमें ही उत्पत्ति होती है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। औदारिककाययोगियोंका स्पर्श सामान्य तिर्यंचोंके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें स्पर्श क्षेत्रके समान है।

§ ६३०. पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-सत्तणोक० उक्क० ओघं। अणुक्क० अट्ठ चो० देसूणा सव्वलोगो वा। इत्थि०-पुरिस० उक्क० अट्ठ-बारह चोद्दसभागा वा देसूणा। अणुक्क० अट्ठ चोद्दस० सव्वलोगो वा। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अट्ठ चोद्द० देसूणा। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। एवं चक्खु०-सण्णि-पंचमण०-पंचवचि०।

विशेषार्थ—जो तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यात्व आदि कर्मोकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करके और स्थितिघात किये बिना बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि मार्गणाओंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके उक्त कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है। अब यदि इनके वर्तमान क्षेत्रका विचार करते हैं तो वह लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता। यही कारण है कि उन बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि मार्गणाओंमे उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। तथा ऐसे जीव सब लोकमें उत्पन्न होते हैं, अतः अतीतकालीन स्पर्श सब लोक बतलाया है। हां यहां इतनी विशेष बात है कि बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त इनमें उत्कृष्ट स्थितिवालोका अतीत कालीन स्पर्श भी सब-लोक नहीं प्राप्त होता, क्यों किऐसे जीवोंकी उत्पत्ति नियत क्षेत्रमे ही होती है, अतः इन्होने सब लोकको अतीत कालमे भी स्पर्श नहीं किया है। विशेष खुलासाके लिये निम्न दो बातें ध्यानमे रखनी चाहिये। पहली यह कि उक्त मार्गणावाले जीव पृथिवियोके आश्रयसे रहते है और दूसरी यह कि जो संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच या मनुष्य उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके और स्थितिघात किये बिना इनमे उत्पन्न होते हैं उन्हींके पहले समयमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है। अब ऐसे जीवोंके पृथिवियोकी ओर गमन करने पर सब लोक नहीं प्राप्त होता, अतः यहां सब लोक स्पर्शका निषेध किया है। तथा उक्त सब मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट स्थिति-वालोंका जो सब लोक स्पर्श बतलाया है वह स्पष्ट ही है। औदारिककाययोगवालोका स्पर्श तिर्यंचोंके समान है, यह स्पष्ट ही है। औदारिकमिश्रकाययोगमे मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थिति उन्हीं जीवोके प्राप्त होती है जो देव और नरक पर्यायसे आकर औदारिकमिश्रकाययोगी होते हैं, अतः इनके स्पर्शमें क्षेत्रसे अन्तर नहीं पड़ता, इसीलिये इसमे सब प्रकृतियोकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान बतलाया है।

§ ६३०. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोमे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकषायवालोमे उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोने त्रस नालीके चौदह भागोमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोमेसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार चक्षुदर्शनवाले, संज्ञी, पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व आदि २४ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका जो ओघसे स्पर्श

§ ६३१. वेउव्विय० मिच्छ०-सोलसक०-पंचणोक० उक्क० अणुक्क० अट्ठ-तेरह चोद्दस० देसूणा। एवं हस्स-रदि०। इत्थि०-पुरिस० उक्क० अट्ठ-बारह० देसूणा। अथवा बारह चोद्दस० णत्थि। अणुक्क० अट्ठ-तेरह चो० देसूणा। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० अट्ठ चो०, अणुक्क० अट्ठ-तेरह चो०। वेउव्वियमिस्स० खेत्तभंगो। एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खादसंजदे त्ति।

बतलाया है वह पंचेन्द्रिय आदि पूर्वोक्त चार मार्गणाओंकी प्रमुखतासे ही बतलाया है, इसलिये यहां उक्त मार्गणाओंमें मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श ओघके समान कहा। उक्त मार्गणाओंका विहारवत्स्वस्थान आदिकी अपेक्षा स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौदह भाग तथा मारणान्तिक समुद्घात और उपपादकी अपेक्षा स्पर्श सब लोक है, अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थिति-वालोंका स्पर्श उक्त प्रमाण कहा। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका विहार आदिकी अपेक्षा कुछकम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण और मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम बारह बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्श प्राप्त होता है, इसलिये इनकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका उक्त प्रमाण स्पर्श बतलाया है। तथा इन दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्श विहारादिककी अपेक्षा बतलाया है और सब लोक स्पर्श मारणान्तिक तथा उपपाद पदकी अपेक्षा बतलाया है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति-वालोंका कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण स्पर्श विहार आदिकी अपेक्षा बतलाया है और इन दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्श वर्तमान काल आदिकी अपेक्षा तथा सब लोक स्पर्श मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदकी अपेक्षा बतलाया है। चक्षुदर्शन आदि कुछ और मार्गणाएं हैं जिनमें यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है।

§ ६३१. वैक्रियिककाययोगियोंमे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और पांच नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार हास्य और रति नोकषायकी अपेक्षा जानना चाहिये। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। अथवा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम बारह भागप्रमाण स्पर्श नहीं है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति वाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमे स्पर्श क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—वैक्रियिककाययोगका स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौदह भाग और कुछ कम तेरह बटे चौदह भाग है। वही यहां मिथ्यात्व आदि २६ प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितवालोके प्राप्त

§ ६३२. णवुंस० ओघं। णवरि अट्ठ चोद्द० णत्थि। मिच्छत्त-सोलसक०-उक्क० छ चोद्द०। इत्थि०-पुरिस० पंचिंदियभंगो।

§ ६३३. आभिणि०-सुद०-ओहि० सव्वपयडी० उक्क० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो अट्ठ चो० देसूणा। एवमोहिदंस०-सम्मादि०-वेदय०-उवसम०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति। विहंग० मणजोगिभंगो। संजदासंजद० उक्क० खेत्तभंगो, अणुक्क०

होता है, इसलिये इसे तत्प्रमाण कहा। किन्तु पुरुषवेद और स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोका कुछकम तेरह बटे चौदह राजु स्पर्श न प्राप्त होकर कुछकम बारह बटे चौदह राजु प्राप्त होता है। कारणका स्पष्टीकरण ओघमें कर आये हैं। अब विकल्परूपसे जो बारह बटे चौदह राजुका निषेध किया है। उसका मुख्य कारण यह है कि नीचे सात नरकके नारकी स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए यद्यपि तिर्यंच और मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं फिर भी उनका प्रमाण स्वल्प होता है अतः कुछकम बारह बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्श नहीं बनता है। अनुत्कृष्टका खुलासा उत्कृष्टके समान ही है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यग्दृष्टियोंके पहले समयमे होती है और वेदकसम्यग्दृष्टियोका स्पर्श कुछ कम आठ बटे चौदह राजु होता है अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालोका स्पर्श भी उक्त प्रमाण ही बतलाया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवालोके स्पर्शका खुलासा मिथ्यात्व आदि की अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोग और आहारककाययोग आदि ऐसी मार्गणाएं हैं जिनके स्पर्शनमें क्षेत्रसे अन्तर नहीं पड़ता, अतः उनका स्पर्शन क्षेत्रके समान कहा है।

§ ६३२. नपुंसकवेदवाले जीवोंमे ओघके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमे त्रस नालीके चौदह भागोंमेसे कुछ कम आठ भागप्रमाण स्पर्श नहीं है। मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। स्त्रीवेदवाले और पुरुषवेदवाले जीवोंमे पंचेन्द्रियतिर्यंचोंके समान भंग है।

विशेषार्थ—नपुंसकवेदमें जो ओघके समान स्पर्श बतलाया है वह अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा बतलाया है। उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा तो विशेषता है। बात यह है कि ओघसे मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका विहार आदिकी अपेक्षा जो कुछ कम आठ बटे चौदह राजु स्पर्श बतलाया है वह नपुंसकवेदियोके नहीं प्राप्त होता, क्योंकि वह देवोंकी मुख्यतासे बतलाया है और देवोमें नपुंसकवेदी जीव होते नहीं। हां मिथ्यात्व और सोलह कषायोकी उत्कृष्ट स्थितिवाले नपुंसकवेदियोंने नीचेके छह राजु क्षेत्रका स्पर्श किया है, अतः इनमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका यह स्पर्श बन जाता है। तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श पंचेन्द्रियोंके समान है। इसका यह अभिप्राय है कि पंचेन्द्रियोमें जिस प्रकार स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालोका स्पर्श घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहां भी घटित कर लेना चाहिये।

§ ६३३. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। विभंगज्ञानियोंमें मनोयोगियोके समान भंग है। संयतासंयतोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे

छ चोद्दस देसूणा । एवं सुक्क० ।

§ ६३४. तिण्णि ले० मिच्छत्त-सोलसक०-सत्तणोक० उक्क० छ चोद्द० चत्तारि चोद्द० बे-चोद्द० देसूणा । अणुक्क० सव्वलोगो । इत्थि०-पुरिस० खेत्तभंगो । अथवा णवणोक० उक्क० तेरह-एक्कारस-णव चोद्दसभागा वा देसूणा, उववादविवक्खाए तदुवलंभादो । सम्मत्त०सम्मामि० तिरिक्खोघं । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सणक्कुमारभंगो । खइय० एक्कवीस० उक्क० खेत्तभंगो । अणुक्क० अट्ठ चो० देसूणा । सासण० उक्क० अणुक्क० अट्ठ-बारह चोद्द० देसूणा । असण्णि० एइंदियभंगो ।

एवमुक्कस्सपोसणाणुगमो समत्तो ।

कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंके स्पर्श जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—अन्यत्र आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जीवोंका जो स्पर्श बतलाया है वही यहां उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका प्राप्त होता है। उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। मिथ्यात्वके रहते हुए जहां जहां मनोयोग सम्भव है वहां वहां विभंगज्ञान भी सम्भव है, अतः विभंगज्ञानियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श मनोयोगियोंके समान बतलाया है। जो उत्कृष्ट स्थितिवाले वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयमको प्राप्त होते हैं उन्हींके पहले समयमें उत्कृष्ट स्थिति होती है, अतः संयतासंयतोंके सब प्रकृतियोकी उत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श कुछ कम छह बटे चौदह राजु है, क्योंकि मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा संयतसंयतोंने इतने क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यामें भी घटित कर लेना चाहिये ।

§ ६३४. कृष्ण आदि तीन लेश्यावालोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोमेंसे क्रमसे कुछ कम छह, कुछ कम चार और कुछ कम दो भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। अथवा नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोने त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे क्रमसे कुछ कम तेरह, कुछ कम ग्यारह और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है, क्योंकि उपपादकी विवक्षामें इस प्रकारका स्पर्श पाया जाता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा स्पर्श सामान्य तिर्यंचोके समान है। पीतलेश्यावालोमें सौधर्म कल्पके समान भंग है। पद्मलेश्यावालोंमें सनत्कुमार कल्पके समान भंग है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। असंज्ञियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है ।

विशेषार्थ—कृष्ण, नील और कापोत लेश्यामें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और सात नोकषायवालोके जो क्रमसे कुछ कम छह बटे चौदह राजु, कुछ कम चार बटे चौदह राजु और कुछ कम दो बटे चौदह राजु प्रमाण स्पर्श है वह नारकियोंकी मुख्यतासे बतलाया है। तथा ये तीनों

§ ६३५. जहण्णए पयदं । दुविहो० णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जह० अजह० खेत्तभंगो । सम्मत्त जह० खेत्त-भंगो । अज० अणुक्क०भंगो । सम्मामि० जह० अज० अणुक्क०भंगो । अणंताणु०-चउक्क० ज० लो० असंखे०भागो अट्ठ चो० देसूणा । अज० सव्वलोगो । एवं कायजोगि-चत्तारिक०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति ।

लेश्यावाले जीव सब लोकमे पाये जाते हैं अतः इनमे उक्त प्रकृतियोकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक बतलाया है । स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव लोकके असंख्यातवें भागमें पाये जाते हैं, क्षेत्र भी इतना ही है अतः इनेका स्पर्श क्षेत्रके समान बतलाया है । तथा विकल्परूपसे कृष्णादि तीन लेश्याओंमे उपपाद पदकी अपेक्षा नौ नोकषायोका स्पर्श जो कुछ कम तेरह बटे चौदह राजु कुछ कम ग्यारह बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु बतलाया है वह क्रमसे नीचे छह, चार और दो राजु तथा ऊपर सात राजुकी अपेक्षा जानना चाहिये । कृष्णादि तीन लेश्यावालोमें तिर्यचोंकी बहुलता है, अतः इनमे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका स्पर्श तिर्यचोंके समान बतलाया है । शेष मार्गणाओंका स्पर्श सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ ।

§ ६३५. अब जघन्य स्पर्शनका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोका स्पर्श क्षेत्रके समान है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है । इसी प्रकार काययोगी, चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोकी जघन्य स्थितिवालोका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अजघन्य स्थितिवालोंका क्षेत्र सब लोक है । स्पर्श भी इतना ही है, अतः इनके स्पर्शको क्षेत्रके समान बतलाया है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति यद्यपि चारों गतिके जीवोंके पाई जाती है फिर भी ऐसे जीव संख्यात ही होते हैं अतः इनका स्पर्श भी क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है । यही कारण है कि सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिवालोका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है यह स्पष्ट ही है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका स्पर्श क्षेत्रके समान बतलाया है । अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान सब लोक है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसंयोजनाके समय प्राप्त होती है । अब यदि ऐसे जीवोंके वर्तमान स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । यही कारण है कि यहां जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श उक्त प्रमाण कहा है । तथा ऐसे जीवोंका विहार आदि कुछ कम आठ बटे चौदह राजु प्रमाण क्षेत्रमे पाया जाता है अतः अतीत कालीन स्पर्श उक्त प्रमाण कहा है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अजघन्य स्थितिवाले जीव सब लोकमें हैं, इसलिये उनका सब लोक स्पर्श बतलाना स्पष्ट ही है । कुछ मार्गणाएं भी ऐसी हैं जिनमे यह ओघ प्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है ।

§ ६३६. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीसपयडी० ज० खेत्तभंगो । अज० अणुक्क० भंगो । सम्मामि० ज० अज० अणुक्क०भंगो । पढमाए खेत्तभंगो । विदियादि जाव सत्तमि त्ति छव्वीसंपयडी० जह० खेत्तभंगो । अज० अणुक्क०भंगो । सम्मत्त०-सम्मामि० ज० अज० अणुक्क०भंगो ।

§ ६३७. तिरिक्ख० मिच्छत्त-बारसक०भय-दुगुंछ० ज० अज० सव्वलोगो । अण्णो पाढो जह० खेत्तं पोसणं च लोग० संखेज्जदिभागो त्ति । सत्तणोक० अणंताणु०-चउक्क०-सम्मत्त० ज० अज० खेत्तभंगो । सम्मामि० ज० अज० अणुक्क०भंगो । णवरि सम्मत्त० अज० अणुक्क० भंगो । एवं काउ० । असंजद० एवं चेव । णवरि

§ ६३६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है । पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा दूसरीसे लेकर सातवीं तकके नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है ।

विशेषार्थ—नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति उन जीवोंके प्राप्त होती है जो असंज्ञी जीव अपनी जघन्य स्थितिके साथ नरकमें उत्पन्न होते हैं । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि नारकियोंके होती है और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसंयोजना करनेवाले नारकियोंके होती है । अब यदि इनके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । क्षेत्र भी इतना ही है, अतः इनके स्पर्शको क्षेत्रके समान बतलाया है । उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है यह स्पष्ट ही है । जिनके सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता है उन सब नारकियोंके सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थिति होती है । इसमें भी जो नारकी सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें हैं उनके उसकी जघन्य स्थिति होती है । अब यदि इनके वर्तमान तथा कुछ पदोंकी अपेक्षा अतीत स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होता है तथा मारणान्तिक और उपपाद पदकी अपेक्षा अतीत कालीन स्पर्श कुछ कम छह बटे चौदह राजु प्राप्त होता है । अनुत्कृष्टकी अपेक्षा भी स्पर्श इतना ही है, अतः यहां सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान बतलाया है । सर्वत्र पहली पृथिवीका स्पर्श क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है अतः यहां पहली पृथिवीमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान बतलाया है । द्वितीयादि पृथिवियोंमें भी इसी प्रकार जघन्यादि स्थितियोंके स्वामियोंका विचार करके स्पर्श समझ लेना चाहिये ।

§ ६३७. तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है । यहां एक दूसरा पाठ है जिसके अनुसार उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र और स्पर्शन लोकके संख्यातवें भाग-प्रमाण है । सात नोकषाय, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी

मिच्छत्त० जह० सम्मत्तभंगो। किण्ह-णील० तिरिक्खभंगो। णवरि सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो। एवमोरालियमिस्स०-मदि-सुदअण्णाण-अभव०-मिच्छादि०-असण्णि त्ति। णवरि अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। अभव० सम्मत्त०-सम्मामि० णत्थि। ओरालियमिस्स० सम्म० तिरिक्खोघं।

अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार कापोतलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये। तथा इसी प्रकार असंयतोंके भी जानना चाहिये। किन्तु इनके इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शका भंग सम्यक्त्वके समान है। कृष्ण और नीललेश्यावालोंमें तिर्यंचोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। अभव्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियां नहीं हैं। तथा औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सम्यक्त्वका भंग सामान्य तिर्यंचोंके समान है।

विशेषार्थ—तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति बादर एकेन्द्रियोंके होती है। वैसे तो बादर एकेन्द्रियोंका निवास लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्रमें ही है किन्तु मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा इनका स्पर्श सब लोकमें पाया जाता है, इसलिये इनका सब लोक स्पर्श बतलाया है। तथा इनकी अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श सब लोक है यह स्पष्ट ही है। वीरसेन स्वामीने यहां एक ऐसे पाठका उल्लेख किया है जिसके अनुसार तिर्यंचोंमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिवालोंका क्षेत्र और स्पर्श लोकके संख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होता है। अब यदि इस पाठके अनुसार विचार करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि मारणान्तिक समुद्घातके समय जघन्य स्थिति नहीं होती होगी। सात नोकषाय, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके होती है। यद्यपि पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदकी अपेक्षा स्पर्श सब लोक है तो भी उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके समय ये पद सम्भव नहीं इसलिये इनका स्पर्श क्षेत्रके समान बन जाता है। यद्यपि सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य स्थितिके समय उपपाद पद सम्भव है तो भी इससे स्पर्शमें अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि ऐसे जीव संख्यात ही होते हैं। तथा इनकी अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है इसका यह अभिप्राय है कि जिस प्रकार इनका क्षेत्र सब लोक है उसी प्रकार स्पर्श भी सब लोक है। किन्तु सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक दोनों प्रकारका प्राप्त होता है। इसकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका स्पर्श भी ऐसा ही है। अतः सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान कहा है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श भी अनुत्कृष्टके समान घटित कर लेना चाहिये। कापोतलेश्यावाले और असंयतसम्यग्दृष्टियोंके यह व्यवस्था बन जाती है अतः इनके कथनको उक्त प्रमाण कहा है। किन्तु असंयतोंके क्षायिकसम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके समय मिथ्यात्वकी भी क्षपणा होती है और इसलिये यहां मिथ्यात्वकी ओघरूप जघन्य स्थिति बन जाती है। अब यदि ऐसे जीवोंके स्पर्शका विचार किया जाता है तो वह सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिवालोंके समान लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है, इसलिये असंयतोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श सम्यक्त्वके समान बतलाया है। कृष्ण और नील लेश्यामें भी सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श तिर्यंचोंके समान बन जाता है। किन्तु इन दोनों लेश्याओंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति न

§ ६३८. पंचिंदियतिरिक्खतिए सत्तावीसं पयडीणं जह० लोग० असंखे०भागो। अज० लोग० असंखे०भागो, सव्वलोगो वा । सम्मामि० जह० अज० लोग० असंखे०-भागो सव्वलोगो वा । णवरि जोणिणीसु सम्म० सम्मामि०भंगो । पंचिं०तिरि०-अपज्ज०-मणुसअपज्ज० जोणिणीभंगो । मणुसतिए पंचिं०तिरिक्खभंगो ।

§ ६३९. देवेसु मिच्छ०-सम्म०-बारसक०-णवणोक० जह० खेत्तं, अज०

होनेसे सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति एक समय प्रमाण नहीं प्राप्त होती और इसलिये सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका जो स्पर्श पूर्वमें बतलाया है वही यहां सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका प्राप्त होता है । यही कारण है कि उक्त दोनों लेश्याओंमें सम्यक्त्वके भंगको सम्यग्मिथ्यात्वके समान बतलाया है । औदारिकमिश्र आदि कुछ और मार्गणाएं हैं जिनमें उक्त व्यवस्था बन जाती है इसलिये उनके कथनको उक्त प्रमाण कहा है । किन्तु इन मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती, अतः इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श मिथ्यात्वके समान बतलाया है । अभव्य मार्गणामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति नहीं होती, अतः इनका निषेध किया है । औदारिकमिश्रमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति सम्भव है अतः इसमें सम्यक्त्वका भंग सामान्य तिर्यंचोंके समान बतलाया है ।

§ ६३८. पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त और पंचेन्द्रिययोनिमती इन तीन प्रकारके तिर्यंचोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । किन्तु इतनी विशेषता है कि योनिमती तिर्यंचोंमे सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । पंचेन्द्रियतिर्यंचअपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमे तिर्यंच योनिमती जीवोंके समान भंग है । सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमे पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान भग है ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके जो स्वामी बतलाये हैं उन्हें देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि इनका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही प्राप्त होता है । अन्यत्र पचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण व सब लोक बतलाया है । अब यदि इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिवालोंके स्पर्शका विचार करते हैं तो वह उतना बन जाता है, इसलिये यहां इनके स्पर्शको उक्त प्रमाण बतलाया है । किन्तु उक्त तिर्यंचोंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थिति सब अवस्थाओंमें सम्भव है और इसलिये उक्त तिर्यंचोंका जो स्पर्श बतलाया है वह सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी बन जाता है यही कारण है कि इनमें सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण व सब लोक बतलाया है । किन्तु योनिमती तिर्यंचोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते, अतः इनमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान बतलाया है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी जो जघन्य और अजघन्य स्थितिके स्वामी बतलाये हैं उसे देखते हुए इनका स्पर्श योनिमतियोके समान बन जाता है, इसलिये इनके भंगको योनिमतियोंके समान कहा है । मनुष्यत्रिकमें पंचेन्द्रियतिर्यंचोंके समान कहनेका भी यही तात्पर्य है ।

§ ६३९. देवोमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-

लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णव चोद्द०। सम्मामि० जह० अज० लोग० असंखे०-भागो अट्ठ-णव चोद्द०। अणंताणु०चउक्क० जह० लोग० असंखे०भागो अट्ठ चोद्द०। अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णव चोद्द०। एवं सोहम्मीसाण०।

§ ६४०. भवण०-वाणवेंतर०-जोदिसि० मिच्छ०-बारसक०-णवणोक० जह० लोग० असंखे०भागो। सव्वेसिमज० सम्म०-सम्मामि० ज० अज० लोगस्स असंखे०भागो अद्धुट्ठ-अट्ठ-णव चोद्द०। अणंताणु०४ जह० अद्धुट्ठ-अट्ठ चोद्द०। सणक्कुमारादि जाव सहस्सार त्ति मिच्छ०-सम्म०-बारसक०-णवणोक० जह० लोग० असंखे०भागो। सव्वेसिमज० सम्मामि०-अणंताणु० जह० अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठ चोद्दस०। आणदादि अच्चुदा त्ति मिच्छ०-सम्म०-बारसक०-णवणोक० जह० लोग० असंखे०भागो। सव्वेसिमजह० सम्मामि०-अणंताणु०४ जह० अज० लोग० असंखे०भागो छ चोद्द०। उवरि खेत्तभंगो। एवं वेउव्वियमिस्स०-आहार-आहारमि०-

विभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान कल्पके देवोंमें जानना चाहिये।

§ ६४०. भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा सभी प्रकृतियोंकी अजघन्य तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन और कुछ कम आठ भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सानत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा सभी प्रकृतियोंकी अजघन्य और सम्यग्मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। आनतसे लेकर अच्युत कल्पतकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा उक्त सब प्रकृतियोंकी अजघन्य और सम्यग्मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसके आगेके देवोंमें क्षेत्रके

अवगद०-अकसाय०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद-संजदे त्ति ।

§ ६४१. एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० अज० सव्वलोगो। सम्मत्त-सम्मामि० ज० अज० अणुक्कस्सभंगो। एवं पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढवि-अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्त।पज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउ-पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-बादरवणप्फदि०-

समान भंग है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, नौ नोकषाय और सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति किसी खास अवस्थामें ही प्राप्त होती है और सबके सम्भव नहीं अतः इनकी जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श क्षेत्रके समान ही प्राप्त होता है और इसलिये इसे क्षेत्रके समान बतलाया है। परन्तु अजघन्य स्थितिके लिये ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है अतः उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिवालोंका वही स्पर्श प्राप्त हो जाता है जो सामान्य देवोंका बतलाया है। यही बात सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंके लिये समझ लेना चाहिये। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसंयोजनाके समय होती है पर ऐसे समय एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात सम्भव नहीं अतः इनकी जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण और कुछ कम आठ बटे चौदह राजु बतलाया है। तथा अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम आठ बटे चौदह राजु और कुछ कम नौ बटे चौदह राजु बतलाया है। यह सामान्य देवोंमे स्पर्श हुआ। इसी प्रकार देवोंके प्रत्येक भेदमें अपनी अपनी विशेषताको जान कर स्पर्श जान लेना चाहिये। कहां कितना स्पर्श है इसका निर्देश मूलमें किया ही है। कोई विशेषता न होनेसे उसका खुलासा नहीं किया है। हां भवनत्रिकमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते अतः उनमें सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श सम्यग्मिथ्यात्वके समान बतलाया है। यहां 'एवं' कह कर जो वैक्रियिकमिश्र आदिमें स्पर्शका निर्देश किया है सो उसका यह मतलब है कि जिस प्रकार नौ ग्रैवेयक आदिमें स्पर्श क्षेत्रके समान है उसी प्रकार इन वैक्रियिकमिश्र आदि मार्गणाओंमें अपने अपने क्षेत्रके समान स्पर्श जानना चाहिये।

§ ६४१. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके स्पर्शका भंग अनुत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार पृथिवीकायिक, बादरपृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म-पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादरजल-कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्नि-कायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्नि-कायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक-अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पति-

बादरवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमवणप्फदि-सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त-कम्मइय०-अणाहारि त्ति। णवरि कम्मइय०-अणाहारीसु सम्मत्तस्स तिरिक्खोघं। सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज-०तसअपज्ज० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो। बादरपुढविपज्ज०-बादरआउपज्ज०—बादरतेउपज्ज०—बादरवाउपज्ज०—बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्ज०-तसअपज्जत्तभंगो। णवरि बादरवाउपज्ज० छव्वीसपय० ज० अज० लोग० संखे०भागो सव्वलोगो वा।

§ ६४२. पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज० तेवीसपयडी० ज० खेत्तं, अज० अणुक्क०भंगो। सम्मामि० ओघं। अणंताणु०चउक्क० ज० देवोघं। अज० अणुक०भंगो। एवं तस-

कायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, सभी-निगोद, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, कार्मण-काययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारकोंमें सम्यक्त्वका भंग सामान्य तिर्यंचोंके समान है। सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान भंग है। बादर पृथिवी-कायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंमें त्रस अपर्याप्त जीवोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्त जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीव सर्वत्र पाये जाते हैं इसलिये इनका स्पर्श सब लोक बतलाया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है सो इसका खुलासा जिस प्रकार पहले कर आये हैं उसी प्रकार यहां भी कर लेना चाहिये। पृथिवीकायिक आदि मार्गणाओंमें एकेन्द्रियोंके समान स्पर्श बन जाता है, इसलिये उनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा है। किन्तु कार्मणकाययोगी और अनाहारकोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होते हैं अतः उनमें सम्यक्त्वका स्पर्श सामान्य तिर्यंचोंके समान बन जाता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंके कारण स्पर्शमें जो विशेषता प्राप्त होती है वही विशेषता सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंमें भी प्राप्त होती है इसलिये यहां इनके स्पर्शको पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान बतलाया है। इसी प्रकार बादर पृथिवी पर्याप्त आदिमें सब प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंके स्पर्शको त्रस अपर्याप्तकोंके समान बतलानेका कारण जान लेना चाहिये। किन्तु बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंका स्पर्श लोकके संख्यातवें भागप्रमाण व सब लोक होनेसे इनमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श उक्त प्रमाण बतलाया है।

§ ६४२. पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्त जीवोंमें तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिका भंग अनुत्कृष्टके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श सामान्य देवोंके समान है। तथा अजघन्य स्थितिका भंग अनुत्कृष्टके समान है।

तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-इत्थि-पुरिस०-चक्खु०-सण्णि त्ति ।

§ ६४३. वेउव्विय० बावीसपयडी० ज० खेत्तं, अज० अणुक्क०भंगो । सम्मत्त-सम्मामि० ज० अज० अणुक्क०भंगो । अणंताणु०चउक्क० ज० अट्ठ चो०, अज० अणुक्क०भंगो । ओरालिय०-णवुंस० ओघं । णवरि अणंताणु०चउक्क० ज० तिरिक्खोघं ।

§ ६४४. विहंग० छव्वीसं पयडी० ज० खेत्तभंगो, अज० अणुक्क०भंगो । सम्मत्त०-सम्मामि० अणुक्क०भंगो । आभिणि०-सुद०-ओहि०-ओहिदंस०-सम्मादि०-वेदय० सव्वपय० जह० पंचिंदियभंगो । णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । अज० अणुक्क०-भंगो । संजदासंजद० सव्वपयडी० जह० खेत्तभंगो । अजह० अणुक्क०भंगो ।

इसी प्रकार त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति क्षपणाके समय प्राप्त होती है. इसलिये इनका स्पर्श क्षेत्रके समान प्राप्त होता है। यही कारण है कि यहां स्पर्शको क्षेत्रके समान कहा है। अजघन्य स्थिति सर्वत्र सम्भव है अतः इनका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान बतलाया है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका जो ओघ स्पर्श बतलाया है वह उक्त मार्गणाओंमें भी सम्भव है, अतः इनके स्पर्शको ओघके समान कहा है। उक्त मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिवालोंमें देवोंकी प्रमुखता है अतः इनके स्पर्शको सामान्य देवोंके समान बतलाया है । तथा अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान बन जाता है, अतः इसे अनुत्कृष्टके समान बतलाया है । त्रसकायिक आदि मार्गणाओंमें उक्त व्यवस्था बन जाती है, अतः इनके कथनको उक्त प्रमाण कहा है ।

§ ६४३. वैक्रियिककाययोगियोंमें बाईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिका भंग अनुत्कृष्टके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिका भंग अनुत्कृष्टके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिका भंग अनुत्कृष्टके समान है। औदारिककाययोगी और नपुंसकवेदवालोंमें ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श सामान्य तिर्यंचोंके समान है।

§ ६४४. विभंगज्ञानियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिका भंग अनुत्कृष्टके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग अनुत्कृष्टके समान है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श पंचेन्द्रियोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिका भंग अनुत्कृष्टके समान है। संयतासंयतोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिका भंग अनुत्कृष्टके समान है।

§ ६४५. तेउ०-पम्म० तेवीसपयडि० जह० खेत्तभंगो, अज० अणुक्क०भंगो। सम्मामि० ज० अज० अणुक्क०भंगो। अणंताणु०चउक्क० ज० पंचिं०भंगो, अज० अणुक्क०भंगो। सुक्क० तेवीसपयडी० ज० खेत्तभंगो। अज० अणु०भंगो। सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० ज० अज० आणदभंगो।

§ ६४६. खइय० सव्वपयडी० ज० खेत्तभंगो। अज० अणु०भंगो। उवसम० चउवीसपयडी० ज० खेत्तभंगो, अज० अणुक्क० भंगो। अणंताणु०चउक्क० ज० अज० अट्ठ चोद्दस०। सम्मामि०-सासणसम्मा० उवसम०भंगो।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो।

*** जधा उक्कस्सट्ठिदिबंधे णाणाजीवेहि कालो तधा उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेण कायव्वो।**

§ ६४७. उक्कस्सट्ठिदिबंधे जहा णाणाजीवेहि कालो परूविदो तहा उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मस्स वि परूवेयव्वो। तं जहा—छव्वीसपयडीणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति? जह० एगसमओ; एगसमयमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय विदिसमए

---

§ ६४५. पीत और पद्मलेश्यावाले जीवोंमें तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग पंचेन्द्रियोंके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है। शुक्ललेश्यावालोंमें तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग आनतकल्पके समान है।

§ ६४६. क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है। उपशम-सम्यग्दृष्टियोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श अनुत्कृष्टके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंमें उपशम सम्यग्दृष्टि जीवोंके समान भंग है।

इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

*** जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें नाना जीवोंकी अपेक्षा काल कहा है उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मकी अपेक्षा कालका कथन करना चाहिये।**

§ ६४७. उत्कृष्ट स्थितिबन्धमें जिस प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका कथन किया है उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मका भी काल कहना चाहिये। जो इस प्रकार है—छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है? जघन्य काल एक समय है, क्योंकि एक समय तक उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर दूसरे समयमें उन सब जीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वको

अणुक्कस्सट्ठिदिसंतं सव्वजीवेसु उवगएसु तिहुवणासेसजीवाणमेगसमयं चेव उक्कस्सट्ठिदि-दंसणादो । उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । एक्कस्स जीवस्स जदि उक्कस्सट्ठिदिकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो लब्भदि तो आवलियाए असंखे०भागमेत्तजीवाणं किं लभामो त्ति फल-गुणिदिच्छाए पमाणेणोवट्टिदाए असंखेज्जावलियमेत्तुक्कस्सट्ठिदिसंतकालुवलंभादो । अणुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिया केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवे पडुच्च सव्वद्धा । कुदो ? तिसु वि कालेसु अणुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मियजीवाणं संभवादो ।

❀ णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदी जहण्णेण एगसमओ ।

§ ६४८. कुदो ? उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मियमिच्छादिट्ठिणा मोहट्ठावीससंतकम्मिएण वेदगसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए चेव मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु संकामिदाए एगसमयं चेव उक्कस्सट्ठिदिकालुवलंभादो । उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिय-मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छत्तं किण्ण णीदो ? ण, तत्थ दंसणमोहणीयस्स संकमाभावेण सम्मत्तसम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदीए करणुवायाभावादो ।

❀ उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

प्राप्त होने पर तीन लोकके सब जीवोंके एक समय तक ही उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है । तथा उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि एक जीवके उत्कृष्ट स्थितिका काल यदि अन्तर्मुहूर्त है तो आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवोंके कितना काल प्राप्त होगा इस प्रकार त्रैराशिक करके इच्छाराशिको फलराशिसे गुणित करके जो लब्ध आवे उसमें प्रमाणराशिका भाग देने पर असंख्यात आवलिप्रमाण काल तक उत्कृष्ट स्थितिका सत्त्व पाया जाता है । अनुत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले जीवोंका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है, क्योंकि तीनों ही कालोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले जीवोंका पाया जाना संभव है ।

* किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है ।

§ ६४८. **शंका**—इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—जिसके मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता है ऐसा कोई एक उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाला मिथ्यादृष्टि जीव वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके पहले समयमें ही मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमण कर देता है, अतः उसके एक समय काल तक उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है । अतः इन दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है ।

शंका—उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मवाला मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त कराया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयका संक्रमण नहीं होनेसे वहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त की जा सकती है ।

* तथा उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ६४६. कुदो ? उक्कस्सहिदिसंतकम्मियमिच्छाइट्ठीणं णिरंतरं वेदयसम्मत्तं पडिवज्जंताणमावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालुवलंभदंसणादो। एवं जइवसहाइरियसुत्तपरूवणं करिय एदेण चेव सुत्तेण देसामासिएण सूचिदत्थाणमुच्चारणाइरियपरूविदवक्खाणं भणिस्सामो।

§ ६५०. कालो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। तत्थ उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण छव्वीसपयडी० उक्क० केव० ? ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अणुक्क० सव्वद्धा। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० के० ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणुक्क० के० ? सव्वद्धा। एवं सव्वणिरय-तिरिक्ख-पंचिं०तिरि०तिय-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्वि०-तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-मदि०-सुदअण्णाण-विहंग०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु० पंचले०-भवसि०-अभवसि०-मिच्छादिट्ठि०-सण्णि०-आहारि त्ति। णवरि अभव० सम्म०-सम्मामि० णत्थि।

---

§ ६४६. शंका—उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल आवलीका असंख्यातवां भाग क्यों है ?

समाधान—यदि उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टि जीव निरन्तर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हों तो वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होनेका काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही देखा जाता है। अतः उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका काल भी आवलीका असंख्यातवां भाग प्राप्त होता है।

इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके सूत्रका कथन करके अब देशामर्षक रूपसे इसी सूत्रके द्वारा सूचित हुए अर्थका उच्चारणाचार्यने जो व्याख्यान किया है उसे कहते हैं—

§ ६५०. काल दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। प्रकृतमें उत्कृष्टसे प्रयोजन है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल कितना है ? सर्वदा है। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचो मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियककाययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेपता है कि अभव्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियां नहीं है।

विशेषार्थ—ओघसे नाना जीवोंकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट

§ ६५१. पंचिं०तिरिक्ख०अपज्ज० सव्वपयडीणमुक्क० के० ? जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणुक्क० सव्वद्धा। एवं सव्वेइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिं०अपज्ज०- पंचकाय०—बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त—तसअपज्ज०—ओरालियमिस्सकाय-जोगि त्ति। णवरि जत्थ देवाणमुववादो तत्थ णवणोकसाय० उक्क० ओघभंगो।

स्थितियोंके कालका खुलासा चूर्णिसूत्रोंकी टीका करते हुए स्वयं वीरसेन स्वामीने किया ही है अतः यहां उसे पुनः नहीं दुहराया गया है। इसी प्रकार सब नारकी आदि असंख्यात और अनन्त संख्यावाली कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें ओघके समान उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति तथा उनका जघन्य और उत्कृष्ट काल बन जाता है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा। किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं पाया जाता, अतः उनके उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति तथा उनके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन नहीं करना चाहिये।

§ ६५१. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पांचों स्थावर काय तथा उनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त और औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि जहां देवोंका उपपाद है वहां नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—पहले ओघसे उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय बतला आये हैं। अब यदि ओघसे उत्कृष्ट स्थितिवाले ये जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोमे उत्पन्न हो तो उनके भी आदेश उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय ही पाया जायगा, क्योंकि द्वितीयादि समयोंमे ओघ उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका अभाव हो जानेसे पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें भी आदेश उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सम्भव नहीं, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोमे उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा। तथा इनमें उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है जो इस प्रकारसे प्राप्त होता है—ओघसे उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालका कथन करते हुए बतलाया है कि नाना जीव निरन्तर यदि उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त करते रहें तो आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही जीव उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होगे तथा उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अब यदि जीवोंकी संख्यासे कालके प्रमाणको गुणित कर दिया जाता है तो उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। किन्तु ऐसे जीवोंको यदि पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोमे क्रमसे उत्पन्न कराया जाय तो उनमें एक एक अन्तर्मुहूर्तके बाद ही उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होगी, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त तक उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर जो जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोमे उत्पन्न होते हैं उनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धकालके अन्तिम समयमे बंधी हुई स्थिति ही उत्कृष्ट हो सकती है इसके अतिरिक्त और सब स्थितियां अनुत्कृष्ट हो जायंगी, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कालके अन्तिम समयमे बंधी हुई स्थितिके कालसे उनका काल एक समय, दो समय आदि रूपसे और कम हो जाता है, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें निरन्तर ऐसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवोंको उत्पन्न कराना चाहिये जिन्होंने क्रमसे एक एक समय तक निरन्तर उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया हो। इस प्रकार

§ ६५२. मणुसतिय० छव्वीसपयडी० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। अणुक्क० सव्वद्धा। सम्म०-सम्मामि० उक्क० ज० [एगस०], उक्क० संखेज्जा समया। अणुक्क० सव्वद्धा। मणुसअपज्ज० सव्वपयडी० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणुक्क० ज० खुद्दाभवग्गहणं समयूणं, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। णवरि समत्त-सम्मामि० अणुक्क० ज० एगस०। एवं वेउव्वियमिस्स०। णवरि छव्वीसपयडी० अणुक्क० ज० अंतोमु०। णवणोक० उक्क० ओघं। एवमव-

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोमें उत्कृष्ट स्थितिका काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। तथा इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि यह निरन्तर मार्गणा है, अतः इसमें सर्वदा अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव पाये जाते हैं। सब एकेन्द्रिय आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमे भी यह व्यवस्था बन जाती है अतः उनके सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालको पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान कहा। किन्तु जिन मार्गणाओंमें देव उत्पन्न हो सकते हैं उनमे नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेके दूसरे समयमे ही मर कर देव एकेन्द्रियोमे उत्पन्न हो सकते हैं और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति संक्रमणसे प्राप्त होती है जो बन्धावलीके बाद ही होता है। अब यदि एक एक आवलीके अन्तरालसे एक एकके क्रमसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण देव सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका एक एक आवलि तक निरन्तर बन्ध करें और उत्कृष्ट स्थिति बन्धके दूसरे समयमे वे मर कर उसी क्रमसे एकेन्द्रियोमे उत्पन्न होते जायं तो एकेन्द्रियोमें नौ नोकषायोका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि ऐसे देवोमे प्रत्येकके एक एक आवलितक नौ नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थिति पाई जायगी। जिन मार्गणाओमे नौ नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थितिका यह काल सम्भव है वे मार्गणाएं ये हैं—एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक बादर जलकायिक, बादर जलकायिक पर्याप्त, प्रत्येक वनस्पतिकायिक, प्रत्येक वनस्पतिकायिक पर्याप्त। किन्तु इतना विशेष जानना चाहिए कि ओघमें अन्तर्मुहूर्तको आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणा करके पल्यका असंख्यातवां भाग काल प्राप्त किया गया था पर यहां आवलिको आवलिके असंख्यातवें भागसे गुणा करके पल्यका असंख्यातवां भाग काल प्राप्त करना चाहिये।

§ ६५२. सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यिनी इन तीन प्रकारके मनुष्योमे छब्बीस प्रकृतियोकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थिति-विभक्तिवाले जीवोका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। मनुष्य अपर्याप्तकोमे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय कम क्षुद्राभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मि-थ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोका जघन्य काल एक समय है। इसी प्रकार वैक्रियिक-मिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट

सम०-सासण०-सम्मामि० । णवरि णवणोक० उक्क० ओघं णत्थि । सम्म०-सम्मामि० अणुक्क० जह० अंतोमु० । सासण० सव्वपय० अणु० जह० एयस०, उक्क० तं चेव ।

स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तवाले जीवोंका काल ओघके समान है। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल ओघके समान नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल वही पूर्वोक्त है।

विशेषार्थ—जब कि ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है तो मनुष्यत्रिकमें इससे अधिक कैसे हो सकता है। पर उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि ओघ उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होनेवाले सामान्य मनुष्योंका प्रमाण संख्यात है तथा मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंका प्रमाण तो संख्यात है ही। अब यदि एक समयमें प्राप्त होनेवाली मनुष्योंके उत्कृष्ट स्थितिका काल अन्तर्मुहूर्त मान लें और एक के बाद दूसरा इस प्रकार निरन्तररूपसे संख्यात मनुष्योंके उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त कराई जाय तो भी उस सब कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्त ही होगा। यही कारण है कि मनुष्यत्रिकके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा। तथा एक जीवकी अपेक्षा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतला आये हैं। अब यदि संख्यात जीव लगातार उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त हों तो उनके कालका जोड़ संख्यात समय ही होगा, अतः मनुष्यत्रिकके उक्त दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा। इन दो प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय स्पष्ट ही है। तथा इनके सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका काल सर्वदा है यह भी स्पष्ट है, क्योंकि ये निरन्तर मार्गणाएं हैं इसलिये इनमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका प्रमाण असंख्यात है और उनमें आदेश उत्कृष्ट स्थिति होती है, अतः उनके पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है। तथा यह मार्गणा सान्तर है अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय कम खुद्दाभवग्रहण प्रमाण और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण भी बन जाता है। जघन्य कालमेंसे एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षासे किया है। तथा उद्वेलनाकी अपेक्षा इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। वैक्रियिकमिश्रकाययोग मार्गणा सान्तर है, अतः इसमें भी लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके समान सब कर्मोंकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिका काल जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इस मार्गणाका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होगा। तथा इसमें प्रत्येक जीवके नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल एक आवलिप्रमाण प्राप्त हो सकता है, अतः नाना जीवों की अपेक्षा यहां भी नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल ओघके समान पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है। इसका विशेष खुलासा इसी प्रकरणमें एकेन्द्रियोंकी प्ररूपणाके समय कर आये हैं अतः वहांसे जान लेना चाहिये। उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये तीन मार्गणाएँ भी सान्तर हैं, अतः इनमें भी सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल वैक्रियिकमिश्रकाययोगके समान कहा।

§ ६५३. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति सव्वपयडी० उक्क० जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। अणुक्क० सव्वद्धा। एवमणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति। एवं खइयसम्मादिट्ठीणं। आहार० सव्वपय० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। अणुक्क० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। एवमवगद०-अकसा०-सुहुमसांपराय०-जहाक्खादसंजदे त्ति। एवमाहारमिस्स०। णवरि अणुक्क० ज० अंतोमु०। कम्मइय० एइंदियभंगो। णवरि सम्मत्त०सम्मामि० अणुक्क० सत्तणोक० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। एवमणाहारीणं। आभिणि०-सुद०-ओहि० सव्वपयडी० उक्क० ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणुक्क० सव्वद्धा। एवं संजदासंजद०-ओहिदंस०-सुक्क०-सम्मादिट्ठि०-वेदय०दिट्ठि त्ति। मणपज्ज० सव्वपयडी० सव्वट्ठभंगो। एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार-

किन्तु इसका कुछ अपवाद है। बात यह है कि इन तीनो मार्गणाओंमे एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, अतः यहां इनके उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल ओघके समान न प्राप्त होकर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होगा। और इन मार्गणाओंमे सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना नहीं होती है अतः यहां इन दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय न प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होगा। किन्तु सासादन गुणस्थानका जघन्य काल एक समय है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय ही प्राप्त होगा।

§ ६५३. आनत कल्पसे लेकर उपरिमग्रैवेयक तकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके जानना चाहिये। तथा इसी प्रकार क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। आहारककाययोगियोंमे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अपगतवेदवाले, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिक संयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये। तथा इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगियोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। कार्मणकाययोगियोंमे एकेन्द्रियोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका और सात नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। मनःपर्ययज्ञानियोंमें सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा सर्वार्थसिद्धिके समान भंग है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके जानना चाहिये। असंज्ञियोंमें एकेन्द्रियोंके समान

संजदे त्ति । [असण्णि० एइंदियभंगो ।]

एवमुक्कस्सओ कालाणुगमो समत्तो ।

❀ जहण्णए पयदं । मिच्छत्त-सम्मत्त-बारसकसाय-तिवेदाणं जहण्ण-ट्ठिदिविहत्तिएहि णाणाजीवेहि कालो केवडिओ ?

§ ६५४. णाणाजीवेहि जहण्णट्ठिदिविहत्तिएहि छट्ठीए अत्थे तइया दट्ठव्वा । अहवा कत्तारम्मि तइया घेत्तव्वा ; जहण्णट्ठिदिविहत्तिएहिं केवडिओ कालो लद्धो त्ति पदसंबंधादो । सेसं सुगमं ।

❀ जहण्णेण एगसमओ ।

जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—आनतादि चार कल्पोमें यद्यपि तिर्यंच भी मर कर उत्पन्न होते हैं किन्तु उनके उत्कृष्ट स्थिति नहीं पाई जाती, अतः जो द्रव्यलिंगी मनुष्य मर कर आनतादिकमे उत्पन्न होते हैं उन्हींके पहले समयमे उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है, पर लगातार उत्पन्न होनेवाले इन जीवोंका प्रमाण संख्यात ही होगा, क्योंकि ऐसे मनुष्य ही संख्यात हैं, अतः इनके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा। तथा अनुदिशादिकमें और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय होता है यह स्पष्ट ही है। 'यदि एक साथ अनेक जीवोंने आहारक-काययोग किया और उनके उत्कृष्ट स्थिति हुई तो आहारक काययोगमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय पाया जाता है और यदि नाना मनुष्य प्रत्येक समयमे उत्कृष्ट स्थितिके साथ आहारक काययोगको प्राप्त होते रहे तो आहारककाययोगमे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल संख्यात समय पाया जाता है। तथा आहारककाययोगके जघन्य और उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा इसमें अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत, यथाख्यातसंयत और आहारक मिश्रकाययोगी इनकी कथनीमें आहारककाययोगकी कथनीसे कोई विशेषता नहीं है अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल आहारककाययोगके समान घटित कर लेना चाहिये। किन्तु आहारकमिश्रकायोगका जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होगा। इसी प्रकार शेष मार्गणाओंमें भी कालका विचार कर सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्तिका काल ले आना चाहिए।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ।

*** अब जघन्य कालानुगमका प्रकरण है। मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और तीनों वेदोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले नाना जीवोंका काल कितना है।**

§ ६५४. 'णाणाजीवेहि जहण्णट्ठिदिविहत्तिएहि' इन दोनों पदोंमें जो तृतीया विभक्ति है वह षष्ठी विभक्तिके अर्थमें जानना चाहिये। अथवा कर्ता अर्थमे तृतीया विभक्ति ग्रहण करनी चाहिये; क्योंकि 'जघन्य स्थितिविभक्तिवाले नाना जीवोंने कितना काल प्राप्त किया है' इस प्रकारका पदसम्बन्ध यहां विवक्षित है। शेष कथन सुगम है।

*** जघन्य काल एक समय है।**

§ ६५५. कुदो ? एदेसिं जहण्णणिसेयट्ठिदीए दुसमयकालाए एगसमयकालाए वा पयदाए विदियसमए चेव णिम्मूलविणासुवलंभादो ।

✽ उक्कस्सेण संखेज्जा समया ।

§ ६५६. कुदो ? णाणाजीवाणमणुसमयं जहण्णट्ठिदिं पडिवज्जंताणं संखेज्जमणुसपज्जत्तएहिंतो आगमुवलंभादो ।

✽ सम्मामिच्छत्त० अणंताणुबंधीणं चउक्कस्स जहण्णट्ठिदिविहत्तिएहि णाणाजीवेहि कालो केवडिओ ?

§ ६५७. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

✽ जहण्णेण एगसमओ ।

§ ६५८. कुदो ? एगणिसेगट्ठिदीए दुसमयकालाए विदिसमए परसरूवेण गमणुवलंभादो । अगमणे ण सा जहण्णट्ठिदी; दुवादिणिसेयाणं जहण्णत्तविरोहादो ।

✽ उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

६५९. कुदो ? सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लंताणमणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएंताणं च

---

§ ६५५. **शंका**—उक्त प्रकृतियोकी जघन्य स्थितिवालोका जघन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि इन प्रकृतियोंके जघन्य निषेककी स्थिति चाहे दो समय कालवाली हो या चाहे एक समय कालवाली हो तथापि दूसरे समयमें ही उसका निर्मूल विनाश पाया जाता है, अतः इनका जघन्य क ल एक समय कहा है ।

✽ उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

§ ६५६. **शंका**—उत्कृष्ट कालसंख्यात समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि प्रत्येक समयमें जघन्य स्थितिको प्राप्त होनेवाले नानाजीवोंका पर्याप्त मनुष्योंमेंसे आगमन पाया जाता है, जिनकी संख्या संख्यात है ।

✽ सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले नाना जीवोंका काल कितना है ?

§ ६५७. यह पृच्छासूत्र सरल है ।

✽ जघन्य काल एक समय है ।

§ ६५८. **शंका**—जघन्य काल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि इनकी दो समय काल प्रमाण एक निषेकस्थितिका दूसरे समयमें पररूपसे संक्रमण पाया जाता है । जब तक पररूपसे संक्रमण नहीं होता है तब तक वह जघन्य स्थिति नहीं है, क्योंकि दो आदि निषेकोंको जघन्य माननेमें विरोध आता है ।

✽ उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ६५९. **शंका**—उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण क्यों है ?

समाधान—क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाले और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी

पलिदो० असंखे०भागमेत्तजीवाणमावलियाए असंखे०भागमेत्तुवक्कमणकंडएसु तत्थ एगुक्कस्सकंडयकालग्गहणादो ।

❀ छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्तिएहि णाणाजीवेहि कालो केवडिओ ?

§ ६६०. सुगममेदं ।

❀ जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ६६१. कुदो ? चरिमट्ठिदिकंडयउक्कीरणकालग्गहणादो । एत्थ णिसेया चेय पहाणा कया ण कालो, एगसमयं मोत्तूण अंतोमुहुत्तकालपरूवणण्णहाणुववत्तीदो ।

§ ६६२. एवं जइवसहाइरियसुत्ताणं देसामासियाणं परूवणं काऊण संपहि एदेहि सूचिदत्थाणं लिहिदुच्चारणमणुवत्तइस्सामो । जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-बारसक०-तिण्णिवेद० जहण्णट्ठिदिवि०कालो ज० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया । अज० सव्वद्धा । सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० ज० ज० ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अज० सव्वद्धा । छण्णोक० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अज० सव्वद्धा । एवं सोहम्मीसाणादि जाव उवरिमगेवज्ज०-पंचिं-

---

विसंयोजना करनेवाले पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवोंके आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण उपक्रमण काण्डक होते हैं। उनमेंसे यहां एक उत्कृष्ट काण्डकका काल लिया गया है।

*** छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले नाना जीवोंका कितना काल है।**

§ ६६०. यह सूत्र सुगम है।

*** जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।**

§ ६६१. **शंका**—जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त क्यों है ?

समाधान—क्योंकि यहां अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीरण कालका ग्रहण किया है। यहां पर निषेकोंकी प्रधानता है कालकी नहीं, अन्यथा एक समयको छोड़कर अन्तर्मुहूर्त कालका कथन नहीं बन सकता था।

§ ६६२. इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके देशामर्षक सूत्रोंका कथन करके अब इनसे सूचित होनेवाले अर्थों पर जो उच्चारणा लिखी गई है उसका अनुसरण करते हैं—जघन्य कालका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और तीनों वेदोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाल जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिमग्रैवेयक तकके

दिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-तिण्णि-वेद०-चत्तारिकसा०-चक्खु०-अचक्खु० तिण्णिले०-भवसि०-सण्णि०-आहार त्ति। णवरि सोहम्मीसाणादिदेवेसु इत्थि-णवुंस० तेउपम्मलेस्सासु च छण्णोकसाय० जहण्णट्ठिदिकालो जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। इत्थि० णवुंस० ओघं छण्णोक०भंगो। पुरिस० इत्थि०-णवुंस० छण्णोक०भंगो। णवुंस० इत्थिवेद० ओघं छण्णोक०भंगो।

§ ६६३. आदेसेण णेरइएसु सत्तावीसपयडी० ज० जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अज० सव्वद्धा। सम्मत्त ओघं। एवं पढमपुढवि०-पंचिं०-तिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज०। पंचिं०तिरिक्खजोणिणीसु एवं चेव। णवरि सम्मत्तस्स

देव, पंचेन्द्रिय, पचेन्द्रियपर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचो मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कषायवाले, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले तीन लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि सौधर्म और ऐशान आदि कल्पके देवोंमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदमें तथा पीत और पद्मलेश्यावालोंमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। स्त्रीवेदवालोंमें नपुंसकवेदकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका काल ओघके समान है किन्तु इतनी विशेषता है कि जघन्य स्थितिका काल ओघसे छह नोकषायोंके समान है। पुरुषवेदवालोंमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भंग छह नोकषायोंके समान है। नपुंसकवेदवालोंमें स्त्रीवेदकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि जघन्य स्थितिका काल ओघसे छह नोकषायोंके समान है।

विशेषार्थ—यहां जिन मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका काल ओघके समान बतलाया है उनमें सौधर्मसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देव, पीत और पद्मलेश्यावाले तथा तीनों वेदवाले जीव भी सम्मिलित हैं परन्तु इन मार्गणाओंमें कुछ प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके कालमें कुछ विशेषता बतलाई है जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—बात यह है कि पुरुषवेदको छोड़ कर इन पूर्वोक्त मार्गणाओंमें एक जीवकी अपेक्षा छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त न होकर एक समय है अतः यहां नाना जीवोंकी अपेक्षा छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय ही प्राप्त होगा। तथा स्त्रीवेदियोंके नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति, पुरुषवेदियोंके स्त्री और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति तथा नपुंसकवेदियोंके स्त्री वेदकी जघन्य स्थिति अन्तिम स्थिति काण्डकके पतनके समय होती है अतः इन तीनों वेदवाले जीवोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघसे छह नोकषायोंके समान कहा है। तथा अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है।

§ ६६३. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। सम्यक्त्वकी अपेक्षा ओघके समान काल है। इसी प्रकार पहली पृथिवी, पंचेन्द्रियतिर्यंच और पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्तकोंमें जानना चाहिए। पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें

सम्मामिच्छत्तभंगो।

§ ६६४. विदियादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० ओघं। ओघम्मि छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिकालो जहण्णुक्कस्सेण चुण्णिसुत्तम्मि वप्पदेवाइरियलिहिदुच्चारणाए च अंतोमुहुत्तमिदि भणिदो। अम्हेहि लिहिदुच्चारणाए पुण जह० एगसमओ उक्क० संखेज्जा समया त्ति परूविदो, कालपहाणत्ते विवक्खिए तहोवलंभादो। तेण छण्णोकसायाणमोघत्तं ण विरुज्झदे। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्क० ज० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अज० सव्वद्धा। एवं जोइसि०-वेउव्वि०-विहंगणाणि त्ति। णवरि विहंग० अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो।

सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है।

विशेषार्थ—नरकमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न होते हैं, अतः यहां सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान बन जाता है। शेष कथन सुगम है। पहली पृथिवीके नारकी आदि मूलमें और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें सामान्य नारकियोंके समान काल सम्बन्धी व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा। किन्तु योनिमती तिर्यंचोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते, अतः वहां सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सम्यग्मिथ्यात्वके समान जानना चाहिये, क्योंकि योनिमती तिर्यंचोंके सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति ही प्राप्त होगी जो कि सम्यग्मिथ्यात्वके समान होती है।

§ ६६४. दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा ओघके समान काल है। चूर्णिसूत्रमें और वप्पदेव आचार्यके द्वारा लिखी गई उच्चारणामें ओघका कथन करते समय छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। परन्तु हमारे द्वारा लिखी गई उच्चारणामें जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है, क्योंकि प्रधानरूपसे कालकी विवक्षा होने पर जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय बन जाता है, अतः छह नोकषायोंके कालको ओघके समान कहनेमें कोई विरोध नहीं आता है। तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार ज्योतिषीदेव, वैक्रियिककाययोगी और विभंगज्ञानियोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि विभंगज्ञानियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है।

विशेषार्थ—ओघसे मिथ्यात्व, बारह कषाय और तीन वेदोंकी जघन्य स्थितिका जो जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है वह दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंके भी बन जाता है, क्योंकि जो सम्यग्दृष्टि जीव इन नरकोंसे निकलकर मनुष्य पर्यायमें आते हैं उन्हींके उक्त कर्मोंकी जघन्य स्थिति सम्भव है किन्तु इन नरकोंमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्टकाल ओघके समान अन्तर्मुहूर्त प्रमाण नहीं बनता। फिर इन नरकोंमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके कालको भी ओघके समान क्यों कहा? यह शंका है जिसे मनमें रखकर वीरसेन स्वामीने 'ओघम्मि छण्णोकसायाणं' इत्यादि वाक्यों द्वारा उसका समाधान किया है। उनके इस समाधानका भाव यह है कि

§ ६६५. सत्तमाए पुढवीए मिच्छत्त०-बारसक०-भय-दुगुंछ० उक्क०भंगो। सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंता०चउक्क०-सत्तणोक० ज० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अजह० सव्वद्धा।

§ ६६६. तिरिक्ख० मिच्छत्त०-बारसक०-भय-दुगुंछ ज० अज० सव्वद्धा।

चूर्णिसूत्र, वप्पदेवकी लिखी हुई उच्चारणा और वीरसेन स्वामीके द्वारा लिखी गई उच्चारणा इनमेंसे प्रारम्भकी दो पोथियोंमें ओघसे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त निबद्ध है किन्तु वीरसेन स्वामीके द्वारा लिखी गई उच्चारणामें ओघसे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय निबद्ध है और यहां ओघके अनुसार कथन किया जा रहा है, अतएव द्वितीयादि नरकोंमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके कालको ओघके समान कहनेमें कोई बाधा नहीं आती है। अब प्रश्न यह होता है कि आखिर इस मतभेदका कारण क्या है? इसका यह समाधान है कि चूर्णिसूत्र और वप्पदेवके द्वारा लिखी गई उच्चारणामें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका काल निषेकोंकी प्रधानतासे कहा है और वीरसेन स्वामीके द्वारा लिखी गई उच्चारणामें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका काल कालकी प्रधानतासे कहा है, अतः इस कथनमें मतभेद न जानकर विवक्षाभेद जानना चाहिये जिसका विस्तृत खुलासा पहले कर आये हैं। विभंगज्ञानमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग जो मिथ्यात्वके समान कहा है सो इसका कारण यह है कि विभंगज्ञानमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती अतः जो उपरिम ग्रैवेयकका देव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर वहांसे च्युत होता है उसके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है। पर ऐसे जीव संख्यात ही होंगे और यदि लगातार हों तो संख्यात समय तक ही होंगे, क्योंकि पर्याप्त मनुष्य संख्यात हैं। अतः विभंगज्ञानमें मिथ्यात्वके समान अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय जानना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ ६६५. सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका भंग उत्कृष्टके समान है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका काल सर्वदा है।

विशेषार्थ—सातवें नरकमें एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अब यदि आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण नाना जीव क्रमशः इन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिको प्राप्त हो तो उस सब कालका जोड़ असंख्यात आवलिप्रमाण होता है जो असंख्यात आवलियां पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होती हैं। सातवें नरकमें उक्त प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल भी इतना ही है अतः यहां उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके कालको इनकी उत्कृष्ट स्थितिके कालके समान कहा। किन्तु सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अब यदि आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण नाना जीव क्रमशः इनकी जघन्य स्थितिको प्राप्त हों तो उस सब कालका जोड़ आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होगा, अतः यहां उक्त छह प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ६६६. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य

सेसपयडीणं ज० अज० पंचिं०तिरिक्खभंगो। एवं काउ०। किण्ह-णीललेस्साणमेवं चेव। णवरि सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो। असंजद० तिरिक्खभंगो। णवरि मिच्छत्तस्स सम्मत्तभंगो। ओरालियमिस्स० तिरिक्खोघं। णवरि अणंताणु०चउक्क० ज० अज० सव्वद्धा। पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अज० सव्वद्धा। सम्मत्त-सम्मामि० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अज० सव्वद्धा। एवं सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०–बादरपुढविपज्ज०–बादरआउपज्ज०–बादरतेउपज्ज०–बादरवाउपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेयपज्ज०-तसअपज्जत्ते त्ति। णवरि पंचकाय-बादरपज्ज० मिच्छ० सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो।

स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है। इसी प्रकार कापोतलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिए। कृष्ण और नीललेश्यावाले जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। असंयतोंमें तिर्यंचोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमे मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कको जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका काल सर्वदा है। पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका काल सर्वदा है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सब विकलेन्द्रिय पंचेन्द्रियअपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादर जलकायिकपर्याप्त, बादर अग्निकायिकपर्याप्त, बादर वायुकायिकपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पांचों स्थावरकाय बादर पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलहकषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—तिर्यंचोंका प्रमाण अनन्त है, अतः उनमें कोई न कोई जीव निरन्तर मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिको प्राप्त होते रहते हैं, अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा कहा। अब शेष रहीं सात नोकषाय, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क ये तेरह प्रकृतियां, सो सामान्य तिर्यंचोंकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर इनकी जघन्य स्थिति पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके ही प्राप्त होती है और इन सबकी अजघन्य स्थिति पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके सर्वदा पाई जाती है, अतः इनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान कहा। किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल सामान्यकी अपेक्षा भी आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है और पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके भी इतना ही है अतः सामान्य तिर्यंचोंके इससे अधिक नहीं प्राप्त हो सकता है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वकी ओघ जघन्य स्थिति सर्वत्र बनजाती है, अतः सामान्य

§ ६६७. मणुस० मिच्छ० सम्म० सोलसक० तिण्णिवेद० जह० ज० एगस० । उक्क० संखेज्जा समया अज० सव्वद्धा । सम्मामि० छण्णोक० ओघं । मणुसपज्ज० एवं चेव, णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । इत्थिवेद० छण्णोक० भंगो । मणुसिणी०

तिर्यंचोंके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका काल पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान कहा। कापोत-लेश्यामें उक्त सब व्यवस्था बन जाती है अतः कापोतलेश्याके कथनको सामान्य तिर्यंचोके समान कहा। यही बात कृष्ण और नीललेश्याकी है। किन्तु कृष्ण और नील लेश्यावालोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते हैं अतः इनमें सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति प्राप्त होती है और इसलिये इन दोनों लेश्याओंमें सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके कालको सम्यग्मिथ्यात्वके समान कहा। असंयतोंके भी सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सामान्य तिर्यंचोंके समान बन जाता है, क्योंकि इनका प्रमाण भी अनन्त है। किन्तु मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके कालमें विशेषता है। बात यह है कि असंयत मनुष्य भी होते हैं और इस प्रकार असंयतोंके मिथ्यात्वकी ओघ जघन्य स्थिति भी बन जाती है, अतः असंयतोंके मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा जोकि सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगियोंके भी सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सामान्य तिर्यंचोंके समान बन जाता है, क्योंकि इनका प्रमाण अनन्त है। परन्तु औदारिकमिश्रकाययोगी जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं करते अतः इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति ही प्राप्त होती है और इसलिये इनमें इसका काल सर्वदा बन जाता है यही सबब है कि औदारिकमिश्रकाययोगमें अन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा कहा। पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें जो एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल दो समय तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है, नाना जीवोंकी अपेक्षा निरन्तर होनेवाले उस कालको यदि जोड़ा जाय तो वह आवलिके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं होता है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा। शेष कथन सुगम है। इसी प्रकार जो सब विकलत्रय आदि मार्गणाएं बतलाई है उनमें घटित कर लेना चाहिये। किन्तु पांचों स्थावर काय बादर पर्याप्त जीवोंमें एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अब यदि इसे आवलिके असंख्यातवें भागसे गुणित कर दिया जाय तो पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल प्राप्त होता है अतः पांचों स्थावर काय बादर पर्याप्त जीवोंके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ६६७. मनुष्योंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सोलह कषाय और तीन वेदकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। सम्यग्मिथ्यात्व और छह नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल ओघके समान है। मनुष्य पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है। तथा स्त्रीवेदका भंग छह नोकषायोंके समान है। मनुष्यनियोंमें सामान्य मनुष्योंके समान भंग है। किन्तु

मणुसभंगो । णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो । पुरिस० णवुंस० छण्णोकसायभंगो । मणुसअपज्ज० मिच्छ० सम्म० सम्मामि० सोलसक० भयदुगुंछ० जह० ज० एगस० । उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अज० जह० एगस० । उक्क० पलिदो० असंखे०-भागो । सत्तणोक० जह० ज० एगस० । उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अज० जह० अंतोमु० । उक्क० पलिदो० असंखे०भागो ।

इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है। तथा पुरुषवेद और नपुंसक वेदका भंग छह नोकषायोंके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—सामान्य मनुष्योंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सोलह कषाय और तीन वेदोंकी जघन्य स्थिति कहते समय पर्याप्त मनुष्योंकी मुख्यता है अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा। छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालमें भी यही बात है, अतः इनके कालको ओघके समान कहा क्योंकि ओघमें जो छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालको बतलाया है वह पर्याप्त मनुष्योंके ही सम्भव है। किन्तु सामान्य मनुष्योंके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंकी प्रधानतासे कहा है, क्योंकि उद्वेलनाकी अपेक्षा लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके भी सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सम्भव है और इसलिये सामान्य मनुष्योके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल ओघके समान आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण बन जाता है। शेष कथन सुगम है। उपर्युक्त सब कथन मनुष्य पर्याप्त जीवोंके भी बन जाता है किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालके कथनमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि मनुष्यपर्याप्त जीवोंका प्रमाण संख्यात ही है अतः इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल सम्यक्त्वके समान संख्यात समय ही होगा। तथा इनके स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट कालमें भी कुछ विशेषता है, क्योंकि इनके स्त्रीवेदका स्वोदयसे क्षय नहीं होता अतः जिस प्रकार यहाँ नोकषायोकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है उसी प्रकार यहां स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिये। सामान्य मनुष्योंके समान ही मनुष्यनियोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल है किन्तु सम्यग्मिथ्यात्व, पुरुषवेद और नपुंसक-वेदकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि मनुष्यनियोंकी संख्या भी संख्यात है, अतः इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालके समान संख्यात समय ही होगा। तथा पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके उत्कृष्ट कालके समान होगा, क्योंकि मनुष्यनियोंके इन दोनों वेदोंका स्वोदयसे क्षय नहीं होता है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका

§ ६६८. देवाणं णारगभंगो । एवं भवण०-वाण०, णवरि सम्म० सम्मामिच्छत्तभंगो । अणुदिसादि जाव अवराइद त्ति चउवीस-पयडीणं ज० ज० एगसमओ । उक्क० संखेज्जा समया । अज० सव्वद्धा । अणंताणु० ओघं। सव्वट्ठ० सव्वपय० जह० द्विदि० जह० एगस० उक्क० संखेज्जा समया। अज० सव्वद्धा एवं परिहार०। एवं संजद-सामाइयछेदो०-खइयसम्मादिट्ठि त्ति । णवरि छण्णोकसाय० ओघं।

उत्कृष्ट काल भी एक समय ही प्राप्त होता है अतः इनके नाना जीवोंकी अपेक्षा उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। तथा इनके उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और सान्तर मार्गणा होनेके कारण उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है। तथा इनके एक जीवकी अपेक्षा सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थिति कमसे कम अंतर्मुहूर्त काल तक पाई जाती है इसलिये सात नोकषायोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा। तथा शेष कथन पूर्वोक्त प्रकृतियोंके समान ही है।

§ ६६८. देवोंके नारकियोंके समान भंग है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल ओघके समान है। सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार परिहार विशुद्धिसंयतोंके जानना। तथा इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापना संयत, और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें छह नोकषायोंकी अपेक्षा काल ओघके समान।

विशेषार्थ—देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय, उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण, अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा तथा सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान बन जाता है इसलिये इनके कथनको नारकियोंके समान कहा। भवनवासी और व्यन्तरोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते इसलिये इनमें सम्यक्त्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका कुल काल सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। उक्त दोनों प्रकारके देवोंमें इस विशेषताको छोड़कर शेष सब कथन सामान्य देवोंके समान है। अनुदिश आदिमें प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति भवके अन्तिम समयमें होती है और ये जीव मरकर मनुष्य पर्याप्तकोंमें ही उत्पन्न होते हैं अतः इनके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा। तथा यहां सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य स्थिति कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टियोंके प्राप्त होती है अतः इसकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय ही प्राप्त होता है, क्योंकि कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि संख्यात ही होते हैं। पर यहां अनन्तानुबन्धीकी क्रमशः विसंयोजना करनेवाले जीव असंख्यात हैं अतः इसकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान बन जाता है। सर्वार्थसिद्धिमें देवोंका प्रमाण संख्यात ही है अतः वहां सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय ही प्राप्त होगा। शेष कथन सुगम है। सर्वार्थसिद्धिके समान परिहार विशुद्धि संयतोंके सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल प्राप्त होता है क्योंकि उनका

§ ६६६. एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० अज० सव्वद्धा। सम्मत्त-सम्मामि० पंचिंदिय-अपज्जत्तभंगो। एवं पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढवि०-अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउ०अपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउपज्ज-त्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०अपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्ता-त्ति। मदिसुदअण्णा०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णीसु एवं चेव, णवरि सत्तणोक० जह० तिरिक्खोघं।

प्रमाण भी संख्यात है। तथा संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भी सर्वार्थसिद्धिके देवोंके समान सम्भव सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल प्राप्त होता है, क्योंकि इनके सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति दर्शनमोहनीयकी क्षपणआदिके समय होती है और ये जीव संख्यात ही होते हैं। किन्तु इन संयत आदिके छह नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल ओघके समान है क्योंकि इनके क्षपकश्रेणीमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है।

§ ६६६. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंको जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है। इसी प्रकार पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पति-कायिक अपर्याप्त, बादर निगोद, बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, और सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, जीवोंके जानना चाहिये। मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालेका काल सामान्य तिर्यंचोंके समान है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंका प्रमाण अनन्त है इसलिये इनमें मिथ्यात्व आदि छब्बीस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल सर्वदा बन जाता है। तथा सर्वत्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीव स्वल्प हैं अतः एकेन्द्रियोंमें भी इनकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके कालको पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान कहा। आगे जो पृथिवी आदिक मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें कईका प्रमाण तो अनन्त है और कईका प्रमाण असंख्यात होते हुए भी बहुत अधिक है अतः इनमे भी एकेन्द्रियोंके समान सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका काल बन जाता है। यही बात मत्यज्ञानी आदि मार्गणाओंकी है किन्तु इनके सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके कालमें विशेषता है। बात यह है कि एक जीवकी अपेक्षा इनकी जघन्य स्थितिका काल

§ ६७०. वेउव्वियमिस्स० मिच्छत्त-सम्मत्त-सोलसक०-भयदुगुंछ० ज० ज० एगस० । उक्क० संखेज्जा समया । अज० ज० अंतोमु० । उक्क० पलिदो० असंखे०-भागो । णवरि सम्म० अज० ज० एयस० । सम्मामि० सत्तणोक० जह० पढमपु-ढविभंगो । अज० अणुक्कस्सभंगो ।

§ ६७१. आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-सुहुम०-जहाक्खादसंजदेत्ति उक्क-स्सभंगो । णवरि अवगद० छण्णोक० जह० ओघं । कम्मइय० एइंदियभंगो, णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० ज० ओघं । अज० अणुक्क०भंगो । एवमणाहारीणं ।

एक समय है अब यदि इसे आवलिके असंख्यातवें भागसे गुणा किया जाय तो आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है अतः इन मार्गणाओंमें सात नोकपायोकी जघन्य स्थितिके कालको सामान्य तिर्यंचोंके समान कहा, क्योंकि तिर्यंचोंके भी इतना ही काल प्राप्त होता है ।

§ ६७०. वैक्रियिक मिश्रकाययोगियोमें, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिवालोंका जघन्य काल एक समय है । सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोका भंग पहली पृथिवीके समान है तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोका भंग अनुत्कृष्टके समान है ।

विशेषार्थ—जब यथायोग्य मनुष्य संयत जीव मरकर वैक्रियिकमिश्रकाययोगी होते हैं तब उनके मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति पाई जाती है पर ऐसे जीवोंका प्रमाण संख्यातसे अधिक नहीं हो सकता अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा । पर यह जघन्य स्थिति अन्तिम समयमें होती है अतः इसमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा, क्योंकि वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा वैक्रियिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है इसलिये इनमें उक्त प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा । यही बात सम्यक्त्व प्रकृतिकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके संबन्धमें भी जानना चाहिये । किन्तु जिस कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीवोंके सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण स्थिति शेष रहनेपर वैक्रियिकमिश्रकाययोगकी प्राप्ति हुई है उसके सम्यक्त्वकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है । पहली पृथिवीमें सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है जो वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें भी घटित हो जाता है अतः इसके उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके कालको पहली पृथिवीके समान कहा । तथा इन आठ प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका काल अनुत्कृष्ट स्थितिके समान है वह स्पष्ट ही है ।

§ ६७१. आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगत वेदी, सूक्ष्म सांपरायिकसंयत और यथाख्यात संयतोंमें उत्कृष्टके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपगत वेदमें छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोका काल ओघके समान है । कार्मणकाययोगियोंमें एकेन्द्रियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोका काल ओघके समान है । तथा अजघन्यस्थितिविभक्तिवालोंका भंग अनुत्कृष्ट

§ ६७२. आभिणि०सुद०ओहि० ओघं, णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो। एवमोहिदंसण-सम्माइट्ठि त्ति। मणपज्ज० संजदभंगो। णवरि इत्थि० णवुंस० छण्णोकसायभंगो। संजदासंजद०-वेदय० अणुदिसभंगो। उवसम० चउवीसपयडी० ज० ज० एगसमओ। उक्क० संखेज्जा समया। अज० अणुक्क०भंगो। अणंताणु०चउक्क० उक्क०भंगो। सम्मामि० सव्वपय० जह० ज० एगस०। उक्क० संखेज्जा समया। अज० अणुक्क०भंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० ज० ज० एगस०। उक्क० आवलि० असंखे०भागो। सासण० सव्वपयडी० ज० ज० एगसमओ। उक्क० संखेज्जा समया। अज० ज० एगस०। उक्क० पलिदो० असंखे०भागो।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

*** णाणाजीवेहि अंतरं। सव्वपयडीणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि।**

§ ६७३. सुगममेदं।

*** जहण्णेण एगसमओ।**

के समान है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ ६७२. आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधि ज्ञानियोंमें ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है। इसी प्रकार अवधि दर्शनवाले और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। मनःपर्ययज्ञानियोंमें संयतोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका भंग छह नोकषायोंके समान है। संयतासंयत और वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अनुदिशके समान भंग है। उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग उत्कृष्टके समान है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सासादन सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

* अब नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगमका अधिकार है। सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तरकाल कितना है?

§ ६७३. यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य अन्तर काल एक समय है।

§ ६७४. कुदो ? उक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेणच्छिदसव्वजीवेसु अणुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मेण एगसमयमच्छिय तदियसमयम्हि उक्कस्सट्ठिदिबंधेण परिणदेसु उक्कस्सट्ठिदीए एगसमयंतरुवलंभादो।

❀ उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदि भागो।

§ ६७५. कुदो ? एक्किस्से ट्ठिदीए उक्कस्सट्ठिदिबंधकालो जदि अंतोमुहुत्तमेत्तो लब्भदि तो संखेज्जसागरोवमकोडाकोडीमेत्तट्ठिदीणं किं लभामो त्ति पमाणेण फलगुणिदिच्छाए ओवट्टिदाए अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तंतरकालुवलंभादो। एवं जइवसहपरूविदचुण्णिसुत्तं देसामासियं परूविय संपहि तेण सूचिदत्थस्सुच्चारणाइरियपरूविदवक्खाणं भणिस्सामो।

§ ६७६. अंतरं दुविहं जहण्णमुक्कस्सं च। तत्थ उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वपयडीणमुक्कस्संतरं के० ? जह० एगस०। उक्क० अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो। अणुक्क० णत्थि अंतरं। एवं सत्तसु पुढवीसु, सव्वतिरिक्ख०-मणुसतिय-सव्वदेव-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-छकाय०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय०-तिण्णिवेद-चत्तारि-क०-म-

---

§ ६७४. शंका—जघन्य अन्तरकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मरूपसे स्थित सब जीवोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मरूपसे एक समय तक रह कर तीसरे समयमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धरूपसे परिणत होने पर उत्कृष्ट स्थितिका एक समय प्रमाण अन्तरकाल पाया जाता है।

❀ उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

§ ६७५ शंका—उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण क्यों है ?

समाधान—एक स्थितिका उत्कृष्ट स्थितिबन्धकाल यदि अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है तो संख्यात कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितियोंका कितना प्राप्त होगा, इस प्रकार फल राशिसे इच्छा राशिको गुणित करके जो लब्ध आवे उसमें प्रमाणराशिका भाग देनेपर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके द्वारा कहे गये देशामर्षक चूर्णिसूत्रका कथन करके अब उसके द्वारा सूचित होने वाले अर्थका जो उच्चारणाचार्यने व्याख्यान किया है उसे कहते हैं—

§ ६७६. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है-ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तर कितना है ? जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, सब तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, सब देव, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, छहों स्थावरकाय, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कषायवाले,

दिसुदअण्णाण०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-छलेस्स०-भवसि०-अभवसि०-सम्मादि०-वेदय०-खइय०-मिच्छा०-सण्णि०-असण्णि०-आहारए त्ति।

§ ६७७. मणुसअपज्ज० सव्वपयडि० उक्क० ज० एगस०। उक्क० अंगुलस्स असंखेज्जदि० भागो। अणुक्क० ज० एगस०। उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं सासण० सम्मामि०दिट्ठि त्ति। वेउव्वियमिस्स० सव्वपयडी० उक्क० ओघं। अणुक्क० ज० एगस०। उक्क० बारस० मुहुत्ता। आहार०-आहारमिस्स० उक्क० ओघं। अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं। कम्मइय० सम्म०-सम्मामि० उक्क० ओघं।

मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, छहों लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी, असंज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—यहां पर सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जो जघन्य अन्तरकाल एक समय बतलाया है सो स्पष्ट ही है, किन्तु उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाते हुए उसका वीरसेन स्वामीने जो खुलासा किया है उसका भाव यह है कि प्रत्येक स्थितिका उत्कृष्ट बन्धकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इस हिसाबसे संख्यात कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण सब स्थितियोंका बन्धकाल जोड़ा जाय तो कुल कालका जोड़ अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्तसे संख्यात कोड़ाकोड़ी सागरोंके समयोंको गुणित करनेपर जो प्रमाण प्राप्त होता है वह एक अंगुलप्रमाण या अंगुलके संख्यातवें भागप्रमाण न होकर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है। अब यदि कुछ जीवोंने मोहनीयकी सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त किया, अनन्तर वे अन्यस्थितिविकल्पके साथ अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहें और इतने कालके भीतर अन्य कोई भी जीव उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त न हो तो सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल उक्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है। परन्तु मोहनीयकी सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता, क्योंकि अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीवोंका सर्वदा सद्भाव पाया जाता है। ऊपर सातों पृथिवियोंके नारकी आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा।

§ ६७७. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तरकाल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल बारहमुहूर्त है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तरकाल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। कार्मणकाययोगियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तरकाल ओघके समान है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल

ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सेसं ओघं । एवमणाहारीणं ।

§ ६७८. अवगद० चउवीसपयडी० उक्क० ओघं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० छम्मासा । णवरि दंसणतिय०-अट्ठकसा०-अट्ठणोक० वासपुधत्तं ।

अन्तर्मुहूर्त है । शेष कथन ओघके समान है । इसी प्रकार अनाहारकोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य सान्तर मार्गणा है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा, क्योंकि इस मार्गणाका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल जिस प्रकार ओघमें घटित कर आये हैं उसी प्रकार यहां भी घटित कर लेना चाहिये । सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तरकाल लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंके समान है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंके समान कहा । वैक्रियिकमिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त कहा । आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा । शेष सब कथन सुगम है । कार्मणकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरमें कुछ विशेषता है । शेष कथन ओघके समान है । बात यह है कि कार्मणकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है, अतः इसमें इन दोनो प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर भी उक्त प्रमाण ही प्राप्त होता है । यही बात अनाहारक मार्गणामें जानना चाहिये, क्योंकि मोहनीयकी सत्ता रहते हुए कार्मणकाययोगी जीव ही अनाहारक होता है ।

§ ६७८. अपगतवेदवालोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तर काल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल छह महीना है । किन्तु इतनी विशेषता है कि तीनों दर्शनमोहनीय, आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी अपेक्षा अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी सत्ता रहते हुए अपगतवेदका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण है, अतः इसमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके बिना शेष चौबीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण कहा । किन्तु उपशमश्रेणीका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है अतः अपगतवेदीके तीन दर्शनमोहनीय और आठ कषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण प्राप्त होगा । तथा जो नपुंसकवेद और स्त्रीवेदके उदयसे उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसीके अपगतवेद अवस्थामें आठ नोकषायोंका सत्त्व पाया जाता है पर इनका भी उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है अतः अपगतवेदमें आठ नोकषायोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण प्राप्त होगा । तात्पर्य यह है कि अपगतवेदमें पुरुषवेद और चार संज्वलनोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण और शेष उन्नीस प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण प्राप्त होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ६७९. अकसा० आहारभंगो । एवं जहाक्खादसंजदाणं । सुहुम० एवं चेव । णवरि लोसंजल० अणुक्क० उक्क० छम्मासा । उवसम० सव्वपयडी० उक्क० ओघं । अणुक्क० ज० एगस०, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि ।

एवमुक्कस्सओ अंतराणुगमो समत्तो ।

* एत्तो जहण्णयंतरं ।

६८०. सुगममेदं ।

* मिच्छत्त-सम्मत्त-अट्ठकसाय-छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिविहत्ति-अंतरं जहण्णेण एगसमओ ।

§ ६८१. कुदो ? पुव्विल्लसमए जहण्णट्ठिदिं कादूण तदणंतरविदियसमए अंतरिय पुणो तदियसमए अण्णेसु जीवेसु जहण्णट्ठिदिमुवगएसु एगसमयंतरुवलंभादो ।

---

§ ६७९. अकषायियोंमें आहारककाययोगियोंके समान भंग है । इसी प्रकार यथाख्यात संयतोंके जानना । सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है किलोभसंज्वलनकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । उपशम-सम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तरकाल ओघके समान है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल चौबीस दिन रात है ।

विशेषार्थ—अकषाय अवस्थाके रहते हुए मोहनीयकी चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता उपशान्त मोह गुणस्थानमें पाई जाती है और इसका जघन्य अन्तर एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण है तथा आहारककाययोगका अन्तरकाल भी इतना ही है, अतः अकषायी जीवोंके कथनको आहारककाययोगियोंके समान कहा । यही बात यथाख्यातसंयतोंके जानना चाहिये । सूक्ष्मसाम्प-रायिक संयतोंके भी यही बात घटित हो जाती है, पर क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक संयतका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण है अतः इसमें लोभकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना प्रमाण जानना चाहिये । उपशमसम्यक्त्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौबीस दिनरात कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

* अब इसके आगे जघन्य अन्तरानुगमका अधिकार है ।

§ ६८०. यह सूत्र सुगम है ।

* मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कषाय और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ६८१. **शंका**—जघन्य अन्तरकाल एक समय क्यों है ?

समाधान—क्योंकि कुछ जीवोंने पहले समयमें जघन्य स्थिति की । तदनन्तर दूसरे समयमें अन्तराल देकर पुनः तीसरे समयमें अन्य जीव जघन्य स्थितिको प्राप्त हुए इस प्रकार जघन्य अन्तरकाल एक समय प्राप्त होता है ।

❀ उक्कस्सेण छम्मासा ।

§ ६८२. कुदो ? खवगाणं छम्मासं मोत्तूण उवरि उक्कस्संतराणुवलंभादो ।

❀ सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिविहत्तिअंतरं जहण्णेण एगसमओ ।

§ ६८३. सुगममेदं ।

❀ उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्ते सादिरेगे ।

§ ६८४. कुदो ? कारणाणुरूवकज्जुवलंभादो । तं जहा—सम्मत्तं पडिवज्जंताण-मुक्कस्संतरं सादिरेगचउवीसमहोरत्ताणि जहा जादाणि तहा एदेसिं मिच्छत्तं गच्छमाणाणं पि उक्कस्संतरं सादिरेगचउवीसअहोरत्तमेत्तं । मिच्छत्तं गंतूण सम्मत्त-सम्मामिच्छ-त्ताणि उव्वेल्लणंताणं पि एवं चेव उक्कस्संतरं; अण्णहाभावस्स कारणाभावादो । एव-मणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोएंताणं संजुज्जमाणाणं च सादिरेयचउवीसअहोरत्तंतरस्स उक्कस्सस्स कारणं वत्तव्वं । सम्मत्तं पडिवज्जंताणं चउवीसअहोरत्तमेत्तुक्कस्संतरणियमो कुदो ? साभावियादो ।

---

* तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है ।

§ ६८२. **शंका**—उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना क्यो है ?

समाधान—क्योंकि क्षपकोंके छह महीना अन्तर कालको छोड़कर आगे उत्कृष्ट अन्तरकाल नहीं पाया जाता है ।

* सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ६८३. यह सूत्र सुगम है ।

* तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौवीस दिन रात है ।

§ ६८४. **शंका**—उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौवीस दिन रात क्यों है ?

समाधान—क्योंकि कारणके अनुरूप कार्य होता है । इसका खुलासा इस प्रकार है—जिस प्रकार सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौवीस दिनरात है उसी प्रकार मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका भी उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौवीस दिनरात है । मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाले जीवोंका भी इसी प्रकार उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है, क्योंकि इससे अन्य प्रकार होनेका और कोई कारण नहीं पाया जाता । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले और अनन्तानुबन्धीचतुष्कसे संयुक्त होने वाले जीवोके साधिक चौवीस दिनरात प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल के कारणका कथन करना चाहिये ।

शंका—सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल चौवीस दिन-रात प्रमाण होता है यह नियम किस कारणसे है ?

समाधान—स्वभावसे ही ऐसा नियम है ।

❀ तिण्हं संजलण-पुरिसवेदाणं जहण्णट्ठिदिविहत्तिअंतरं जहण्णेण एगसमओ।

§ ६८५. सुगममेदं।

❀ उक्कस्सेण वस्सं सादिरेयं।

§६८६. कोधजहण्णट्ठिदीए उक्कस्संतरकालो चत्तारि छम्मासा २४ माणस्स तिण्णि छम्मासा १८ मायाए दो छम्मासा १२ जेण होदि तेण तिण्हं संजलणाणमुक्कस्संतरकालो वासं सादिरेयमिदि ण घडदे, किंतु पुरिसवेद-माणसंजलणाणमेदमंतरं जुज्जदे; तत्थट्ठारसमासमेत्तुक्कस्संतरुवलंभादो त्ति ? होदि एसो दोसो जदि सव्वकालमुक्कस्संतराणं चेव संभवो होदि, ण पुण एवं संभवो उक्कस्संतराणमणुबद्धाणं जदि संभवो होदि तो दोण्हं चेय ण तिण्हं चदुण्हं वा। एवं कुदो णव्वदे ? तिण्हं संजलण-पुरिसवेदाणं वासं सादिरेयमुक्कस्संतरं भण्णमाणसुत्तादो। तेणेदेसिं चदुण्हं कम्माणं दोण्हं छम्मासाणमुवरि को वि जिणदिट्ठभावो कालो अहिओ त्ति वत्तव्वं। मायासंजलणाए संपुण्णवेछम्मासा चेव उक्कस्संतरं, तत्थ कथं वासं सादिरेयमेत्तंतरं जुज्जदे ? ण, तत्थ वि लोभोदएण दो-तिण्णिआदिवारं खवगसेढिं चडाविदे सादिरेयवेछम्मासमेत्तुक्कस्संतरुवलंभादो। जदि एवं तो माण-माया-लोभाणमेग-दो-तिसंयोगाणं

* तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर काल एक समय है।

§ ६८५. यह सूत्र सुगम है।

* तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष है।

§ ६८६. **शंका**—चूंकि क्रोधकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर काल चौबीस महीना, मानका अठारह महीना और मायाका बारह महीना होता है इसलिये तीन संज्वलनोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एक वर्ष नहीं बनता, किन्तु पुरुषवेद और मान संज्वलनका साधिक एक वर्ष अन्तरकाल बन जाता है, क्योंकि इन दोनों प्रकृतियोंका अठारह महीना प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल पाया जाता है ?

समाधान—यदि सर्वदा उत्कृष्ट अन्तरकालोंका ही संभव होता तो यह दोष होता परन्तु ऐसा संभव नहीं है। क्योंकि अनुबद्ध रूपसे उत्कृष्ट अन्तरकालोंकी यदि संभावना है तो दोकी ही है, तीन और चार की नहीं।

शंका—ऐसा किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—तीन संज्वलन और पुरुषवेदके साधिक एक वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर कालको कहनेवाले उक्त सूत्रसे ही यह जाना जाता है। अतः इन चार कर्मोंका एक वर्ष और इसके ऊपर जितना अधिक जिन भगवान्‌ने देखा हो उतना उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है, ऐसा कहना चाहिये।

शंका—मायासंज्वलनका पूरा एक वर्ष उत्कृष्ट अन्तर काल है, अतः उसका साधिक एक वर्ष उत्कृष्ट अन्तरकाल कैसे बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि लोभके उदयसे दो, तीन आदि बार जीवोंको क्षपकश्रेणीपर चढ़ाने पर मायाका भी साधिक एक वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है।

खवगसेढिचडणवारसहस्सेहि कोधसंजलणस्स संखेज्जसहस्सछमासंतरकालो किण्ण लब्भदे ? ण, संखेज्जसहस्संतरकालेसु मेलिदेसु वि सादिरेयवेछमासमेत्तपमाणत्तादो। तं कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो।

❀ लोभसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिविहत्तिअंतरं जहण्णेण एगसमयो।

§ ६८७. सुगममेदं।

❀ उक्कस्सेण छम्मासा।

§ ६८८. कुदो ? जस्स कस्स वि कसायस्स उदएण खवगसेढिं चडिदजीवाणं लोभस्स जहण्णट्ठिदिसंतकम्मुप्पत्तीदो। ण सेसाणमेसो कमो, सोदएणेव खवगसेढिं चडिदाणं जहण्णट्ठिदिसंतकम्मुप्पत्तीदो।

❀ इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण्णट्ठिदि [विहत्ति] अंतरं जहण्णेण एगसमओ।

§ ६८९. सुगममेदं।

❀ उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्साणि।

शंका—यदि ऐसा है तो कभी मान, कभी मान माया और कभी मान, माया लोभके उदयसे जीवोंको हजारों बार क्षपकश्रेणीपर चढ़ाते रहनेसे क्रोधसंज्वलनका संख्यात हजार छह महीना-प्रमाण अन्तरकाल क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, संख्यात हजार अन्तरकालोंके मिला देने पर भी क्रोधसंज्वलनके उत्कृष्ट अन्तरकालका प्रमाण साधिक एक वर्ष ही होता है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है

❀ लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है।

§ ६८७. यह सूत्र सुगम है।

❀ तथा उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है।

§ ६८८. **शंका**—उत्कृष्ट अन्तर छह महीना क्यों है ?

समाधान—क्योंकि जिस किसी भी कषायके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़े हुए जीवोंके लोभके जघन्य स्थिति सत्कर्मकी उत्पत्ति हो जाती है। परन्तु शेष कषायोंका यह क्रम नहीं है, क्योंकि, शेष कषायोंकी अपेक्षा स्वोदयसे ही क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवोंके जघन्य स्थिति सत्कर्मकी उत्पत्ति होती है।

❀ स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है।

§ ६८९. यह सूत्र सुगम है।

❀ तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात वर्ष है।

§ ६९०. कुदो, अप्पसत्थवेदाणमुदएण खवगसेढिं चडमाणजीवाणं पाएण संभवाभावादो।

§ ६९०. शंका—उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात वर्ष क्यों है ?

समाधान—क्योंकि अप्रशस्त वेदोंके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीव प्रायः नहीं पाये जाते हैं।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समय मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी, तथा चारित्र मोहनीयकी क्षपणाके समय आठ कषाय और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति नियमसे होती है और दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीयकी क्षपणाका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण है अतः उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीनाप्रमाण कहा। यद्यपि दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी भी जघन्य स्थिति होती है पर यह उद्वेलना प्रकृति है, अतः उद्वेलनाके समय भी इसकी जघन्य स्थिति प्राप्त होती है अतः इसका अन्तरकाल अलगसे कहा है। ऐसा नियम है कि कोई भी जीव यदि सम्यक्त्वको प्राप्त न हो तो साधिक चौबीस दिनरात तक सम्यक्त्वको नहीं प्राप्त होगा। तत्पश्चात् कोई न कोई जीव सम्यक्त्वको अवश्य ही प्राप्त होगा। इस परसे निम्न चार बातें फलित होती हैं (१) सम्यग्दृष्टि जीव यदि मिथ्यात्वको न प्राप्त हों तो साधिक चौबीस दिन तक नहीं प्राप्त होंगे। इसके बाद कोई न कोई सम्यग्दृष्टि जीव अवश्य ही मिथ्यादृष्टि हो जायगा। (२) यदि कोई भी जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका प्रारम्भ न करें तो साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं करेंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाका प्रारम्भ करेंगे। (३) यदि कोई भी जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना न करें तो साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं करेंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करेगा। (४) जिन जीवोंने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है वे यदि मिथ्यात्वमें जाकर पुनः उससे संयुक्त न हों तो अधिकसे अधिक साधिक चौबीस दिनरात तक नहीं होंगे इसके बाद कोई न कोई जीव अवश्य ही मिथ्यात्वमें जाकर पुनः उसका सत्त्व प्राप्त करेगा। इस कथनसे यह निष्कर्ष निकला कि सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात होता है तथा इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है यह तो स्पष्ट ही है। तथा संज्वलन क्रोध, संज्वलन मान, संज्वलन माया और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका जो जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष बतलाया है सो उसका खुलासा इस प्रकार है—जो भी जीव क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके लोभका उदय तो अवश्य ही होता है, शेष तीनका उदय हो और न भी हो। जो मायाके उदयसे क्षपकश्रेणी पर चढ़ता है उसके माया और लोभका उदय अवश्य होता है किन्तु शेष दोका उदय नहीं होता। जो जीव मानके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके मान, माया और लोभका उदय अवश्य होता है किन्तु क्रोधका उदय नहीं होता। तथा जो जीव क्रोधके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढता है उसके क्रोधादि चारोंका उदय अवश्य होता है। अब यदि पहले छह महीनामें केवल लोभके उदय वाले जीवोंको, दूसरे छह महीनामें माया और लोभके उदयवाले जीवोंको, तीसरे छह महीनामें मान, माया और लोभके उदयवाले जीवोंको और चौथे छह महीनामें चारों कषायोंके उदयवाले जीवोंको क्षपकश्रेणी पर चढ़ाया जाय तो क्रमसे लोभकी जघन्य स्थितिका छह महीना उत्कृष्ट अन्तर मायाकी जघन्य स्थितिका एक वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर, मानकी जघन्य स्थितिका डेढ़ वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर और क्रोधकी जघन्य स्थितिका दो वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है। अतएव

*** णिरयगईए सम्मामिच्छत्त-अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदि [विहत्ति] अंतरं जहण्णेण एगसमओ ।**

§ ६६१. सुगममेदं ।

*** उक्कस्सं चउवीसमहोरत्ते सादिरेगे ।**

§ ६६२. एदं पि सुगमं; ओघम्मि परूविदत्तादो । णवरि ओघम्मि उत्तंतरादो एदेणंतरेण सविसेसेण होदव्वं; एगगइमस्सिदूण ठिदस्स चउग्गइमल्लीणंतरेण सह समाणत्तविरोहादो ।

*** सेसाणि जहा उदीरणा तहा णेदव्वाणि ।**

§ ६९३. सेसाणि पयडिअंतराणि जहा उदीरणाए एदासिं पयडीणं परूविदाणि तहा परूवेदव्वं । संपहि जइवसहमुहविणिग्गयचुण्णिसुत्तस्स देसामासियस्स अत्थपरूवणं काऊण तेण सूचिदत्थस्स परूवणट्ठं लिहिदुच्चारणं भणिस्सामो ।

§ ६९४. जहण्णंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ

क्रोध, मान और माया संज्वलनकी जघन्य स्थितिका जो उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा है वह नहीं बन सकता है यह एक शंका है जिसका वीरसेन स्वामीने प्रारम्भमें उल्लेख करके उसका इस प्रकारसे समाधान किया है। वीरसेन स्वामीका कहना है कि इस प्रकार छह छह महीनाके अन्तरकाल लगातार नहीं प्राप्त होते हैं। कदाचित् यदि प्राप्त भी हुए तो दो ही अन्तरकाल प्राप्त हो सकते हैं। दो अन्तरकालोंके बाद तीसरे और चौथे अन्तरकालका प्राप्त होना तो किसी भी हालतमें सम्भव नहीं है। यदि ऐसा न माना जाय तो चूर्णिसूत्रकारने जो तीन संज्वलनोंका साधिक एक वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा है वह नहीं बन सकता है।

*** नरकगतिमें सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है ।**

§ ६६१. यह सूत्र सुगम है ।

*** तथा उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है ।**

§ ६६२. यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि इसका ओघ प्ररूपणाके समय कथन कर आये हैं। किन्तु इतना विशेष है कि जो अन्तर ओघमें कहा है उससे यह अन्तर कुछ अधिक होना चाहिये, क्योंकि एक गतिके आश्रयसे जो अन्तर स्थित है उसकी चार गतिसे संबन्ध रखनेवाले अन्तरके साथ समानता माननेमें विरोध आता है।

*** शेष प्रकृतियोंका अन्तरकाल, जिस प्रकार उदीरणामें अन्तर कहा है उस प्रकार जानना चाहिये ।**

§ ६९३. पहले जो पाँच प्रकृतियाँ गिना आये हैं उन्हें छोड़कर शेष प्रकृतियोंका जिस प्रकार उदीरणामें अन्तरकाल कहा है उस प्रकार उनका अन्तरकाल जानना चाहिये । इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके मुखसे निकले हुए देशामर्षक चूर्णिसूत्रके अर्थका कथन करके अब उससे सूचित होनेवाले अर्थका कथन करनेके लिये उसके ऊपर लिखी गई उच्चारणाको कहते हैं।

§ ६९४. जघन्य अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और

ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-अट्ठकसाय८-छण्णोक०६-लोभसंज० ज० अंतरं ज० एगसमओ, उक्क० छम्मासा। अज० णत्थि अंतरं। सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० ज० ज० एगसमओ, उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादिरेयाणि। अज० णत्थि अंतरं। इत्थि०-णवुंस० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं। अज० णत्थि अंतरं। तिण्णिसंज०-पुरिस० जह० ज० एगस०, उक्क० वासं सादिरेयं। अज० णत्थि अंतरं। एवं मणुस-मणुसपज्ज०-पंचिं०-पंचिं०-पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-चक्खु०-अचक्खु० सुक्क०-भवसि०-सण्णि०-आहारि त्ति। णवरि मणुसपज्ज० इत्थिवेद० जह० उक्क० छम्मासा।

§ ६९५. आदे० णेरइएसु मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० उक्क०भंगो। सम्मत्त० ज० जह० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं। अज० णत्थि अंतरं। सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्क० ज० जह० एगस०। उक्क० चउवीस अहोरत्ताणि सादिरेयाणि। अज० णत्थि अंतरं। एवं पढमाए पंचिंदियतिरिक्ख-पचिं०तिरि०पज्ज०। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सम्मत्तस्स सम्मामिच्छत्तभंगो। एवं पंचिं०तिरि०

आदेशनिर्देश। उनमेसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कषाय, छह नोकषाय और लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है। तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है।

§ ६९५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग उत्कृष्टके समान है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंके इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान

जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसि०-वेउव्विय० जोगे त्ति ।

§ ६९६. तिरिक्ख० मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछ० ज० अज० णत्थि अंतरं । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० पढमपुढवीभंगो । सत्तणोक० एवं चेव । पंचिं०तिरि०-अपज्ज० पंचिं०तिरिक्खजोणिणीभंगो । णवरि अणंताणु०चउक्क० अपज्जत्तुकस्सभंगो । एवं सव्वविगलिंदिय-पंचिं०अपज्ज०-तसअपज्जत्ते त्ति ।

है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैक्रियिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—नारकियोंके सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण बतला आये हैं तथा यह भी बतला आये हैं कि इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तरकाल नहीं होता । इसी प्रकार यहां भी मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तरकालके विषयमें जानना चाहिये । कारण जो उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समय बतला आये हैं वे ही यहां जानना चाहिये । किन्तु शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिके अन्तरकालके विषयमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि नरकमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, अतः वहां सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्राप्त होता है, क्योंकि सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टिके ही प्राप्त होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन रात जानना चाहिये । इसका कारण ओघ-प्ररूपणाके समय बतला ही आये हैं । तथा इन छहों प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं पाया जाता यह स्पष्ट ही है । मूलमें पहली पृथिवीके नारकी आदिक जो और तीन मार्गणाएं गिनाई हैं उनमे यह सब व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान कहा है । द्वितीयादि पृथिवियोमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते हैं अतः वहां सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति सम्भव न होकर आदेश जघन्य स्थिति पाई जाती है जो उद्वेलनाके समय सम्भव है और उद्वेलनाका उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात होता है अतः यहां सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका अन्तर सम्यग्मिथ्यात्वके समान कहा । यहां इतनी ही विशेषता है शेष सब कथन सामान्य नारकियोंके समान है । मूलमें जो पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिमती आदि मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें दूसरी पृथिवीके समान व्यवस्था बन जाती है, इसलिये उनके कथनको दूसरी पृथिवीके समान कहा ।

§ ६९६. तिर्यंचोमें मिथ्यात्व बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग पहली पृथिवीके समान है । सात नोकषायोंका भंग भी इसी प्रकार जानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा भंग पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—तिर्यंचोंका प्रमाण अनन्त है । उनमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं अतः इनका अन्तर काल नहीं है । तिर्यंचोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वके समय, सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य

§ ६६७. मणुसिणीसु सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० ओघं। सेस० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं। अज० णत्थि अंतरं। मणुसअपज्ज० छव्वीसपयडीणं उक्कस्सभंगो। सम्म०-सम्मामि० जह० अज० जह० एयसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो।

§ ६९८. देवाणं णारगभंगो। एवं सोहम्मादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति एवं चेव। णवरि सम्म०-अणंताणु०चउक्क० जह० ज०

स्थिति उद्वेलनाके समय और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति विसंयोजनाके समय पाई जाती है जिनका अन्तरकाल पहले नरकके समान यहां भी बन जाता है, अतः इनके भंगको पहली पृथिवीके समान कहा तथा सात नोकषायोंकी जघन्य स्थिति, जो एकेन्द्रिय स्थितिसत्त्वके समान स्थितिको बांधकर पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुए हैं उनके, प्रतिपक्ष प्रकृतिके बन्धकालके अन्तिम समयमें होती है। अब यदि नानाजीवोंकी अपेक्षा इसका अन्तरकाल देखा जाय तो पहली पृथिवीके नारकियोंके समान यहां भी जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है इसलिये तिर्यंचोंमें सात नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका भंग पहले नरकके समान कहा। पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंके पहले सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर दूसरी पृथिवीके समान कर आये हैं उसी प्रकार यहां पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके कर लेना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती, इसलिये यहां अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति प्राप्त होती है और इसलिये यहां इनकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है जो कि इनके अनन्तानुबन्धीकी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान है। यही कारण है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिके अन्तरको अपने ही अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान कहा। मूलमें जो सब विकलेन्द्रिय आदि मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी यही व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कथनको पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान कहा।

§ ६६७. मनुष्यनियोंमें सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा अन्तरकाल ओघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। तथा अजघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवोंका अन्तरकाल नहीं है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा भंग उत्कृष्टके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—मनुष्यनियोंके दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षपणाका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण पाया जाता है, अतः इनमें सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीको छोड़कर शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा। शेष कथन सुगम है। मनुष्यअपर्याप्तकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ६९८. देवोंमें नारकियोंके समान भंग है। इसी प्रकार सौधर्म कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंके जानना चाहिये। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके भी इसी प्रकार

एगस०, उक्क० वासपुधत्तं पलिदो० संखे०भागो ।

§ ६६६. एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० ज० अज० णत्थि अंतरं । सम्मत्त०-सम्मामि० पंचिं०तिरि०अपज्जत्तभंगो । एवं पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि०-सुहुमपुढवि०पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउ०-बादरआउ अपज्ज०-सुहुमआउ०-सुहुमआउ०पज्जत्तापज्जत्त-तेउ०-बादरतेउ०-बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउ०-सुहुमतेउ०पज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ०-सुहुमवाउ०पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेयअपज्ज०-वणप्फदि-णिगोदबादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-कम्मइय० अणाहारि त्ति । णवरि पच्छिमदोपदेसु सम्मत्त० जह० तिरिक्खोघं । सम्म० सम्मामि० अज० अणुक्कस्सभंगो । पंचकाय०बादरपज्ज० पंचिं०तिरि०अपज्जत्तभंगो ।

जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर काल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल क्रमशः वर्षपृथक्त्व और पल्योपमके संख्यातवें भागप्रमाण है ।

विशेषार्थ—अनुदिश आदिमें अधिकसे अधिक वर्षपृथक्त्व काल तक कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होता है और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती है अतः इनमें सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण कहा । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें अधिकसे अधिक पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण काल तक कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता है और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं होती है इसलिये इनमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ६६६. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तर काल नहीं है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान भंग है । इसी प्रकार पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद, बादर वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, बादर निगोद, बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु अन्तिम दो पदोंमें इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तर काल सामान्य तिर्यंचोंके समान है और सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है । पांचों स्थावरकाय बादर पर्याप्त जीवोंमें पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान भंग है ।

§ ७००. ओरालियमिस्स० तिरिक्खोघं। णवरि अणंताणु०चउक्क० एइंदियभंगो। वेउव्वियमिस्स० सम्मत्त-सम्मामि० ज० देवोघं। सेस० उक्क०भंगो।

§ ७०१. आहार०-आहारमिस्स० उक्क०भंगो०। एवमकसा०-जहाक्खादसंजदे त्ति। इत्थि० सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० ओघं। मिच्छत्त-सम्मत्त-

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है तथा अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल नहीं है यह पहले बतला आये हैं उसी प्रकार एकेन्द्रियोंके जानना चाहिये, इसलिये एकेन्द्रियोंके उक्त दो प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके अन्तरका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान कहा। शेष कथन सुगम है। मूलमें सामान्य पृथिवी आदि जो और मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, इसलिये इनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा। किन्तु कार्मणकाययोग और अनाहारकोंमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि इनमें कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होते हैं अतः यहाँ सम्यक्त्वकी ओघ जघन्य स्थिति बन जाती है। तदनुसार यहाँ इसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है जो सामान्य तिर्यंचोंके इस प्रकृतिकी जघन्य स्थितिके अन्तरके समान है। अतः यहाँ सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिके अन्तरको सामान्य तिर्यंचोंके समान कहा। तथा इन दोनों मार्गणाओंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है और यही यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट या अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल है, इसलिये यहाँ इन दो प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिके अन्तरको अनुत्कृष्ट स्थितिके अन्तरके समान कहा। पाँचों स्थावरकाय बादर पर्याप्त जीवोंमे सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तरकाल पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान प्राप्त होता है, अतः इनके कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान कहा।

§ ७००. औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमे अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा एकेन्द्रियोंके समान भंग है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तर सामान्य देवोंके समान है। तथा शेष प्रकृतियो का अन्तरकाल उत्कृष्टके समान है।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्रकाययोगमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती है इसलिये इनके उक्त प्रकृतियोकी ओघ जघन्य स्थिति न प्राप्त होकर आदेश जघन्य स्थिति प्राप्त होती है जिसका यहाँ अन्तर नहीं पाया जाता। यही बात एकेन्द्रियोंके है। अतः औदारिकमिश्रकाययोगमे अनन्तानुबन्धी चतुष्कके भंगको एकेन्द्रियोंके समान कहा। सामान्य देवोंमे सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है जो वैक्रियिकमिश्रकाययोगमे भी सम्भव है अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भंगको सामान्य देवोंके समान कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ७०१. आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमे उत्कृष्टके समान भंग है। इसी प्रकार अकषायी और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये। स्त्रीवेदवालोंमें सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग ओघके समान है। मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ

वारसक०-णवणोक० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अंतरं । एवं णवुंसयवेदाणं । पुरिस० मिच्छत्त०-सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० ओघं । वारसक०-णवणोक० ज० ज० एगस०, उक्क० वासं सादिरेयं । अज० णत्थि अंतरं । अवगद० मिच्छत्त०-सम्मत्त-सम्मामि०-अट्ठक०-अट्ठणोक० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० एवं चेव, विसेसाभावादो । सेसाणं जह० ओघं । अज० अणु-क्क०भंगो ।

§ ७०२. कोध० ओघं । णवरि णवक०-छण्णोक० ज० ज० एगस०, उक्क० वासं सादिरेयं । अज० णत्थि अंतरं । एवं माण-माय० । एवं लोभ० । णवरि लोभसंजल० ओघं ।

नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व प्रमाण है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार नपुंसक-वेदवालोंके जानना चाहिये । पुरुषवेदवालोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्ता-नुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा अन्तर काल ओघके समान है । तथा बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तर नहीं है । अपगतवेदवालोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, आठ कषाय और आठ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तर भी इसी प्रकार जानना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तर ओघके समान है और अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका भंग अनुत्कृष्टके समान है ।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयकी क्षपणा और चारित्रमोहनीयकी क्षपणामें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उदयका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व बतलाया है, अतः स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहा । पुरुषवेदमें क्षपकश्रेणीका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है, इसलिये इसमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा । अपगतवेदमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और आठ कषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थिति उपशमश्रेणीकी अपेक्षा पाई जाती है । तथा जो जीव स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं उनके आठ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थिति पाई जाती है । आठ नोकषायोंकी अजघन्य स्थिति अपगतवेदी उपशमश्रेणीवाले जीवोंके भी सम्भव है पर इनका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, अतः अपगतवेदमें उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०२. क्रोधकषायवालोंमें अन्तर ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि नौ कषाय और छः नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार मान और मायाकषायवाले जीवोंके जानना चाहिए । लोभकषायवाले जीवोंके भी इसी प्रकार

§ ७०३. मदि-सुदअण्णा० तिरिक्खोघं। णवरि सम्मत्त-अणंताणु० एइंदिय-भंगो। एवं मिच्छादि०-असण्णि त्ति। विहंग० सम्मामिच्छत्तमोघं। सेसपयडीणमुक्क०भंगो। णवरि सम्म० सम्मामि०भंगो।

§ ७०४. आभिणि०-सुद० ओघं। णवरि सम्मामि० सम्मत्तभंगो। एवं संजद०-सामाइय-छेदो०-सम्मादिट्ठि त्ति। ओहिणाणि०-ओहिदंसणी० एवं चेव। णवरि ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं। एवं मणपज्ज०।

जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि लोभसंज्वलनकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है।

विशेषार्थ—यद्यपि क्रोध कषायमें सब प्रकृतियोंका कथन ओघके समान कहा है पर ओघमें अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, प्रत्याख्यानावरण चतुष्क, लोभसंज्वलन और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना बतलाया है जो क्रोधमें किसी भी हालतमें सम्भव नहीं है, क्योंकि क्षपकश्रेणीमें क्रोधका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष पाया जाता है अतः यहां उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा। मान, माया और लोभमें भी यह व्यवस्था बन जाती है। किन्तु क्षपकश्रेणीमें लोभका उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है. अतः लोभमें लोभसंज्वलनका अन्तर ओघके समान ही जानना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ ७०३. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान अन्तर है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा भंग एकेन्द्रियोंके समान है इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। विभंगज्ञानियोंमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है। शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्टके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है।

विशेषार्थ—मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें न तो कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न होता है और न अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजना ही होती है अतः इनमें इन प्रकृतियोंके भंगको एकेन्द्रियोंके समान कहा। विभंगज्ञानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होती है अतः इसमें सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान और सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान बन जाता है। शेष कथन सुगम है।

§ ७०४. आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानियोंमें ओघके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है। इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंके भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानियोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी जीवोंके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना नहीं होती, अतः यहां सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान कहा। मूलमें संयत आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें उक्तप्रमाण व्यवस्था बन जाती है इसलिये उनके कथनको आभिनिबोधिकज्ञानी आदिके समान कहा। अवधिज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंमें यह व्यवस्था बन तो जाती

§ ७०५. परिहार० मिच्छत्त०-सम्मत्त०-सम्मामि० ज० ज० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं । अज० णत्थि अंतरं । अणंताणु०चउक्क० ओघं । सेसपयडि० उक्क०-भंगो । सुहुम० तेवीसपयडी० ज० अज० ज० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । लोभसंजल० अवगद०भंगो । संजदासंजद० मिच्छत्त-सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० ओघं । सम्मामि० सम्मत्तभंगो । सेसपयडि० उक्क०भंगो । असंजद० तिरिक्खोघं । णवरि मिच्छत्त०-सम्मत्तं० ओघभंगो ।

§ ७०६. काउ० तिरिक्खोघं । किण्ह०-णील० एवं चेव । णवरि सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो । तेउ०-पम्म० सम्मामिच्छत्तमोघं । सेसपयडि० संजदासंजदभंगो । अभवसि० छव्वीसपयडी० ओरालियमिस्सभंगो । खइय० एक्कवीसपयडी० ओघं ।

है पर क्षपक श्रेणीमें इनका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है अतः ओघमें जिनकी जघन्य स्थितिका क्षपकश्रेणीमें वर्षपृथक्त्वसे कम अन्तर सम्भव है उनकी जघन्य स्थितिका यहां जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण जानना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानमें भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ७०५. परिहारविशुद्धिसंयतोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तर नहीं है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । सूक्ष्मसांपरायिकसंयतोंमें तेईस प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । तथा लोभसंज्वलनका भंग अवगतवेदवालोंके समान है । संयतासंयतोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी स्थितिविभक्तिवालोंका अन्तर ओघके समान है । सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । असंयतोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान भंग जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें मिथ्यात्व और सम्यक्त्वका भंग ओघके समान है ।

विशेषार्थ—परिहारविशुद्धिसंयममें क्षायिकसम्यग्दर्शनकी प्राप्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, अतः यहां मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा । सूक्ष्मसांपरायमें मिथ्यात्व आदि तेईस प्रकृतियोंकी सम्भावना उपशमश्रेणीकी अपेक्षा है और उपशमश्रेणीका जघन्य अन्तर एक समय तथा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, अतः यहां उक्त प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा । संयतासंयतोंके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना नहीं होती, अतः यहां सम्यग्मिथ्यात्वका भंग सम्यक्त्वके समान कहा । असंयतके दर्शनमोहनीयकी क्षपणा होती है, अतः यहां मिथ्यात्व और सम्यक्त्वका भंग ओघके समान कहा ।

§ ७०६. कापोतलेश्यावालोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान भंग जानना चाहिये । कृष्ण और नील लेश्यावालोंमें भी इसीप्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । पीत और पद्मलेश्यावालोंमें सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर ओघके समान है तथा शेष प्रकृतियोंका भंग संयतासंयतोंके समान है । अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भंग

वेदय० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०—अणंताणु०चउक्क० आभिणि०भंगो । सेसपयडी० उक्क०भंगो । उवसम० अणंताणु०चउक्क० ज० अज० ज० एगस०, उक्क० चउवीस-महोरत्ताणि सादिरेयाणि । सेसपयडी० उक्क०भंगो । सासाण०-सम्मामि० उक्क०भंगो ।

एवमंतराणुगमो समत्तो ।

§ ७०७. भावाणुगमो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण उक्कस्साणुक्कस्सपदाणं सव्वेसिं को भावो ? ओदइओ; मोहोदएण विणा तेसिमसंभवादो । ण उवसंतकसाएण वियहिचारो, तत्थ संतस्स मोहणीयस्स उदओ णत्थि चेवे त्ति णियमाभावादो । भाविम्मि भूदोवयारेण तत्थ वि ओदइयभावुवलंभादो । एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति ।

§ ७०८. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वपयडि० ज० अज० को भावो ? ओदइओ । कुदो ? सरीरणामकम्मोदएण कम्मइयवग्गणक्खंधाणं कम्मभावेण परिणामुवलंभादो । एसो अत्थो एत्थ पहाणो त्ति

औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंका अन्तर ओघके समान है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान है । तथा शेष प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । उपशम-सम्यग्दृष्टियोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौवीस दिन रात है । तथा शेष प्रकृतियोंका भंग उत्कृष्टके समान है । सासादन और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंमें उत्कृष्टके समान भंग है ।

विशेषार्थ—कृष्ण और नीललेश्यामें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होता है अतः इनमें सम्यक्त्वके भंगको सम्यग्मिथ्यात्वके समान कहा । पीत और पद्म लेश्यामें सम्यग्मि-थ्यात्वकी उद्वेलना होती है अतः इनमें सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान कहा । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ ।

§ ७०७. भावानुगम दो प्रकार है—जघन्य और उत्कृष्ट । उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सभी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट पदोंका कौनसा भाव है ? औदायिक भाव है । क्योंकि मोहनीय कर्मके उदयके विना कोई पद नहीं होता है इसलिये सब पदोंमें औदायिक भाव है । यदि कहा जाय कि ऐसा मानने पर उपशान्तकषायके साथ व्यभिचार प्राप्त होता है सो भी बात नहीं है, क्योंकि वहां पर विद्यमान मोहनीयका उदय नहीं ही होता है ऐसा नियम नहीं है क्योंकि भाविकार्यमें भूत कार्यका उपचार कर देनेसे वहां भी औदायिक भाव पाया जाता है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ७०८. अब जघन्य भावानुगमका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कौनसा भाव है ? औदायिक भाव है । औदयिक भाव क्यों है ? क्योंकि शरीर नामकर्मके उदयसे कार्मण वर्गणास्कन्धोंका कर्मरूपसे परिणमन पाया जाता है ।

घेत्तव्वो ण पुव्विल्लत्थो, उवयारमवलंबिय अवट्ठिदत्तादो। एवं णेदव्वं जाव अणाहारए त्ति।

एवं भावाणुगमो समत्तो।

* सण्णियासो।

§ ७०९. उच्चदि त्ति एत्थ पदज्झाहारो कायव्वो, अण्णहा सुत्तट्ठावगमाणुववत्तीदो। कः सन्निकर्षः? सन्निकृष्यन्ते प्रकृतयो यस्मिन् स सन्निकर्षो नामाधिकारः। एदमहियारसंभालणसुत्तं।

* मिच्छत्तस्स उक्कस्सियाए ट्ठिदीए जो विहत्तिओ सो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सिया कम्मंसिओ सिया अकम्मंसिओ।

§ ७१०. कुदो? जदि अणादियमिच्छाइट्ठी सादियमिच्छाइट्ठी वा उव्वेल्लिद-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसंतकम्मिओ मिच्छत्तस्स उक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधदि तो सम्मत्त सम्मामिच्छत्ताणमकम्मंसिओ होदि। जदि पुण सादियमिच्छाइट्ठी अणुव्वेल्लिदसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसंतकम्मो उक्कस्सियं ट्ठिदिं बंधदि तो संतकम्मंसिओ त्ति दट्ठव्वो। संपहि असंतकम्मियम्मि णत्थि सण्णिकासो; भावस्स अभावेण सह संबंधविरोहादो।

यह अर्थ यहां पर प्रधान है ऐसा ग्रहण करना चाहिये, पहलेका अर्थ नहीं, क्योंकि वह उपचारका आश्रय लेकर अवस्थित है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ।

❀ अब सन्निकर्षको कहते हैं।

§ ७०९. 'सण्णियासो' इस सूत्रमें 'उच्चदि' इस क्रियापदका अध्याहार करना चाहिये, अन्यथा सूत्रके अर्थका ज्ञान नहीं होसकता है।

शंका—सन्निकर्ष किसे कहते हैं?

समाधान—जिसमें प्रकृतियाँ सन्निकृष्ट की जाती हैं अर्थात् जिसमें प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थिति आदिकी अपेक्षा संयोग बतलाया जाता है वह सन्निकर्ष नामका अधिकार है।

यह सूत्र अधिकारके सम्हालनेके लिये आया है।

❀ जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला है वह कदाचित् सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवाला होता है और कदाचित् सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवाला नहीं होता है।

§ ७१०. **शंका**—ऐसा क्यों है?

समाधान—यदि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव या जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वसत्कर्मकी उद्वेलना कर दी है ऐसा सादि मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधता है तो वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवाला नहीं होता है। और जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व सत्कर्मकी उद्वेलना नहीं की है ऐसा सादि मिथ्यादृष्टि जीव यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधता है तो वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवाला होता है ऐसा जानना चाहिये। जिस जीवके कर्मकी सत्ता नहीं होती उसके सन्निकर्ष नहीं होता है, क्योंकि भावका अभावके

तत्थ संतकम्मियस्स सण्णियासपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

*** जदि कम्मंसिओ णियमा अणुक्कस्सा ।**

§ ७११. कुदो ? मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदीए बद्धाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदीए वेदयसम्मादिट्ठिपढमसमए चेव समुप्पज्जमाणाए उप्पत्तिविरोहादो । ण च पढमसमए वेदगसम्माइट्ठिपडिबद्धं कज्जं मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मियमिच्छाइट्ठिपडिबद्धं होदि; कज्ज-कारणणियमाभावप्पसंगादो । तदो णियमा अणुक्कस्सा त्ति सद्दहेयव्वं ।

*** उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव एगा ट्ठिदि त्ति ।**

§ ७१२. एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिबंधकाले सम्मत्तट्ठिदी सगुक्कस्सं पेक्खिदूण समयूणा दुसमयूणा तिसमयूणा वा ण होदि; सम्मत्तुक्कस्सट्ठिदिधारयवेदगसम्मादिट्ठिविदियसमए तदियसमए वा मिच्छत्तकम्मस्स बंधाभावादो । ण च मिच्छत्तपच्चएण बज्झमाणाणं पयडीणं तेण विणा बंधो अत्थि; अतकज्जत्तप्पसंगादो । तम्हा मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिबंधकाले सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदीए सगसगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणियाए होदव्वं । केत्तिएणूणा ? समयूण-

---

साथ सम्बन्धका विरोध है, अतः सत्कर्मवालोंके सन्निकर्षका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं

*** यदि वह जीव सत्कर्मवाला होता है तो नियमसे उसके इन दोनोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति होती है ।**

§ ७११. क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमे ही होती है, अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय उसकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है । और वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयसे सम्बन्ध रखनेवाला कार्य मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टिके साथ सम्बद्ध नहीं होसकता, अन्यथा कार्यकारण नियमके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है । इसलिये मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्मवालेके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ऐसा श्रद्धान करना चाहिये ।

*** वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर दो समयवाली एक स्थिति पर्यन्त होती है ।**

§ ७१२. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । वह इस प्रकार है—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम, दो समय कम या तीन समय कम नहीं होती है, क्योंकि सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके धारक वेदकसम्यग्दृष्टिके दूसरे या तीसरे समयमें मिथ्यात्व कर्मका बन्ध नहीं होता है । यदि कहा जाय कि मिथ्यात्वके निमित्तसे बंधनेवाली प्रकृतियोंका मिथ्यात्वके विना भी बन्ध होता है सो भी बात नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर वह मिथ्यात्वका कार्य नहीं होगा । अतः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम अवश्य होनी चाहिये ।

वेदगसम्मत्त जहण्णकालेण मिच्छत्तं गंतूणुक्कस्ससंकिलेसावूरणजहण्णकालेण च। एक्केण सम्मत्तसंतकम्मिएण मिच्छाइट्ठिणा उक्कस्ससंकिलेसमावूरिय बद्धमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणा सव्वजहण्णपडिभग्गद्धमच्छिय वेदगसम्मत्तं घेत्तूण कयसम्मत्तुक्कस्सट्ठिदिणा अंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्तसम्मत्तुक्कस्सट्ठिदिं कमेण अधट्ठिदिगलणाए जहण्णवेदगसम्मत्तद्धमेत्तेण ऊणियं करिय मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णकालेणावूरिदुक्कस्ससंकिलेसेण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए एत्तियमेत्तेणेव कालेणूणत्तुवलंभादो।

§ ७१३. पुणो मिच्छत्तस्स समयूणुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय अवट्ठिदपडिहग्गकालेण अधट्ठिदिगलणाए ऊणं करिय वेदगसम्मत्तं घेत्तूण सम्मत्तुक्कस्सट्ठिदिं समयूणमुप्पाइय अवट्ठिदसम्मत्तमिच्छत्तद्धाओ कमेण गमिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए सम्मत्तट्ठिदी सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण समयाहियअंतोमुहुत्तेण ऊणा होदि। एवं दुसमयूणमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय अवट्ठिदपडिहग्गसम्मत्तमिच्छत्तद्धाओ जहण्णियाओ कमेण गमिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए सम्मत्तट्ठिदीए सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण दुसमयाहिय-

---

शंका—कमका प्रमाण कितना है ?

समाधान—एक समय कम वेदक सम्यक्त्वका जघन्य काल और मिथ्यात्वको प्राप्त होकर उत्कृष्ट संक्लेशको पूर्ण करनेवाला जघन्य काल ये दोनों काल यहां कम का प्रमाण है। जिसने उत्कृष्ट संक्लेशको करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधा है ऐसे किसी एक सम्यक्त्व सत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टि जीवने मिथ्यात्वसे च्युत होनेमें लगनेवाले सबसे जघन्य काल तक मिथ्यात्वमें रह कर वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त किया और वहां सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिको किया। अनन्तर वह जीव सम्यक्त्वकी अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिको क्रमसे अधःस्थितिगलनाके द्वारा वेदक सम्यक्त्वके जघन्य काल प्रमाण कम करके मिथ्यात्वमें गया और वहां उसने सबसे जघन्य कालके द्वारा उत्कृष्ट संक्लेशको पूरा करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधा इस प्रकार वेदक सम्यक्त्वके पहले समयसे लेकर यहां तकका काल ही यहां कम का प्रमाण जानना चाहिये। अर्थात् इतने कालको सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे घटा देने पर जो स्थिति शेष रहे अधिकसे अधिक उतनी अनुत्कृष्ट स्थिति मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय संभव है, इससे और अधिक नहीं।

§ ७१३. पुनः मिथ्यात्वकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और अवस्थित प्रतिभग्न कालको अधःस्थितिगलनाके द्वारा कम करके अनन्तर वेदक सम्यक्त्वको ग्रहण करके और वेदक सम्यक्त्वके पहले समयमें सम्यक्त्वकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको उत्पन्न करके तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंको क्रमसे व्यतीत करके जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण कम होती है। इसी प्रकार मिथ्यात्वकी दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर तदनन्तर प्रतिभग्नकाल, सम्यक्त्वकाल और मिथ्यात्वकाल इन तीनो अवस्थित जघन्य कालोंको क्रमसे बिता कर जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट

अंतोमुहुत्तूणा होदि । एवं ति-चदुसमयादि जावावलियमुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छरादिमूणं करिय णेदव्वं ।

§ ७१४. संपहि आबाधाकंडएणूणसम्मत्तट्ठिदीए इच्छिज्जमाणाए सव्वजहण्ण-सम्मत्तद्धाए सव्वजहण्णमिच्छत्तद्धाए च ऊणेण आबाहाकंडएण ऊणियं मिच्छत्तट्ठिदिं बंधाविय पुणो पडिहग्गो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए सम्मत्तुक्कस्सट्ठिदिमंतोमहुत्तूणसत्तरिमेत्तं पेक्खिदूण वट्टमाणसम्मत्तट्ठिदी एगाबाहा-कंडएणूणा होदि ।

§ ७१५. संपहि आबाहाकंडयस्स हेट्ठा इच्छिज्जमाणे दोहि अवट्ठिदअंतोमुहुत्तेहि ऊणाबाहाकंडएण समयाहिएण ऊणियं मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय अवट्ठिदजहण्ण-द्धाओ तिण्णि वि अधट्ठिदिगलणाए कमेण गालिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए सम्मत्तट्ठिदी सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण समयाहियआबाहाकंडएण ऊणा होदि । एव-मेदमत्थपदं चित्तेणावहारिय ओदारेदव्वं जाव णिव्वियप्पा अंतोकोडाकोडिमेत्ता सम्मत्तट्ठिदी जादा त्ति । णवरि जत्तिय-जत्तियआबाहाकंडएहि ऊणं सम्मत्तट्ठिदि-मिच्छदि तत्तिय-तत्तियमेत्ताबाहाकंडयाणि दोहि अवट्ठिदजहण्णाद्धाहि परिहीणाणि

स्थितिको देखते हुए दो समय अधिक अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण कम होती है । इसी प्रकार तीन और चार समयसे लेकर एक आवली, एक मुहूर्त, एक दिन, एक पक्ष, एक महीना, एक ऋतु, एक अयन, एक वर्ष आदिको कम करके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति ले आना चाहिये ।

§ ७१४. अब मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी एक आबाधा काण्डकसे कम उत्कृष्ट स्थिति इच्छित है, अतः सबसे कम सम्यक्त्वके कालको और सबसे कम मिथ्यात्वके कालको आबाधाकाण्डकमेसे कम करके जो शेष रहे उतने आबाधाकाण्डकसे कम मिथ्यात्वकी स्थितिको बंधा कर पुनः मिथ्यात्वसे निवृत्त होकर और सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अनन्तर जो मिथ्यात्वमें जा कर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बंधके समय सम्यक्त्वकी अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए वर्तमान सम्यक्त्वकी स्थिति एक आबाधाकाण्डक कम होती है ।

§ ७१५. अब मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय एक आबाधाकाण्डकसे नीचे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति इच्छित है, अतः समयाधिक आबाधाकाण्डकमेसे दो अवस्थित अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कालको कम करने पर समयाधिक आबाधाकाण्डकका जितना काल शेष रहे उतना कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बंधा कर तदनन्तर तीनों ही अवस्थित जघन्य कालोंको अधःस्थितिगलनाके द्वारा क्रमसे गला कर जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक एक आबाधाकाण्डक काल प्रमाण कम होती है । इस प्रकार इस अर्थपदको अपने चित्तमें धारण करके सम्यक्त्वकी स्थितिको तब तक कम करते जाना चाहिये जब तक निर्विकल्प अन्तः कोड़ाकोड़ी प्रमाण सम्यक्त्वकी स्थिति प्राप्त हो । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय जहां जितने जितने आबाधाकाण्डकोंसे कम सम्यक्त्वकी स्थिति इच्छित हो वहां दो अवस्थित जघन्य कालोंको उतने उतने आबाधाकाण्डकोंमेंसे कम करने पर जो काल

उक्कस्सहिदिम्मि ऊणाणि करिय बंधिदूण ओदारेदव्वं। संपहि मिच्छत्तमस्सिदूण हेट्ठा ओदारेदुं ण सक्कदे सव्वविसुद्धेण मिच्छाइहिणा घादिदस०गजहण्णहिदिसंतं तिहि अवहिदजहण्णद्धाहि यूणं सम्मत्तहिदी पत्ता त्ति।

§ ७१६. संपहि सम्मत्तसंतकम्मियमिच्छाइहिजीवे घेत्तूणुव्वेल्लणाए मिच्छत्तुक्कस्सहिदीए सह सम्मत्तहेहिमहिदीणं सण्णियासो वुच्चदे। तं जहा—तत्थ समयाहियउव्वेल्लणकंडयमेत्तजीवे अस्सिदूण सण्णियासपरूवणं कस्सामो। एत्थ ताव समयाहियकंडयमेत्तजीवाणं सम्मत्तहिदीए दीहत्तं वुच्चदे—पढमजीवो मिच्छत्तधुवहिदीदो समुप्पण्णसम्मत्तधुवहिदीए उवरि समयूणुक्कीरणद्धाहियसयलेगुव्वेल्लणकंडयधारओ विदियजीवो समयूणुक्कीरद्धाहियसमयूणुव्वेल्लणकंडएण अहियसम्मत्तधुवहिदिधारओ तदियजीवो समयूणुक्कीरणद्धाहियदुसमऊणुव्वेल्लणकंडएणब्भहियसम्मत्तधुवहिदिधारओ चउत्थजीवो समयूणुक्कीरणद्धाहियतिसमयूणुव्वेल्लणकंडयब्भहियसम्मत्तधुवहिदिधारओ पंचमजीवो समयूणुक्कीरणद्धाहियचदुसमयूणुव्वेल्लणकडयब्भहियसम्मत्तधुवहिदिधारओ एवं णेदव्वं जाव समयाहियउव्वेल्लणकंडयमेत्तजीवा त्ति। तत्थ एदेसु जीवेसु जो पढमजीवो तेणुव्वेल्लणएगकंडए

शेष रहे उतना कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये। इसके आगे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी स्थितिको अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे और नीचे उतारना शक्य नहीं है क्योंकि घात करने पर जिसके (संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तके योग्य) मिथ्यात्वकी सबसे जघन्य स्थितिका सत्त्व है ऐसे सर्वविशुद्ध मिथ्यादृष्टिने मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा तीन अवस्थित जघन्य कालोंसे न्यून सम्यक्त्वकी स्थिति प्राप्त कर ली है।

§ ७१६. अब सम्यक्त्व सत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टि जीवका आश्रय लेकर उद्वेलनामें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे नीचेकी स्थितियोंका सन्निकर्ष कहते हैं। जो इस प्रकार है—इस कथनमें पहले एक समय अधिक उद्वेलनाकाण्डकप्रमाण जीवोंका आश्रय लेकर सन्निकर्षका प्ररूपण करेंगे। अतः यहां पर पहले एक समय अधिक आबाधाकाण्डकप्रमाण जीवोंके सम्यक्त्वकी स्थितिका दीर्घत्व कहते हैं—मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिसे जो सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थिति उत्पन्न होती है उसके ऊपर एक समय कम उत्कीरणाकालसे अधिक पूरे उद्वेलनाकाण्डकका धारक प्रथम जीव है। एक समय कम उत्कीरणाकालको एक समय कम उद्वेलनाकाण्डकमें मिला देने पर जो प्रमाण हो उतने प्रमाणसे अधिक सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिका धारक दूसरा जीव है। एक समय कम उत्कीरणाकालको दो समय कम उद्वेलनाकाण्डकमें मिला देनेपर जो प्रमाण हो उतने प्रमाणसे अधिक सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिका धारक तीसरा जीव है। एक समय कम उत्कीरणाकालको तीन समय कम उद्वेलनाकाण्डकमें मिला देनेपर जो प्रमाण हो उतने प्रमाणसे अधिक सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिका धारक चौथा जीव है। एक समय कम उत्कीरणा कालको चार समय कम उद्वेलनाकाण्डकमें मिला देने पर जो प्रमाण हो उतने प्रमाणसे अधिक सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिका धारक पांचवां जीव है। इस प्रकार समयाधिक उद्वेलनाकाण्डकप्रमाण जीव प्राप्त होने तक इसीप्रकार कथन करते जाना चाहिये। अब इन जीवोंमें जो पहला जीव है उसके द्वारा एक उद्वेलनाकाण्डकके घात करने पर सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे एक समय कम सम्यक्त्वकी स्थिति

पादिदे सम्मत्तधुवट्ठिदीदो समयूणा सम्मत्तट्ठिदी होदि। ताधे चेव मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए बद्धाए अवरो सण्णियासवियप्पो होदि। पुणो तदणंतरविदियजीवेण उव्वेल्लणकंडए पादिदे सेससम्मत्तट्ठिदी सम्मत्तधुवट्ठिदीदो दुसमयूणा होदि। ताधे तेण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि। पुणो तदियजीवेण उव्वेल्लणकंडए खंडिदे सेससम्मत्तट्ठिदी सम्मत्तधुवट्ठिदीदो तिसमयूणा। तत्थ तेण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि। पुणो चउत्थजीवेण उव्वेल्लणकंडए खंडिदे सेससम्मत्तट्ठिदी सम्मत्तधुवट्ठिदीदो चदुसमयूणा। ताधे तेण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि। पंचमजीवेण उव्वेल्लणकंडए खंडिदे तत्थ सेससम्मत्त-ट्ठिदी सम्मत्तधुवट्ठिदीदो पंचहि समएहि ऊणा। एदेण कमेण चरिमजीवेणुव्वेल्लकंडए खंडिदे तत्थ सेससम्मत्तट्ठिदी सम्मत्तधुवट्ठिदीदो समयाहियउव्वेल्लणकंडएणूणा। ताधे तेण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो लब्भदि। एवं पढम-वारपरूवणा गदा।

§ ७१७. एदं परूवणमवहारिय विदिय-तदिय-चउत्थादि जाव पलिदोवमस्स असंखे०भागमेत्तवारेसु उव्वेल्लणकंडए पादिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय सण्णि-यासवियप्पा उप्पाएदव्वा। तत्थ चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए पादिदाए सम्मत्तट्ठिदी सेसा समयूणुदयावलियमेत्ता होदि। ताधे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए

प्राप्त होती है। और उसी समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष-विकल्प प्राप्त होता है। पुनः तदनन्तर दूसरे जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके घात करने पर सम्यक्त्व की शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे दो समय कम होती है। तथा उसी समय उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होता है। पुनः तीसरे जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुव स्थितिसे तीन समय कम होती है। तथा उसी समय उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त होता है। पुनः चौथे जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे चार समय कम होती है। तथा उसी समय उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त होता है। पुनः पांचवें जीवके द्वारा उद्वेलनाकाण्डकके खण्डित करने पर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे पांच समय कम होती है। इसी क्रमसे अन्तिम जीवके द्वारा उद्वेलना काण्डकके खण्डित करने पर वहां सम्यक्त्वकी शेष स्थिति सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे समयाधिक उद्वेलनाकाण्डकप्रमाण कम होती है। तथा उसी समय उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रथमबार प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ७१७. इस प्रकार इस प्ररूपणाको समझ कर आगे दूसरी, तीसरी और चौथी बारसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भागबार उद्वेलनाकाण्डकोंका घात कराके और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सन्निकर्षविकल्प उत्पन्न कर लेने चाहिये। उसमें भी अन्तिम उद्वेलना-काण्डककी अन्तिम फालिके घात करनेपर सम्यक्त्वकी शेष स्थिति एक समय कम उदयावलिप्रमाण प्राप्त होती है। तथा उसी समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्ष-

अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि । दुसमयूणुदयावलियमेत्तसम्मत्तद्विदिधारएण मिच्छत्तु-क्कस्सद्विदीए पबद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि । एवं गंतूण दुसमयकालेग-सम्मत्तणिसेयद्विदिधारएण मिच्छत्तुक्कस्सद्विदीए पबद्धाए चरिमो सण्णियासवियप्पो होदि । एदस्स सुत्तस्स एसा संदिट्ठी ।

० ० ०	०२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	००००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००
० ० ०	०००००२०००२०००२०००२०००२०००२०००२०००

❀ णवरि चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा ।

§ ७१८. जहा सेसुव्वेल्लणकंडएसु णाणाजीवे अस्सिदूण णिरंतरट्ठाणाणि लद्धाणि तथा चरिमुव्वेल्लणकंडयम्मि णिरंतरट्ठाणाणि किण्ण लब्भंति ? ण, चरिम-जहण्णुव्वेल्लणकंडयादो कम्हि वि जीवे समयूणादिकमेणूणचरिमुव्वेल्लणकंडयाणुवलंभादो । उव्वेल्लणकण्डयफालीओ सव्वजीवेसु सरिसाओ किण्ण होंति ? ण, तासिं सरिसत्ते संते धुवट्ठिदीए हेट्ठा सांतरट्ठाणुप्पत्तिप्पसंगादो । ण च एवं; चरिमकंडयचरिमफालिं मोत्तूण अण्णत्थ णिरंतरकमेण सण्णियासपरूवयसुत्तेणेदेण सह विरोहादो । एवं पढमपरूवणा समत्ता ।

विकल्प प्राप्त होता है । तथा सम्यक्त्वकी दो समय कम उदयावलिप्रमाण स्थितिको धारण करने-वाले जीवके द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध करने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होता है । इसी प्रकार आगे जाकर सम्यक्त्वके एक निषेककी दो समय कालप्रमाण स्थितिको धारण करनेवाले जीवके द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध करने पर अन्तिम सन्निकर्ष-विकल्प प्राप्त होता है । इस सूत्रकी यह संदृष्टि है । (संदृष्टि मूलमें देखिये ।)

किन्तु इतनी विशेषता है कि ये सन्निकर्षविकल्प अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिसे रहित हैं ।

§ ७१८. **शंका**—जिस प्रकार शेष उद्वेलना काण्डकोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा सन्निकर्षके निरन्तर स्थान प्राप्त होते हैं उसी प्रकार अन्तिम उद्वेलनाकाण्डकमें निरन्तर स्थान क्यों नहीं प्राप्त होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि किसी भी जीवके अन्तिम जघन्य उद्वेलनाकाण्डकसे एक समय कम आदि क्रमसे न्यून अन्य अन्तिम उद्वेलना काण्डक नहीं उपलब्ध होता है ।

शंका—उद्वेलना काण्डककी फालियां सब जीवोंमें समान क्यों नहीं होती हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यदि उनको समान माना जाता है तो ध्रुवस्थितिके नीचे सान्तर स्थानों की उत्पत्तिका प्रसंग प्राप्त होता है । परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा मानने पर अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालिको छोड़ कर अन्य सब स्थानोंमें निरन्तर क्रमसे सन्निकर्षका कथन करने-वाले इसी सूत्रके साथ विरोध आता है । इस प्रकार प्रथम प्ररूपणा समाप्त हुई।

विशेषार्थ—सन्निकर्ष दो या दो से अधिक वस्तुओंके सम्बन्धको कहते हैं। प्रकृतमें मोहनीयकी उत्तर प्रकृतियोंकी स्थितियोंका प्रकरण है, जिनके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये चार भेद हैं। तदनुसार यहाँ मोहनीयकी किस प्रकृतिकी कौन-सी स्थितिके रहते हुए उससे अन्य किस प्रकृतिके कितने स्थितिविकल्प सम्भव हैं इसका विचार किया गया है। उसमें भी पहले मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके कितने स्थितिविकल्प किस प्रकार प्राप्त होते हैं यह बतलाया है। यद्यपि यह सम्भव है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता न हो, क्योंकि जो अनादि मिथ्यादृष्टि है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हो सकता है पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता नहीं पाई जाती। इसी प्रकार जिसने सम्यक्त्वसे च्युत होनेके बाद सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर दी है उसके भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके होने पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता नहीं पाई जाती। पर यहां सन्निकर्षका प्रकरण है इसलिये ऐसे जीवका ही ग्रहण करना चाहिये जिसके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता हो। अब देखना यह है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वके कितने स्थितिविकल्प सम्भव हैं। बात यह है कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अपने बन्धके समय मिथ्यादृष्टिके होती है और सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयमें प्राप्त होती है जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है, क्योंकि जिस मिथ्यादृष्टि जीवने वेदकसम्यक्त्वके योग्य कालमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है वह यदि अतिलघु अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त हो जाय तो उसके पहले समयमें मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थिति सम्यक्त्व प्रकृतिरूपसे संक्रमित हो जाती है जो सम्यक्त्वप्रकृतिकी अपेक्षा उसकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। पर इस समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं रहती, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिमें अन्तर्मुहूर्त कम हो गया है। और हमें सर्वप्रथम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी अधिकसे अधिक कौनसा स्थितिविकल्प सम्भव है यह लाना है, अतः पूर्वोक्त सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवको अतिलघु अन्तर्मुहूर्त काल तक वेदकसम्यक्त्वमें रख कर मिथ्यात्वमें ले जाय और वहां अतिलघु अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त कराके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे। इस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती है किन्तु अनुत्कृष्ट स्थिति होती है जो अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा नियमसे पूर्वोक्त दो अन्तर्मुहूर्त कम है। इससे सिद्ध हुआ कि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी नियमसे अनुत्कृष्ट स्थिति होती है। फिर भी मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका केवल यही विकल्प सम्भव नहीं है किन्तु इसके नीचे सम्यक्त्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिके दो समयवाली अनुत्कृष्ट स्थिति तक जितने भी विकल्प हो सकते हैं वे सब सम्भव हैं किन्तु कुछ अपवाद है जिसका उल्लेख हम यथास्थान करेंगे। इन सब स्थितिविकल्पोंको लानेके लिये आगे कही जानेवाली चार बातें ध्यानमें रखनी चाहिये। (१) मिथ्यात्वका स्थितिबन्ध (२) प्रतिभग्नकाल अर्थात् उत्कृष्ट संक्लेशसे निवृत्त होकर सम्यक्त्वके योग्य विशुद्धिको प्राप्त होनेका काल (३) वेदकसम्यक्त्वका काल और (४) मिथ्यात्वमें जाकर उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होनेका काल। अब पहले मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम, दो समय कम आदि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे अनन्तर नम्बर २ के प्रतिभग्नकालके भीतर उसे वेदकसम्यक्त्वके योग्य विशुद्धि प्राप्त करावे। इसके बाद नम्बर ३ के वेदकसम्यक्त्वके कालके प्रथम समयमें मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वबद्ध स्थितिका सम्यक्त्वमें संक्रमण करावे। पश्चात् वेदक सम्यक्त्वमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक उस जीवको रखकर मिथ्यात्वमें

लेजाय और वहां नम्बर चारके काल द्वारा उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त कराके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे और इस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ सम्यक्त्वकी उत्तरोत्तर एक एक समय कम स्थितिका सन्निकर्ष प्राप्त करता जाय। यहां नम्बर २, ३ और ४ के काल तो अवस्थित रहते हैं उनमे घटा-बढ़ी नहीं होती किन्तु नम्बर एकमें जो मिथ्यात्वकी स्थिति कही है उसमें एक एक समय घटता जाता है और इसीलिये सन्निकर्षके समय सम्यक्त्वकी स्थितिमें भी एक एक समय घटता जाता है। इस प्रकार यह क्रम सम्यक्त्वकी नम्बर २, ३ और ४ के कालसे कम अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक चलता रहता है, क्योंकि संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तके मिथ्यात्वकी अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे कम स्थितिका बन्ध नहीं होता। अब सम्ममेसे जो नम्बर २, ३ और ४ के कालको कम किया है सो सन्निकर्षके समय तक इतना काल और कम हो जाता है अर्थात् उस समय सम्यक्त्वकी स्थिति इन तीन कालोंसे कम अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण रहती है। मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी स्थितिके इतने सन्निकर्ष विकल्प तो पूर्वोक्त क्रमसे प्राप्त होते हैं किन्तु आगेके सन्निकर्ष विकल्प उद्वेलनाकी अपेक्षासे प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवके मिथ्यात्वका स्थितिबन्ध अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरसे कम न होनेके कारण संक्रमणकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी पूर्वोक्त स्थितिसे कम स्थिति नहीं प्राप्त की जा सकती है। फिर भी सम्यक्त्वके आगेके स्थितिविकल्प नाना जीवोंकी अपेक्षासे प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि एक-एक स्थितिकाण्डकका उत्कीरणाकाल यद्यपि अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है फिर भी स्थितिकाण्डकका घात अन्तिम फालिके पतनके समय ही होता है इससे पहलेके उत्कीरणा कालके समयोंमें तो स्थितिकाण्डकके पूरे निषेकोंका पतन न होकर उनके नियमित संख्यावाले परमाणुओंका ही पतन होता है, अतः एक जीवकी अपेक्षा उद्वेलनामें सम्यक्त्वकी स्थितिके सब सन्निकर्ष विकल्प नहीं प्राप्त हो सकते हैं और इसीलिये वीरसेन स्वामीने आगेके सन्निकर्ष विकल्पोंको प्राप्त करनेके लिये नाना जीवोंकी अपेक्षा कथन किया है। उसमें भी यहाँ सर्व प्रथम सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे एक समय कम, दो समय कम आदि स्थितिविकल्प प्राप्त करना है, क्योंकि तभी तो सम्यक्त्वके उन स्थितिविकल्पोंके साथ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त किये जा सकेंगे, अतः उद्वेलनाके लिये ऐसी स्थितियोंका ग्रहण करना चाहिये जिससे उद्वेलनाके होनेपर सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिसे एक समय कम, दो समय कम आदि स्थितिविकल्प प्राप्त किये जा सकें। इसी प्रकार अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतन तक उत्तरोत्तर एक-एक समय कमके क्रमसे स्थितियोंको घटाते जाना चाहिये पर इतनी विशेषता है अन्तिम स्थिति-काण्डकका प्रमाण सर्वत्र एक समान है, अतः सम्यक्त्वके अन्तिम स्थितिकाण्डक प्रमाण स्थिति-विकल्प सन्निकर्षमें नहीं प्राप्त हो सकते हैं, क्योंकि नाना जीवोंकी अपेक्षा भी वह सबके एकसी ही होगी। तत्पश्चात् सम्यक्त्वकी स्थितिके एक समय कम एक आवलिप्रमाण स्थिति विकल्पोंके शेष रहने पर उनकी अपेक्षा भी तत्प्रमाण सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त कर लेना चाहिये। आगे अंक-संदृष्टिसे पूर्वोक्त कथनके खुलासा करनेका प्रयत्न किया जाता है—यहाँ जितने भी अंक दिये जा रहे हैं वे सब काल्पनिक हैं। उनसे केवल पूर्वोक्त कथनके समझनेमें सहायता मिलती है, अतः उनकी योजना की गई है।

मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति	मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थिति	प्रतिभग्नकाल
१०००	३००	१६
वेदकसम्यक्त्व जघन्य काल	उत्कृष्ट संक्लेश पूरण काल	
१६	१६	

मिथ्यात्वकी बन्ध-स्थिति	अ० अ० काल	संक्रमणसे प्राप्त सम्यक्त्वकी स्थिति	वे० स० काल	सं० पू० काल	मि० की उ० स्थि० अ० से स० सम्यक्त्वकी स्थि०
१०००	१६	९८४	१६	१६	९५२
९९९	"	९८३	"	"	९५१
९९८	"	९८२	"	"	९५०
९९७	"	९८१	"	"	९४९
९९६	"	९८०	"	"	९४८
९९५	"	९७९	"	"	९४७
९९४	"	९७८	"	"	९४६
....	....	....	....	....	....
३०२	"	२८६	"	"	२५४
३०१	"	२८५	"	"	२५३
३००	"	२८४	"	"	२५२
					स० की ध्रुवस्थिति

इतने सन्निकर्ष विकल्प संक्रमणसे प्राप्त हुए हैं। ये कुल सन्निकर्ष विकल्प ७०१ हुए। अब आगे अंकसंदृष्टिसे उद्वेलनाकी अपेक्षा सन्निकर्ष विकल्पोंके खुलासा करनेका प्रयत्न किया जाता है—

नाना जीव ८, स्थितिकाण्डक १६, उत्कीरणकाल ४

नाना जीव	सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थिति	१ समय कम उ० का०	उत्तरोत्तर एक एक समय कम उ० काण्डक	सम्यक्त्वकी सत्त्वस्थिति	उत्कीरणाकाल और उद्वेलना काण्डकका योग	सम्यक्त्वकी उद्वेलनासे प्राप्त स्थिति
१ ला	२५२	३	१६	२७१	२०	२५१
२ रा	२५२	३	१५	२७०	२०	२५०
३ रा	२५२	३	१४	२६९	२०	२४९
४ था	२५२	३	१३	२६८	२०	२४८
५ वाँ	२५२	३	१२	२६७	२०	२४७
६ ठा	२५२	३	११	२६६	२०	२४६
७ वाँ	२५२	३	१०	२६५	२०	२४५
८ वाँ	२५२	३	९	२६४	२०	२४४

यहाँ जो उत्कीरणाकालमें एक समय कम करके और उद्वेलनाकाण्डकमें उत्तरोत्तर एक एक समय कम करके अनन्तर इनके योगको सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थितिमें जोड़ा है सो नाना जीवोंकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी सत्त्वस्थिति उत्तरोत्तर एक-एक समय कम बतलानेके लिये किया गया है। यहाँ उत्कीरणाकालप्रमाण स्थिति तो अधःस्थिति गलनासे गल जाती है और उद्वेलना काण्डकप्रमाण स्थितिका उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय घात हो जाता है। यही कारण है कि सम्यक्त्वकी सत्त्वस्थितिमेंसे सर्वत्र उत्कीरणाकाल और उद्वेलनाकाण्डक प्रमाण स्थितियाँ घटाकर बतलाई गई हैं। इसी प्रकार आगे भी उद्वेलनाकी अपेक्षा सन्निकर्ष विकल्प ले

§ ७१९. संपहि विदियपयारेण सण्णियासपरूवणा कीरदे । तं जहा—वेदगपाओग्गमिच्छादिट्ठिणा बद्धमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणा सव्वजहण्णपडिहग्गकालमच्छिय सम्मत्तं घेत्तूण मिच्छत्तट्ठिदिसंकमे सम्मत्तस्सुक्कस्सट्ठिदिं कादूण सव्वजहण्णसम्मत्तकालमच्छिदेण मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णमिच्छत्तकालेणुक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए सम्मत्तुक्कस्सट्ठिदी अंतोमुहुत्तूणा होदि । तदो अण्णेण

आने चाहिये । किन्तु अन्तिम उद्वेलनाकाण्डकके घात होनेपर अनेक स्थितिविकल्प नहीं प्राप्त होवे, क्योंकि जघन्य उद्वेलनाकाण्डकका प्रमाण सब जीवोंके समान है, अतः उसका घात होनेपर सबके एक ही स्थिति प्राप्त होती है । यथा—

नाना जीव	सम्यक्त्वकी सत्त्व स्थिति	उत्कीरणाकाल	उद्वेलनाकाण्डक	उद्वेलनासे प्राप्त सम्यक्त्वकी स्थिति
१ ला	२७	४	१६	७
२ रा	२७	४	१६	७
३ रा	२७	४	१६	७
४ था	२७	४	१६	७
५ वाँ	२७	४	१६	७
६ ठा	२७	४	१६	७
७ वाँ	२७	४	१६	७
८ वाँ	२७	४	१६	७
				एक समय कम उदयावलिप्रमाण नि०

यहाँ उत्कीरणा कालप्रमाण स्थितियाँ तो अधःस्थिति गलनाके द्वारा गलती गई हैं, अतः उनकी अपेक्षा सन्निकर्ष विकल्प बन जाते हैं पर उद्वेलनाकाण्डक प्रमाण स्थितियोंका घात एक साथ हुआ है और सम्यक्त्वकी सत्त्व स्थितियोंमे विभिन्नता न होनेसे उद्वेलनाकाण्डकघातसे नाना जीवोंके स्थितियाँ भी एकसी ही प्राप्त हुईं, अतः उद्वेलनाकाण्डक १६ प्रमाण स्थितियाँ सन्निकर्षसे परे हैं । तथा अन्तमे प्रत्येक जीवके जो एक कम उदयावलिप्रमाण निषेक बचे हैं वे अधःस्थितिगलनाके द्वारा गलते जाते हैं और इस प्रकार उतने सन्निकर्षविकल्प और प्राप्त हो जाते हैं । इस प्रकार उद्वेलनासे कुल सन्निकर्षविकल्प २५१ – १६ = २३५ प्राप्त हुए ।

§ ७१९. अब दूसरे प्रकारसे सन्निकर्षकी प्ररूपणा करते हैं, जो इस प्रकार है—जिसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है ऐसा कोई एक वेदकसम्यक्त्वके योग्य मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वसे च्युत होनेके सबसे जघन्य काल तक मिथ्यात्वमें रहा पुनः वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करके पहले समयमे उसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करके सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति की और वहां सम्यक्त्वके सबसे जघन्य काल तक रह कर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । तदनन्तर मिथ्यात्वके सबसे जघन्य कालके द्वारा उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर उस समय सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम होती है ।

जीवेण वेदगसम्मत्तपाओग्गेण बद्धमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणा समयाहियसव्वजहण्णपडिहग्गद्धमच्छिय सम्मत्तं घेत्तूण सव्वजहण्णसम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ गमिय उक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए सम्मत्तोघुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण संपहियसम्मत्तट्ठिदी समयाहियअंतोमुहुत्तेणूणा होदि। पुणो अण्णेण जीवेण बद्धमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणा दुसमयाहियपडिहग्गद्धमच्छिय वेदगसम्मत्तं पडिवण्णेण सव्वजहण्णसम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ गमिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए सम्मत्तोघुक्कस्सट्ठिदीदो संपहियसम्मत्तट्ठिदी दुसमयाहियअंतोमुहुत्तेणूणा होदि। एवं पडिहग्गकालं तिसमयाहिय-चदुसमयाहियादिकमेण वड्ढाविय सेससम्मत्त-मिच्छत्तजहण्णकाले अवट्ठिदे कादूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय णेदव्वं जाव जहण्णपडिहग्गकालादो उक्कस्सेण संखेज्जगुणं पावेदि त्ति। तं पत्तो मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय गेण्हिदव्वं। पुणो उक्कस्सपडिहग्गकालम्मि जहण्णपडिहग्गकालं सोहिय सुद्धसेसमेत्तकालेणूणमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गो होदूण सम्मत्तं पडिवज्जिय मिच्छत्तं गंतूणवट्ठिदतिण्णिकाले अच्छिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए सम्मत्तोघुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण संपहियसम्मत्तट्ठिदी अंतोमुहुत्तेण पडिहग्ग-

तदनन्तर जिसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध हुआ है ऐसा वेदकसम्यक्त्वके योग्य एक अन्य मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वसे च्युत होनेके समयाधिक सबसे जघन्य प्रतिभग्न कालतक मिथ्यात्वमें रह कर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वके सबसे जघन्य कालोंको व्यतीत करके उसने उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति की तब उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर सम्यक्त्वकी सामान्य उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए इस समयकी सम्यक्त्वकी स्थिति एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कम होती है। तदनन्तर जिसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है ऐसा कोई एक अन्य मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वसे च्युत होनेके दो समय अधिक जघन्य प्रतिभग्न काल तक मिथ्यात्वमें रहकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वके सबसे जघन्य कालोंको व्यतीत किया और इस प्रकार उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर सम्यक्त्वकी ओघ उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा इस समयकी सम्यक्त्वकी स्थिति दो समय अधिक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कम होती है। इसी प्रकार मिथ्यात्वसे च्युत होनेके कालको तीन समय अधिक, चार समय अधिक आदि क्रमसे बढ़ाते हुए तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके शेष दो जघन्य कालोंको अवस्थित करके और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराते हुए तब तक कथन करते जाना चाहिये जब जाकर मिथ्यात्वसे च्युत होनेके जघन्य कालसे उत्कृष्ट काल संख्यात गुणा प्राप्त होवे। इस प्रकार इसके प्राप्त होने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी स्थिति ग्रहण करना चाहिये। पुनः मिथ्यात्वसे च्युत होनेके उत्कृष्ट प्रतिभग्न कालमेंसे मिथ्यात्वसे च्युत होनेके जघन्य प्रतिभग्न कालको घटाकर जो शेष रहे उतने कालसे कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थितिका बन्ध करके तथा प्रतिभग्न होकर और वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके अनन्तर जो मिथ्यात्वमें गया है और इस प्रकार तीन अवस्थित कालों तक तीनों स्थानोंमें रहा है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सम्यक्त्वकी ओघ उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए इस समय संबंधी सम्यक्त्वकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त और प्रतिभग्नकालविशेष प्रमाण कम होती है। यह सन्निकर्षविकल्प पुनरुक्त है। तदनन्तर वेदकसम्यक्त्वके योग्य एक अन्य मिथ्यादृष्टि

कालविसेसेण च ऊणा होदि। एस वियप्पो पुणरुत्तो। तदो अण्णो जीवो वेदगपाओग्ग-मिच्छाइट्ठी पडिहग्गकालविसेसेणुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय समयाहियसव्वजहण्ण-पडिहग्गकालमिच्छिय सम्मत्तं पडिवज्जिय मिच्छत्तं गंतूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए पुव्वुत्तसम्मत्तट्ठिदी समयूणा होदि। एसो वियप्पो अपुणरुत्तो। एवं पुव्वं व दुसमयाहिय-तिसमयाहियादिकमेण पडिहग्गकालो वड्ढावेयव्वो जाव जहण्णादो उक्कस्सओ संखेज्जगुणो त्ति। एवं वड्ढाविय पुणो पुव्वविहाणेण जहण्णपडिहग्गद्ध-मुक्कस्सपडिहग्गद्धादो सोहिय सुद्धसेसेण दुगुणेणूणमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय अवट्ठिदद्धाओ जहण्णाओ तिण्णि वि गमिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए पुणरुत्तो सण्णियासवियप्पो होदि। एदेण कमेण ओदारेदूण णेदव्वं जाव णिव्वियप्पधुवट्ठिदी पत्ता त्ति। पुणो पुव्वं व उव्वेल्लणमस्सिदूण णेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकालपमाणा चेट्ठिदा त्ति। एवमोदारिदे विदियपरूवणा समत्ता।

§ ७२०. संपहि तदियपरूवणा वुच्चदे। तं जहा—वेदगपाओग्गमिच्छादिट्ठिणा बंधुक्कस्सट्ठिदिणा सव्वजहण्णपडिहग्ग-सम्मत्त-मिच्छत्तद्धेणुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए पुण-रुत्तवियप्पो होदि, तिण्हं पि अद्धाणं जहण्णभावुवलंभादो। अपुणरुत्तवियप्पे इच्छिज्ज-

---

जीव प्रतिभग्नकालविशेषसे कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बांधकर और मिथ्यात्वसे च्युत होनेके एक समय अधिक सबसे जघन्य प्रतिभग्न काल तक मिथ्यात्वमें रह कर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। तथा पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त करके उस जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर पूर्वोक्त सम्यक्त्वकी स्थिति एक समय कम होती है। यह सन्निकर्षविकल्प अपुनरुक्त है। इसी प्रकार पहलेके समान दो समय अधिक और तीन समय अधिक इत्यादि क्रमसे मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेका काल तब तक बढ़ाते जाना चाहिये जब तक जघन्य कालसे उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा प्राप्त होवे। इस प्रकार पुनः मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको बढ़ाकर पुनः पूर्वविधानानुसार मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके जघन्य कालको मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके उत्कृष्ट कालमेंसे घटाकर जो काल शेष रहे उसके दूने कालसे कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके और तीनों ही जघन्य अवस्थित कालोंको बिता कर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर सन्निकर्षका पुनरुक्त विकल्प प्राप्त होता है। आगे इसी क्रमसे निर्विकल्प ध्रुवस्थितिके प्राप्त होने तक सम्यक्त्वकी स्थितिको घटाते हुए ले जाना चाहिए। तदनन्तर पहलेके समान उद्वेलनाका आश्रय लेकर सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी स्थिति घटाते जाना चाहिए। इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थिति घटाने पर दूसरी प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ७२०. अब तीसरी प्ररूपणाको कहते हैं जो इस प्रकार है—जिसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधा है ऐसा वेदकसम्यक्त्वके योग्य मिथ्यादृष्टि जीव पुनः मिथ्यात्वसे च्युत होनेके सबसे जघन्य प्रतिभग्न कालके साथ तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके सबसे जघन्य कालोंके साथ जब मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तब उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सन्निकर्षका पुनरुक्त विकल्प होता है, क्योंकि यहां पर तीनो ही काल जघन्य पाये जाते हैं। अब अपुनरुक्त विकल्प इच्छित होने पर उसे इस विधिसे लाना चाहिये जो इस प्रकार है—

माणे एदाए किरियाए आणेयव्वो । तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय पडिहग्ग-कालमवट्ठिदमच्छिय सम्मत्तकालं समयाहियं मिच्छत्तकालमवट्ठिदमच्छिय संकिलेसं पूरेदूणुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए अपुणरुत्तवियप्पो होदि । पुणो जहा पडिहग्गकालं वड्ढाविय सम्मत्तट्ठिदी ओदारिदा तहा सम्मत्तकालं वड्ढाविय ओदारेदव्वा जाव णिव्वियप्प-धुवट्ठिदि त्ति । पुणो उव्वेल्लणमस्सिदूण ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एया ट्ठिदी दुसमयकालपमाणा चेट्ठिदा त्ति । एवं णीदे तदियपरूवणा समत्ता होदि ३ ।

§ ७२१. चउत्थपरूवणा संपहि वुच्चदे । तं जहा—पुणरुत्तवियप्पं पुव्वविहाणेण भणिदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय पडिहग्ग-सम्मत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ अच्छिय समयाहियमिच्छत्तद्धमच्छिदेण आऊरिदुक्कस्ससंकिलेसेण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए अपुणरुत्तवियप्पो होदि । एवं मिच्छत्तद्धाए दुसमउत्तरादिकमेण वड्ढाविय ओदारिदे चउत्थपरूवणा समप्पदि ४ । एवमेगसंजोगपरूवणा गदा ।

मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करा के मिथ्यात्वसे च्युत होनेके अवस्थित कालतक मिथ्यात्वमें रह कर फिर सम्यक्त्वके एक समय अधिक अवस्थित कालतक सम्यक्त्वके साथ रह कर फिर मिथ्यात्वके अवस्थित कालतक मिथ्यात्वमें रह कर और उसी समय उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सन्निकर्षका अपुनरुक्त विकल्प होता है । तदनन्तर पहले जिस प्रकार मिथ्यात्वसे पुनः च्युत होनेके कालको बढ़ाकर सम्यक्त्वकी स्थितिको घटाया था उसी प्रकार यहां पर वेदकसम्यक्त्वके कालको बढ़ाकर निर्विकल्प ध्रुवस्थितिके प्राप्त होने तक सम्यक्त्वकी स्थितिको घटाना चाहिये । पुनः उद्वेलनाका आश्रय लेकर सम्यक्त्वकी दो समय काल प्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होनेतक उसकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थिति घटाते हुए ले जाने पर तीसरी प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२१. अब चौथी प्ररूपणाको कहते हैं जो इस प्रकार है—पहले पूर्वोक्त विधिसे पुनरुक्त विकल्पको कह ले । फिर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके फिर मिथ्यात्वसे पुनः च्युत होनेके अवस्थित कालतक और सम्यक्त्वके अवस्थित काल तक मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमें रहकर फिर जो मिथ्यात्वके एक समय अधिक अवस्थित काल तक मिथ्यात्वमें रह कर और उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सन्निकर्षका अपुनरुक्त विकल्प होता है । इस प्रकार मिथ्यात्वके कालको दो समय अधिक आदि क्रमसे बढ़ाकर सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर चौथी प्ररूपणा समाप्त होती है ।

विशेषार्थ—दूसरी प्ररूपणामें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके और प्रतिभग्न-कालमें एक-एक समय बढ़ाकर संक्रमणसे प्राप्त सम्यक्त्वकी स्थितिमें एक-एक समय कम किया गया है । तथा वेदक सम्यक्त्व काल और संक्लेश पूरण कालको अवस्थित रखा है । पर जब प्रतिभग्नकालमें एक-एक समय बढ़ाते हुए उत्कृष्ट प्रतिभग्नकाल प्राप्त हो गया तब उत्कृष्ट प्रतिभग्न-कालमेंसे जघन्य प्रतिभग्न कालको घटाकर जो शेष बचा उससे न्यून मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराया गया और पुनः जघन्य प्रतिभग्न कालमें एक-एक समय बढ़ाते हुए संक्रमणसे प्राप्त

§ ७२२. संपहि दुसंजोगेण पंचमपरूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा—एक्केण पुव्वुप्पाइदसम्मत्तेण अविणट्ठवेदगपाओग्गेण समयूणं मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गद्धं समयाहियमच्छिय सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ अच्छिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए अपुणरुत्तवियप्पो होदि । पुव्वुत्तसम्मत्तट्ठिदिं पेक्खिदूण एसा तट्ठिदी दुसमयूणा होदि, दोण्हं णिसेगाणमेगवारेण गालिदत्तादो । पुणो अण्णेण जीवेण दुसमऊणमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय समयाहियपडिहग्गद्धमवट्ठिदसम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अच्छिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए सम्मत्तट्ठिदी तिसमयूणा होदि । पुणो अवरेण जीवेण बद्धतिसमऊणमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणा समयाहियजहण्णपडिहग्गद्धमच्छिदेण सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ अच्छिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए सम्मत्तट्ठिदी चदुसमयूणा होदि । एवं मिच्छत्तट्ठिदी चदुसमयूणादिकमेण ओदारेयव्वा जाव मिच्छत्त-

सम्यक्त्वकी स्थितिमें एक-एक समय कम किया गया है । और इस प्रकार सम्यक्त्वकी ध्रुवस्थिति प्राप्त होनेतक सन्निकर्षके विकल्प प्राप्त किये गये हैं। आगे जिस प्रकार उद्वेलनासे प्रथम प्ररूपणामें सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त किये गये हैं उसी प्रकार यहाँ भी प्राप्त कर लेना चाहिये । इस प्रकार दूसरी प्ररूपणा समाप्त हुई । तीसरी प्ररूपणामें प्रतिभग्न कालके समान सम्यक्त्वके कालमें एक-एक समय बढ़ाकर सम्यक्त्व प्रकृतिकी एक एक समय कम स्थिति प्राप्त की गई है। विशेष विधि दूसरी प्ररूपणाके समान जानना चाहिये । चौथी प्ररूपणामें मिथ्यात्वके कालमें एक एक समय बढ़ाकर सम्यक्त्व प्रकृतिकी एक एक समय कम स्थिति प्राप्त की गई है । यहाँ भी विशेष विधि दूसरी प्ररूपणाके समान जानना चाहिये। इस प्रकार एक संयोगी प्ररूपणा समाप्त हुई, क्योंकि इससे और अधिक बार एकसंयोगीप्ररूपणा संभव नहीं है ।

इस प्रकार एकसंयोगी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ७२२. अब दो संयोगसे पांचवीं प्ररूपणाको बतलाते हैं जो इस प्रकार है—जिसने पहले सम्यक्त्व उत्पन्न किया था और जिसका वेदक सम्यक्त्वके योग्य मिथ्यात्वका काल नष्ट नहीं हुआ है ऐसा कोई एक जीव एक समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके एक समय अधिक अवस्थित कालको व्यतीत करके तदनन्तर सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंको व्यतीत करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तो उसके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सन्निकर्षका अपुनरुक्त विकल्प होता है । पूर्वोक्त सम्यक्त्वकी स्थितिको देखते हुए यह स्थिति दो समय कम है, क्योंकि यहां उसके दो निषेक एक ही वारमें गला दिये गये हैं । पुनः अन्य कोई जीव दो समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांध कर और मिथ्यात्वसे निवृत्त हानेके एक समय अधिक अवस्थित काल तक तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालो तक क्रमसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमें रह कर यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तो उसके उस समय सम्यक्त्वकी स्थिति पूर्वोक्त स्थितिको देखते हुए तीन समय कम होती है । पुनः जिसने तीन समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है ऐसा कोई एक जीव मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके एक समय अधिक जघन्य काल तक मिथ्यात्वमें रहा । पुनः सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंको व्यतीत करके यदि उसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है तो उसके उस समय सम्यक्त्वकी स्थिति पूर्वोक्त स्थितिको देखते हुए चार समय कम होती है । इस प्रकार वेदकसम्यक्त्वके ग्रहण करनेके

धुवट्ठिदिं सम्मत्तग्गहणपाओग्गं पत्ता त्ति। पुणो अण्णेण जीवेण बद्धमिच्छत्तधुवट्ठिदिणा दुसमउत्तरपडिहग्गद्धमच्छिदेण सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ अच्छिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए अण्णो अपुणरुत्तवियप्पो होदि। एवं सण्णियासपाओग्गधुवट्ठिदिमवट्ठिदेण कमेण बंधाविय पडिहग्गद्धा तिसमयुत्तरादिकमेण वड्ढावेयव्वा जाव सगजहण्णद्धादो संखेज्जगुणत्तं पत्ता त्ति। एवं वड्ढाविदे पंचमवियप्पो समत्तो होदि।

§ ७२३. अथवा पंचमवियप्पो एवमुप्पाएयव्वो। तं जहा—समयूणमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बधाविय पडिहग्गद्धं चेव समयुत्तरादिकमेण जहण्णद्धादो संखेज्जगुणं त्ति वड्ढाविय पुणो पडिहग्गद्धाविसेसमेत्तमेगवारेण मिच्छत्तट्ठिदिमोदारिय पुणो तमवट्ठिदं कादूण समयुत्तरादिकमेण पडिहग्गद्धं चेव संखेज्जगुणं त्ति वड्ढाविय पुणो मिच्छत्तट्ठिदी अप्पिदट्ठिदीदो पडिहग्गद्धाविसेसमेत्तमोदारेदव्वा। एवं णेयव्वं जाव तप्पाओग्गमिच्छत्तधुवट्ठिदि त्ति। एवं णीदे विदियपयारेण पंचमवियप्पो परूविदो होदि।

§ ७२४. संपहि तदियपयारेण पंचमवियप्पस्स परूवणा कीरदे। तं जहा—समयूणुक्कस्सट्ठिदिपबद्धमिच्छादिट्ठिणा समयाहियपडिहग्गद्धमच्छिदेण सव्वजहण्ण-

योग्य मिथ्यात्वकी ध्रुव स्थितिके प्राप्त होने तक चार समय कम आदिके क्रमसे मिथ्यात्वकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये। पुनः जिसने मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिका बन्ध किया है ऐसा कोई एक अन्य जीव मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके दो समय अधिक अवस्थित मिथ्यात्वमें रहा। पुनः सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंतक सम्यक्त्व औरमिथ्यात्वमें रह कर यदि उसने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है तो उसके उस समय सन्निकर्षका एक अन्य अपुनरुक्त विकल्प प्राप्त होता है। इसी प्रकार आगेके विकल्प लानेके लिये जो सन्निकर्ष के योग्य ध्रुवस्थितिको अवस्थित करके उसका बन्ध करता है और जब तक अपने जघन्यसे उत्कृष्ट विकल्प संख्यातगुणा नहीं प्राप्त होता है तब तक मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके अवस्थित कालको तीन समय अधिक आदिके क्रमसे बढ़ाता जाता है उसके इस प्रकार उक्त कालके बढ़ाने पर पांचवां विकल्प समाप्त होता है।

§ ७२३. अथवा पांचवां विकल्प इस प्रकार उत्पन्न करना चाहिये. जो इस प्रकार है—पहले एक समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे। तथा मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेका जो जघन्य काल है उसे पहली बार एक समय और दूसरी बार दो समय इस प्रकार उत्तरोत्तर जघन्यसे संख्यातगुणा उत्कृष्ट काल प्राप्त होने तक बढ़ाता जावे। तदनन्तर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके उत्कृष्ट कालमेंसे जघन्य कालको घटा कर जो शेष रहे तत्प्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिको एक साथ घटा कर उसे अवस्थित करदे और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेका जो जघन्य काल है उसे पहली बारमें एक समय, दूसरी बारमें दो समय इस प्रकार उत्तरोत्तर जघन्यसे संख्यातगुणा उत्कृष्ट काल प्राप्त होने तक बढ़ाता जावे। तदनन्तर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके उत्कृष्ट कालमेंसे जघन्य कालको घटा कर जो शेष रहे तत्प्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिको दूसरी बार घटाना चाहिये। इस प्रकार सम्यक्त्वके योग्य मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिके प्राप्त होने तक यह विधि करते जाना चाहिये। इस प्रकार इस विधिके करने पर दूसरे प्रकारसे पांचवें विकल्पकी प्ररूपणा होती है।

§ ७२४. अब तीसरे प्रकारसे पांचवें विकल्पकी प्ररूपणा करते हैं, जो इस प्रकार है—एक समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला एक मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वसे

सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अच्छिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि। पुणो मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं दुसमयूणं बंधिय पडिहग्गद्धं समयाहियमच्छिय सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ अच्छिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो होदि। पुणो अण्णेण जीवेण दुसमऊणमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय दुसमयुत्तरं जहण्णपडिहग्गद्धमच्छिय सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ अच्छिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए अण्णो सण्णियासवियप्पो। एवमेगवारं ट्ठिदिं समयूणं वड्ढाविय विदियवारं पडिहग्गकालसमए एक्केण वड्ढाविय ओदारेदव्वं जाव जहण्णपडिहग्गद्धा संखेज्जगुणा जादा त्ति। पुणो एदेण सरूवेण जाणिदूण ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला चेट्ठिदा त्ति। एवमण्णत्थ वि एदमत्थपरूवणमवहारिय परूवेदव्वं। एवं पंचमवियप्पो गदो ५।

§ ७२५. संपहि छट्ठवियप्पपरूवणा कीरदे। तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं समऊण-दुसमऊणादिकमेण बंधाविय पडिहग्गद्धमवट्ठिदं करिय सम्मत्तद्धं समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण वड्ढाविय मिच्छत्तकालमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए छट्ठवियप्पो होदि। एत्थ पंचवियप्पस्सेव तीहि पयारेहि परूवणा कायव्वा।

निवृत्त होनेके एक समय अधिक जघन्य काल तक मिथ्यात्वमें रहा। पुनः उसके सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके सबसे जघन्य काल तक क्रमसे सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमें रह कर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करने पर एक अन्य सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त होता है। पुनः दो समय कम मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थितिको बाँध कर कोई एक जीव मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके एक समय अधिक जघन्य काल तक मिथ्यात्वमें रहा। तदनन्तर उसके सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालों तक क्रमसे सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमें रहकर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध करने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होता है। पुनः एक अन्य जीव दो समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके दो समय अधिक जघन्य काल तक मिथ्यात्वमें रहा। तदनन्तर उसके सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके अवस्थित कालोंतक क्रमसे सम्यक्त्व और मिथ्यात्वमें रहकर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर एक अन्य सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होता है। इस प्रकार एक बार मिथ्यात्वकी स्थितिको एक समय कम करके और दूसरी बार मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको एक समय बढ़ाकर सम्यक्त्वकी स्थितिको तब तक घटाते जाना चाहिये जब जाकर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेका जघन्य काल संख्यातगुणा हो जावे। पुनः इसी क्रम से आगे भी सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक सम्यक्त्वकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये। इसी प्रकार अन्यत्र भी इस अर्थपदका निश्चय करके कथन करना चाहिये। इस प्रकार पाचवाँ विकल्प समाप्त हुआ।

§ ७२५. अब छठे विकल्पकी प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध कराके और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको अवस्थित करके तथा सम्यक्त्वके कालको एक समय अधिक, दो समय अधिक आदि क्रमसे बढ़ाकर और मिथ्यात्वके कालको अवस्थित करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराने पर छठा विकल्प होता है। यहां पर जिस प्रकार पांचवें विकल्पकी तीन प्रकारसे प्ररूपणा की है उसी प्रकार छठे विकल्पकी तीन प्रकारसे प्ररूपणा करनी चाहिये। इस प्रकार

एवं छट्टपरूवणा गदा ।

§ ७२६. संपहि सत्तमभंगे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं समयूणादिकमेणोदारिय पडिहग्ग-सम्मत्तद्धाओ अवट्ठिदाओ करिय मिच्छत्तद्धं समयादिकमेण वड्ढाविय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय पुव्वं व जाणिदूण ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तचरिमवियप्पो त्ति । एवमोदारिदे सत्तमपरूवणा समत्ता होदि ।

§ ७२७. संपहि अट्ठमवियप्पे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय पडिहग्गकालं सम्मत्तकालं च समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण वड्ढाविय मिच्छत्तद्धमवट्ठिदं कादूण ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला चेट्ठिदा त्ति । एवमोदारिदे अट्ठमभंगपरूवणा गदा ८ ।

§ ७२८. संपहि णवमभंगपरूवणे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय पडिहग्ग-मिच्छत्तद्धाओ समयाहिय-दुसमयाहियादिकमेण परिवाडीए वड्ढाविय सम्मत्तद्धमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला ट्ठिदा त्ति । एवं णीदे णवमभंगपरूवणा समत्ता ९ ।

§ ७२९. संपहि दसमपरूवणे भण्णमाणे सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ समउत्तरादिकमेण परिवाडीए वड्ढाविय पडिहग्गकालमवट्ठिदं करिय उभयत्थमिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं

छठी प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ७२६. अब सातवें भंगके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको एक समय कम इत्यादि क्रमसे घटाकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित करके और मिथ्यात्वके कालको एक समय आदिके क्रमसे बढ़ाकर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिका अन्तिम विकल्प प्राप्त होने तक पहलेके समान जानकर उसकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर सातवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२७. अब आठवें विकल्पके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके तथा मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको और सम्यक्त्वके कालको एक समय अधिक और दो समय अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाकर तथा मिथ्यात्वके कालको अवस्थित करके सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक स्थिति प्राप्त होने तक उसकी स्थिति घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर आठवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२८. जब नौवें भंगकी प्ररूपणा करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा मिथ्यात्वके कालको एक समय अधिक और दो समय अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाकर तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी स्थिति घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार विधिके करने पर नौवें भंगकी प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७२९. अब दसवीं प्ररूपणाके कथन करने पर सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके कालको उत्तरोत्तर एक समय आदिके क्रमसे बढ़ाकर और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको अवस्थित करके तथा

बंधाविय ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकालपमाणा चेट्ठिदा त्ति। एवमोदारिदे दसमभंगपरूवणा गदा होदि १०।

§ ७३०. संपहि चत्तारि एगसंजोगे भंगे च दुसंजोगभंगे च परूविय तिसंजोगभंगपरूवणा कीरदे। ताए कीरमाणाए मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं समयूणादिकमेण बंधाविय पडिहग्ग-सम्मत्तद्धाओ परिवाडीए समयुत्तर-दुसमयुत्तरादिकमेण वड्ढाविय मिच्छत्तद्धमवट्ठिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय णेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा ट्ठिदी दुसमयकाला सेसा त्ति। एवं णीदे एक्कारसमपरूवणा तिसंजोगभंगम्मि पढमा परूविदा होदि ११।

दोनों जगह मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये। इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर दसवें भंगकी प्ररूपणा समाप्त होती है।

विशेषार्थ—यहाँ दो संयोगकी अपेक्षा पाँचवीं प्ररूपणा तीन प्रकारसे की है। पहले प्रकारमें बतलाया है कि मिथ्यात्वकी एक एक समय स्थिति कम करता जाय और प्रतिभग्न कालमें सर्वत्र एक समय बढ़ावे तथा शेष दो कालोंको अवस्थित रखे। दूसरे प्रकारमें यह बतलाया है कि सर्वत्र एक समय कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे और प्रतिभग्न कालमें एकसंयोगी दूसरी प्ररूपणामें बतलाई विधिके अनुसार एक एक समय बढ़ाता जाय तथा शेष दो कालोंको अवस्थित रखे। तीसरे प्रकारमें यह बतलाया है कि एक बार मिथ्यात्वकी स्थिति घटावे और दूसरी बार प्रतिभग्न कालमें एक समय बढ़ावे तथा शेष कालोंको अवस्थित रखे। इस प्रकार इन तीनों प्रकारोंसे सम्यक्त्वकी उत्तरोत्तर कम स्थिति प्राप्त की जा सकती है। द्विसंयोगी छठी प्ररूपणामें प्रतिभग्न कालके स्थानमें सम्यक्त्वके कालमें एक एक समय बढ़ाना चाहिये। शेष सब कथन पाँचवीं प्ररूपणाके समान है। सातवीं प्ररूपणामें प्रतिभग्न कालके स्थानमें मिथ्यात्वके कालमें एक-एक समय बढ़ावे। शेष सब कथन पाँचवीं प्ररूपणाके समान है। द्विसंयोगी आठवीं प्ररूपणामें सर्वत्र मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे किन्तु प्रतिभग्नकाल और सम्यक्त्वकालमें एक-एक समय बढ़ाता जाय। नौवीं प्ररूपणामें प्रतिभग्नकाल और मिथ्यात्वकालको एक समय बढ़ाना चाहिये। तथा दसवीं प्ररूपणामें सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके कालको एक-एक समय बढ़ावे। इस प्रकार करनेसे सर्वत्र सम्यक्त्वकी उत्तरोत्तर कम स्थिति प्राप्त हो जाती है। चारके द्विसंयोगी भंग कुल छह ही होते हैं, अतः यहाँ द्विसंयोगी प्ररूपणा छह प्रकारसे की गई है।

§ ७३०. इससे पहले चार एकसंयोगी भंग और द्विसंयोगी भंगोंकी प्ररूपणा करके अब तीनसंयोगी भंगोंकी प्ररूपणा करते हैं। उस तीन संयोगी भंगोंकी प्ररूपणाके करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध करावे और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके अवस्थित कालको तथा सम्यक्त्वके अवस्थित कालको उत्तरोत्तर एक समय अधिक, दो समय अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ाता जावे और मिथ्यात्वके कालको अवस्थित करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय प्रमाण एक स्थितिके शेष रहने तक सम्यक्त्वकी स्थितिको घटाते हुए लेजाना चाहिये। इस प्रकार लेजाने पर ग्यारहवीं प्ररूपणा और तीन संयोगी भंगमें पहली प्ररूपणाका कथन समाप्त होता है।

§ ७३१. बारसमभंगे तिसंजोगम्मि विदिए भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सहिदिं समयूणादिकमेण बंधाविय पडिहग्ग-मिच्छत्तद्धाओ समयुत्तर-दुसमयुत्तरादिकमेण वड्डाविय सम्मत्तकालमवहिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सहिदिं पुव्वं व जाणिदूण ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तचरिमवियप्पो त्ति । एवमोदारिदे बारसमपरूवणा समत्ता होदि १२ ।

§ ७३२. संपहि तेरसमपरूवणे भण्णमाणे एक्को वेदगसम्मादिही मिच्छत्त-हिदिं समयूण-दुसमयूणादिकमेण बंधाविय सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ परिवाडीए समयुत्त-रादिकमेण वड्डाविय पडिहग्गद्धमवहिदं करिय मिच्छत्तुक्कस्सहिदिं बंधाविय ओदारे-दव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा हिदी दुसमयकाला चेहिदा त्ति । एवमोदारिदे तेरसम-वियप्पो समत्तो होदि १३ ।

§ ७३३. संपहि चोद्दसमवियप्पे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सहिदिं बंधाविय पडिहग्ग-सम्मत्त मिच्छत्तद्धाओ समयुत्तरादिकमेण परिवाडीए वड्डाविय मिच्छत्तुक्कस्सहिदिं बंधाविय ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तस्स एगा हिदी दुसमयकाला चेहिदा त्ति । एव-मोदारिदे चोद्दसवियप्पो समत्तो होदि १४ ।

---

§ ७३१. अब बारहवें भंगके और तीन संयोगीमें दूसरे भंगके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध करावे, और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा मिथ्यात्वके कालको एक समय अधिक, दो समय अधिक इत्यादि क्रमसे बढ़ावे तथा सम्यक्त्वके कालको अवस्थित करके और मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी स्थितिके अन्तिम विकल्पके उत्पन्न होने तक पहलेके समान जानकर उसको स्थितिको घटाना चाहिये । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर बारहवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७३२. अब तेरहवीं प्ररूपणाके कथन करने पर एक वेदकसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वमें जाकर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध करे और सम्यक्त्व तथा मिथ्यात्वके कालको उत्तरोत्तर एक समय, दो समय इत्यादि क्रमसे बढ़ावे और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको अवस्थित करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करे । इस प्रकार पूर्वोक्त विधिसे सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक सम्यक्त्वकी स्थितिको घटावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर तेरहवां विकल्प समाप्त होता है ।

§ ७३३. अब चौदहवें विकल्पके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे और मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके कालको उत्तरोत्तर एक समय, दो समय इत्यादि क्रमसे बढ़ता जावे तथा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय काल प्रमाण जघन्य स्थितिके प्राप्त होने तक उसकी स्थितिको घटाता जावे । इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर चौदहवाँ विकल्प समाप्त होता है ।

विशेषार्थ—चारके तीन संयोगी भंग कुल चार होते हैं । ग्यारहवीं, बारहवीं, तेरहवीं और चौदवीं प्ररूपणामें ये ही चार भंग बतला कर सम्यक्त्वकी स्थिति उत्तरोत्तर न्यून प्राप्त की गई है । कहाँ किनके संयोगसे स्थिति कम प्राप्त की गई है इसका खुलासा मूलमें किया ही है, अतः यहाँ उसे पुनः नहीं दुहराया गया है ।

§ ७३४. संपहि पण्णारसमवियप्पे भण्णमाणे मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिं समयूणादिकमेण बंधाविय पडिहग्ग-सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ समयुत्तरादिकमेण वड्ढाविय पुणो मिच्छत्तुक्कस्सट्टिदिं बंधाविय ओदारेदव्वं जाव सम्मत्तदुसमयकालेगा ट्ठिदि त्ति। एवमोदारिदे पण्णारसमपरूवणा समत्ता होदि १५।

§ ७३५. अहवा पण्णारसमपरूवणा एवं वत्तव्वा। तं जहा—धुवट्ठिदीए समयूणाए ऊणुक्कस्सट्ठिदिसमयरयणं काऊण पुणो पडिहग्ग-सम्मत्त-मिच्छत्ताणं जहण्णद्धाओ सगसगुक्कस्सद्धासु जहण्णद्धाहिंतो संखेज्जगुणासु सोहिय रूवाहियं कादूण पुध पुध एदेसिं पि समयाणं पंतियागारेण रयणं काऊण पुणो चत्तारि अक्खे चदुसु पंतीसु ठविय तत्थ अंतिमअक्खो ताव संचारेयव्वो जावप्पणो समयपंतीए अंतं पत्तो त्ति। पुणो तमक्खं तत्थेव ठविय तदियक्खो कमेण संचारेयव्वो जावप्पणो समयपंतिपज्जवसाणं पत्तो त्ति। पुणो तं पि तत्थेव ठविय विदियक्खं कमेण संचारिय अप्पणो समयपंतिरयणाए अंतम्मि जोजये। तदो तिण्हमद्धाणं समयपंतिरयणसंकलणाए जत्तिया समया तत्तियमेत्तसमए एगवारेण पढमक्खो ओयारेयव्वो। पुणो सेसतिण्णि वि अक्खे तिण्णं पंतीणं पढमसमएसु ठविय पुव्वं व अक्खसंचारं काऊण तदो तत्तियमेत्तं चेवद्धाणं पुणो वि पढमक्खो पढमसमयपंतीए ओयारेयव्वो। एवं पुणो पुणो ताव कायव्वं जाव पढमक्खो पढमपंतीए अंतं पत्तो त्ति। पुणो सेसतिण्णि

§ ७३४. अब पन्द्रहवें विकल्पके कथन करने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय कम, दो समय कम इत्यादि क्रमसे बन्ध करावे तथा मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके कालको तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके कालको एक समय, दो समय इत्यादि क्रमसे उत्तरोत्तर बढ़ाता जावे। पुनः मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक स्थितिके शेष रहने तक उसकी स्थितिको घटाता जावे। इस प्रकार सम्यक्त्वकी स्थितिके घटाने पर पन्द्रहवीं प्ररूपणा समाप्त होती है।

§ ७३५. अथवा पन्द्रहवीं प्ररूपणाका इस प्रकार कथन करना चाहिये। आगे उसीको बताते हैं—उत्कृष्ट स्थितिमें एक समय कम ध्रुवस्थितिको कम करके जो शेष रहे उसके समयोंकी रचना करे। पुनः मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके जघन्य कालको तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके जघन्य कालोंको जघन्य कालोंसे संख्यातगुणे अपने अपने उत्कृष्ट कालोंमेंसे घटाकर और एक अधिक करके अलग अलग इनके भी समयोंकी पंक्तिरूपसे रचना करे। पुनः चारों पंक्तियोंमें चार अक्षोंकी स्थापना करके उनमेंसे अन्तिम अक्षका अपनी समयपंक्तिके अन्तको प्राप्त होने तक संचार करते रहना चाहिये। पुनः उस अक्षको वहीं पर स्थापित करके तृतीय अक्षका अपनी समयपंक्तिके अन्तको प्राप्त होने तक क्रमसे संचार करते रहना चाहिये। पुनः इस अक्षको भी वहीं पर स्थापित करके दूसरे अक्षको क्रमसे संचार कराके अपनी समयपंक्तिरचनाके अन्तको प्राप्त करावे। तदनन्तर तीनों कालोंकी समयपंक्तिरचनाके जोड़ करने पर जितने समय हों प्रथमाक्षको उतने समयप्रमाण एक बारमें उतारे। पुनः शेष तीनो ही अक्षोंको तीनों पंक्तियोंके पहले समयोंमें स्थापित करके और पहलेके समान अक्षसंचार करके तदनन्तर प्रथम अक्षको उतने समय प्रमाण प्रथम पंक्तिमें उतारे। इस प्रकार जब तक पहला अक्ष पहली पंक्तिमें अन्तको प्राप्त होवे तब तक पुनः पुनः इसी प्रकार

वि अक्खा पुव्वं व संचारिय सगसगपंतीए अंतम्मि कायव्वा । एवं कदे ट्ठिदिबंधोसरणेणुप्पणसव्वसण्णियासवियप्पा लद्धा होंति । पुणो सेसवियप्पे णाणाजीवाणमुव्वेल्लणमस्सिदूण उप्पाएज्जो । एवमुप्पाइदे पण्णारसमपरूवणा समत्त होदि १५ ।

§ ७३६. सोलसमपरूवणे भण्णमाणे दुसमयकालेगट्ठिदिसंतकम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए एगो सण्णियासवियप्पो। दोट्ठिदितिसमयसंतकम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए विदियो सण्णियासवियप्पो। तिण्णिट्ठिदिचदुसमयसम्मत्तसंतकम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए तदिओ सण्णियासवियप्पो । एवं गंतूण समयूणावलियमेत्तट्ठिदिसंतकम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए समयूणावलियमेत्ता सण्णियासवियप्पा लब्भंति । पुणो आवलियब्भहियचरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालिमेत्तट्ठिदिसंतकम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए आवलियमेत्ता सण्णियासवियप्पा होंति । कुदो, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमंतरिदूण संपहियसण्णियासवियप्पुप्पत्तीदो । एत्तो उवरिमसण्णियासवियप्पट्ठाणाणि पडिलोमेण णिरंतरमुप्पाइय घेत्तव्वाणि जाव मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय सव्वजहण्णपडिहग्ग-सम्मत्त-मिच्छत्तद्धाओ गमिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय ट्ठिदो त्ति । एवं णीदे सोलसमपरूवणा समत्ता होदि । एदे सण्णियासवियप्पा सव्वे वि पुणरुत्ता पढमपरूवणाए उप्पण्णाणं चेवुप्पत्तीदो । तदो पढमरूवणा

करना चाहिये । पुनः शेष तीनो ही अक्षोका पहलेके समान संचार करके उन्हें अपनी अपनी पंक्तिमे अन्तको प्राप्त कराना चाहिये । इस प्रकार करने पर स्थितिबन्धापसरणसे उत्पन्न हुए सभी सन्निकर्षके विकल्प प्राप्त हो जाते हैं । पुनः शेष विकल्प नाना जीवोके उद्वेलनाका आश्रय लेकर उत्पन्न करना चाहिये । इस प्रकार उत्पन्न करने पर पन्द्रहवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

§ ७३६. अब सोलहवीं प्ररूपणाके कथन करने पर सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण एक स्थितिनिषेकसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर एक सन्निकर्षविकल्प होता है । सम्यक्त्वकी तीन समय कालप्रमाण दो निषेकस्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर दूसरा सन्निकर्ष विकल्प होता है । सम्यक्त्वकी चार समयप्रमाण तीन निषेकस्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर तीसरा सन्निकर्षविकल्प होता है । इसी प्रकार आगे जाकर एक समय कम आवलीप्रमाण स्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर एक समय कम आवलीप्रमाण सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होते हैं । पुनः एक आवली अधिक अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिप्रमाण स्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर आवलीप्रमाण सन्निकर्षविकल्प प्राप्त होते हैं, क्योंकि पल्योपमके असंख्यातवें भागको अन्तरित करके वर्तमानकालीन सन्निकर्षविकल्प उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार आगे भी उपरिम सन्निकर्ष विकल्पस्थानोंको प्रतिलोमपद्धतिसे निरन्तर उत्पन्न करके तब तक ग्रहण करना चाहिये जब तक मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदनन्तर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके सबसे जघन्य कालको तथा सम्यक्त्व और मिथ्यात्वके सबसे जघन्य कालोंको व्यतीत करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बन्ध करनेवाला प्राप्त होवे । इस प्रकार सन्निकर्षविकल्पोके ले जाने पर सोलहवीं प्ररूपणा समाप्त होती है ।

शंका—ये सभी सन्निकर्षविकल्प पुनरुक्त हैं, क्योंकि पहली प्ररूपणामें उत्पन्न करके बतलाये

चेव कायव्वा, ण विदियादिपरूवणाओ त्ति ? ण एस दोसो, सण्णियासवियप्पाणमुप्पत्ति-वियप्पपरूवणट्ठं तप्परूवणादो । एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि वत्तव्वं, विसेसाभावादो ।

❀ सोलसकसायाणं किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७३७. सुगममेदं ?

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ७३८. जदि मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए वज्झमाणाए सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधो होज्ज तो उक्कस्सा । अह ण होज्ज तो अणुक्कस्सा । उक्कस्ससंकिलेसे संते किमट्ठं

गये सन्निकर्षविकल्पोंको ही आगेकी प्ररूपणाओंमें उत्पन्न करके बताया गया है, अतः पहली प्ररूपणा ही करनी चाहिये, द्वितीयादि प्ररूपणाएँ नहीं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सन्निकर्षविकल्प कितने प्रकारसे उत्पन्न किये जा सकते हैं इसका कथन करनेके लिये उन द्वितीयादि प्ररूपणाओंका कथन किया है।

इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा भी सन्निकर्षविकल्प कहना चाहिये क्योंकि सम्यक्त्वकी प्ररूपणासे सम्यग्मिथ्यात्वकी प्ररूपणामें कोई विशेषता नहीं है।

विशेषार्थ—पन्द्रहवीं प्ररूपणा चार संयोगी है जो दो प्रकारसे बतलाई है। पहला प्रकार तो स्पष्ट है किन्तु दूसरे प्रकारमें कुछ विशेषता है जिसका यहाँ खुलासा किया जाता है। एक समय कम ध्रुवस्थितिसे न्यून मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके जितने समय हो उनकी एक एक करके पंक्तिरूपसे स्थापना करे। अनन्तर अपने-अपने उत्कृष्ट कालोंमेंसे जघन्य कालोंके घटाने पर जो प्रतिभग्नकाल, सम्यक्त्वकाल और मिथ्यात्वकालके समयोंका प्रमाण आवे उनकी भी पृथक्-पृथक् तीन पंक्तियाँ करे। तदनन्तर अन्तिम पंक्तिके समयोंकी गिनती कर ले। तदनन्तर तृतीय पंक्तिके समयोंकी गिनती करे। तदनन्तर दूसरी पंक्तिके समयोंकी गिनती करे। इस प्रकार गिनती करनेसे इन तीनों पंक्तियोंके समयोंकी जितनी संख्या हो उतना प्रथम पंक्तिके समयोंमेंसे घटा दे। तदनन्तर दूसरी और तीसरी आदि बार भी यही क्रम चालू रखे। इस प्रकार इस क्रमके करनेसे ध्रुवस्थिति पर्यन्त कितने सन्निकर्ष विकल्प होते हैं उनका प्रमाण आ जाता है। तथा इसके आगेके शेष विकल्प नाना जीवोंकी उद्वेलनाकी अपेक्षा प्राप्त होते हैं। इस प्रकार इस प्ररूपणाके द्वारा कुल सन्निकर्ष विकल्प प्राप्त हो जाते हैं। सोलहवीं प्ररूपणामें सम्यक्त्वकी दो समय कालप्रमाण जघन्य स्थितिसे लेकर उत्कृष्ट स्थितिपर्यन्त प्रतिलोम क्रमसे सन्निकर्ष विकल्प उत्पन्न करके बतलाये गये हैं। इस प्रकार यद्यपि पूर्वमें सोलह प्ररूपणाएं बतलाई हैं पर उनसे सन्निकर्ष विकल्पोंमें न्यूनाधिकता नहीं आती। ये प्ररूपणाएँ तो केवल सन्निकर्षविकल्प कितने प्रकारसे उत्पन्न किये जा सकते हैं इसमें चरितार्थ है। इनके कथन करनेका अन्य कोई प्रयोजन नहीं हैं। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिकी अपेक्षासे भी सन्निकर्ष विकल्प जानने चाहिये।

*** मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोलह कषायोंकी क्या उत्कृष्ट स्थिति होती है या अनुत्कृष्ट स्थिति होती है ?**

§ ७३७. यह सूत्र सुगम है।

*** उत्कृष्ट स्थिति भी होती है और अनुत्कृष्ट स्थिति भी होती है।**

§ ७३८. यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होते समय सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है तो उत्कृष्ट स्थिति होती है। और यदि नहीं होता है तो अनुत्कृष्ट

सव्वकम्माणमक्कमेणुक्कस्सट्ठिदिबंधो ण होदि ? ण, सगसगविसेसपच्चएहि विणा उक्कस्स-संकिलेसमेत्तेण चेव सव्वपयडीणमुक्कस्सट्ठिदिबंधाभावादो। सव्वकम्माणं जे विसेसपच्चया तेसिमक्कमेण संभवो किण्ण होदि ? को एवं भणदि ण होदि त्ति, किं तु कयाइ होदि, सव्वकम्माणमक्कमेण कम्हि वि काले उक्कस्सट्ठिदिबंधुवलंभादो। कयाइ ण होदि, कम्हि वि काले तदणुवलंभादो। के विसेसपच्चया ? जिणपडिमालयसंघाइरियपवयणपडिऊल-दादओ असंखेज्जलोगमेत्ता।

§ ७३९. अणुक्कस्सवियप्पपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि।

*** उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण पलिदोवमस्स असंखे-ज्जदिभागेणूणा त्ति।**

§ ७४०. तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधंतो सोलसकसायाणं समयूणुक्कस्स-ट्ठिदिं बंधदि। एवं गंतूण समयूणाबाहाकंडएणूणुक्कस्सट्ठिदिं पि बंधदि। किमा-बाहाकंडयं णाम ? उक्कस्साबाहं विरलेऊण उक्कस्सट्ठिदिं समखंडं करिय विरलणरूवं

स्थिति होती है।

शंका—उत्कृष्ट संक्लेशके रहते हुए एक साथ सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अपने अपने स्थितिबन्धके विशेष कारणोंको छोड़कर केवल उत्कृष्ट संक्लेशमात्रसे सभी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है।

शंका—सब कर्मोंके जो विशेष प्रत्यय हैं उनका एक साथ पाया जाना क्यों संभव नहीं है ?

समाधान—ऐसा कौन कहता है कि उनका एक साथ पाया जाना संभव नहीं है। किन्तु यदि सब प्रत्यय एक साथ होते हैं तो कदाचित् होते हैं, क्योकि सब कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किसी कालमें पाया भी जाता है। और कदाचित् सब प्रत्यय नहीं भी होते हैं, क्योकि सब कर्मोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किसी कालमे नहीं भी पाया जाता है।

शंका—वे विशेष प्रत्यय कौन हैं ?

समाधान—जिन प्रतिमा, जिनायल, संघ, आचार्य और प्रवचनके प्रतिकूल चलना आदि असंख्यात लोकप्रमाण विशेष प्रत्यय हैं।

§ ७३९. अब अनुत्कृष्ट विकल्पोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है।**

§ ७४०. उसका खुलासा इस प्रकार है—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधनेवाला जीव सोलह कषायोंकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बाँधता है। इस प्रकार आगे जाकर वह जीव एक समय कम आबाधाकाण्डकसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिको भी बाँधता है।

शंका—आबाधाकाण्डक किसे कहते हैं ?

पडि दिण्णे तत्थेगरूवधरिदमाबाहाकंडओ णाम। तत्थ एगसमयमादिं कादूण जाव समयूणाबाहाकंडओ त्ति ताव कसायाणमणुक्कस्सट्ठिदिसंतवियप्पा होंति। संपुण्णाबाहाकंडयमेत्ता किण्ण होंति? ण, एक्कस्स कम्मस्स उक्कस्सट्ठिदीए बज्झमाणाए सव्वकम्माणं बज्झमाणाणमुक्कस्साबाहाए चेव तत्थ संभवादो। तं कुदो णव्वदे? गुरूवएसादो ट्ठिदिबंधट्ठाणसुत्तादो य।

*** इत्थि-पुरिसवेद-हस्स-रदीणं णियमा अणुक्कस्सा।**

§ ७४१. कुदो? सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधे संते एदासिं चदुण्हं पयडीणं बंधाभावादो। ण च बंधेण विणा अवट्ठिदकम्मेसु कसायाणमुक्कस्सट्ठिदी बंधावलियाए

समाधान—उत्कृष्ट आबाधाका विरलन करके और विरलित राशिके प्रत्येक एक पर उत्कृष्ट स्थितिको समान खण्ड करके देयरूपसे दे देने पर एक विरलनके प्रति जो राशि प्राप्त होती है उतनेको एक आबाधाकाण्डक कहते हैं।

उनमें कषायोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके विकल्प एक समयसे लेकर एक समय कम आबाधाकाण्डक प्रमाण होते हैं।

शंका—कषायोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसत्त्वके विकल्प संपूर्ण आबाधाकाण्डकप्रमाण क्यों नहीं होते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि एक कर्मकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर बंधनेवाले सभी कर्मोंकी उत्कृष्ट आबाधा ही वहाँ पर संभव है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—गुरूपदेशसे जाना जाता है और स्थितिबन्धस्थानके प्रतिपादक सूत्रसे जाना जाता है।

विशेषार्थ—ऐसा नियम है कि किसी एक कर्मके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय बंधनेवाले सब कर्मोंकी आबाधा उत्कृष्ट ही होती है किन्तु स्थितिमें फरक भी रहता है। बात यह है कि आबाधाके एक एक विकल्पके प्रति पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविकल्प प्राप्त होते हैं, अतः उस समय बंधनेवाले सब कर्मोंकी स्थिति उत्कृष्ट ही होनी चाहिये ऐसा कोई नियम नहीं है। जिनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारण पाये जाते हैं उनकी उत्कृष्ट स्थिति होती है और जिनके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके कारण नहीं पाये जाते हैं उनकी स्थिति अनुत्कृष्ट होती है। वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्यके असंख्यातवें भाग कम तक हो सकती है। यही कारण है कि यहां मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय सोलह कषायोंकी स्थिति उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट दोनों प्रकारकी बतलाई है। तथा अनुत्कृष्ट स्थिति विकल्प एक समय कम आबाधाकाण्डक प्रमाण बतलाये हैं। यहाँ आबाधाकाण्डक प्रमाण विकल्पोंमेंसे उत्कृष्ट स्थितिका एक विकल्प कम कर दिया है।

*** मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी नियमसे अनुत्कृष्ट स्थिति होती है।**

§ ७४१. क्योंकि सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होते समय इन चार प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है। यदि कहा जाय कि जिन कर्मोंका बन्ध नहीं हो रहा है किन्तु सत्तामें स्थित हैं

ऊणा संकमदि 'बंधे संकमदि' त्ति सुत्तेण सह विरोहादो। ण च कसायट्ठिदिं सगुवरि संकंतं मोत्तूण सगबंधेणेदासिं चदुण्हं पयडीणमुक्कस्सट्ठिदिसंतं होदि; दस-पण्णारस-सागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्ठिदीणमावलियूणचालीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तविरोहादो।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति।

§ ७४२. तं जहा—सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए चेव इत्थिवेदं बंधाविय बंधावलियादिक्कंतं कसायट्ठिदिं उक्कस्समित्थिवेदम्मि संकामिदे इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि। तस्समए मिच्छत्तं णियमा अणुक्कस्सं, तत्थ तस्सुक्कस्सट्ठिदिबंधाभावादो। तदो अंतोमुहुत्तमच्छिय संकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए तक्काले इत्थिवेदट्ठिदी अप्पणो उक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणा

उनमें बन्धावलिसे कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण हो जायगा, सो भी बात नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर 'बंधे संकामदि' इस सूत्रके साथ विरोध आता है। यदि कहा जाय कि कषायकी स्थितिका इनमें संक्रमण होकर जो इनकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है उसे छोड़कर अपने बन्धसे इन चारों प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व हो जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि दस और पन्द्रह कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितियोंके एक आवलीकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण होनेमें विरोध आता है।

विशेषार्थ—संक्रमणके पाँच भेद हैं। इनमेंसे अधःप्रवृत्त संक्रम जिस प्रकृतिका बन्ध होता है उसमें ही अन्य सजातीय प्रकृतिका होता है। किन्तु मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होते समय स्त्रीवेद आदि चार प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता, अतः सोलह कषायोंका पहले उत्कृष्टस्थिति बन्ध करावे और एक आवलि बाद स्त्रीवेद आदिका बन्ध कराते हुए उनमें एक आवलि कम कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण करावे। पुनः अन्तर्मुहूर्तमें उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त कराके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करावे। इस प्रकार यह सब व्यवस्था देखनेसे विदित होता है कि जिस समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होती है उस समय स्त्रीवेद आदिकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है। यहाँ बन्धकी अपेक्षा इन चारों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होनेका प्रश्न इसलिए नहीं उठता है, क्योंकि बन्धसे इनका उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व न प्राप्त होकर संक्रमणसे ही उत्कृष्ट स्थिति सत्त्व प्राप्त होता है। इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कितना होता है और उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व कितना होता है यह स्पष्ट ही है।

* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तकम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी तक होती है।

§ ७४२. उसका खुलासा इस प्रकार है—सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर मिथ्यात्वसे निवृत्त होनेके समयमें ही जो स्त्रीवेदका बन्ध करके बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका स्त्रीवेदमें संक्रमण करता है उसके उस समय स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। और उस समय मिथ्यात्व नियमसे अनुत्कृष्ट होता है, क्योंकि वहां पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है। तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त ठहर कर और संक्लेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर उस समय स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको

होदि। एस वियप्पो सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिदूणित्थिवेदम्मि संकामिदे लद्धो। पुणो अण्णेगेण जीवेण सोलसकसायाणं बद्धसमयूणुक्कस्सट्ठिदिणा पडिहग्ग-समए चेव इत्थिवेदं बंधमाणेण तस्सुवरि संकामिदबंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदिणा तेण इत्थिवेदस्स समयूणुक्कस्सट्ठिदिधारएण तत्तो उवरि अवट्ठिदमंतोमुहुत्तमच्छिय उक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए एसो इत्थिवेदस्स विदियवियप्पो होदि, पुव्वुत्तट्ठिदिं पेक्खिदूण समयूणत्तादो। पुणो अण्णेण जीवेण सोलसकसायाणं बद्धदुसमयूणुक्कस्सट्ठिदिणा पडिहग्गसमए इत्थिवेदं बंधमाणेण तदुवरि संकामिदबंधा-वलियादिक्कंतकसायट्ठिदिणा अवट्ठिदमंतोमुहुत्तमच्छिय उक्कस्ससंकिलेसं गंतूण मिच्छ-त्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए इत्थिवेदस्स अण्णो वियप्पो होदि; पुव्वुत्तट्ठिदिं पेक्खिदूण दुसमयूणत्तादो। पुणो अण्णेण जीवेण बद्धतिसमयूणसोलसकसायुक्कस्सट्ठिदिणा पडिहग्गसमए इत्थिवेदं बंधंतेण तदुवरि संकामिदबंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदिणा अवट्ठिदमंतोमुहुत्तमच्छिय उक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए इत्थिवेदस्स अण्णो वियप्पो होदि; पुव्वुत्तट्ठिदिं पेक्खिदूण तिसमयूणत्तादो। एवं चदु-समयूण-पंचसमयूणादिकमेण सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविय पडिहग्गसमए इत्थिवेदं बंधाविय बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदिमित्थिवेदसरूवेण संकामिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं

देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है। यह विकल्प सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर उसका स्त्रीवेदमें संक्रमण कराने पर प्राप्त होता है। पुनः जिसने सोलह कषायोंकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है ऐसा कोई एक जीव जब प्रतिभग्न होनेके समयमें ही स्त्रीवेदका बन्ध करके उसमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका संक्रमण करता है तब वह स्त्रीवेदकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका धारक होता हुआ इसके आगे अवस्थित अन्तर्मुहूर्त तक ठहर कर और उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है। उस समय उसके स्त्रीवेदका यह दूसरा विकल्प होता है, क्योंकि पहलेकी स्थितिको देखते हुए यह स्थिति एक समय कम है। पुनः जिसने सोलह कषायोंकी दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है और प्रतिभग्न होनेके समयमें स्त्रीवेदका बन्ध करते हुए उसमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका संक्रमण किया है ऐसा कोई एक अन्य जीव अवस्थित अन्तर्मुहूर्त तक ठहर कर और उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तो उस समय उसके स्त्रीवेदका अन्य विकल्प प्राप्त होता है, क्योंकि पहलेकी स्थितिको देखते हुए यह स्थिति दो समय कम है। पुनः जिसने सोलह कषायोंकी तीन समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है और प्रतिभग्न होनेके समयमें स्त्रीवेदका बन्ध करते हुए उसमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका संक्रमण किया है ऐसा कोई एक अन्य जीव अवस्थित अन्तर्मुहूर्त ठहर कर और उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तो उस समय उसके स्त्रीवेदका एक अन्य विकल्प प्राप्त होता है, क्योंकि पहलेकी स्थितिको देखते हुए यह स्थिति तीन समय कम है। इसी प्रकार चार समय कम, पांच समय कम इत्यादि क्रमसे पहले सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके तदनन्तर प्रतिभग्न समयमें स्त्रीवेदका बन्ध कराके और बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे संक्रमण कराके तदनन्तर अवस्थित अन्तर्मुहूर्त

बंधाविय ओदारेदव्वं जाव आबाधाकंडएणूणं ति।

§ ७४३. संपहि आबाहाकंडएणूणित्थिवेदहिदीए इच्छिज्जमाणाए सोलसकसायाणमंतोमुहुत्तेणूणेण आबाहाकंडएणूणुक्कस्सहिदिं बंधिय पडिहग्जिदूणित्थिवेदे बज्झमाणे बंधावलियादीदकसायहिदिमित्थिवेदसरूवेण संकामिय अवहिदमंतोमुहुत्तद्धमच्छिय उक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सहिदीए पबद्धाए तक्काले इत्थिवेदमप्पणो ओघुक्कस्सहिदिं पेक्खिदूण एगाबाहाकंडएणूणं होदि। संपहि एदस्साबाहाकंडयस्स हेट्ठा जं हिदिमिच्छदि तिस्से हिदीए उवरि सोलसकसायहिदिमंतोमुहुत्तब्भहियं बंधाविय पुव्विल्लविहाणं जाणिदूण ओदारेदव्वं जाव इत्थिवेदपाओग्गसव्वजहण्णमंतोकोडाकोडि त्ति। एवं पुरिसवेद-हस्स-रदीणं पि परूवेदव्वं, विसेसाभावादो।

❀ णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं हिदिविहत्ती किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा ?

§ ७४४. सुगममेदं।

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।

§ ७४५. मिच्छत्तुक्कस्सहिदीए बज्झमाणाए जदि सोलसकसायाणमुक्कस्सहिदिबंधो णत्थि तो णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं पि णत्थि उक्कस्सहिदिसंतकम्मं, कसाएहिंतो एदासिं पयडीणमुक्कस्सहिदिसंतुप्पत्तीदो। मिच्छत्त-सोलसकसायाण-

कालके बाद उत्कृष्ट संक्लेशके द्वारा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके एक अबाधाकाण्डकसे न्यून स्थितिके प्राप्त होने तक घटाते जाना चाहिये।

§ ७४३ अब आबाधाकाण्डकसे कम स्त्रीवेदकी स्थितिके इच्छित होनेपर सोलह कषायोंकी अन्तर्मुहूर्त कम आबाधाकाण्डकसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके और प्रतिभग्न होकर स्त्रीवेदका बन्ध करते समय बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे संक्रमण करके तदनन्तर अवस्थित अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहर कर और उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके जो जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके उस समय स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी ओघ उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक आबाधाकाण्डक कम होती है। अब इस आबाधाकाण्डकके नीचे स्त्रीवेदकी जो स्थिति इच्छित हो उस स्थितिसे सोलह कषायोंकी स्थितिका अन्तर्मुहूर्त अधिक बन्ध कराके पूर्वोक्त विधिको जानकर उसके योग्य स्त्रीवेदकी सबसे जघन्य अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिके प्राप्त होने तक स्थिति घटाता जावे। इसी प्रकार पुरुषवेद, हास्य और रतिका भी कथन करना चाहिये, क्योंकि उसमे इनमे कोई विशेषता नहीं है।

❀ मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७४४. यह सूत्र सुगम है।

❀ उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी।

§ ७४५. मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय यदि सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होता है तो नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म नहीं होता है, क्योंकि कषायोसे इन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति उत्पन्न होती है। मिथ्यात्व और

मुक्कस्सट्ठिदिबंधे संते वि एदासिं पयडीणमुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मं भयणिज्जं; बंधावलियब्भंतरे बद्धकसायउक्कस्सट्ठिदीए संकमाभावादो। बंधावलियादिक्कंतकसायसमयपबद्धुक्कस्सट्ठिदीए एदासिं पयडीणमुवरि संकंतावत्थाए जदि मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिबंधो होदि तो मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिविहत्तीए सह एदासिं पयडीणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि। एवं होदि त्ति काऊण जइवसहभडारएण उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा होदि त्ति भणिदं।

*** उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव वीससागरोवमकोडाकोडीओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ त्ति।**

§ ७४६. एत्थ ताव णवुंसयवेदमस्सिदूण सुत्तत्थविवरणं कस्सामो। तं जहा-मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय सोलसकसायाणं समयूणुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पुणो बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदीए णवुंसयवेदसरूवेण संकामिज्जमाणावत्थाए जदि मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिबंधो होदि तो णवुंसयवेदस्स अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती; सगोघुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण समयूणत्तादो। पुणो अण्णेण जीवेण कसायाणं दुसमऊणुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदीए णवुंसयवेदसरूवेण संकामिदाए तत्थ मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिबंधे संते णवुंसयवेदस्स अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती, सगोघुक्कस्सं पेक्खिदूण दुसमयूणत्तादो। एवमेदेण कमेण सोलसकसायट्ठिदिं तिसमयूणादिसरूवेण बंधाविय बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदी णवुंसयवेदसरूवेण संकामिय संकंतसमए मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं

सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर भी इन प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्म भजनीय है, क्योंकि बंधी हुई कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्धावलीके भीतर संक्रमण नहीं होता है। तथा बन्धावलिसे रहित कषायके समयप्रबद्धोंकी उत्कृष्ट स्थितिका इन प्रकृतियोंमें संक्रमण होते समय यदि मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है तो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके साथ इन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। इस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय इन प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है ऐसा समझ कर यतिवृषभ भट्टारकने 'उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट' यह कहा है।

*** अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमका असंख्यातवां भाग कम बीस कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है।**

§ ७४६. यहां पहले नपुंसकवेदका आश्रय लेकर सूत्रके अर्थका खुलासा करते हैं। वह इस प्रकार है—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके और सोलह कषायोंकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदनन्तर बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका नपुंसकवेदरूपसे संक्रमण होनेके समय यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है तो नपुंसकवेदकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि उस समय अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए वह एक समय कम होती है। पुनः अन्य जीवके कषायकी दो समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर बंधावलिसे रहित कषायकी स्थितिका नपुंसकवेदरूपसे संक्रमण होते समय यदि मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है तो उस समय उसके नपुंसकवेदकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि अपनी ओघ उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए वह दो समय कम होती है। इस प्रकार इसी क्रमसे सोलह कषायोंकी स्थितिका तीन समय कम आदिरूपसे बन्ध कराके और बन्धावलीसे रहित कषायकी स्थितिका

बंधाविय ओदारेदव्वं जाव णवुंसयवेदस्स ओघुक्कस्सट्ठिदी एगेणाबाधाकंडएणूणा जादा त्ति।

§ ७४७. एदिस्से ट्ठिदीए उप्पत्तिविहाणं वुच्चदे। तंजहा—मिच्छत्त-सोलसकसायाणमाबाहाकंडएणूणउक्कस्सट्ठिदिमावलियमेत्तकालं बंधाविय पुणो उक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए तक्काले आबाधाकंडएणूणावलियादीदकसायट्ठिदिं णवुंसयवेदस्सुवरि संकामिय मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए णवुंसयवेदस्स अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि। कुदो? आवलियब्भहियआबाहाकंडएणूणचत्तालीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्ठिदित्तादो। एवं जाणिदूण ओदारेदव्वं जाव बीसंसागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्ठिदि त्ति।

§ ७४८. संपहि वीसंसागरोवमकोडाकोडिपमाणे इच्छिज्जमाणे सोलसकसायाणमावलियब्भहियवीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्ठिदिमावलियमेत्तकालं बंधाविय पुणो उक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिबज्झमाणसमए पुव्वुत्तावलियादीदकसायट्ठिदीए णवुंसयवेदसरूवेण संकंताए णवुंसयवेदट्ठिदी अणुक्कस्सा होदि; वीससागरोवमकोडाकोडिपमाणत्तादो। पुणो समयूणाबाहाकंडयमेत्तट्ठिदिमप्पणो बंधमस्सिदूणोदारिय गेण्हिदव्वं। एवमरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं पि वत्तव्वं, वीससागरोवमकोडाकोडिट्ठिदिबंधादीहि तत्तो विसेसाभावादो। एवं मिच्छत्तेण सह सव्वपयडीणं सण्णियासो गदो।

नपुंसकवेदरूपसे संक्रमण कराके तथा संक्रमणके समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके नपुंसकवेदकी ओघ उत्कृष्ट स्थिति एक आबाधाकाण्डक कम होने तक घटाते जाना चाहिये।

§ ७४७. अब इस स्थितिके उत्पन्न होनेकी विधि कहते हैं। वह इस प्रकार है—मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी एक आबाधाकाण्डक न्यून उत्कृष्ट स्थितिका एक आवलि कालतक बन्ध कराके पुनः उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके उसी समय एक आबाधाकाण्डक कम और एक आवलि रहित कषायकी स्थितिका नपुंसकवेदमें संक्रमण कराने पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होने पर नपुंसकवेदकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि यह स्थिति एक आवलि अधिक आबाधाकाण्डक कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है। इसी प्रकार जानकर बीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक नपुंसकवेदकी स्थिति घटाते जाना चाहिये।

§ ७४८. अब बीस कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिके इच्छित होने पर सोलह कषायोंकी एक आवलि अधिक बीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिका एक आवलि कालतक बन्ध कराके पुनः उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके जो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है उसके उस समय पूर्वोक्त एक आवलिसे रहित कषायकी स्थितिका नपुंसकवेदरूपसे संक्रमण होने पर नपुंसकवेदकी अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि यह स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागर है। पुनः अपने बन्धकी अपेक्षा एक समय कम आबाधाकाण्डक प्रमाण स्थितिको घटाकर ग्रहण करना चाहिये। इसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी कथन करना चाहिये, क्योंकि बीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिबन्ध आदिकी अपेक्षा नपुंसकवेदसे इनमें कोई विशेषता नहीं है। इस प्रकार मिथ्यात्वके साथ सब प्रकृतियोंका सन्निकर्ष समाप्त हुआ।

❀ सम्मत्तस्स उक्कस्सहिदिविहत्तियस्स मिच्छत्तस्स हिदिविहत्ती किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा ?

§ ७४९. सुगममेदं ।

❀ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७५०. कुदो ? सम्मादिहिम्मि मिच्छत्तस्स बंधाभावेण तत्थ तदुक्कस्सहिदीए असंभवादो । ण च पढमसमयवेदयसम्मादिहिं मोत्तूणण्णत्थ सम्मत्तस्सुक्कस्सहिदिविहत्ती होदि, मिच्छादिहिम्हि अपडिग्गहसम्मत्तकम्मे सम्मत्तस्सुवरि मिच्छत्तहिदीए संकमाभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणा ।

§ ७५१. कुदो ? मिच्छत्तुक्कस्सहिदिं बंधिय पडिहज्जिदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय वेदगसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए मिच्छत्तहिदीए सम्मत्तस्सुवरि संकंताए सम्मत्तस्सुक्कस्सहिदिविहत्ती होदि, तत्थ मिच्छत्तहिदीए सगोघुक्कस्सहिदिं पेक्खदूण अंतोमुहुत्तूणत्तुवलंभादो ।

❀ णत्थि अण्णो वियप्पो ।

§ ७५२. सम्मत्तहिदीए उक्कस्सियाए संतीए जहा अण्णेसिं कम्माणमणुक्कस्सहिदी अणेयवियप्पा तधा मिच्छत्ताणुक्कस्सहिदी ण णेयवियप्पा; सम्मत्तुक्कस्सहिदीए एयवियप्पत्तण्णहाणुववत्तीदो ।

*** सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?**

§ ७४९. यह सूत्र सुगम है ।

*** नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।**

§ ७५०. क्योंकि सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वका वन्ध नहीं होता, अतएव वहां उसकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती और प्रथम समयवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टिको छोड़कर सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति अन्यत्र होती नहीं, क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्व प्रकृति पतद्ग्रहपनेके अयोग्य है, अतः उसके सम्यक्त्वमें मिथ्यात्वकी स्थितिका संक्रमण नहीं होता है ।

*** वह अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है ।**

§ ७५१. क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्टस्थितिका वन्ध करके और मिथ्यात्वसे निवृत्त होकर तथा वहां अन्तर्मुहूर्तकाल तक ठहरकर जो वेदकसम्यक्त्वके प्राप्त होनेके पहले समयमें मिथ्यात्वकी स्थितिका सम्यक्त्वमें संक्रमण करता है उसके सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । पर वहां मिथ्यात्वकी स्थिति अपनी ओघ उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम पाई जाती है ।

*** यहां मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिका इससे अतिरिक्त अन्य विकल्प नहीं होता ।**

§ ७५२. सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए जिस प्रकार अन्य कर्मोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति अनेक प्रकारकी होती है उस प्रकार मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति अनेक प्रकारकी नहीं होती है,

❀ सम्मामिच्छत्तट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा किमणुक्कस्सा ?

§ ७५३. सुगममेदं ।

❀ णियमा उक्कस्सा ।

§ ७५४. कुदो ? अंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्तमिच्छत्तट्ठिदीए पढमसमयवेदगसम्मादिट्ठिम्मि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसरूवेण जुगवं संकंतिदंसणादो । सम्मामिच्छत्तस्सुदयणिसेगो सगसरूवेण णत्थि; थिवुक्कसंकमेण सम्मत्तुदयणिसेगसरूवेण परिणदत्तादो । तम्हा सम्मत्तुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण सम्मामिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए एगणिसेगेणूणाए होदव्वं । ण च उदयणिसेगस्स सगसरूवेण धरणट्ठमट्ठावीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठी तप्पाओग्गुक्कस्समिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मिओ सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जावेदुं सक्किज्जइ, सम्मामिच्छाइट्ठिम्मि दंसणतियस्स संकमाभावेण दोण्हं पि अणुक्कस्सट्ठिदिप्पसंगादो त्ति ? ण, उक्कस्सट्ठिदीए पक्कंताए कालं मोत्तूण णिसेयाणं पहाणत्ताभावादो । कत्थ पुण णिसेयाणं पहाणत्तं ? जहण्णट्ठिदीए । तं कुदो णव्वदे ? छण्णोकसायजहण्णट्ठिदीए अंतोमुहुत्तावट्ठाणपरूवणसुत्तादो । ण कोहसंजलणेण वियहिचारो,

अन्यथा सम्यक्त्वकी उत्कृष्टस्थिति एक प्रकारकी नहीं बन सकती है ।

* सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७५३. यह सूत्र सुगम है ।

* नियमसे उत्कृष्ट होती है ।

§ ७५४. क्योंकि अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिका वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूपसे एक साथ संक्रमण देखा जाता है ।

शंका—सम्यग्दृष्टि जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका उदयनिषेक अपने रूपसे उदयमें नहीं आता है, क्योंकि स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा उसका सम्यक्त्वके उदयनिषेकरूपसे परिणमन हो जाता है । अतः सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक निषेक कम होनी चाहिये । यदि कहा जाय कि जिससे सम्यग्मिथ्यात्वका उदयनिषेक अपने रूपसे प्राप्त हो जाय इसलिये अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवको तत्प्रायोग्य मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मके साथ सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान प्राप्त करा दिया जाय सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका संक्रमण नहीं होता, अतः वहां दोनोंकी ही अनुत्कृष्ट स्थितिका प्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिमें कालको छोड़कर निषेकोंकी प्रधानता नहीं है ।

शंका—तो फिर निषेकोंकी प्रधानता कहाँ पर है ?

समाधान—जघन्य स्थितिमें ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिका काल अन्तर्मुहूर्त है इस बातका कथन करने-

ट्ठिदिणा बंधावलियाइक्कंतकसायट्ठिदिसंकमेणुक्कस्सीकयणवणोकसाएण जहण्णपडिहग्गद्धमच्छिय सम्मत्ते पडिवण्णे सम्मत्तुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि। तक्काले सोलसकसाय-णवणोकसायाणुक्कस्सट्ठिदी अंतोमुहुत्तूणा; जहण्णपडिहग्गद्धाए अधट्ठिदिगलणाए गलिदत्तादो। मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिबंधकाले सोलसकसायाणं समयूणुक्कस्सट्ठिदीए पबद्धाए अण्णा सोलसकसाय-णवणोकसायाणमणुक्कस्सट्ठिदी होदि; पुव्विट्ठिदिं पेक्खिदूण समयूणत्तादो। एवं दुसमयूण-तिसमयूणादिकमेण ओदारेदव्वं जाव समयूणाबाहाकंडएणूणुक्कस्सट्ठिदि त्ति। तत्थ सव्वपच्छिमवियप्पो वुच्चदे। तं जहा— मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिबंधेण सह कसायाणं समयूणाबाहाकंडएणूणुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय अवट्ठिदपडिहग्गद्धमधट्ठिदिगलणाए गालिय सम्मत्ते पडिवण्णे सोलसकसाय-णवणोकसायाणं ट्ठिदी सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण समयूणाबाहाकंडएण जहण्णपडिहग्गद्धाए च ऊणा। एत्तो हेट्ठा णोदारेदुं सक्किज्जइ, ओदारिदे सम्मत्तुकस्सट्ठिदिविणासादो।

❀ एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि।

§ ७५८. जहा सम्मत्तुक्कस्सट्ठिदिणिरोहं काऊण अवसेसकम्मट्ठिदीणं सण्णियासो कदो तहा सम्मामिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणिरोहं काऊण सेसकम्मट्ठिदीणं सण्णियासो कायव्वो,

---

बांधी है और बन्धावलिके बाद जिसने कषायकी स्थितिका संक्रमण करके नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति की है ऐसा अट्ठाईस प्रकृतियोंका सत्कर्मवाला जीव यदि जघन्य प्रतिभग्नकाल तक मिथ्यात्वमें रहकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ तो उस समय उसके सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है और उसी समय उसके सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम होती है, क्योंकि इसके जघन्य प्रतिभग्न काल अधःस्थितिगलनाके द्वारा गल चुका है। तथा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय सोलह कषायों की एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होने पर सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अन्य अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि पहलेकी स्थितिको देखते हुए यह स्थिति एक समय कम है। इसी प्रकार दो समय कम, तीन समय कम आदि क्रमसे एक समय कम आबाधा काण्डकसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये। वहाँ अब सबसे अन्तिम विकल्प कहते हैं। वह इस प्रकार है—मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थिति बन्धके साथ कषायोंकी एक समय कम आबाधाकाण्डकसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिको बाँध कर तदनन्तर अवस्थित प्रतिभग्नकालको अधःस्थितिगलनाके द्वारा गलाकर इस जीवके सम्यक्त्वके प्राप्त होने पर सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम आबाधाकाण्डक और जघन्य प्रतिभग्न काल प्रमाण कम होती है। यहां सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थितिको इससे और कम नहीं किया जा सकता है, क्योंकि इनकी स्थितिको इससे और कम करने पर सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिका विनाश हो जाता है।

❀ इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको विवक्षित कर शेष प्रकृतियों की स्थितियोंका सन्निकर्ष करना चाहिये।

§ ७५८. जिस प्रकार सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिको विवक्षित कर अर्थात् सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए शेष कर्मोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष कहा उसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी

विसेसाभावादो ।

❀ जहा मिच्छत्तस्स तहा सोलसकसायाणं ।

§ ७५९. जहा मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणिरुंभणं काऊण सेसासेसमोहपयडिट्ठिदीणं सण्णियासो कदो तहा सोलसकसाएसु एगेगकसायस्स उक्कस्सट्ठिदिणिरुंभणं काऊण सेसकम्मट्ठिदीणं सण्णियासो कायव्वो; अविसेसादो ।

*** इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स मिच्छत्तस्स ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?**

§ ७६०. सुगममेदं ।

❀ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७६१. कुदो ? इत्थिवेदबंधकाले मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिबंधाभावादो । ण च इत्थिवेदस्स बंधेण विणा ट्ठिदीए उक्कस्सत्तं संभवइ, अपडिग्गहस्सित्थिवेदस्सुवरि बंधावलियाइक्कंतकसायुक्कस्सट्ठिदीए संकमाभावादो । तम्हा णियमा अणुक्कस्सा त्ति सुत्तं सुभासिदं ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणा त्ति ।

उत्कृष्ट स्थितिको विवक्षित कर शेष कर्मोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष कहना चाहिये; क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

❀ जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको विवक्षित कर शेष प्रकृतियों की स्थितियोंका सन्निकर्ष कहा उसी प्रकार सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको विवक्षित कर शेष प्रकृतियोंकी स्थितियोंका भी सन्निकर्ष कहना चाहिये ।

§ ७५९. जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको रोक कर शेष सब मोह प्रकृतियोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष किया है उसी प्रकार सोलह कषायोंमेंसे एक एक कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको रोककर शेष कर्मोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष करना चाहिये, क्योंकि इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है ।

स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके समय मिथ्यात्वकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७६०. यह सूत्र सुगम है ।

❀ नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७६१. क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धके समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका बन्ध नहीं होता है । और स्त्रीवेदका बन्ध हुए विना उसकी स्थिति उत्कृष्ट हो नहीं सकती, क्योंकि अपतद्ग्रहरूप स्त्रीवेदमें बन्धावलिके बाद कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण नहीं होता है । इसलिये स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय मिथ्यात्वकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है यह सूत्र उचित ही कहा है ।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम स्थिति तक होती है ।

§ ७६२. तं जहा—मिच्छत्त-सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए चेव इत्थिवेदबंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदीए इत्थिवेदसरूवेण संकामिदाए इत्थिवेदस्सुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि। तक्काले मिच्छत्तं समयूणं होदि; उक्कस्सट्ठिदीदो अधट्ठिदिगलणाए गलिदेगसमयत्तादो। संपहि सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधकाले मिच्छत्तस्स-समयूणुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए इत्थिवेदं बंधंतेण कसायट्ठिदीए तस्सरूवेण संकामिदाए इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि। तस्समए मिच्छत्तस्स अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती; सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण दुसमयूणत्तादो। एवं तिसमयूणादिकमेण मिच्छत्तमोदारेयव्वं जाव आबाहाकंडएणूणट्ठिदिं पत्तं ति। पुणो वि आबाहाकंडयस्स हेट्ठा मिच्छत्तं समऊणावलियमेत्तमोदरदि। तं जहा—सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिमंतोमुहुत्तमेत्तमावलियमेत्तं वा कालं बंधंतेण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदी वि समयूणाबाहाकंडएणूणा बद्धा। पुणो पडिहग्गसमए इत्थिवेदं बंधंतेण बंधावलियादीदकसायट्ठिदी तस्सरूवेण संकामिदा ताधे इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि। एवं पडिहग्गावलियमेत्तकालमित्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती चेव; बंधगद्धाए चरिमावलियमेत्तुक्कस्सट्ठिदीणं तत्थ संकंतिदंसणादो। मिच्छत्तं पुण पडिहग्गपढमसमए आबाहाकंडएणूणं विदिसमए तेण समयाहिएण तदियसमए तेण दुसमयाहिएण एवं णेदव्वं जाव पडिहग्गावलियचरिम-

§ ७६२. उसका खुलासा इस प्रकार है—जो मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभग्नकालके भीतर ही स्त्रीवेदका बन्ध करता हुआ बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे संक्रमण करता है उसके स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है। तथा उस समय मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम होती है, क्योंकि इसकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अधःस्थितिगलनाके द्वारा एक समय गल गया है। अब सोलह कषायों की उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय मिथ्यात्वकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर प्रतिभग्न कालके भीतर स्त्रीवेदको बांधते हुए किसी जीवके कषायकी स्थितिके स्त्रीवेदरूपसे संक्रामित होने पर जिससमय स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है उस समय मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए यह दो समय कम होती है। इसी प्रकार तीन समय कम इत्यादि क्रम से आबाधाकाण्डक प्रमाण कम स्थितिके प्राप्त होने तक मिथ्यात्वकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये। तथा इसके बाद भी आबाधाकाण्डकके नीचे मिथ्यात्वकी स्थितिको एक समय कम आवलिप्रमाण और कम करना चाहिये। खुलासा इस प्रकार है—सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको एक अन्तर्मुहूर्तकाल तक या एक आवलि कालतक बांधते हुए किसी जीवने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति भी एक समयकम आबाधाकाण्डकप्रमाण न्यून बांधी। पुनः प्रतिभग्नकालके भीतर स्त्रीवेदका बंध करते हुए उस जीवने बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका स्त्रीवेदरूपसे संक्रमण किया तब उस जीवके स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। इस प्रकार प्रतिभग्नकालके एक आवलि काल तक स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति ही होती है, क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धककालमें अन्तिम आवलिप्रमाण कषायकी उत्कृष्ट स्थितियोंका स्त्रीवेदमें संक्रमण देखा जाता है। तथा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति प्रतिभग्नकालके पहले समयमें तो एक आबाधाकाण्डकप्रमाण कम होती है, दूसरे समयमें एक समय अधिक एक आबाधाकाण्डकप्रमाण

समओ त्ति। णवरि तत्थ मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदी समयूणावलियब्भहियआबाहाकंडएण ऊणा होदि। कुदो? बंधेण समयूणाबाहाकंडएणूणमिच्छत्तस्स ट्ठिदीए पुणो वि अध-ट्ठिदिगलणाए आवलियमेत्तट्ठिदीणं परिहाणिदंसणादो।

*** सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?**

§ ७६३. सुगममेदं।

*** णियमा अणुक्कस्सा।**

§ ७६४. मिच्छादिट्ठिम्मि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदीए अभावादो। ण च इत्थिवेदस्स मिच्छादिट्ठिं मोत्तूण सम्माइट्ठिम्मि उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि; तत्थ बंधाभावेणित्थिवेदस्स पडिहग्गत्ताभावादो कसायट्ठिदीए वि तत्थ उक्कस्सत्ताभावादो।

*** उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव एगा ट्ठिदि त्ति।**

§ ७६५. तं जहा—मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गो होदूण सम्मत्तं घेत्तूण तत्थ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिओ होदूण सम्मत्तेणंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णेण कालेण संकिलेसं गंतूण सोलसकसायाणमेगसमयमावलियमेत्तकालं

कम होती है और तीसरे समयमें दो समय अधिक एक आबाधाकाण्डकप्रमाण कम होती है। इस प्रकार प्रतिभग्न कालकी एक आवलिके अन्तिम समय तक मिथ्यात्वकी स्थिति घटाते जाना चाहिये। इतनी विशेषता है कि वहाँ पर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम आवलिप्रमाण कालसे अधिक एक आबाधाकाण्डक कालप्रमाण कम होती है, क्योंकि बन्धकी अपेक्षा एक समय कम आबाधाकाण्डक कालप्रमाण कम मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अधःस्थितिगलनाके द्वारा आवलिप्रमाण स्थितियोंकी हानि और देखी जाती है।

*** स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति विभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?**

§ ७६३. यह सूत्र सुगम है।

*** नियमसे अनुत्कृष्ट होती है।**

§ ७६४. क्योंकि मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं पाई जाती है। यदि कहा जाय कि मिथ्यादृष्टिको छोड़कर सम्यग्दृष्टिके स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति रही आवे सो भी बात नहीं है, क्योंकि सम्यग्दृष्टिके स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होता है, अतः वहाँ पर स्त्रीवेदका पतद्ग्रहपना नहीं पाया जाता है। तथा वहाँ पर कषायकी स्थिति भी उत्कृष्ट नहीं होती है।

*** वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर एक स्थिति तक होती है।**

§ ७६५. उसका खुलासा इस प्रकार है—जो जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर, और प्रतिभग्न होकर, तदनन्तर सम्यक्त्वको ग्रहण करके, उसके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट विभक्तिका धारक होकर तथा सम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर तदनन्तर मिथ्यात्वमें जाकर और सबसे जघन्य कालके द्वारा संक्लेशकी पूर्ति करके सोलह कषायों-

वा उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गपढमसमए इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि। तक्काले सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणुक्कस्सट्ठिदी; सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणत्तादो। सेसं जहा मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए णिरुद्धाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सण्णियासो कदो तहा इत्थिवेदुक्कस्सट्ठिदीए णिरुद्धाए वि तासिं पयडीणं ट्ठिदीए सण्णियासो कायव्वो; विसेसाभावादो।

❀ णवरि चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा त्ति।

§ ७६६. अंतोमुहुत्तूणुक्कस्सट्ठिदिप्पहुडि जावेगा ट्ठिदि त्ति सव्वट्ठिदीहि सह सण्णियासे पुव्वसुत्तेण संपत्ते तस्सापवादट्ठमेदं सुत्तमागदं। चरिमुव्वेल्लणकंडयम्मि उक्कीरणद्धामेत्ताओ फालीओ होंति। एत्तियमेत्ताओ फालीओ होंति त्ति कुदो णव्वदे? चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा त्ति एदम्हादो सुत्तादो। ण च एगसमएण ट्ठिदिखंडए पदंते संते 'चरिमफालीए ऊणा' त्ति णिद्देसो जुज्जदे; एक्कम्मि चारिमाचरिमववहाराभावादो। होदु णाम फालीणं वहुत्तसिद्धी, ताओ उक्कीरणद्धामेत्ताओ त्ति कथं णव्वदे? ट्ठिदिकंडयणिवदणकालस्स उक्कीरणद्धाववएसण्णहाणुववत्तीदो। ण च

की एक समय तक या एक आवलि काल तक उत्कृष्ट स्थितिको बाँधता है उसके प्रतिभग्न होनेके प्रथम समयमें स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। तथा उस समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थिति होती है; क्योंकि वह अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है। आगे जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका रोक कर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी शेष स्थितियोका सन्निकर्ष किया है उसी प्रकार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिको रोक कर भी उन प्रकृतियोंकी स्थितियोंका सन्निकर्ष करना चाहिये, क्योकि दानोमें कोई विशेषता नहीं है।

❀ किन्तु इतनी विशेषता है कि वह अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति अन्तिम उद्वेलना काण्डककी अन्तिम फालिसे न्यून होती है।

§ ७६६. अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थितितक अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है। इस प्रकार पूर्व सूत्र वचनसे सब स्थितियोंके साथ सन्निकर्षके प्राप्त होने पर उसके अपवादके लिये यह सूत्र आया है। अन्तिम उद्वेलनाकाण्डकमें उत्कीरण काल प्रमाण फालियां होती हैं।

शंका—इतनी फालियां होती हैं यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—'चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा' इस सूत्र वचनसे जाना जाता है। यदि एक समयके द्वारा स्थितिकाण्डकका पतन स्वीकार किया जाय तो 'चरिमफालीए ऊणा' यह निर्देश नहीं वन सकता है, क्योंकि एकमें अन्तिम और अनन्तिम इस प्रकारका व्यवहार नहीं वन सकता है।

शंका—फालियां वहुत होती हैं यह भले ही सिद्ध हो जाओ परन्तु वे उत्कीरणकाल प्रमाण होती हैं यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—यदि फालियां उत्कीरण काल प्रमाण न मानी जायं तो स्थितिकाण्डकके पतन होनेके कालकी उत्कीरण काल यह संज्ञा नहीं वन सकती है। इससे जाना जाता है कि फालियां

ट्ठिदिपदेसाणमुक्कीरणमकुणमाणाए अद्धाए उक्कीरणद्धा त्ति ववएसो घडदे। णाणत्थिया एसा सण्णा, आगमसव्वसण्णाणमत्थाणुगयाणमुवलंभादो। एदं सुत्तं देसामासियं ति काऊण सव्वट्ठिदिकंडयाणि अंतोमुहुत्तेण णिवदंति त्ति घेत्तव्वं। ण समुग्घादगद-केवलिट्ठिदिकंडएहि वियहिचारो; केवलीणमकेवलीहि साहम्माभावादो।

§ ७६७. चरिमुव्वेलणकंडयस्स चरिमफालीए जत्तिया णिसेया तत्तियमेत्तट्ठिदीओ मोत्तूण जत्तियाओ सेसट्ठिदीओ तत्तियमेत्ता चेव सण्णियासवियप्पा होंति। चरिम-फालिमेत्ता किण्ण लद्धा? ण, तत्तियमेत्तट्ठिदीसु एगवारेण णिवदिदासु मिच्छत्तुक्कस्स-ट्ठिदीए सह पादेक्कं तट्ठिदीणं सण्णियासाणुवलंभादो। ण तदुवरिमादिमुव्वेल्लणकंड-एहि वियहिचारो, तेसिं कंडयाणमवट्ठिदआयामाभावेण सव्वणिसेगाणं मिच्छत्तुक्कस्स-ट्ठिदीए सह सण्णियासुवलंभादो। ण चरिमुव्वेल्लणकंडयम्मि जहण्णम्मि आयामं पडि अणियमो; तिकालविसयासेसजीवेसु चरिमुव्वेल्लणजहण्णकंडयायामस्स एगसरूवत्तादो। एदं कुदो णव्वदे? एदस्स सुत्तणिद्देसस्स अण्णहाणुववत्तीदो।

उत्कीरण कालप्रमाण होती हैं। तथा स्थितिगत प्रदेशोंकी उत्कीरणा नहीं करने पर कालको उत्कीरणकाल यह संज्ञा दी नहीं जा सकती। यदि कहा जाय कि यह संज्ञा निष्फल है, सो भी बात नहीं है, क्योंकि आगमिक सभी संज्ञाएं अर्थका अनुसरण करनेवाली होती हैं।

यह सूत्र देशामर्षक है ऐसा समझकर सब स्थितिकाण्डकोंका पतन अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिये। यदि कहा जाय कि ऐसा मानने पर समुद्घातगत केवलीके स्थितिकाण्डकोंके साथ व्यभिचार आता है सो भी बात नहीं है, क्योंकि केवलियोंकी इतर छद्मस्थोंके साथ समानता नहीं पाई जाती है।

§ ७६७. अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिके जितने निषेक होते हैं उतनी स्थिति-योंको छोड़कर शेष जितनी स्थितियां हो उतने ही सन्निकर्ष विकल्प होते हैं।

शंका—अन्तिम फालिप्रमाण सन्निकर्षविकल्प क्यों नहीं प्राप्त होते हैं।

समाधान—नहीं, क्योंकि उतनी स्थितियोंका एक बारमें पतन हो जाता है, इसलिये मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ उनमें से प्रत्येक स्थितिका सन्निकर्ष नहीं पाया जाता है।

यदि कहा जाय कि इसप्रकार तो इसके ऊपरके उद्वेलनकाण्डकसे लेकर प्रथम उद्वेलनकाण्डक तक सभी उद्वेलनकाण्डकोंके साथ व्यभिचार हो जायगा, सो भी बात नहीं है, क्योंकि उन काण्डकोंका अवस्थित आयाम नहीं पाया जाता, इसलिये उनके सब निषेकोंका मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ सन्निकर्ष बन जाता है। यदि कहा जाय कि जघन्य अन्तिम उद्वेलनाकाण्डकमें आयामका कोई नियम नहीं है, सो भी बात नहीं है, क्योंकि त्रिकालवर्ती सब जीवोंमें जघन्य अन्तिम उद्वेलनाकाण्डकका आयाम एकसा ही होता है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—इस सूत्रका निर्देश अन्यथा बन नहीं सकता था, इससे जाना जाता है कि जघन्य अन्तिम उद्वेलना काण्डकका आयाम एकसा होता है।

विशेषार्थ—यहाँ प्रकरण यह है कि मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट? इसका जो उत्तर दिया है उसका

भाव यह है कि नियमसे अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यात्व गुणस्थानमें प्राप्त होती है और उक्त दोनों कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यग्दृष्टिके पहले समयमें सम्भव है, अतः मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति तो हो नहीं सकती। हाँ अनुत्कृष्ट स्थिति अवश्य सम्भव है सो भी वह अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थिति तक जानना चाहिये। किन्तु इसका एक अपवाद है। बात यह है कि सब प्रकृतियोंके प्रथमादि स्थितिकाण्डक सम और विषम दोनों प्रकारके होते हैं। इसलिये उन स्थितिकाण्डकोंमें प्राप्त स्थितिविकल्पोंके साथ नाना जीवोंकी अपेक्षा सन्निकर्ष बन जाता है। किन्तु अन्तिम जघन्य स्थितिकाण्डक एक समान होता है। अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व सम्बन्धी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिमें जितने निषेक सम्भव हैं उतने स्थितिविकल्प सन्निकर्षमें नहीं प्राप्त होते, क्योंकि उनका पतन क्रमसे न होकर एक समयमें हो जाता है। इस पर एक स्थितिकाण्डकमें प्राप्त होनेवाली फालियाँ उत्कीरणकालकी सार्थकता और समुद्घातको प्राप्त हुए केवलीके स्थितिकाण्डकके साथ आनेवाला व्यभिचारका निराकरण इनका विचार किया गया है। पहली और दूसरी बातका विचार करते हुए बतलाया है कि एक स्थितिकाण्डकमें एक फालि न होकर अनेक फालियाँ होती हैं। प्रमाण रूपमें 'णवरि चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा' यही सूत्र उपस्थित किया गया है। इस सूत्रमें फालिके साथ चरम विशेषण आया है इससे प्रतीत होता है कि एक स्थितिकाण्डकमें अनेक फालियाँ होती हैं। अन्यथा फालिको चरम विशेषण देनेकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि एकमें चरम और अचरम यह व्यवहार नहीं बन सकता है। तो फिर वे कितनी होती हैं। इस शंकाके होने पर बतलाया है कि स्थितिकाण्डकका जितना उत्कीरण काल होता है उतनी फालियाँ होती हैं। इसका यह तात्पर्य है कि उत्कीरण कालके एक-एक समयमें एक-एक फालिका पतन होता है। यहाँ फालि शब्द फाँक इस अर्थमें आया है। जैसे लड़कीके चीरने पर उसमें अनेक फलक या स्तर निकलते हैं उसी प्रकार स्थितिकाण्डकका पतन होते समय विवक्षित स्थितिकाण्डकके अनेक स्तर या फलक हो जाते हैं। उनमेंसे एक-एक फलकका एक-एक समयमें पतन होता है। इस प्रकार इन फालियों के पतनमें कितना समय लगता है उस सब कालको उत्कीरणकाल कहते हैं। उत्कीरणका अर्थ उकीरना है और इसमें जो काल लगता है उसे उत्कीरणकाल कहते हैं। भावार्थ यह है कि एक स्थितिकाण्डकके पतनका काल अन्तमुंहूर्त बतलाया है। इसलिये उत्कीरण कालका प्रमाण भी इतना ही होता है। और एक स्थितिकाण्डकमें फालियाँ भी उक्तप्रमाण ही होती हैं। परन्तु प्रत्येक फालि स्थितिकाण्डकके आयामप्रमाण होती है। और तभी उसकी फालि यह संज्ञा सार्थक है। तीसरी बातका विचार करते हुए बतलाया है कि अकेवलियोंके साथ केवलियोंकी समानता करना ठीक नहीं। मतलब यह है कि संसारी जनोंको एक-एक स्थितिकाण्डकके पतनमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है और समुद्घातगत केवलीको एक-एक समय ही लगता है। अब जब कि सब स्थितिकाण्डकोंका काल अन्तमुंहूर्त मान लिया जाय तो यह बात केवलियोंके स्थितिकाण्डकमें घटित नहीं होती, इसलिये व्यभिचार दोष आता है। बस इसी शंकाका समाधान करते हुए यह बतलाया है कि केवलियोंकी छद्मस्थ जनोंके साथ समानता नहीं है। अर्थात् एक-एक स्थितिकाण्डकका काल जो अन्तर्मुहूर्त बतलाया है वह छद्मस्थ जनोंकी अपेक्षा बतलाया है समुद्घातगत केवलियोंकी अपेक्षा नहीं, इसलिये कोई दोष नहीं प्राप्त होता। समुद्घातगत केवलियोंके तो परिणामोंकी विशुद्धिके कारण एक-एक समयमें एक-एक स्थितिकाण्डकका पतन हो जाता है। इस प्रकार इतने कथनका यह तात्पर्य है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके निषेकोंका एक साथ पतन होता है इसलिये उतने निषेक सन्निकर्षको नहीं प्राप्त होते।

❀ सोलसकसायाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७६८. सुगममेदं ।

❀ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७६९. कुदो ? कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधकाले इत्थिवेदस्स बंधाभावादो । बंधभावेण अपडिहग्गस्सित्थिवेदस्स सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधकाले उक्कस्सट्ठिदीए संभवाभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव आवलियूणा त्ति ।

§ ७७० तं जहा—पडिहग्गपढमसमए बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदीए इत्थिवेदम्मि संकंताए इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । तक्काले कसायट्ठिदी सगुक्कस्सं पेक्खिदूण समयूणा; चरिमसमयम्मि बंधुक्कस्सट्ठिदीए गलिदेगसमयत्तादो । एवं विदियसमए दुसमयूणा तदियसमए तिसमयूणा एवमावलियमेत्तसमएसु कसायुक्कस्सट्ठिदी आवलियूणा होदि । इत्थिवेदट्ठिदी पुण उक्कस्सा चेव, चरिमसमयम्मि बद्धकसायुक्कस्सट्ठिदीए बंधावलियादिक्कंताए इत्थिवेदस्सुवरि संकंतिदंसणादो । आवलियादो उवरि कसायुक्कस्सट्ठिदी ऊणा किण्ण कीरइ ? ण, उवरि इत्थिवेदुक्कस्स-

---

❀ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोलह कषायोंकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७६८. यह सूत्र सुगम है।

❀ नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

७६९. क्योंकि कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होता है। तथा बन्धरूपसे पतद्ग्रहपनेको नहीं प्राप्त हुए स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय संभव नहीं है।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कम से लेकर एक आवलिकम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है ।

§ ७७०. इसका खुलासा इस प्रकार है—प्रतिभग्नकालके प्रथम समयमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके स्त्रीवेदमें संक्रान्त होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। उस समय कषायकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम होती है, क्योंकि यहां पर अन्तिम समयमें बंधी हुई कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय गल गया है। इसी प्रकार दूसरे समयमें दो समय कम तीसरे समयमें तीन समय कम तथा इसी प्रकार आवलिप्रमाण समयोंके व्यतीत होने पर कषायकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलिकम होती है परन्तु यहांतक स्त्रीवेदकी स्थिति उत्कृष्ट ही रहती है, क्योंकि अन्तिम समयमें बँधी हुई कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्धावलिके व्यतीत होने पर स्त्रीवेदमें संक्रमण देखा जाता है।

शंका—कषायकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलि काल तक ही कम क्यों होती है इससे और

ट्ठिदीए असंभवादो ।

*** पुरिसवेदस्स ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?**

§ ७७१ सुगममेदं ।

*** णियमा अणुक्कस्सा ।**

§ ७७२. कुदो ? इत्थिवेदबंधकाले सेसवेदाणं बंधाभावादो । किमिदि णत्थि बंधो ? साहावियादो । ण च सहावो पडियबोयणाजोग्गो, अव्ववत्थावत्तीदो । ण च बंधेण विणा पुरिसवेदो कसायट्ठिदिं पडिच्छदि, अपडिग्गहत्तादो ।

*** उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति ।**

§ ७७३. तं जहा—कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं पडिबंधिय पडिहग्गसमए बज्झमाणपुरिसवेदस्सुवरि बंधावलियादीदकसायट्ठिदीए संकंताए पुरिसवेदस्सुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । पुणो सव्वजहण्णेणंतोमुहूत्तेणुक्कस्ससंकिलेसं गंतूण कसायुक्कस्सट्ठिदिं

अधिक कम क्यों नहीं की जाती है ।

समाधान—नहीं, क्योंकि आवलिसे अधिक कषायकी स्थितिके कम होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका पाया जाना संभव नहीं है ।

*** स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय पुरुषवेदकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?**

§ ७७१. यह सूत्र सुगम है ।

*** नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।**

§ ७७२. क्योंकि स्त्रीवेदके वन्धके समय शेष वेदोंका वन्ध नहीं होता है ।

शंका—स्त्रीवेदके वन्धके समय शेष वेदोका वन्ध क्यों नहीं होता है ?

समाधान—ऐसा स्वभाव ही है कि स्त्रीवेदके वन्धके समय शेष वेदोका वन्ध नहीं होता है और स्वभावमें शंका नहीं की जा सकती, अन्यथा अव्यवस्थाकी आपत्ति प्राप्त होती है । और बन्धके बिना पुरुषवेद कषायकी स्थितिको प्राप्त नहीं होता, क्योकि उस समय वह अपतद्ग्रहरूप है । तात्पर्य यह है कि जव तक पुरुषवेदका वन्ध न हो तव तक उसमें कषायकी स्थितिका संक्रमण नहीं होता ।

*** वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लकर अन्तः कोड़ाकोड़ी तक होती है ।**

§ ७७३. इसका खुलासा इस प्रकार है—कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको बांध कर प्रतिभग्नकालके पहले समयमें बंधनेवाले पुरुषवेदमे वन्धावलिसे रहित कपायकी स्थितिके संक्रमण होने पर पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है । पुनः सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर और कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें

बंधिय पडिहग्गसमए बज्झमाणित्थिवेदम्मि बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदीए संकंताए इत्थिवेदट्ठिदी उक्कस्सा होदि । तक्काले पुरिसवेदट्ठिदी सगुक्कस्सं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणा; पुरिस-णवुंसयवेदजहण्णबंधगद्धाणं समूहस्स अंतोमुहुत्तत्तुवलंभादो । पुणो कसायाणं समयूणुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए बज्झमाणपुरिसवेदम्मि बंधावलियादीदकसायुक्कस्सट्ठिदीए संकंताए पुव्विल्लट्ठिदिं पेक्खिदूण पुरिसवेदट्ठिदी संपहि समयूणा होदि । पुणो अवट्ठिदमंतोमुहुत्तमच्छिय उक्कस्ससंकिलेसं गंतूण कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए बज्झमाणित्थिवेदम्मि बंधावलियादीदकसायट्ठिदीए संकंताए इत्थिवेदस्स उक्कस्सट्ठिदी होदि । तक्काले पुरिसवेदट्ठिदी सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण समयाहियअंतोमुहुत्तूणा । एवं जाणेदूण ओदारेयव्वं जाव णिव्वियप्प-अंतोकोडाकोडि त्ति ।

*** हस्स-रदीणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?**

§ ७७४. सुगममेदं ।

*** उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।**

§ ७७५. जदि इत्थिवेदे बज्झमाणे हस्स-रदीणं बंधो अत्थि तो इत्थिवेदुक्कस्सट्ठिदीए विहत्तिओ एदासिं पि उक्कस्सट्ठिदीए; तिण्हं पयडीणमुवरि अक्कमेण संकंतीए ।

बँधनेवाले स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके संक्रमण करने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । इस समय पुरुषवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है, क्योंकि पुरुषवेद और नपुंसकवेदके जघन्य बन्धककालोंका समूह अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । पुनः कषायोंकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको बांधकर प्रतिभग्नकालके पहले समयमें बँधनेवाले पुरुषवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिके संक्रान्त होने पर पुरुषवेदकी पहलेकी स्थितिको देखते हुए इस समयकी स्थिति एक समय कम होती है । पुनः अवस्थित अन्तर्मुहूर्त कालतक ठहर कर और उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त होकर तथा कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें बँधनेवाले स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके संक्रान्त होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । तथा उस समय पुरुषवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त कम होती है । इसी प्रकार जान कर निर्विकल्प अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थितिके प्राप्त होनेतक पुरुषवेदकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये ।

*** स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय हास्य और रतिकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?**

§ ७७४. यह सूत्र सुगम है ।

*** उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट होती है ।**

§ ७७५. यदि स्त्रीवेदके बन्धके समय हास्य और रतिका बन्ध होता है तो स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला होता हुआ इन दोनोंकी भी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाला होता है; क्योंकि बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थिति तीनों प्रकृतियोंमें एकसाथ संक्रान्त हुई है ।

अण्णहा अणुक्कस्सा; बंधाभावेण अपडिग्गहाणं हस्स-रदीणमुवरि कसायुक्कस्सट्ठिदीए संकमाभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति ?

§ ७७६. तं जहा—अंतोमुहुत्तकालमावलियमेत्तकालं वा कसायुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए वज्झमाणित्थिवेद-हस्स-रदीसु बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदीए संकंताए तिण्हं पि उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि । पुणो तदणंतरउवरिमसमए हस्स-रदि-बंधवोच्छेददुवारेण अरदि-सोगेसु बंधमागदेसु इत्थिवेदस्सुक्कस्सट्ठिदीए सह हस्स-रदीणमणुक्कस्सट्ठिदी होदि; अप्पणो उक्कस्सट्ठिदीदो अधट्ठिदिगलणेण गलिदेगसमयत्तादो । एवं हस्स-रदिट्ठिदीए जाव समयूणावलियमेत्तकालो गलदि तावित्थिवेदस्सुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती चेव । उवरि अणुक्कस्सा होदि; तत्थ बंधावलियादीदकसायुक्कस्सट्ठिदिसंकंतीए अभावादो ।

§ ७७७. तदो अण्णेण जीवेण एगसमयं समयूणावलियूणकसायउक्कस्सट्ठिदिं बंधिय समयूणावलियमेत्तकालमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए इत्थिवेदेण सह बज्झमाणहस्स-रदीसु आवलियादिक्कंतकसायट्ठिदीए संकामिदाए इत्थिवेद-हस्स-रदीणं

अन्यथा अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि बन्ध नहीं होनेसे अपतद्ग्रहको प्राप्त हुई हास्य और रतिमें कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण नहीं होता है ।

* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक होती है ।

§ ७७६. खुलासा इस प्रकार है—अन्तर्मुहूर्त काल तक या एक आवलि कालतक कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभग्न कालके पहले समयमें बंधनेवाले स्त्रीवेद, हास्य और रतिमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके संक्रान्त होने पर तीनों ही प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति होती है । पुनः तदनन्तर अगले समयमें हास्य और रतिकी बन्धव्युच्छित्ति होकर अरति और शोकके बन्धको प्राप्त होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ हास्य और रतिकी अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि तब इन प्रकृतियोंकी अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अधःस्थितिगलनाके द्वारा एक समय गल गया है । इस प्रकार जब तक हास्य और रतिकी स्थितिमेंसे एक समय कम एक आवलि प्रमाण काल जीर्ण होता है तब तक स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति ही रहती है तथा इसके बाद स्त्रीवेदकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि एक समय कम एक आवलिके बाद स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण नहीं पाया जाता है । अर्थात् तब स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिसे उत्तरोत्तर कम स्थितिका संक्रमण होता है ।

§ ७७७. तदनन्तर किसी एक जीवने एक समय तक एक समयसे न्यून एक आवलि कम कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके तदनन्तर एक समय एक आवलि प्रमाण काल तक कषाय की उत्कृष्ट स्थितिको बाँध कर प्रतिभग्नकालके पहले समयमें स्त्रीवेदके साथ बंधनेवाली हास्य और रितमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका संक्रमण किया तब उसके स्त्रीवेद, हास्य और रति

ट्ठिदी सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण समयूणावलियाए ऊणा होदि । विदियसमए हस्स-रदिबंधवोच्छेददुवारेण अरदि-सोगेसु बंधमागदेसु इत्थिवेदस्सुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि; बंधावलियादिक्कंतकसायुक्कस्सट्ठिदीए तत्थित्थिवेदम्मि संकंतिदंसणादो[1]। हस्स-रदि-ट्ठिदी पुण सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण आवलियूणं; बंधाभावादो । एवं जाव दुसम-यूणावलियमेत्तमद्धाणमुवरि गच्छदि ताविस्थिवेदट्ठिदी उक्कस्सा चेव । हस्स-रदीणं पुण जाव तत्तियमद्धाणं गच्छदि ताव सगुक्कस्सट्ठिदी दुसमयूणा दोआवलियूणा होदि । बंधावलियादीदकसायुक्कस्सट्ठिदीए आवलियाहि ऊणा होदि ।

§ ७७८. तदो अण्णो जीवो दुसमयूणदोआवलियाहि ऊणियं कसायुक्कस्स-ट्ठिदिं बंधिय पुणो समयूणावलियमेत्तकालमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए इत्थिवेद-हस्स-रदीसु वज्झमाणियासु बंधावलियादीदकसायट्ठिदिं संकामिय तिण्हं पि अणुक्कस्स-ट्ठिदिविहत्तिओ जादो । तदो उवरिमसमयप्पहुडि हस्स-रदिबंधवोच्छेददुवारेण इत्थिवेदेण सह अरदि-सोगे बंधाविय पुव्वं व ओदारेदव्वं । एवं पुणो पुणो एदेण विहाणेण ओदारेदूण णेदव्वं जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । णवरि जं जं ट्ठिदिं णिरुंभिदुमिच्छदि तत्तो आवलियब्भहियमेगसमयं बंधाविय पुणो समयूणावलियमेत्तकालं कसायाणमुक्कस्स-ट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए वज्झमाणित्थिवेद-हस्स-रदीसु पुव्वणिरुद्धट्ठिदीए आवलि-

की स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समयसे न्यून एक आवलिकाल प्रमाण कम होती है । तथा दूसरे समयमें हास्य और रतिकी बन्ध व्युच्छित्तिके द्वारा अरति और शोकके बन्धको प्राप्त होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति है; क्योंकि बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका वहाँ स्त्रीवेदमें संक्रमण देखा जाता है । पर हास्य और रति की स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक आवलि कम होती है, क्योंकि उस समय उनका बंध नहीं है। इस प्रकार जब तक दो समय कम आवलिप्रमाण काल आगे जाते हैं तब तक स्त्रीवेदकी स्थिति उत्कृष्ट ही होती है । पर हास्य और रतिका उतना काल आगे जाने तक उनकी उत्कृष्ट स्थिति दो समयसे न्यून दो आवलि कम होती है ।

§ ७७८. पुनः अन्य जीवने एक समय तक दो समय कम दो आवलियोंसे न्यून कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके पुनः एक समय कम एक आवलि काल तक उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभग्न कालके पहले समयमें बंधनेवाले स्त्रीवेद, हास्य और रतिमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका संक्रमण किया तब वह तीनों ही प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका धारक हुआ । तदनन्तर इसके आगेके समयसे लेकर हास्य और रतिकी बन्धव्युच्छित्तिद्वारा स्त्रीवेदके साथ अरति और शोकका बन्ध कराके पहलेके समान हास्य और रतिकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये । इस प्रकार पुनः पुनः इस विधिसे अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक हास्य और रतिकी स्थितिको घटाते हुए लेजाना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि जिस जिस स्थितिको रोकना चाहो उससे एक आवलि अधिक कषायकी स्थितिका एक समय तक बन्ध कराके पुनः एक समय कम एक आवलि काल तक कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराके प्रतिभग्न कालके पहले समयमें बंधनेवाले स्त्रीवेद, हास्य और रतिमें पहले रुकी हुई स्थितिके एक आवलिके

१. आ. प्रतौ-'आवलियूणा' इति स्थाने 'विहत्तिओ' इति पाठः ।

यादीदाए संकंताए तिण्हं अणुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि। तदो उवरिमसमए हस्स-रदिबंधे फिट्टे अरदि-सोगित्थिवेदाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि। तक्काले हस्स-रदीणं पुव्व-णिरुद्धट्ठिदी समयूणा होदि।

❀ अरदि-सोगाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७७९. सुगममेदं।

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।

§ ७८०. इत्थिवेदे बज्झमाणे जदि अरदि-सोगा बंझति तो इत्थिवेदुक्कस्स-ट्ठिदीए सह अरदि-सोगाणं पि उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि; बंधावलियादीदकसायुक्कस्स-ट्ठिदीए अक्कमेण तिण्हमुवरि संकंतीए। अण्णहा अणुक्कस्सा; पडिहग्गावलियाए अरदि-सोगाणं बंधाभावेण णट्ठपडिहग्गभावाणं कसायुक्कस्सट्ठिदीए आगमाभावादो।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव वीससागरो-वमकोडाकोडीओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणाओ त्ति।

§ ७८१. एदासिं पयडीणं समयूणुक्कस्सट्ठिदिआदिट्ठिदीणं सण्णियासो वुच्चदे। तं जहा—आवलियमेत्तकालं कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए बज्झमा-णित्थिवेद-अरदि-सोगेसु बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदीए संकंताए तिण्हं पि उक्कस्स-

बाद संक्रान्त होने पर तीनोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है तदनन्तर इसके आगेके समयमें हास्य और रतिकी बन्धव्युच्छिन्ति हो जानेपर अरति, शोक और स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। तथा उस समय हास्य और रतिकी पहले रुकी हुई स्थिति एक समय कम होती है।

❀ स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय अरति और शोककी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७७९. यह सूत्र सुगम है।

❀ उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट होती है।

§ ७८०. स्त्रीवेदके बन्धके समय यदि अरति और शोकका बन्ध होता है तो स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ अरति और शोककी भी उत्कृष्ट स्थिति विभक्ति होती है, क्योंकि बन्धावलि-से रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका एक साथ तीनोंमें संक्रमण हुआ है। अन्यथा अरति और शोक की स्थिति अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि प्रतिभग्न कालकी एक आवलिके भीतर बन्ध नहीं होनेसे पतद्ग्रहपनेसे रहित अरति और शोकमें कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण नहीं होता।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्य का असंख्यातवाँ भाग कम बीस कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है।

§ ७८१. अब इन प्रकृतियोंकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर शेष स्थितियोंका सन्निकर्ष कहते हैं। जो इस प्रकार है—एक आवलिकाल तक कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें बंधनेवाली स्त्रीवेद, अरति और शोक प्रकृतियोंमें बंधावलिसे रहित कषायकी स्थितिके संक्रान्त होनेपर तीनोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। तदनन्तर

ट्ठिदिविहत्ती होदि। तदो उवरिमसमए अरदि-सोगबंधवोच्छेदद्दुवारेण हस्स-रदीसु बंधमागयासु अरदि-सोगुक्कस्सट्ठिदी समयूणा होदि; पडिग्गहत्ताभावेण तत्थ कसाय-ट्ठिदीए संकमाभावादो। एवमुवरि वि वत्तव्वं जाव समयूणावलियाए ऊणमुक्कस्स-ट्ठिदी जादा त्ति। सेसुवरिमपरूवणा जहा हस्स-रदीणमित्थिवेदुक्कस्सट्ठिदिसंबंधाणं कदा तहा कायव्वा। णवरि एत्थ समयूणाबाहाकंडएणूणवीससागरोवमकोडाकोडीओ कसायुक्कस्सट्ठिदिबंधेण सह अरदि-सोगे बंधाविय पडिहग्गसमए अरदि-सोगबंध-वोच्छेदं कादूण आवलियमेत्तट्ठिदीओ गालिय अंतिमवियप्पो वत्तव्वो। कुदो? कसायु-क्कस्सट्ठिदीए वज्झमाणाए णवुंसयवेद-अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं णियमेण तत्थ बंधे संते सगुक्कस्सट्ठिदीदो समयूणाबाहाकंडएणूणस्सेव ट्ठिदिबंधस्सुवलंभादो।

❀ एवं णवुंसयवेदस्स।

§ ७८२. जहा अरदि-सोगाणं इत्थिवेदुक्कस्सट्ठिदिपडिबद्धाणं परूवणा कदा तहा णवुंसयवेदस्स वि परूवणा कायव्वा; समयूणमादिं कादूण जाव वीसंसागरोवम-कोडाकोडीओ पलिदो० असंखे०भागेण ऊणाओ त्ति एदेहि सण्णियासवियप्पेहि अविसेसादो। एत्थतणविसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

❀ णवरि णियमा अणुक्कस्सा।

आगेके समयमें अरति और शोककी बन्धव्युच्छित्ति होकर हास्य और रतिके बन्धको प्राप्त होनेपर अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम होती है, क्योंकि उस समय पतद्ग्रहपना नहीं रहनेसे उनमें कषायकी स्थितिका संक्रमण नहीं होता है। इसी प्रकार आगे भी एक समयकम एक आवलिसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक इसी प्रकार कथन करना चाहिये। शेष आगेकी प्ररूपणा, जिस प्रकार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्बन्ध रखनेवाली हास्य और रतिकी की है उस प्रकार करनी चाहिये। किन्तु यहां पर कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके साथ अरति और शोकका एक समय कम आबाधाकाण्डकसे न्यून वीस कोड़ाकोड़ी सागर स्थितिप्रमाण बन्ध कराके तथा प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें अरति और शोककी बन्धव्युच्छित्ति कराके और एक आवलि प्रमाण स्थितियोंको गलाकर अन्तिम विकल्प कहना चाहिये, क्योंकि कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध होता है पर वह स्थितिबन्ध अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे एक समय कम आबाधाकाण्डकसे न्यून तक ही होता है।

❀ इसी प्रकार नपुंसकवेदकी प्ररूपणा करनी चाहिए।

§ ७८२. जिस प्रकार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ अरति और शोककी प्ररूपणा की है उसी प्रकार नपुंसकवेदकी भी प्ररूपणा करनी चाहिये, क्योंकि एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम वीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति तक होनेवाले सन्निकर्षके भेदोंकी अपेक्षा अरति और शोकके कथनसे नपुंसकवेदके कथनमें कोई भेद नहीं है। अब इस विषय में विशेषता वतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय नपुंसकवेदकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है।

§ ७८३. कुदो ? इत्थिवेदेण सह णवुंसयवेदस्स बंधाभावादो। तेण पडिहग्ग-पढमसमए बज्झमाणित्थिवेदम्मि बंधावलियादीदकसायुक्कस्सहिदीए संकंताए इत्थि-वेदस्स उक्कस्सहिदी होदि णवुंसयवेदस्स पुण णियमेण समयूणुक्कस्सहिदी। एत्तो उवरि जाव आवलियमेत्तद्धाणं गच्छदि तावित्थिवेदो उक्कस्सो चेव। णवरि णवुंसयवेदु-क्कस्सहिदी आवलियूणा होदि। एवमुवरि अरदि-सोगोयरणविहाणं बुद्धीए काऊण ओदारेयव्वं।

* भय-दुगुंछाणं हिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७८४. सुगमं।

* णियमा उक्कस्सा।

§ ७८५. जम्मि काले इत्थिवेदो बज्झदि तम्मि काले भय-दुगुंछाणं बंधो णियमा अत्थि; धुवबंधित्तादो। तेणित्थिवेदस्स उक्कस्सहिदीए संतीए भय-दुगुंछाओ हिदिं पडुच्च णियमा उक्कस्साओ त्ति भणिदं।

* जहा इत्थिवेदेण तहा सेसेहि कम्मेहि।

§ ७८६. जहा इत्थिवेदुक्कस्सहिदीए णिरुद्धाए सेसकम्मेहि सण्णियासो कदो तहा हस्स-रदि-पुरिसवेदाणमुक्कस्सहिदिणिरुंभणं कादूण सण्णियासो वत्तव्वो

---

§ ७८३. क्योंकि स्त्रीवेदके साथ नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता है। अतः प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें बंधनेवाले स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रान्त होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति होती है परन्तु उस समय नपुंसकवेदकी नियमसे एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति होती है। इसके आगे एक आवलिकाल व्यतीत होने तक स्त्रीवेद उत्कृष्ट ही रहता है परन्तु नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थिति उस समय एक आवलि कम होती है। इसी प्रकार आगे अरति और शोककी स्थितिके घटानेकी विधिको बुद्धिसे विचार कर उसी प्रकार नपुंसकवेदकी स्थितिको घटाना चाहिये।

* स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय भय और जुगुप्साकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७८४. यह सूत्र सुगम है।

* नियमसे उत्कृष्ट होती है।

§ ७८५. जिस कालमें स्त्रीवेदका बन्ध होता है उस कालमें भय और जुगुप्साका बन्ध नियमसे होता है, क्योंकि ये दोनों प्रकृतियां ध्रुवबन्धिनी हैं। अतः स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके होने पर भय और जुगुप्साकी स्थिति नियमसे उत्कृष्ट होती है। यह इस सूत्रका तात्पर्य है।

* जिस प्रकार स्त्रीवेदके साथ सन्निकर्षके विकल्प कहे हैं उसी प्रकार शेष कर्मोंके साथ जानने चाहिये।

§ ७८६. जिस प्रकार स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके सद्भावमें शेष कर्मोंके साथ सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार हास्य, रति और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका सद्भाव करके सन्निकर्ष कहना

विसेसाभावादो ।

❀ णवरि विसेसो जाणिदव्वो ।

§ ७८७. तत्थ पुरिसवेदणिरुंभणं काऊण भण्णमाणे णत्थि विसेसो; सव्वकम्मेहि सह सण्णिकासिज्जमाणे इत्थिवेदसण्णिकासेण समाणत्तादो । हस्स-रदिणिरुंभणं काऊण भण्णमाणे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-सोलसकसाय-भय-दुगुंछाणं सण्णियासेसु णत्थि विसेसो; इत्थिवेदुक्कस्सट्ठिदिसण्णियासेण समाणत्तादो । इत्थि-पुरिसाणं सण्णियासे अत्थि विसेसो, तं वत्तइस्सामो । तं जहा—हस्स-रदीणमुक्कस्सट्ठिदीए संतीए इत्थि-पुरिसवेदाणं ट्ठिदी सिया उक्कस्सा; कसायाणमुक्कस्सट्ठिदीए पडिच्छिदाए चदुण्हं पि कम्माणमुक्कस्सट्ठिदिदंसणादो । सिया अणुक्कस्सा; पडिहग्गसमए हस्स-रदीसु वज्झमाणियासु इत्थि-पुरिसवेदाणं बंधाभावे संते उक्कस्सट्ठिदीए अभावादो । जदि अणुक्कस्सा तो अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । कुदो समऊणुक्कस्सट्ठिदिआदिवियप्पो ण लब्भदे ? हस्स-रदीणं व इत्थि-पुरिसवेदाणमेगसमएण पयडिबंधस्स वोच्छेदाभावादो ।

§ ७८८. एदस्स णयणिरुद्धाए कमो वुच्चदे । तं जहा—कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं

चाहिये, क्योंकि इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है ।

❀ किन्तु कुछ विशेष जानना चाहिये ।

§ ७८७. उनमेंसे पुरुषवेदको रोककर कथन करने पर कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि सब कर्मोंके साथ पुरुषवेदका सन्निकर्ष करने पर स्त्रीवेदके सन्निकर्षके समान है । हास्य और रतिको रोक कर कथन करने पर मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साके सन्निकर्षोंमें कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ उक्त प्रकृतियोंकी स्थितिका होनेवाला सन्निकर्ष स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ होनेवाले सन्निकर्षके समान है । पर स्त्रीवेद और पुरुषवेदके संन्निकर्षमें कुछ विशेषता है । आगे उसीको बताते हैं । जो इस प्रकार है—हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति कदाचित् उत्कृष्ट होती है, क्योंकि कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके इनमे संक्रमित हो जाने पर चारों हीं कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति देखी जाती है । कदाचित् अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें हास्य और रतिके बन्धके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदका बन्ध नहीं होने पर उनकी उत्कृष्ट स्थिति नहीं होती है । यदि हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी अनुत्कृष्ट स्थिति होती है तो वह अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तः कोड़ाकोड़ी तक होती है ।

शंका—एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति आदि विकल्प क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—क्योंकि जिस प्रकार हास्य और रतिका एक समयतक बन्ध होकर अनन्तर उसकी व्युच्छित्ति हो जाती है, उस प्रकार स्त्रीवेद और पुरुषवेदका एक समयतक बन्ध होकर उसकी व्युच्छित्ति नहीं होती ।

§ ७८८. अब नयकी अपेक्षा इसके क्रमका कथन करते हैं, जो इस प्रकार है—कषायोंकी

बंधिय पडिहग्गसमए बज्झमाणित्थि-पुरिसवेदेसु बंधावलियादिक्कंतकसायुक्कस्सट्ठिदीए संकंताए इत्थि-पुरिसवेदाणमुक्कस्सट्ठिदिं कादूण पुणो अंतोमुहुत्तं णवुंसयवेद-अरदि-सोगेहि सह कसायुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए अरदि-सोगपयडिबंधवोच्छेद-दुवारेण बज्झमाणहस्स-रदीसु बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदीए संकंताए हस्स-रदीण-मुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि। तक्काले इत्थि-पुरिसवेदट्ठिदी सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणा। संपहि एदमंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण णेदव्वं जाव धुवट्ठिदि त्ति एसो विसेसो त्ति।

§ ७८९. के वि आइरिया भणंति—एदासु वि पयडीसु णत्थि विसेसो; हस्स-रदीणं व एगसमएण पयडिबंधवोच्छेदसंभवादो। इत्थि-पुरिसवेदाणमेगसमएण बंधवोच्छेदो होदि त्ति कुदो णव्वदो? महाबंधसुत्तादो हस्स-रदीणमुक्कस्सट्ठिदि-णिरुंभणं काऊणित्थि-पुरिसवेदाणं समयूणादिसण्णियासवियप्पपरूवयउच्चारणादो च णव्वदे। 'णवरि विसेसो जाणियव्वो' त्ति चुण्णिसुत्तणिद्देसण्णहाणुववत्तीदो इत्थि-पुरिसवेदाणमेगसमएण बंधवोच्छेदो ण होदि त्ति ण वोत्तुं जुत्तं; एदस्स णिद्देसस्स णवुंसयवेद-अरदि-सोगाणं सण्णियासेसु उववत्तिदंसणादो। तं जहा—इत्थिवेदे

उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें बँधनेवाले स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रान्त होने पर स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है। पुनः अन्तर्मुहूर्त काल तक नपुंसकवेद, अरति और शोकके साथ कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके प्रतिभग्नकालके प्रथम समयमें अरति और शोक इन दो प्रकृतियोंकी बन्ध व्युच्छित्तिद्वारा बंधनेवाली हास्य और रतिमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके संक्रान्त होने पर हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। तथा उस समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम होती है। अब इस अन्तमुहूत कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर ध्रुवस्थिति प्राप्त होने तक स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति घटाते जाना चाहिये। यही यहाँ विशेषता है।

§ ७८९. कुछ आचार्य कहते हैं कि इन प्रकृतियोंमें भी कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि हास्य और रतिके समान इन प्रकृतियोंका भी एक समय तक बन्ध होकर अनन्तर उनकी व्युच्छित्ति संभव है।

शंका—स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी एक समयके द्वारा बन्धव्युच्छित्ति होती है यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

समाधान—महाबन्धसूत्र से। तथा हास्य और रति की उत्कृष्ट स्थितिको रोककर स्त्रीवेद और पुरुषवेद की एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति आदि सन्निकर्ष विकल्पों का कथन करनेवाली उच्चारणासे जाना जाता है।

शंका—'णवरि विसेसो जाणियव्वो' इस प्रकार चूर्णिसूत्रका निर्देश अन्यथा बन नहीं सकता, इसलिये स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी एक समयके द्वारा बन्धव्युच्छित्ति नहीं होती।

समाधान—ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि इस निर्देशकी सार्थकता नपुंसकवेद, रति

णिरुद्धे णवुंसयवेदो णियमा अणुक्कस्सा; इत्थिवेदबंधकाले णवुंसयवेदस्स बंधाभावादो। हस्स-रदीणं पुण उक्कस्सट्ठिदीए णिरुद्धाए णवुंसयवेदट्ठिदी सिया उक्कस्सा; हस्स-रदिबंधकाले वि णवुंसयवेदस्स बंधुवलंभादो। सिया अणुक्कस्सा; कयाइ तत्थ-बंधाभावेण तस्स समयूणादिवियप्पुवलद्धीदो। इत्थिवेदउक्कस्सट्ठिदीएण अरदि-सोगाणं सिया उक्कस्सा; इत्थिवेदेण सह एदेसिं बंधं पडि विरोहाभावादो। सिया अणुक्कस्सा; पडिहग्गसमए हस्स-रदीसु बंधमागदासु अरदि-सोगाणं समयूणमादिं कादूण जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागब्भहियवीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तवियप्पुवलंभादो। हस्स-रदीणमुक्कस्सट्ठिदीए णिरुद्धाए पुण अरदि-सोगट्ठिदी णियमा अणुक्कस्सा; पडिहग्गसमए हस्स-रदीसु वज्झमाणियासु तप्पडिवक्खाणमरदि-सोगाणं बंधाभावादो। तदो इत्थि-पुरिसवेदेसु णत्थि विसेसो त्ति सिद्धं।

§ ७६०. सुत्ताहिप्पाएण पुण इत्थि-पुरिसवेदेसु वि विसेसो अत्थि चेव, हस्स-रदीणं व इत्थि-पुरिसवेदाणमेगसमएण बंधुवरमाणब्भुवगमादो। तदो इत्थिवेदे णिरुद्धे हस्स-रदीणं समयूणादिवियप्पा होंति। हस्स-रदीसु पुण णिरुद्धासु इत्थि-पुरिसवेदाणमंतोमुहुत्तूणादिवियप्पा त्ति।

और शोक प्रकृतियोंके सन्निकर्षमें बतलाई गई है। खुलासा इस प्रकार है—स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर नपुंसकवेदकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धके समय नपुंसकवेदका बन्ध नहीं होता। परन्तु हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर नपुंसकवेदकी स्थिति कदाचित् उत्कृष्ट होती है, क्योंकि हास्य और रतिके बन्धके समय भी नपुंसकवेदका बन्ध पाया जाता है। कदाचित् अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि कदाचित् हास्य और रतिका वहां बन्ध नहीं होनेसे नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिमें एक समय कम आदि विकल्प पाये जाते हैं। स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ अरति और शोककी स्थिति कदाचित् उत्कृष्ट होती है, क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धके साथ इनका बन्ध होनेमें कोई विरोध नहीं आता है। कदाचित् अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि प्रतिभग्नकालके प्रथम समयमें हास्य और रतिके बन्धको प्राप्त होने पर अरति और शोककी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक बीस कोड़ाकोड़ी सागर तक स्थितिविकल्प देखे जाते हैं। परन्तु हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर अरति और शोककी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें हास्य और रतिके बन्धको प्राप्त होने पर उनकी प्रतिपक्षभूत अरति और शोक प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है, इसलिये स्त्रीवेद और पुरुषवेदके विषयमें कोई विशेषता नहीं है यह सिद्ध हुआ।

§ ७६०. परन्तु उक्त सूत्रके अभिप्रायानुसार स्त्रीवेद और पुरुषवेदके विषयमें भी विशेषता है ही, क्योंकि उक्त सूत्रमें हास्य और रतिके समान स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी एक समयके द्वारा बन्ध व्युच्छित्ति नहीं स्वीकार की है, अतः स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर हास्य और रतिके एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति आदि विकल्प होते हैं। परन्तु हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर स्त्रीवेद और पुरुषवेदके अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थिति आदि विकल्प होते हैं।

❀ णवुंसयवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स मिच्छत्तस्स ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७९१. सुगमं ।

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

§ ७९२. णवुंसयवेदट्ठिदीए उक्कस्साए संतीए जदि मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदी पबद्धा होज्ज तो मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि अण्णहा अणुक्कस्सा; उक्कस्सादो हेट्ठिमट्ठिदीदो बंधंतस्स उक्कस्सत्ताभावादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणा त्ति ।

§ ७९३. पलिदो० असंखे० भागो किंपमाणो ? एगावलियब्भहियसमयूणाबाहाकंडयमेत्तो । अहिओ किण्ण होदि ? ण, कसाएसु उक्कस्सट्ठिदिबंधे संते मिच्छत्तस्स समऊणाबाहाकंडएणूणउक्कस्सट्ठिदिमेत्तजहण्णट्ठिदिबंधस्स तत्थुवलंभादो। एगावलियाए अहियत्तं कथमुवलब्भदे ? ण, पडिहग्गकाले वि णवुंसयवेदस्स आवलियमेत्तकालमुक्कस्सट्ठिदिसंभवादो । सेसं सुगमं; बहुसो परूविदत्तादो ।

---

* नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७९१. यह सूत्र सुगम है ।

* उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ७९२. नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है तो मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि उत्कृष्टसे कमकी स्थितिका बन्ध करनेवालेके उत्कृष्ट स्थिति नहीं हो सकती ।

* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम तक होती है ।

§ ७९३. शंका—यहांपर पल्योपमके असंख्यातवें भागका कितना प्रमाण लिया है ?

समाधान—एक समय कम आबाधाकाण्डकमें एक आवलि कालके जोड़ देने पर जितना प्रमाण हो तत्प्रमाण यहां पल्यका असंख्यातवाँ भाग काल लिया है ।

शंका—इससे अधिक क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्ध होते समय मिथ्यात्वका कमसे कम स्थितिबन्ध एक समय न्यून आबाधाकाण्डकसे कम उत्कृष्ट स्थिति मात्र ही होता है, इससे कम नहीं ।

शंका—पल्यके असंख्यातवें भागको जो एक आवलि अधिक और एक समय कम आबाधा काण्डक प्रमाण बतलाया है तो यहां एक आवलि काल अधिक कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रतिभग्न कालके भीतर भी नपुंसकवेदकी एक आवलि काल तक उत्कृष्ट स्थिति संभव है ।

सूत्रका शेष व्याख्यान सुगम है, क्योंकि उसका अनेकबार कथन कर आये हैं ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७६४. सुगमं० ।

❀ णियमा अणुक्कस्सा ।

§ ७६५. णवुंसयवेदुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियम्मि मिच्छाइट्ठिम्मि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदीए अभावादो । ण च सम्माइट्ठिपढमसमए पडिबद्धाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए अण्णत्थत्थि संभवो; विरोहादो ।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव एगा ट्ठिदि त्ति । णवरि चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीए ऊणा ।

§ ७६६. एदेसिं दोण्हं सुत्ताणमत्थे भण्णमाणे जहा मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिणिरुंभणं काऊण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तदोसुत्ताणं परूवणा कदा तहा एत्थ वि कायव्वा; विसेसाभावादो ।

❀ सोलसकसायाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ७६७. सुगमं ।

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा ।

---

* नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७६४. यह सूत्र सुगम है ।

* नियमसे अनुत्कृष्ट होती है ।

§ ७६५. नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति नहीं पाई जाती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें होती है, अतः उसका अन्यत्र पाया जाना संभव नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर विरोध आता है ।

* वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थिति तक होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसमेंसे अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिप्रमाण स्थितिको कम कर देना चाहिए ।

§ ७६६. इन दोनों सूत्रोंका अर्थ कहनेपर जिस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुये सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वसम्बन्धी दो सूत्रोंका कथन किया है उसी प्रकार यहां भी करना चाहिये, क्योंकि दोनोंके कथनोंमें कोई विशेषता नहीं है ।

* नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय सोलह कषायोंकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ७६७. यह सूत्र सुगम है ।

* उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी ।

§ ७९८. जदि णवुंसयवेदस्स उक्कस्सट्ठिदीए संतीए अप्पिदकसायाणमुक्कस्स-ट्ठिदिबंधो होज्ज तो उक्कस्सा, अण्णहा अणुक्कस्सा; समयूणादिट्ठिदीसु बद्धासु उक्कस्सत्त-विरोहादो।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव आवलिऊणा त्ति।

§ ७९९. तं जहा—कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिमावलियमेत्तकालं बंधिय पडिहग्ग-समए बज्झमाणणवुंसयवेदम्मि बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदीए संकंताए णवुंसयवेद-ट्ठिदी उक्कस्सा होदि तस्समए कसायट्ठिदी समयूणा होदि; उक्कस्सट्ठिदीदो अधट्ठिदि-गलणाए गलिदेगसमयत्तादो। एवं दुसमयूणादिकमेण णेदव्वं जाव आवलियमेत्तकालो कसायट्ठिदीए गलिदो त्ति। अहिओ किण्ण गालिज्जदे? ण, उवरि णवुंसयवेदुक्कस्स-ट्ठिदीए असंभवादो।

❀ इत्थि-पुरिसवेदाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा?

§ ८००. सुगमं।

❀ णियमा अणुक्कस्सा।

§ ८०१. णवुंसयवेदबंधकाले णियमेणित्थि-पुरिसवेदाणं बंधाभावादो। किं

---

§ ७९८. यदि नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए विवक्षित कषायका उत्कृष्ट स्थिति बन्ध होवे तो उत्कृष्ट स्थिति होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि एक समय कम आदि स्थितियोंके बँधने पर उन्हें उत्कृष्ट माननेमें विरोध आता है।

* वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर आवली कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है।

§ ७९९. जो इस प्रकार है—कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलि कालतक बांधकर प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें बंधनेवाले नपुंसकवेदमे बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके संकान्त होने पर नपुंसकवेदकी स्थिति उत्कृष्ट होती है और उस समय कषायकी स्थिति एक समय कम होती है, क्योकि उस समय कषायकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अधःस्थिति गलनाके द्वारा एक समय गल गया है! इसी प्रकार कषायकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे दो समय कम आदि क्रमसे आवलि प्रमाण कालके गलने तक कथन करते जाना चाहिये।

शंका—कषायकी उत्कृष्ट स्थितिमें से एक आवलिसे अधिक काल क्यों नहीं गलाया जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि इसके आगे नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना असंभव है।

* नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट?

§ ८००. यह सूत्र सुगम है।

* नियमसे अनुत्कृष्ट होती है।

§ ८०१. क्योंकि नपुंसकवेदके बन्धके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदका बन्ध नियमसे नहीं होता है।

कारणं ? तदभावे अच्चंताभावो ?

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति।

§ ८०२. तं जहा—सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए समयाविरोहेण वज्झमाणित्थि-पुरिसवेदेसु बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदीए संकंताए इत्थि-पुरिसवेदाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि। तदो अंतोमुहुत्तेण संकिलेसं गंतूण कसायुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदिम्मि णवुंसयवेदे संकामिदम्मि णवुंसयवेदस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती। तत्थुद्देसे णं इत्थि-पुरिसवेदट्ठिदी पुण णियमा अंतोमुहुत्तूणा; सगुक्कस्सट्ठिदीदो अधट्ठिदिगलणाए गलिदंतोमुहुत्तत्तादो। एवं समयूणादिकमेण कसायट्ठिदिं बंधिय ओदारेदूण णेदव्वं जाव अंतोकोडाकोडि त्ति।

§ ८०३. इत्थिवेदणिरुंभणे कदे णवुंसयवेदुक्कस्सट्ठिदी समयूणा जादा। णवुंसयवेदम्मि णिरुंभणे कदे पुण इत्थिवेदट्ठिदी सगुक्कस्सादो अंतोमुहुत्तूणा जादा। किमेदस्स कारणं ? वुच्चदे—कसायाणमुक्कस्सट्ठिदीए वज्झमाणाए णवुंसयवेदस्स जेण तत्थ णियमेण बंधो तेण पडिहग्गसमए इत्थिवेदे उक्कस्सट्ठिदिमुवगदे णवुंसय-

शंका—इसका क्या कारण है ?

समाधान—नपुंसकवेदके वन्धके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदका वन्ध नहीं होनेमें अत्यन्ताभाव कारण है। अर्थात् नपुंसकवेदके वन्धके समय स्त्रीवेद और पुरुषवेदके वन्धका सर्वथा अभाव है।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक होती है।

§ ८०२. जो इस प्रकार है—सोलह कषायोकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर प्रतिभग्नकालके प्रथम समयमें आगमानुकूल बँधनेवाले स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें वन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके संक्रान्त होने पर स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। तदनन्तर एक अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा संक्लेशको प्राप्त होकर और कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके वन्धावलीसे रहित कषायकी स्थितिके नपुंसकवेदमें संक्रान्त होने पर नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। तब वहाँ पर स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति नियमसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है, क्योंकि स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अधःस्थितिगलनाके द्वारा एक अन्तर्मुहूर्त गल गया है। इस प्रकार एक समय कम आदिके क्रमसे कषायकी स्थितिका बन्ध कराके अन्तःकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थितिको घटाते जाना चाहिये।

§ ८०३. शंका—स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम होती है और नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहने पर स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है, इसका क्या कारण है ?

समाधान—कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बँधते समय नपुंसकवेदका चूँकि नियमसे बन्ध होता है इसलिये प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें स्त्रीवेदके उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होने पर नपुंसक-

वेदो सगुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिय समयूणो होदि; तत्थ तदो गलिदेगसमयत्तादो। णवुंसयवेदे पुण उक्कस्सट्ठिदिमुवगदे इत्थिवेदो णियमेण अंतोमुहुत्तूणो इत्थिवेदबंधपडिसेहदुवारेण कसायाणमुक्कस्सट्ठिदीए सह णवुंसयवेदे बंधमागदे तब्बंधपढमसमयप्पहुडि जाव अंतोमुहुत्तं ण गदं ताव कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधसंभवाभावादो। तं कुदो णव्वदे? उक्कस्सट्ठिदिबंधंतरस्स जहण्णस्स वि अंतोमुहुत्तपमाणपरूवयबंधसुत्तादो। इत्थि-पुरिसवेदाणमेगसमएण बंधुवरमाणब्भुवगमादो च अंतोमुहुत्तूणत्तमविरुद्धं सिद्धं।

❀ हस्स-रदीणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा?

§ ८०४. सुगमं

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।

§ ८०५. पडिहग्गपढमसमए णवुंसयवेदुक्कस्सट्ठिदीए संतीए जदि हस्स-रदीणं बंधो होज्ज तो उक्कस्सा, अण्णहा अणुक्कस्सा; बंधाभावेण हस्स-रदीसु कसायट्ठिदिसंकंतीए अभावादो।

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति।

वेदकी उत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम होती है, क्योंकि वहां पर उसमेंसे एक समय गल गया है। परन्तु नपुंसकवेदके उत्कृष्ट स्थितिको प्राप्त होने पर स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति नियमसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है, क्योंकि कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ नपुंसकवेदके बन्धको प्राप्त होने पर स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होता और स्त्रीवेदके बन्धके प्रथम समयसे लेकर जब तक अन्तर्मुहूर्त काल नहीं व्यतीत होता है तब तक कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध संभव नहीं है। अतः नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे अन्तर्मुहूर्त कम हो जाता है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य बन्धान्तर भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है इस प्रकार कथन करनेवाले बन्धसूत्रसे जाना जाता है। तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी एक समयके द्वारा बन्धव्युच्छित्ति नहीं स्वीकार की गई है अतः इससे भी नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय पुरुषवेद और स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थिति ठीक अन्तर्मुहूर्त कम सिद्ध होती है।

❀ नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय हास्य और रतिकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट?

§ ८०४ यह सूत्र सुगम है।

❀ उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी।

§ ८०५. प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए यदि हास्य और रतिका बन्ध होवे तो उनकी स्थिति उत्कृष्ट होती है अन्यथा अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि बन्धके विना हास्य और रतिमें कषायकी स्थितिका संक्रमण नहीं पाया जाता है।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक होती है।

§ ८०६. पडिहग्गपढमसमयम्मि णवुंसयवेद-हस्स-रदीणं बंधे संते तिण्हं पि उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि। तदणंतरविदियसमए हस्स-रदिबंधे वोच्छिण्णे हस्स-रदीणं समयूणुक्कस्सट्ठिदी होदि। एवं दुसमयूणादिकमेण णेदव्वं जाव समऊणावलियाए ऊणुक्कस्सट्ठिदि त्ति। उवरि इत्थिवेदे णिरुद्धे हस्स-रदीणं वुत्तकमं बुद्धीए अवहारिय वत्तव्वं।

❀ अरदि-सोगाणं ट्ठिदिविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ८०७. सुगमं ?

❀ उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा।

§ ८०८. णवुंसयवेदबंधकाले अरदि-सोगाणं बंधे संते तिण्हं पि उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती होदि, अण्णहा अणुक्कस्सा; अवज्झमाणबंधपयडीणं पडिग्गहत्ताभावादो ?

❀ उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव वीसं सागरोवम-कोडाकोडीओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ।

§ ८०९. तं जहा—सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिमंतोमुहुत्तमेत्तकालं बंधिय पडिहग्गसमए अरदि-सोगबंधवोच्छेदद्दुवारेण हस्स-रदीसु बंधमागयासु णवुंसयवेदट्ठिदी तत्थ उक्कस्सा; वज्झमाणत्तादो। अरदि-सोगट्ठिदी पुण समयूणुक्कस्सा; बंधाभावादो।

§ ८०६. प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें नपुंसकवेद, हास्य और रतिके बन्ध होते हुए तीनों की ही उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है। तदनन्तर दूसरे समयमें हास्य और रतिके बन्धके व्युच्छिन्न हो जाने पर हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम होती है। इस प्रकार दो समय कम आदि क्रमसे लेकर एक समय कम आवलिसे न्यून उत्कृष्ट स्थिति तक जानना चाहिये। तथा इसके आगे स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए हास्य और रतिका जो क्रम कहा है उसका बुद्धिसे निश्चय करके यहाँ भी कथन करना चाहिये।

❀ नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय अरति और शोककी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ८०७. यह सूत्र सुगम है।

❀ उत्कृष्ट होती है और अनुत्कृष्ट भी।

§ ८०८. नपुंसकवेदके बन्धके समय अरति और शोकके बन्ध होने पर तीनोंकी ही उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति होती है; क्योंकि नहीं बँधनेवाली प्रकृतियोंमें पतद्ग्रहपना नहीं पाया जाता है।

❀ वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग न्यून बीस कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है।

§ ८०९. जो इस प्रकार है—सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको अन्तर्मुहूर्त काल तक बाँधकर प्रतिभग्नकालके प्रथम समयमें अरति और शोककी बन्ध व्युच्छित्ति होकर हास्य और रतिके बन्धको प्राप्त होने पर वहाँ पर नपुंसकवेदकी स्थिति उत्कृष्ट होती है, क्योंकि उसका बन्ध हो रहा है परन्तु अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति एक समय कम होती है, क्योंकि उनका बन्ध

एवं जाव पडिहग्गावलियमेत्तकालो उवरि गच्छदि ताव अरदि-सोगुक्कस्सट्ठिदी आवलियूणा होदि। पुणो समयाहियावलियपढमसमए कसायाणमावलिऊणुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पुणो आवलियमेत्तकालं उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गपढमसमए हस्स-रदीसु बंधमागदासु अरदि-सोगुक्कस्सट्ठिदी समयाहियावलियाए ऊणा होदि। पुणो जाव आवलियमेत्तकालो गच्छदि ताव अरदि-सोगुक्कस्सट्ठिदी दोहि आवलियाहि ऊणा होदि। एवं जाणिदूण ओदारेयव्वं जाव आवलियब्भहियसमऊणाबाहाकंडएणूणवीसं सागरोवमकोडाकोडिमेत्तकम्मट्ठिदी चेट्ठिदा त्ति।

❀ भय-दुगुंछाणं ट्ठिदीविहत्ती किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा ?

§ ८१०. सुगमं ?

❀ णियमा उक्कस्सा।

§ ८११. धुवबंधित्तादो।

❀ एवमरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं पि।

§ ८१२. जहा णवुंसयवदस्स सव्वकम्मेहि सह सण्णियासो कदो तहा अरदि-सोग-भय-दुगुंछाणं पि कायव्वं।

नहीं हो रहा है। इस प्रकार एक आवलिप्रमाण प्रतिभग्नकालके आगे जाने तक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलिप्रमाण कम हो जाती है। पुनः एक समय अधिक आवलिके प्रथम समयमें कषायोंकी एक आवलि कम उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर पुनः एक आवलि काल तक कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें हास्य और रतिके बन्धको प्राप्त होनेपर अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति एक समय अधिक एक आवलि कम होती है। पुनः एक आवलि प्रमाण कालके जाने तक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति दो आवलि काल प्रमाण कम होती है। इस प्रकार एक समय कम आबाधाकाण्डकमें एक आवलि कालके जोड़ने पर जितना प्रमाण हो उतने कालसे न्यून बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कर्मस्थिति-के प्राप्त होने तक अरति और शोककी स्थितिको घटाते जाना चाहिये।

❀ नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिके समय भय और जुगुप्साकी स्थितिविभक्ति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ?

§ ८१०. यह सूत्र सुगम है।

❀ नियमसे उत्कृष्ट होती है।

§ ८११. क्योंकि ये दोनों प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं।

❀ इसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी सब कर्मों के साथ सन्निकर्ष कहना चाहिये।

§ ८१२. जिस प्रकार नपुंसकवेदका सब कर्मोंके साथ सन्निकर्ष किया उसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भी करना चाहिये।

❀ णवरि विसेसो जाणियव्वो ।

§ ८१३. एत्थ विसेसपरूवणट्ठं वुच्चदे—अरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदिणिरुंभणं कादूण भण्णमाणे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-सोलसकसायाणं णवुंसयवेदभंगो । अरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदीए संतीए इत्थिवेदस्स सिया उक्कस्सट्ठिदी; पडिहग्गपढमसमए अरदि-सोगेहि सह इत्थिवेदे वज्झमाणे तिण्हं पि उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिदंसणादो । अण्णहा अणुक्कस्सा; बंधाभावे कसायट्ठिदिपडिच्छणसत्तीए अभावादो । अथ अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । कुदो ? इत्थिवेदबंधकालस्स एगसमए संते समयूणउक्कस्सट्ठिदिसंतुवलंभादो ।

§ ८१४. जेसिमाइरियाणमित्थिवेदबंधकालो जहण्णओ अंतोमुहुत्तमेत्तो तेसिमहिप्पाएण अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । तं जहा—कसायुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय पडिहग्गसमए इत्थिवेद-अरदि-सोगाणमावलियमेत्तकालमुक्कस्सट्ठिदी होदि । संपहि इत्थिवेदबंधो जाव अंतोमुहुत्तं ण गदं ताव ण फिट्टदि । एदम्मि आवलियवज्जंतोमुहुत्तमेत्तइत्थिवेदबंधकालम्मि इत्थिवेद-अरदि-सोगाणं ट्ठिदीओ अधट्ठिदिगलणाए गलमाणाओ चेट्ठंति । कुदो ? जाव अंतोमुहुत्तं ण गदं ताव संकिलेसं पूरेदुं णो सक्कदि त्ति कादूण लहुमुक्कस्सट्ठिदिं बंधाविदो । पुणो तप्पाओग्गेण जहण्णकालेणुक्कस्स-

---

❀ परन्तु कुछ विशेष जानना चाहिये ।

§ ८१३. अब यहाँ पर विशेषका कथन करते हैं—अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिको रोककर कथन करने पर मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सोलह कषायोंका भंग नपुंसकवेदके समान है । अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए स्त्रीवेदकी कदाचित् उत्कृष्ट स्थिति होती है; क्योंकि प्रतिभग्नकालके प्रथम समयमें अरति और शोकके साथ स्त्रीवेदके बन्ध होने पर तीनोंकी ही उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति देखी जाती है । अन्यथा अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिके समय स्त्रीवेदकी स्थिति अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि स्त्रीवेदका बन्ध नहीं होने पर उसमें कषायकी स्थितिका संक्रमित करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती है । अब यदि अनुत्कृष्ट स्थिति होती है तो वह एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक होती है, क्योंकि स्त्रीवेदके बन्धकालके एक समय होनेपर एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है ।

§ ८१४. किन्तु जिन आचार्योंके मतसे स्त्रीवेदका जघन्य बन्धकाल भी अन्तर्मुहूर्त है उनके अभिप्रायानुसार अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक अनुत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है । उसका खुलासा इस प्रकार है—कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर प्रतिभग्नकालमें स्त्रीवेद, अरति और शोककी एक आवलिकाल तक उत्कृष्ट स्थिति होती है । यहाँ पर स्त्रीवेदका बन्ध जब तक अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत नहीं हुआ है तब तक नहीं छूटता है । इस एक आवलिसे रहित अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्त्रीवेदके बन्धकालमें स्त्रीवेद, अरति और शोककी स्थितियाँ अधःस्थिति गलनाके द्वारा गलती रहती हैं, क्योंकि जब तक एक अन्तर्मुहूर्त काल व्यतीत नहीं हुआ है तब तक उत्कृष्ट संक्लेशको पूरा करना शक्य नहीं है, ऐसा समझकर छोटे अन्तर्मुहूर्त काल तक उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कराया है । पुनः उसके योग्य जघन्य कालके द्वारा उत्कृष्ट संक्लेशको प्राप्त

संकिलेसं गंतूणुक्कस्सट्ठिदिं बंधिय बंधावलियादीदकसायट्ठिदीए संकामिदाए अंतोमुहुत्तकालं सव्वमरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदी होदि। कुदो ? कसायाणमुक्कस्सट्ठिदीए उक्कस्ससंकिलेसेण बज्झमाणाए हस्स-रदीहि विणा अरदि-सोगाणं चेव बंधसंभवादो। कसायुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिकालेण अरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिकालो सरिसो कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधे थक्के वि आवलियमेत्तकालमरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्तिदंसणादो। संपहि इत्थिवेदट्ठिदी सगुक्कस्सं पेक्खिदूण अंतोमुहुत्तूणा। पुणो अण्णेण जीवेण कसायाणं समऊणुक्कस्सट्ठिदिमंतोमुहुत्तकालं बंधिय पडिहग्गसमए बज्झमाणइत्थिवेदम्मि बंधावलियादीदकसायट्ठिदी संकामिदा। ताधे इत्थिवेदट्ठिदी सगुक्कस्सं पेक्खिदूण समऊणा। तदो अंतोमुहुत्तकालमित्थिवेदं बंधिय अवरेगमंतोमुहुत्तकालं णवुंसयवेदं बंधिय पुणो अंतोमुहुत्तेणुक्कस्ससंकिलेसं पूरेदूणुक्कस्सकसायट्ठिदिं बंधिय बंधावलियादीदकसायट्ठिदीए संकामिदाए अरदि-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदी होदि। तम्मि समए इत्थिवेदो अप्पणो उक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण समयाहियअंतोमुहुत्तूणो होदि। एवं दुसमयाहिय-तिसमयाहिय-अंतोमुहुत्तमूणं कादूण णेदव्वं जाव अंतोकोडाकोडि त्ति। एवं पुरिसवेदस्स। णवुंसयवेदस्स एवं चेव। णवरि समऊणमादिं कादूण [जाव] वीसंसागरोवमकोडाकोडीओ पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ त्ति णेदव्वं।

होकर और कषायकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिके संक्रमित होनेपर अन्तर्मुहूर्त कालतक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि कषायकी उत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट संक्लेशसे बँधने पर हास्य और रतिको छोड़कर अरति और शोकका ही बन्ध संभव है। यद्यपि अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका काल कषायकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके कालके समान है तो भी कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके रुक जाने पर भी एक आवलि काल तक अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति देखी जाती है। यहाँ पर स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए अन्तर्मुहूर्त कम है। पुनः अन्य जीवने कषायोंकी एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिको अन्तर्मुहूर्त काल तक बाँधा और प्रतिभग्न कालके प्रथम समयमें बँधनेवाले स्त्रीवेदमें बन्धावलिसे रहित कषायकी स्थितिका संक्रमण किया तो उस समय स्त्रीवेदकी स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय कम होती है। तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल तक स्त्रीवेदका बन्ध करके तथा दूसरे एक अन्तर्मुहूर्त काल तक नपुंसकवेदका बन्ध करके पुनः एक अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा उत्कृष्ट संक्लेशकी पूर्ति करके और कषायकी उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर बन्धावलिसे रहित उस कषायकी स्थितिका अरति और शोकमें संक्रमण होनेपर अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थिति होती है। तथा उस समय स्त्रीवेद अपनी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए एक समय अधिक अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिवाला होता है। इसी प्रकार दो समय अधिक और तीन समय अधिक अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक स्त्रीवेदकी स्थिति घटाते जाना चाहिये। इसी प्रकार पुरुषवेदकी स्थिति होती है। तथा नपुंसकवेदकी स्थिति भी इसी प्रकार होती है। किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदकी स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमका असंख्यातवां भाग कम बीस कोड़ाकोड़ी सागर तक घटाते हुए ले जाना चाहिये।

§ ८१५. हस्स-रदीणं णियमा अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति। भय-दुगुंछाणं णियमा उक्कस्सा; धुवबंधित्तादो। भय-दुगुंछाणं णिरुंभणं कादूण भण्णमाणे मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-सोलसकसाय-तिण्णिवेदाणमरदि-सोगभंगो। हस्स-रदि-अरदि-सोगाणं णवुंसयवेदभंगो।

§ ८१६. एवं चुण्णिसुत्तमस्सिदूण सण्णियासपरूवणं करिय संपहि उच्चारणमस्सिदूणुक्कस्ससण्णियासं कस्सामो। पुणरुत्तमिदि एत्थ अण्णयरो ण कायव्वो; आइरियाणमुवदेसंतरजाणावणट्ठं परूविदाए पुणरुत्तदोसाभावादो।

§ ८१७. सण्णियासो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि। तत्थ उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्तउक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त० सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि, किमुक्कस्सा अणुक्कस्सा? णियमा अणुक्कस्सा। अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव एगा ट्ठिदि त्ति। णवरि चरिमुव्वेल्लणकंडएणूणा। सोलसक० किमुक्क० अणुक्क०? उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा। उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण ऊणा। चत्तारिणोक० किमुक० अणुक०? णियमा अणुक्क० अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण

---

§ ८१५. हास्य और रतिकी स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक नियमसे अनुत्कृष्ट होती है। तथा भय और जुगुप्साकी स्थिति नियमसे उत्कृष्ट होती है, क्योंकि ये दोनों प्रकृतियाँ ध्रुवबन्धिनी हैं। भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिके रहते हुए सन्निकर्षका कथन करनेपर मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और तीनो वेदोंका भंग अरति और शोकके समान है। तथा हास्य, रति, अरति और शोकका भंग नपुंसकवेदके समान है।

§ ८१६. इस प्रकार चूर्णिसूत्रका आश्रय लेकर सन्निकर्षका कथन करके अब उच्चारणाका आश्रय लेकर उत्कृष्ट सन्निकर्षको बताते हैं। यदि कोई कहे कि जिसका चूर्णिसूत्र द्वारा कथन किया है उसका उच्चारणा द्वारा कथन करने पर पुनरुक्त दोष आता है, अतः किसी एकका कथन नहीं करना चाहिये सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि आचार्योंके उपदेशोंमें अन्तरका ज्ञान करानेके लिए चूर्णिसूत्रके कथनके बाद भी उच्चारणाका कथन करने पर पुनरुक्त दोष नहीं आता है।

§ ८१७. सन्निकर्ष दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिविभक्ति कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। यदि है तो क्या उत्कृष्ट होती या अनुत्कृष्ट? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है। जो एक अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थिति तक होती है। किन्तु इतनी विशेषता है कि वह अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तिम उद्वेलनाकाण्डकके सन्निकर्ष विकल्पों से न्यून होती है। सोलह कषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट? उत्कृष्ट अथवा अनुत्कृष्ट होती है। उनमें अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है। चार नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट

जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । पंचणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव वीसंसागरोवमकोडाकोडीओ पलिदो० असंखे० भागेणूणाओ त्ति ।

§ ८१८. सम्मत्तुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणा । णत्थि अण्णो वियप्पो । सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्कस्सा । सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०भागेणूणा त्ति । एवं सम्मामि० ।

§ ८१९. अणंताणु०कोध० मिच्छत्त-पण्णारसक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणा त्ति । सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । चत्तारिणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति । पंचणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । जदि अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव वीसंसागरोवमकोडाकोडीओ पलिदो० असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ त्ति । एवं पण्णारसकसायाणं ।

होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अन्तमुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक होती है । पांच नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट अथवा अनुत्कृष्ट होती है । उनमें अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमका असंख्यावां भाग कम बीस कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है ।

§ ८१८. सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अपनी उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है । यहां मिथ्यात्वकी स्थितिका अन्य विकल्प नहीं होता । सम्यग्मिथ्यात्वका स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर पल्योपमक असंख्यातवें भाग कम तक होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्षका कथन करना चाहिये ।

§ ८१९. अनन्तानुबन्धी क्रोधकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व और पन्द्रह कषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट अथवा अनुत्कृष्ट होती है । वह अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम तक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । चारों नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक होती है । पांच नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । यदि अनुत्कृष्ट होती है तो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमका असंख्यातवां भाग कम बीस कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है । इसी प्रकार शेष पन्द्रह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८२०. इत्थिवेदुक्कस्सहिदिविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा, एगसमयमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०भागेणूणा। सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो। पुरिस० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति। अथवा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूणे त्ति वत्तव्वं। णवुंस० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा, समयूणमादिं कादूण जाव वीसं सागरोवमकोडाकोडाओ पलिदो० असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ। हस्स-रदि० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कसा अणुक्कस्सा वा। उक्कसादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडीओ। अरदि-सोग० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कसा अणुक्कस्सा वा। उक्कस्सादो अणुकस्सा समयूणमादिं कादूण जाव वीसंसागरोवमकोडाकोडीओ पलिदो० असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ। भय-दुगुंछ० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्कस्सा। सोलसक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क०। समयूणमादिं कादूण जाव आवलिऊणा। एवं पुरिसवेदस्स।

§ ८२१. णवुंसयवेदउक्कस्सहिदिविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा। उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समऊणमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०भागेण ऊणा। सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो। सोलसक० किमुक्क० अणुक्क० ?

§ ८२०. स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है। जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम तक होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है। पुरुषवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है। जो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक होती है। अथवा एक समय कमके स्थानमें अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर ऐसा कहना चाहिये। नपुंसकवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है। जो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमका असंख्यातवां भाग कम वीस कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है। हास्य और रतिकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक होती है। अरति और शोककी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमका असंख्यातवां भाग कम वीस कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है। भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है। सोलह कषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है। जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक आवलि कम तक होती है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिये।

§ ८२१. नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम तक होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है। सोलह कषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या

उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा। उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव आवलिऊणा। इत्थि-पुरिस० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा। समयूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति। अथवा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण। हस्स-रदि० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा। उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति। अरदि-सोग० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा। उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव वीसंसागरोवम-कोडाकोडीओ पलिदो० असंखेज्जदिभागेण ऊणाओ। भय-दुगुंछा० इत्थिवेदभंगो।

§ ८२२. हस्सउक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा। समयूणमादिं कादूण जाव पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणा। सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो। सोलसक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क०। एगसमयमादिं कादूण जाव आवलिऊणा। इत्थि०-पुरिस० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा। उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति। अथवा अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण। णवुंसय० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा। उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव वीसं-

---

अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक आवलि कम तक होती है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है। जो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक होती है। अथवा 'एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर के' स्थानमें 'अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर' कहना चाहिये। हास्य और रतिकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उसमें अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक होती है। अरति और शोककी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उसमें अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमका असंख्यातवां भाग कम बीस कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है। भय और जुगुप्साका भंग स्त्रीवेदके समान है।

§ ८२२. हास्य प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है। जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यावें भाग कम तक होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है। सोलह कषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है। जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक आवलि कम तक होती है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक होती है। अथवा 'एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर' के स्थानमें 'अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर' जानना चाहिये। नपुंसकवेदकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट

सागरोवमकोडाकोडीओ पलिदो० असंखे०भागेणूणाओ। अरदि-सोग० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा। समयूणमादिं कादूण जाव वीसंसागरोवमकोडाकोडीओ पलिदो० असंखे०भागेणूणाओ। रदि-भय-दुगुंछाओ किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्कस्सा। एवं रदि०।

§ ८२३. अरदि० उक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा। उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०भागेणूणा। सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो। सोलसक० णवुंसगभंगो। इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदाणं रदिभंगो। हस्स-रदि० किमुक्क० ? णियमा अणुक्क०। समयूण-मादिं कादूण जाव अंतोकोडाकोडि त्ति। सोग-भय-दुगुंछाणं णियमा उक्कस्सा। एवं सोग०।

§ ८२४. भय० उक्क०ट्ठिदिवि० मिच्छत्त०-सम्म०-सम्मामि०-सोलसक०-तिण्णिवेद० अरदिभंगो। हस्स-रदि-अरदि-सोग० णवुंसयभंगो। दुगुंछ० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्क०। एवं दुगुंछ०। एवं सव्वणेरइय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरि०पज्ज०-पंचिं०तिरि०जोणिणी०-मणुसतिय०-देव-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिं०-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-

स्थितिसे लेकर पल्योपमका असंख्यातवां भाग कम वीस कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है। अरति और शोककी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है। जो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमका असंख्यातवां भाग कम वीस कोड़ाकोड़ी सागर तक होती है। रति, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार रति प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ८२३. अरति प्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कमसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थितितक होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है। सोलह कषायोंका भंग नपुंसकवेदके समान है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदका भग रतिके समान है। हास्य और रतिकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है। जो एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक होती है। तथा शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति नियमसे उत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार शोकप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ८२४. भयप्रकृतिकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और तीन वेदोंका भंग अरतिके समान है। हास्य, रति, अरति और शोकका भंग नपुंसकवेदके समान है। जुगुप्साकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार जुगुप्सा प्रकृतिकी स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार सब नारकी, तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचो मनोयोगी पांचों

वेउव्विय०-तिण्णिवेद०-चत्तारिक०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसिद्धि०-सण्णि-आहारि त्ति ।

§ ८२५. पंचिंदियतिरि०अपज्ज० मिच्छत्त उक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स सम्मत्त०-सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्कस्सा । अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव एया ट्ठिदी । णवरि चरिमुव्वेल्लण-कंडएणूणा । सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०भागेणूणा । सम्मत्त० उक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० अंतोमुहुत्तूणा । सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्कस्सा । सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० । अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव पलिदोवमस्स असंखे०भागेणूणा । एवं सम्मामि० । अणंताणुबंधिकोध० उक्कस्सट्ठिदि-विहत्तियस्स मिच्छत्त० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०भागेणूणा । सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो । पण्णारसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्कस्सा ।

वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पांच लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८२५. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थिति पर्यंत होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसमें अन्तिम उद्वेलना काण्डक प्रमाण स्थितिको घटा देना चाहिये । सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कमसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अपनी उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । पन्द्रह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । इसी प्रकार पन्द्रह कषाय

एवं पण्णारसक०-णवणोकसायाणं। एवं मणुसअपज्ज०-बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदिय-पज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिं०अपज्ज०-बादरपुढविअपज्ज०-सुहुमपुढवि-पज्जत्तापज्जत्त-बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउ-पज्जत्तापज्जत्त-तेउ-बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०अपज्ज०-णिगोद-बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-तसअपज्जत्ता त्ति।

§ ८२६. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जं ति मिच्छत्तुकस्सट्ठिदिविहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामि० सिया अत्थि, सिया णत्थि। जदि अत्थि किमुक्क० अणुक्क०? उक्क० अणुक्कस्सा वा। उक्कस्सादो अणुक्कस्सा पलिदो० असंखेभागूणमादिं कादूण जाव एगा ट्ठिदि त्ति। णवरि चरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालीयाए ऊणा। सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क०? णियमा उक्क०। एवं सोलसक०-णवणोक०। सम्मत्त० उक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स मिच्छत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क०? णियमा उक्क। एवं सम्मामि०।

§ ८२७. अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स

और नौ नोकषायोंकी स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर-अग्निकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, निगोद, बादर निगोद, बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद, सूक्ष्म निगोद पर्याप्त, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त-जीवोंके जानना चाहिये।

§ ८२६. आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो इनकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थिति तक होती है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसमेंसे अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिप्रमाण स्थितियोंको घटा देना चाहिये। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट? नियमसे उत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट? नियमसे उत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ८२७. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके

सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्क० । एवमेक्केक्कस्स । एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-खइय-उवसम०-सासण०-दिट्ठि त्ति ।

§ ८२८. एइंदिय-बादरेइंदिय-तप्पज्ज०-पुढवि०-बादरपुढवि०-बादरपुढविपज्ज०-आउ०-बादरआउ०-बादरआउपज्ज०-वणप्फदि-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीर-तप्पज्ज०-ओरालियमिस्स-वेउव्वियमिस्स-कम्मइय०-असण्णि०-अणाहारि०-मदि०-सुद०-विहंग०-मिच्छादिट्ठि त्ति ओघं। णवरि एइंदियादि अणाहारिपज्जंतेसु धुवबंधीणमुक्कस्सट्ठिदि-विहत्तियस्स चदुणोक० उक्क० अणुक्क० वा । समऊणमादिं कादूण जाव अंतोकोडा-कोडि त्ति । चदुणोक० उक्कस्सट्ठिदिवि० धुवबंधीणमुक्क० अणुक्क० वा । समयूण-मादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे० भागेणूणा। समऊणावलिऊणा त्ति एसो विसेसो जाणियव्वो ।

§ ८२९. आभिणि०-सुद०-ओहि० मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्क० । सोलसक०-णवणोक० किमुक्क०

धारक जीवके सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार प्रत्येक प्रकृतिकी स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिये। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायवाले, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहार-विशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशम-सम्यग्दृष्टि और सासादनसम्यग्दिष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

§ ८२८. एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक पर्याप्त, वनस्पति कायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर, बादर वनस्पति कायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त, औदारिकमिश्र-काययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, असंज्ञी, अनाहारक, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी और मिथ्यादृष्टि जीवोंके ओघके समान सन्निकर्ष जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि एकेन्द्रियोंसे लेकर अनाहारकोंतक जीवोंमें ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिके धारक जीवके चार नोकषायोंकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर तक होती है। चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियोंकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी। उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है। यहां पर एक समय कम या एक आवली कम उत्कृष्ट स्थिति होती है इतना विशेष जानना चाहिए।

§ ८२९. आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट

अणुक्क० ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०भागेणूणा । एवं सम्मत्त-सम्मामि० । अणंताणु०कोधुक्कस्स०-विहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क ? उक्कस्सा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सा समयूणमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे० भागेणूणा । पण्णारसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्क० । एवं पण्णारसक०-णवणोकसायाणं । एवोमहिदंस०-सम्मा०-वेदय० त्ति० ।

§ ८३०. सुक्कलेस्सिय० पंचिं०तिरि०अपज्जत्तभंगो । अभव० सम्मत्त-सम्मामि० वज्ज० ओघं । सम्मामि० मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० । अंतोमुहुत्तूणादिं कादूण जाव सागरोवमपुधत्तं । सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? आभिणि०भंगो । एवं सोलसक०-णवणोक० । सम्मत्तुक्कस्सट्ठिदिविहत्तियस्स मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० अंतोमुहुत्तूणा । णवरि पणुवीसकसायाण अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव

होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम तक होती है । इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी । उनमेंसे अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है । पन्द्रह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती है । इसी प्रकार पन्द्रह कषाय और नौ नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८३०. शुक्ललेश्यावालोके पंचन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोके समान भंग हैं । अभव्योंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़ कर शेष कथन ओघके समान है । तात्पर्य यह है कि अभव्योंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ नहीं होतीं, अतः इनके साथ अन्य प्रकृतियो का और अन्य प्रकृतियो के साथ इनका सन्निकर्ष नहीं प्राप्त होता । शेष प्रकृतियोंका सन्निकर्ष ओघके समान है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट । नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर सागर पृथक्त्व तक होती है । सोलह कषाय और नौ नोकषायोकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट । यहाँ आभिनिबोधिक ज्ञानियोंके समान भंग है । इसी प्रकार सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे अनुत्कृष्ट होती है । जो उत्कृष्ट स्थितिसे अन्तर्मुहूर्त कम होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि पच्चीस कषायों की अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग कम उत्कृष्ट स्थिति तक होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या उत्कृष्ट होती है या अनुत्कृष्ट ? नियमसे उत्कृष्ट होती

पलिदो० असंखे०भागेणूणा त्ति । सम्मामि० किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा उक्क० । एवं सम्मामि० ।

एवमुक्कस्सट्ठिदिसण्णियासो समत्तो ।

❀ जहण्णट्ठिदिसण्णियासो ।

§ ८३१. सुगममेदं ।

❀ मिच्छत्तजहण्णट्ठिदिसंतकम्मियस्स अणंताणुबंधीणं णत्थि ।

§ ८३२. अणंताणुबंधीणं णत्थि सण्णियासो त्ति संबंधो कायव्वो । कुदो ? पुव्वं चेव विसंजोइदाणं तत्थ ट्ठिदिसंताभावादो ।

❀ सेसाणं कम्माणं ट्ठिदिविहत्ती किं जहण्णा अजहण्णा ?

§ ८३३. सुगममेदं ।

❀ णियमा अजहण्णा ।

§ ८३४. कुदो, उवरि जहण्णट्ठिदिं पडिवज्जमाणाणमेत्थ जहण्णत्तविरोहादो ।

❀ जहण्णादो अजहण्णा असंखेज्जगुणब्भहिया ।

§ ८३५. कुदो ? मिच्छत्तस्स दुसमयकालेगट्ठिदीए सेसाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणं बारसकसाय-णवणोकसायाणमंतोकोडाकोडिसागरोवममेत्ताणं ट्ठिदीणमवसिट्ठाणमुवलंभादो ।

है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

इस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसन्निकर्ष समाप्त हुआ ।

*** अब जघन्य स्थितिके सन्निकर्षका अधिकार है ।**

§ ८३१. यह सूत्र सुगम है ।

*** मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सत्कर्मवाले जीवके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सन्निकर्ष नहीं है ।**

§ ८३२. यहां पर अनन्तानुबन्धी चतुष्कका सन्निकर्ष नहीं है, इस प्रकार संबन्ध करना चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति प्राप्त होनेके पहले ही इसकी विसंयोजना हो जाती है, अतः इसका मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके समय स्थिति सत्त्व नहीं पाया जाता है ।

*** मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति सत्कर्मवाले जीवके शेष कर्मोंकी स्थितिविभक्ति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?**

§ ८३३. यह सूत्र सुगम है ।

*** नियमसे अजघन्य होती है ।**

§ ८३४. क्योंकि शेष कर्मोंकी जघन्य स्थिति आगे जाकर प्राप्त होनेवाली है, अतः उनकी यहां जघन्य स्थिति माननेमें विरोध आता है ।

*** वह अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी अधिक होती है ।**

§ ८३५. क्योंकि जब मिथ्यात्वकी दो समय काल प्रमाण एक स्थिति शेष रहती है तब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थिति शेष पाई जाती है ।

❀ मिच्छत्तेण णीदो सेसेहि वि अणुमग्गियव्वो ।

§ ८३६. मिच्छत्तजहण्णट्ठिदीए सह सण्णियासो णीदो कहिदो परुविदो त्ति वुत्तं होदि । सेसेहि वि कम्मेहि एसो जहण्णसण्णियासो अणुमग्गियव्वो गवेसियव्वो त्ति उत्तं होदि ।

§ ८३७. एवं जइवसहाइरियमुहविणिग्गय चुण्णिसुत्ताणं देसामासिएण सूचिदस्स उच्चारणपरूवणं कस्सामो । जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण । ओघेण मिच्छत्त०जहण्णट्ठिदिविहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामि० किं जह० अजह० ? णियमा अजह० असंखे० गुणब्भहिया । बारस०-णवणोक० किं जह० अजह० ? णियमा अज० असंखे० गुणब्भहिया । अणंताणुबंधी णिस्संता ।

§ ८३८. सम्मत्तस्स जह० बारसक०-णवणोक० किं जह० अज० ? णियमा अज० असंखे०गुणब्भहिया । सेसस्स असंतं ।

§ ८३९. सम्मामि० जह०विहत्तियस्स मिच्छत्त-सम्मत्त-अणंताणु० सिया अत्थि सिया णत्थि । यदि अत्थि किं जह० अजह० ? णियमा अज० असंखे०गुणब्भहिया । बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० असंखेज्जगुणा ।

❀ जिस प्रकार मिथ्यात्वके साथ सब प्रकृतियोंका सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार शेष कर्मोंके साथ भी उसका विचार करना चाहिये ।

§ ८३६. जिस प्रकार मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके साथ सन्निकर्ष कहा है उसी प्रकार शेष कर्मोंके साथ भी यह जघन्य सन्निकर्ष कहना चाहिये । सूत्रमें जो 'णीदो' पद है उसका अर्थ 'कहना चाहिये, प्ररूपण करना चाहिये' यह होता है तथा 'अणुमग्गियव्वो' पदका अर्थ खोजना चाहिये' होता है ।

§ ८३७. इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके मुखसे निकले हुए चूर्णिसूत्रोंके देशामर्षक होनेसे सूचित हुए अर्थकी उच्चारणाका कथन करते हैं—अब जघन्य सन्निकर्षका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यात गुणी अधिक होती है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी अधिक होती है । तथा अनन्तानुबन्धीका यहाँ अभाव है ।

§ ८३८. सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी अधिक होती है । इसके शेष प्रकृतियोंका सत्त्व नहीं है ।

§ ८३९. सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क ये छह प्रकृतियाँ कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो इनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो अपनी जघन्य स्थितिसे

§ ८४०. अणंताणु०कोध० जह० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० असंखेज्जगुणा। तिण्णिक० किं ज० [अजह०] ? णियमा जह०। एवं तिण्हं कसायाणं।

§ ८४१. अपच्चक्खाणकोध० जह०विहत्तियस्स चत्तारिसंज०-णवणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० असंखे०गुणा। सत्तकसाय० किं जह० अज० ? णियमा जह०। एवं सत्तकसायाणं।

§ ८४२. इत्थि०ज०विहत्तियस्स सत्तणोक०-तिण्णिसंजल० किं जह० अज० ? णियमा अज० संखे०गुणा। लोभसंज० किं जह० अज० ? णियमा अज० असंखे०-गुणा। एवं णवुंस०।

§ ८४३. पुरिस०ज०विहत्तियस्स तिण्हं संजल० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखेज्जगुणा। लोभसंज० किं जह० अज० ? णियमा अज० असंखे०गुणा।

§ ८४४. हस्सज० तिण्णिसंज०-पुरिस० किं जह० अज० ? णियमा अज०

असंख्यातगुणी अधिक होती है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी जघन्यस्थितिसे असंख्यातगुणी होती है।

§ ८४०. अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ८४१. अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके चार संज्वलन और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। शेष अप्रत्याख्यानावरण मान आदि सात कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यावरण मान आदि सात कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ८४२. स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सात नोकषाय और तीन संज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। लोभसंज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है ? जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ८४३. पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके तीनों संज्वलनोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। लोभ संज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है।

§ ८४४. हास्यकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी

संखे०गुणा। लोभसंजल० किं जह० अजह०? णियमा अज० असंखेगुणा। पंच-णोक० किं जह० अज०? णियमा जहण्णा। एवं पंचणोक०।

§ ८४५. कोधसंजल० जह० विहत्तियस्स दोसंजल० किं जह० अजह०? णियमा अज० संखेज्जगुणा। लोभ० किं ज० अज०? णियमा अज०, असंखे०गुणा। माणसंज० जह० विहत्तियस्स मायासंज० किं ज० अज०? णियमा अज० संखे०गुणा। लोभ किं ज० अज०? णियमा अज०, असंखे०गुणा। मायासंजल० जह० विहत्ति० लोभ० किं ज० अज०? णियमा अज० असंखे०गुणा।

§ ८४६. लोभसंज० जह० ट्ठिदि० सेसं णत्थि। एवं मणुस-मणुसपज्ज०-मणुसिणी–पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस–तसपज्ज०–पंचमण०–पंचवचि०–कायजोगि०-ओरालि०-लोभक०-चक्खु०–अचक्खु०-सुक्क०-भवसि०-सण्णि०-आहारि त्ति। णवरि मणुसपज्जत्तएसु इत्थि० जहण्णट्ठिदिविहत्तियस्स चदुसंजल०-सत्तणोक० णियमा अज० असंखे०गुणा। णवुंस० सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि, णियमा अज० असंखे०गुणा। मणुस्सिणीसु णवुंस० ज० ट्ठिदिवि० चदुसंज०-अट्ठणोक० णियमा

स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है। जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। लोभ संज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है। जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। पाँच नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार पाँच नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ८४५. क्रोध संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके दो संज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है। जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। लोभ संज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। मानसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मायासंज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। लोभसंज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। माया-संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके लोभसंज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है।

§ ८४६. लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके शेष प्रकृतियाँ नहीं पाई जाती हैं। इसी प्रकार अर्थात् ओघके समान मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, लोभ कषायवाले, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके चार संज्वलन और सात नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य स्थिति होती है और वह जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। तथा नपुंसकवेद कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। यदि है तो उसकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यात-गुणी होती है। मनुष्यनियोंमें नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके चार संज्वलन

अज०, असंखे०गुणा । पुरिस० छण्णोकसायभंगो ।

§ ८४७. आदेसेण णेरइय० मिच्छत्त० जह० विहत्ति० बारसक०-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा समउत्तरादि जाव पलिदो० असंखे० भागब्भहिया । सम्मत्त० सिया अत्थि, सिया णत्थि । जदि अत्थि, किं जह० अज० ? णियमा अज० विट्ठाणपदिदा संखेज्जगुणब्भहिया असंखे०गुणब्भहिया वा । सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि ? जदि अत्थि, किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा विट्ठाणपदिदा संखे०गुणा असंखे०गुणा वा णिसेयप्पहाणत्तणेण, अण्णहा तिट्ठाणपदिदा । अणंताणु० चउक्क० किं जह० अज० ? णियमा अज०, असंखे०गुणा । सत्तणोक० किं जह० अज० ? णि० अज०, असंखे०भागब्भहिया । सम्मत्त० जहण्णट्ठिदिविहत्ति० बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज०, संखे०गुणा । सम्मामि० ज० विहत्तियस्स मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जदि अजहण्णा तिट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे०भागब्भहिया संखे०गुणब्भहिया वा । अणंताणु० णियमा अजहण्णा

और आठ नोकषायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । तथा पुरुषवेदका भंग छह नोकषायोंके समान है ।

§ ८४७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमें से अजघन्य स्थिति एक समय अधिकसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक जघन्य स्थिति तक होती है । सम्यक्त्व प्रकृति कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होती हुई संख्यातगुणी अधिक होती है या असंख्यातगुणी अधिक होती है । सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिसे द्विस्थान पतित होती हुई संख्यातगुणी या असंख्यातगुणी होती है । यह स्थिति निषेकोंकी प्रधानतासे कही है । अन्यथा जघन्य स्थितिसे अजघन्य स्थिति तीन स्थान पतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है ? सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे संख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । यदि अजघन्य होती है तो वह जघन्यसे असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्यसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी

असंखे०गुणा । अणंताणु०कोध० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मामि० किं ज० अजह० ? णियमा अज०, असंखे०गुणब्भहिया । तिण्हमणंताणुबंधीणं किं० ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं तिण्हं कसायाणं । अपच्चक्खा० कोधज० विहत्ति० मिच्छ०-एक्कारसक० किं ज० अज० ? [अज०] तं तु समउत्तरमादिं कादूण जाव पलि० असंखे०भागब्भहिया । भय-दुगुंछ० किं० ज० अज० ? णिय० जहण्णा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क०-सत्तणोक० मिच्छत्तभंगो । एवमेक्कारसक० । इत्थि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-अट्ठणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंता०-चउक्क० मिच्छत्तभंगो । एवं पुरिस० । णवुंस० जहण्णट्ठिदिविहत्तियस्स मिच्छत्त-बारसक०-इत्थि०-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णियमा अज०, संखे०गुणा । हस्सरदि० किं ज० अज० ? णियमा अज० वेट्ठाणपदिदा असंखे०-भागब्भहिया संखे०गुणब्भहिया वा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो ।

क्रोधकी जघन्य स्थितिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो जघन्यसे असंख्यातगुणी अधिक होती है। शेष तीन अनन्तानुबन्धियोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। मिथ्यात्व की स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग तक अधिक होती है। भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी चतुष्क और सात नोकषायोंका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और आठ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे संख्यातगुणी अधिक होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके जानना चाहिये। नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्यसे संख्यातगुणी अधिक होती है। हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे असंख्यातगुणी अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। किसी उच्चारणामें अरति और शोककी स्थिति हास्य और रतिके

कम्हि वि उच्चारणाए अरदि-सोगट्ठिदी हस्सरदीणं व वेट्ठाणपदिदा त्ति भणदि, तं जाणिय वत्तव्वं । हस्स० जह० विहत्ति० मिच्छत्त०-बारसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० मिच्छत्तभंगो । इत्थि०-पुरिस०वे० किं ज० अज० ? णि० अज० विट्ठाणपदिदा असंखे०भाग० संखे०गुणब्भहिया वा । रदि० किं ज० अज० ? णिय० जहण्णा । एवं रदि० । अरदि० जह० मिच्छत्त-बारसक०-हस्स-रदि० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे०गुणा । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो । इत्थि-पुरिस-णवुंस० किं ज० अज० ? णियमा अज० विट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे०गुणब्भहिया वा । सोग० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं सोग० । भयस्स ज० विहत्ति० मिच्छत्तबारसक० किं ज० [अज०] ? अज०, तं तु विट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे०भागब्भहिया वा । दुगुंछ० किं ज० अज० ? णियमा जहण्णा । सेसं मिच्छत्तभंगो । एवं दुगुंछाए । एवं पढमाए पुढवीए ।

§ ८४८. विदियादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छत्त ज० विहत्तियस्स सम्मत्त-सम्मामि०

समान दो स्थान पतित कही है सो जानकर उसका कथन करना चाहिये। हास्यकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्यसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार रतिकी स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अरतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है । स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। शोककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार शोककी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। भयकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व और बारह कषायकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो जघन्यसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातवें भाग अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। शेष कथन मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये।

§ ८४८. दूसरीसे लेकर छठी पृथिवीतकके नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके

किं ज० अज० ? णियमा अज० असंखे०गुणा । बारसक० किं ज० अज० ? णियमा जहण्णा । एवं बारसक०-णवणोकसायाणं । सम्मत्त० ज० विहत्तियस्स मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गणा । सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० किं ज० अज० ? णिय० अज० असंखे०गुणा । सम्मामिच्छ० जह० विहत्तियस्स मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० किं जह० अजह० ? णिय० अज० संखेज्जगुणा । अणंताणु०चउक्क० किं जह० अजह० ? णिय० अज० असं०गुणा । सम्मत्तं णत्थि । अणंताणु० कोह० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णिय० अज० वेट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे०भागब्भहिया वा । सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अज० ? णियमा अज० असंखे०गुणा। तिण्णि कसाय० किं ज० अज० ? णियमा जह० । एवं तिण्हं कसायाणं ।

§ ८४९. सत्तमाए पुढवीए मिच्छत्त० ज० विहत्ति० बारसक०-भय-दुगुंछा० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अज० समयुत्तरमादिं कादूण जाव

धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। बारह कषायों और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। इसके सम्यक्त्व प्रकृति नहीं है इसलिये उसका सन्निकर्ष नहीं कहा। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातवें भाग अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८४९. सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और

१ आ० प्रतौ संखे० गुणा इति पाठः ।

पलिदो० असंखे०भागब्भहिया। सम्मत्त–सम्मामि० अणंताणु०चउक्क० किं ज० अज०? णि० अज० असंखे०गुणा। सत्तणोक० किं ज० अज०? णियमा अज० असंखे०भागब्भहिया। एवं बारसकसायाणं, णवरि भय-दुगुंछा० तं तु समयुत्तरमादिं० जाव आवलियब्भहिया। सम्मत्त०जह० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज०? णि० अज० संखे०गुणा। सम्मामि० किं ज० अज०? णियमा अज० असंखे०गुणा। अणंताणु० चउक्क० विदियपुढविभंगो। सम्मामि० एवं चेव, णवरि सम्मत्तं णत्थि। अणंताणु० कोध० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० किं० ज० अज०? णि० अज० विट्ठाणपदिदा असंखेज्जभागब्भहिया संखे०भागब्भहिया वा। सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो। तिण्णि क० किं ज० अज०? णि० ज०। एवं तिण्हं कसायाणं। इत्थि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-अट्ठणोक० किं ज० अज०? णियमा अज० संखे०गुणा। सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० किं ज० अज०? णियमा अज० असंखे०गुणा। एवं पुरिस०। णवुंस० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-

अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग तक अधिक होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी अधिक होती है। सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके भय और जुगुप्साकी स्थिति अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे एक समय अधिकसे लेकर एक आवलितक अधिक होती है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग दूसरी पृथिवीके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके इसी प्रकार सन्निकर्ष जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्व प्रकृति नहीं है। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातवें भाग अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है। अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, और आठ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य

वारसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे०गुणा। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० किं ज० अज० ? णियमा अज० असंखे०गुणा। हस्स-रदि० किं ज० अज० ? णि० अज० वेट्ठाणपदिदा असंखे० भागब्भहिया संखेज्जगुणा वा ? हस्स जह० विहत्ति० मिच्छत्त०-वारसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० अज० संखेज्जगुणा। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० णवुंस० भंगो। इत्थि-पुरिस० किं ज० अज० ? णिय० अज० वेट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे०गुणा वा। रदि० किं ज० अज० ? णियमा जहण्णा। एवं रदि०। अरदि० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-वारसक०-हस्स-रदि-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे०गुणा। सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० रदिभंगो। तिण्णि वेद० किं ज० अज० ? णिय० अज० वेट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे० गुणा वा। सोग० किं ज० अज० ? णियमा जहण्णा। एवं सोग०। भय ज० विहत्ति० मिच्छत्त०-वारसक० किं ज० ? अज०। तं तु

स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है इसी प्रकार पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। नपुसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। हास्यकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग नपुंसकवेदके समान है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार रतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अरतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होतीहै। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग रतिके समान है। तीनों वेदोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। शोककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार शोककी जघन्यस्थितिविभक्तवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। भयकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व और बारह कषायकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ?

तिट्ठाणपदिदा असंखे० भागब्भहिया संखे०भागब्भहिया संखे०गुणा वा। दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। सेसं मिच्छत्तभंगो। एवं दुगुंछा०।

§ ८५०. तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु मिच्छत्त० ज० विहत्ति० बारसक०-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा। जहण्णादो अजहण्णा समयुत्तरमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०भागब्भहिया। सम्मत्त० सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि, किं ज० अज० ? णि० अज० वेट्ठाणपदिदा संखे०गुणा असंखे०गुणा वा। सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा। जहण्णादो अजहण्णा वेट्ठाणपदिदा संखे०गुणा असंखे०गुणा वा। अणंताणु०चउक्क० किं ज० अज ? णि० अज०-असंखे०गुणा। सत्तणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०भागब्भहिया। एवं बारसक०। णवरि बारसकसाएसु एक्कदरस्स जहण्णट्ठिदीए णिरुद्धाए भय-दुगुंछाओ किं ज० [अज०] ? अज०, तं तु समयुत्तरमादिं कादूण जाव आवलियब्भहियाओ। सम्मत्त० ज० विहत्ति० बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे०गुणा। सम्मामि० जह० विहत्ति०

नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है। जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। शेष प्रकृतियोंका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ८५०. तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक होती है। सम्यक्त्वप्रकृति कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक या असंख्यात गुणी इस प्रकार दो स्थानपतित होती है। सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी या असंख्यातगुणी इस प्रकार दो स्थानपतित होती है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवेंभाग अधिक होती है। इसी प्रकार बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषायोंमेंसे किसी एक कषायकी जघन्य स्थितिके रुके रहने पर भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे एक समय अधिकसे लेकर एक आवलितक अधिक होती है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी

मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा। जहण्णादो अजहण्णा तिट्ठाणपदिदा असंखे० भागब्भहिया संखे०भागब्भहिया संखे०गुणब्भहिया वा। अणंताणु०चउक्क० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणब्भहिया। अणंताणु० कोध० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा। सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अज० ? णियमा अज० असंखे०गुणा। तिण्णिक० किं ज० अजह० ? णि० जहण्णा। एवं तिण्हं कसायाणं। भय० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा। जहण्णादो अजहण्णा असंखे०भागब्भहिया। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्त-भंगो। सत्तणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०भागब्भहिया। दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। एवं दुगुंछाए। इत्थि० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-अट्ठणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। एवं पुरिस०। णवुंस० जह० विहत्ति० मिच्छत्त०-

जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवेंभाग अधिक, संख्यातवेंभाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक होती है। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। भयकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व और बारह कषायकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है। या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है। जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और आठ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार

१ आ० प्रतौ 'संखेज्जगुणा' इति पाठः।

बारसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० इत्थि०भंगो। हस्स-रदि० किं ज० अज० [णियमा अज०] वेट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे०गुणा वा। हस्स ज० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंता०चउक्क० णवुंसभंगो। इत्थि-पुरिस० किं ज० अज० ? णि० अज० वेट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे०-गुणा वा। रदि० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। एवं रदीए। अरदि० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० हस्सभंगो। तिण्णि वेद० किं ज० अज० ? णि० अज० वेट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे०गुणा वा। सोग० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। एवं सोग०।

§ ८५१. पंचिंदियतिरिक्ख०-पंचिं०तिरि०पज्ज०-पंचिं०तिरि०जोणिणी० मिच्छत्त० जह० विहत्ति० बारसक०-भय-दुगुंछा० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा।

पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग स्त्रीवेदके समान है। हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। हास्यकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, नपुंसकवेद अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या जघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग नपुंसकवेदके समान है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार रतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अरतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारहकषाय, हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग हास्यके समान है। तीनों वेदोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित है। शोककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार शोककी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ८५१. पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या

जहण्णादो अजहण्णा समयुत्तरमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०भागब्भहिया । णवरि भयदुगुंछ० तिट्ठाणपदिदा । सम्मत्तं सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि किं ज० अज० ? णि० अज० वेट्ठाणपदिदा संखे०गुणा असंखे०गुणा वा । सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि, किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा, जहण्णादो अजहण्णा विट्ठाणपदिदा संखे०गुणा असंखे०गुणा वा । अणंताणु०चउक्क० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । सत्तणोक० किं ज० अज ? णि० अज० तिट्ठाण-पदिदा-असंखे०भाग०भहिया संखे०भागब्भहिया संखे० गुणब्भहिया वा । एवं बारस-कसाय० । भय० जह० मिच्छत्त-बारसक०-दुगुंछ० किं ज० [अज०] ? अज० तं तु समयुत्तरमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०भागब्भहिया । सेसं मिच्छत्तभंगो । एवं दुगुंछ० । सम्मत्त ज० विहत्ति० बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मामि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० किं० ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अजहण्णा तिट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे०भागब्भ० ˎखे०गुणा वा । अणंताणु०चउक० किं ज० अज० ? णि० अज०

जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति एक समय अधिक जघन्य स्थितिसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि भय और जुगुप्साकी स्थिति तीन स्थानपतित होती है । सम्यक्त्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो संख्यातगुणी अधिक या असंख्यात गुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है । सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा संख्यात गुणी अधिक या असंख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थानपतित होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो असंख्यातवें भाग अधिक संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है । इस प्रकार बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये । भयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है । फिरभी वह अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग अधिकतक होती है । शेष भंग मिथ्यात्वके समान है । इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी । उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग

असंखे०गुणा। इत्थि० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-अट्ठणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे० गुणा। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। एवं पुरिस०। णवुंस० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे० गुणा। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। हस्स-रदि० किं ज० अज० ? णियमा अज० वेट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे० गुणा। हस्स० जह० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे०गुणा। एवं णवुंस०। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो। इत्थि-पुरिस० किं ज० अज० ? णियमा अज० वेट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भ० संखे०गुणा वा। रदि किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। एवं रदीए। अरदि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-हस्स-रदि०-भय-दुगुंछ० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्क० हस्सभंगो। तिण्णिवेद० किं ज० अज० ? णि० अज० वेट्ठाणपदिदा असंखे०

अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और आठ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति-विभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यात-गुणी होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो असंख्यातवें भाग अधिक और संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। हास्यकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार नपुंसकवेदका भंग जानना चाहिये। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है. जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार रतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अरतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय, हास्य, रति, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग हास्यके समान है। तीनों वेदोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है,

भागब्भ० संखे०गुणा वा। सोग० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। एवं सो०। णवरि पंचिं० तिरि० जोणिणीसु सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो।

§ ८५२. पंचिं०तिरि० अपज्ज० मिच्छत्त ज० विहत्ति० सम्मत्त-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० जोणिणीभंगो। अणंताणु०चउक्क० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा। जहण्णादो अजहण्णा समयुत्तरमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०भाग-ब्भहिया। सम्मत्त० ज० विहत्ति० मिच्छत्त सोलसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा। जहण्णादो अज० तिट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भ० संखे० भागब्भ० संखे०गुणा वा। सम्मामि० णि० अज० असंखे०गुणा। एवं सम्मामि०, णवरि सम्मत्तं णत्थि। सोलसक० मिच्छत्तभंगो। भय० जह० मिच्छत्त-सोलसक०-दुगुंछ० किं ज० [अज०] ? अज०, तं तु समयुत्तरमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे० भागब्भ०। सेसं मिच्छत्तभंगो। एवं दुगुंछाए। सत्तणोक० जोणिणिभंगो। णवरि अणंताणु० चउक्क० णि० संखे०गुणा। एवं मणुसअपज्ज०-पंचि०अपज्ज०-तसअप-

जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। शोककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार शोकका जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमति जीवोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है।

§ ८५२. पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग योनिमति तिर्यंचोंके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक होती है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है। सम्यग्मिथ्यात्वका स्थिति नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके सम्यक्त्व प्रकृति नहीं है। सोलह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सब प्रकृतियोंका सन्निकर्ष मिथ्यात्वके समान है। भयकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है फिर भी वह अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग अधिक तक होती है। शेष प्रकृतियोंका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके भंग योनिमती तिर्यंचोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति नियमसे संख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक और त्रस अपर्याप्तक

ज्जत्ताणं ।

§ ८५३. देवाणं णारयभंगो । भवण०-वाणवेंतराणमेवं चेव । णवरि सम्मत्त० सम्मामि० भंगो । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मीसाणादि जाव उवरिमगेवज्जो-त्ति मिच्छत्तजह०विहत्ति० बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० संखे० गुणा । सम्मत्त० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । एवं सम्मामि० । सम्मत्त० जह० विह० बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णियमा अज० वेट्ठाण-पदिदा संखे० भागब्भहिया । कुदो ? उवसमसेढिं चढिय ओदरिदूण दंसणमोहणीयं खविय कदकरणिज्जो होदूण ५ देवेसुप्पण्णस्स संखेज्जभागब्भहियत्तुवलंभादो । संखेज्ज-गुणा वा, उवसमसेढिं चढिय दंसणमोहणीयं खविय कदकरणिज्जो होदूण देवेसुप्प-ण्णस्स संखे०गुणत्तुवलंभादो । किरियाविरहिदसम्मादिट्ठीणं ट्ठिदिखंडयघादो णत्थि त्ति भणंताणमाइरियाणमहिप्पाएण एदं भणिदं । किरियाए विणा तिव्वविसोहिवसेण ट्ठिदिखंडयघादो देवेसु अत्थि त्ति भणंताणामहिप्पाएण संखेज्जगुणा चेव । णेरइय०-भवण०-वाण०-जोदिसियसम्माइट्ठीणं किरियाए विणा णत्थि ट्ठिदिखंडयघादो । कुदो ? साभावियादो । सम्मामि० जह० विहत्ति० मिच्छत्त०-बारसक-णवणोक० किं ज०

जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८५३. देवोंके नारकियोंके समान भंग है । भवनवासी और व्यन्तर देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । ज्योतिषी देवोंके भंग दूसरी पृथिवीके समान है । सौधर्म और ऐशान कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वका भंग जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो दो स्थान पतित होती है । उनमेंसे पहली संख्यातवें भाग अधिक होती है क्योंकि जो जीव उपशमश्रेणीपर चढकर और उतरकर अनन्तर दर्शनमोहनीयका क्षय करता हुआ कृतकृत्यवेदकसम्य-ग्दृष्टि होकर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके उक्त प्रकृतियोंकी स्थिति संख्यातवें भाग अधिक देखी जाती है । या संख्यातगुणी अधिक होती है क्योंकि उपशमश्रेणीपर चढ़कर और वहांसे उतरकर दर्शनमोहनीयका क्षय करता हुआ कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि होकर जो देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके उक्त प्रकृतियोंकी स्थिति संख्यातगुणी अधिक देखी जाती है । क्रिया रहित सम्यग्दृष्टियोंके स्थिति-काण्डकघात नहीं होता है ऐसा माननेवाले आचार्योंके अभिप्रायानुसार उक्त कथन किया है । परन्तु जो आचार्य क्रियाके बिना तीव्र विशुद्ध परिणामोंसे देवोंमें स्थितिकाण्डकघात होता है ऐसा मानते हैं उनके अभिप्रायानुसार उक्त प्रकृतियोंकी स्थिति संख्यातगुणी ही होती है । तो भी नारकी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी सम्यग्दृष्टि जीवोंके क्रियाके बिना स्थितिकाण्डकघात नहीं होता है क्योंकि ऐसा स्वभाव है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके

अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । अणंताणु०चउक्क किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । अणंताणु० कोधज० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्तसम्मामि० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे० गुणा । तिण्णिक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं तिण्हं कसायाणं । अपच्चक्खाणकोधज० विहत्ति० एक्कारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवमेक्कारसक०-णवणोकसायाणं ।

§ ८५४. अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति मिच्छत्त जह० विहत्ति० बारसक० णवणोक० किं० ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । सम्मामि० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं सम्मामि० । सम्मत्त० जह० विहत्ती० बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । अथवा संखे०भागब्भ० संखे०गुणा त्ति बेट्ठाणपदिदा । एत्थ कारणं पुव्वं व वत्तव्वं । अणंताणु०कोध० ज०विह० मिच्छत्त-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक०

मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय, और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये ।

§ ८५४. अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य है जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी है । अथवा संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित है । यहाँ पर कारण पहलेके समान कहना चाहिये । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके

किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। सम्मत्त० किं ज० अज ? णि० अज० असंखे०गुणा। तिण्णिक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। एवं तिण्हं कसायाणं। अपच्चक्खाण-कोधज० एक्कारसक०-णवणोक० [किं० जह० अज० ?] णि० जहण्णा। एवमेक्कारसक० णवणोकसायाणं।

§ ८५५. इंदियाणुवादेण एइंदिएसु मिच्छत्तजह०विहत्ति० सोलसक०-भय-दुगुंछ० किं० ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा। जहण्णादो अजहण्णा समयुत्तरमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०भागेणब्भहिया। सम्मत्त-सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा। जहण्णादो अज० तिट्ठाणपदिदा संखे०भागब्भहिया संखे०गुणा वा असंखे०गुणा वा। सत्तणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे० भागब्भहिया। एवं सोलसकसाय-भय-दुगुंछाणं। णवरि भय जह० दुगुंछ० णियमा जहण्णा। एवं दुगुंछ०। भय-दुगुंछाणं जहण्णट्ठिदीए संतीए कथं सोलसकसायाणमसंखे०भागब्भहियत्तं ? ण, सोलसकसायाणं जहण्णट्ठिदीदो अब्भहियट्ठिदि-

मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायों की जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरणमान आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ८५५. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं। यदि है तो उसकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातवें भाग अधिक, संख्यातगुणी अधिक या असंख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थानपतित होती है। सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है। इसी प्रकार सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि भयकी जघन्य स्थितिवाले जीवके जुगुप्साकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार जुगुप्साकी जघन्य स्थितिवाले जीवके भयकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है।

शंका—भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिके रहते हुए सोलह कषायोंकी स्थिति असंख्यातवें भाग अधिक कैसे होती है ?

बंधे जादे वि भय-दुगुंछाणमावलियमेत्तकालं जहण्णट्ठिदिविहत्तिदंसणादो। कसायाणं पुण जहण्णट्ठिदिविहत्तीए संतीए भय-दुगुंछाओ समयुत्तरमादिं कादूण जाव आवलियमेत्तेण अब्भहियाओ; एक्कस्स वि कसायस्स अजहण्णट्ठिदीए भय-दुगुंछासु संकंताए अप्पिदकसायस्स वि जहण्णट्ठिदिभावविणासादो। पढम-सत्तमपुढवि०-पंचिं०तिरिक्ख-भवण०-वाणवेंतरादिसु वि एसो अत्थो परूवेयव्वो। सम्मत्त० जह० विहत्ति० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० किं ज० [अज०]? जहण्णा अजहण्णा वा। जहण्णादो अज० तिट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहि० संखे०भागब्भहिया संखे०गुणा वा। सम्मामि० किं ज० अज०? णि० अज० असंखे०गुणा। एवं सम्मामि०। णवरि सम्मत्तं णत्थि। इत्थि०ज०विहत्ति० मिच्छत्त-सोलसक०-अट्ठणोक० किं ज० अज०? णि० अज० असंखे०भागब्भ०। सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो। एवं छण्णोकसायाणं। एवं सव्व-एइंदिय-पंचकायाणं।

§ ८५६. विगलिंदिएसु मिच्छत्त० जह० विहत्ति० सोलसक०-भय-दुगुंछ० किं ज० अज०? जहण्णा अजहण्णा वा। जहण्णादो अज० समयुत्तरमादिं कादूण जाव

समाधान—नहीं, क्योंकि सोलह कषायोके जघन्य स्थितिसे अधिक स्थितिबन्धके होने पर भी भय और जुगुप्साकी एक आवलि कालतक जघन्य स्थितिविभक्ति देखी जाती है।

परन्तु कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके रहते हुए भय और जुगुप्साकी स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समयसे लेकर एक आवलि कालतक अधिक होती है क्योंकि एक भी कषायकी अजघन्य स्थितिके भय और जुगुप्सामें संक्रान्त होने पर विवक्षित कषायकी जघन्य स्थितिका भी विनाश हो जाता है। पहली और सातवीं पृथिवीमें तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंच, भवनवासी, और व्यन्तरादिक देवोंमे भी इस अर्थका कथन करना चाहिये। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है। सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है। जो कि जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके सम्यक्त्व प्रकृति नहीं होती है। स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और आठ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय और पाँच स्थावरकाय जीवोंके जानना चाहिये।

§ ८५६. विकलेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सोलह कषाय भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे

पलिदो० असंखे०भागब्भहिया। णवरि भय-दुगुंछाओ तिट्ठाणपदिदा। सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो। सत्तणोक० किं ज० अज०? णि० अज० तिट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे०भागब्भ० संखे०गुणब्भहिया वा। एवं सोलसकसाय-भय-दुगुंछाणं। णवरि भयजह० दुगुं० किं ज० [अजह०]? अजह० तं तु समयुत्तरमादिं कादूण जाव पलिदो० असंखे०भागब्भ०। एवं दुगुं०। सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो। इत्थि० ज०विहत्ति० मिच्छत्त-सोलसक० किं जह० अजहण्णा? णि० अज० संखे० भागब्भहिया। अट्ठणोक० किं ज० अज०? णियमा अज० संखे०गुणब्भहिया। सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो। एवं पुरिस०। णवुंस० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-सोलसक०-इत्थि-पुरिस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ० इत्थिवेदभंगो। सम्मत्त-सम्मामि० एइंदियभंगो। हस्सरदि० किं ज० अजह०? णि० अज० वेट्ठाणपदिदा असंखे०भाग-ब्भहिया संखे० गुणब्भहिया वा। हस्सज० विहत्ति० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवुंस०-अरदि-सोग-भय-दुगुंछ०-सम्मत्त०-सम्मामि० इत्थिवेदभंगो। इत्थि-पुरिस० किं ज० अज०? णि० अज० वेट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे०गुणब्भहिया वा। रदि०

लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि भय और जुगुप्साकी स्थिति तीन स्थानपतित होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है। सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है। इसी प्रकार सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि भयकी जघन्य स्थितिवालेके जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा एक समय अधिकसे लेकर पल्योपमके असंख्यातवें भाग अधिक तक होती है। इसी प्रकार जुगुप्साके विषयमें जानना चाहिये। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके एकेन्द्रियोंके समान भंग है। स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातवें भाग अधिक होती है। आठ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी अधिक होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका भंग स्त्रीवेदके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग एकेन्द्रियोंके समान है। हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। हास्यकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्त्रीवेदके समान है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती हे या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो

किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। एवं रदीए। अरदि० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-सोलसक०-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा०-सम्मत्त-सम्मामि० इत्थिवेदभंगो। तिण्णिवेद० किं ज० अज० ? णि० अज० वेट्ठाणपदिदा संखे०भागब्भहिया संखेज्जगुणब्भहिया वा। सोग० किं ज० अज ? णि० जहण्णा। एवं सोग०।

§ ८५७. ओरालियमिस्स० तिरिक्खोघं। णवरि अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्त-भंगो। वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छत्तज०विहत्ति० सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अज० ? णि० अजहण्णा असंखे०गुणा। बारसक०-णवणोक० कि ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। सम्मत्त० ज० विहत्ति० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। सम्मामि०-अणंताणु०चउक० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा। एवं सम्मामि०। णवरि सम्मत्तं णत्थि। अणंताणु०-कोधज०विहत्ति० सम्मत्त०-सम्मामि० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा। मिच्छत्त०-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। तिण्णिक० किं ज० [अज०]

असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार रतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अरतिकी जघन्य स्थिति-विभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्त्रीवेदके समान है। तीनों वेदोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। शोककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार शोककी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके जानना चाहिये।

§ ८५७. औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके सामान्य तिर्यंचोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है। वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके सम्यक्त्व प्रकृति नहीं होती है। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति क्या

णि० जह०। एवं तिण्हं कसायाणं। अपच्चक्खाणकोधज० विहत्ति० एक्कारसक०-णवणोक० किं ज० अज०? णि० जहण्णा। एवमेक्कारसक०-णवणोकसायाणं।

§ ८५८. वेउव्वियमिस्स० मिच्छत्त० ज०विह० बारसक०-णवणोक० किं ज० अज०? णि० अज० संखे०गुणा। सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अज०? णि० अज० असंखे०गुणा। सम्मत्तज० विह० बारसक०-णवणोक० किं ज० अज०? णि० अज० विट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे०गुणा वा। सम्मामि० ज० वि० मिच्छत्त-सोलसक०-भय-दुगुंछ० किं० ज० अज०? णि० अज० संखे०गुणा। सत्तणोक० किं ज० अज०? जहण्णा अजहण्णा वा जहण्णादो अजहण्णा तिट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे० भागब्भ० संखे०गुणा वा। अपच्चक्खाणकोध० ज० वि० एक्कारसक०-भय-दुगुंछ० किं ज० अज०? णि० जहण्णा। सत्तणोक० किं ज० अज०? णि० अज० संखे०गुणा। एवमेक्कारसकसाय-भय-दुगुंछाणं। अणंताणु० कोध०-

जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

§ ८५८. वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है। जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य। जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा असंख्यातवें भाग अधिक, संख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार तीन स्थान पतित होती है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय, भय और जुगुप्साकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे जघन्य होती है। सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार ग्यारह कषाय भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके

१ आ० प्रतौ 'अज०' इति पाठः।

जह०ट्ठिदिवि० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०-गुणा। तिण्णि कसाय० णियमा जहण्णा। एवं तिण्हं कसायाणं। इत्थि० ज० विह०-मिच्छत्त-सोलसक०-अट्ठणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। सम्मत्त-सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि। जइ अत्थि किं ज० अज० ? जहण्णा अज-हण्णा वा। जहण्णादो अजहण्णा वेट्ठाणपदिदा संखे०गुणा असंखे०गुणा वा। णवरि सम्म० ज० णत्थि। एवं पुरिस०। णवुंस० ज० वि० मिच्छत्त०-सोलसक०-छण्णोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। सम्मत्त-सम्मामि० इत्थिभंगो। हस्स-रदि० किं ज० अज० ? णि० अज० विट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे०गुणा वा। हस्स० जह० विह० मिच्छत्त-सोलसक०-पंचणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। सम्मत्त-सम्मामि० इत्थि०भंगो। इत्थि-पुरिस० किं ज० अज० ? णि० अज० विट्ठाणपदिदा असंखे०भाग०भहिया संखे०गुणा वा। रदि० किं ज० अज० ? णि० ज०। एवं रदीए। एवं चेव अरदि-सोगाणं। णवरि णवुंस० वेट्ठाणपदिदा।

धारक जीवके मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। (सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान जानना)। तथा अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और आठ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो उनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति अपनी जघन्य स्थितिकी अपेक्षा संख्यातगुणी अधिक या असंख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती हैं। किन्तु विशेषता इतनी है कि इसके सम्यक्त्वकी जघन्य स्थिति नहीं होती है। इसी प्रकार पुरुषवेदी जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और छह नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्त्रीवेदके समान है। हास्य और रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। हास्यकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और पांच नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्त्रीवेदीके समान है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है। रतिकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार रतिकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। तथा इसी प्रकार

§ ८५९. आहार० मिच्छत्तज० वि० सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। एवं सम्मत्त-सम्मामि०। अणंताणु०कोधज० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। तिण्णिक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। एवं तिण्हं कसायाणं। अपच्चक्खाणकोधज० वि० एक्कारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। एक्कमेक्कारसकसाय-णवणोकसायाणं। एवमाहारमि०। कम्मइय० ओरालियमिस्सभंगो। णवरि सत्तणोक० अण्णदरज० मिच्छ० सोलसक० सेसणोक०[1] णिय० अज० विट्ठाणपदिदा असंखे०भागब्भहिया संखे०गुणब्भहिया।

§ ८६०. वेदाणुवादेण इत्थि० पंचिंदियभंगो। णवरि इत्थि०ज०वि० सत्तणोक०-चत्तारि संज० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। एवं सत्तणोकसाय-चत्तारिसंजलणाणं। णवुंस० जह० विह० अट्ठणोक०-चदुसंज० णि० अज० असंखे० गुणा। एवं णवुंस,

अरति और शोककी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदकी स्थिति दो स्थान पतित होती है।

§ ८५९. आहारक काययोगियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंका जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। कार्मणकाययोगियोंके औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सात नोकषायोंमेंसे किसी भी प्रकृतिकी जघन्य स्थितिवालेके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और शेष नोकषायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो असंख्यातवें भाग अधिक या संख्यातगुणी अधिक इस प्रकार दो स्थान पतित होती है।

§ ८६०. वेद मार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंका भंग पंचेन्द्रियोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सात नोकषाय और चार संज्वलनोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार सात नोकषाय और चार संज्वलनोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये।

१ आ० प्रतौ 'सेसे णोक' इति पाठः।

पुरिस० एवं चेव। णवरि पुरिस० ज० वि० चत्तारिक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। एवं चदुण्हं संजलणाणं। छण्णोक० पुरिस०-चदुसंज० णि० अज० संखे०गुणा।

§ ८६१. अवगदमिच्छत्तज० वि० सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। अट्ठकसाय०-इत्थि-णवुंस० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। चदुसंज०-सत्तणोक० किं० ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा। एवं सम्म०-सम्मामि०। अपच्चक्खाणकोधज०वि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० णत्थि ? सत्तक०-इत्थि-णवुंस० किं० अज० ? णि० जहण्णा। चत्तारिसंजल०-सत्तणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा। एवं सत्तकसायाणं। इत्थि ज० वि० चत्तारिसंज०-सत्तणोक० किं० ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा। अट्ठक०-णवुंस० णि० जहण्णा। एवं णवुंस०। सत्तणोक०-चत्तारिसंजलणाणमोघं।

नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके आठ नोकषाय और चार संज्वलनोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार नपुंसकवेदी जीवके जानना चाहिये। पुरुषवेदी जीवके भी इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके चार संज्वलन कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार चार संज्वलनोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। छह नोकषायोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके पुरुषवेद और चार संज्वलनोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है।

§ ८६१. अपगतवेदियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। आठ कषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। चार संज्वलन और सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है। जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अप्रत्याख्यान क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये तीन प्रकृतियाँ नहीं हैं। सात कषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। चार संज्वलन और सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार सात कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवके चार संज्वलन और सात नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। आठ कषाय और नपुंसकवेदकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये। सात नोकषाय और चार संज्वलनोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिके धारक जीवोंके ओघके समान जानना चाहिये।

§ ८६२. कसायाणुवादेण कोध० पंचिंदियभंगो । णवरि कोध० ज०वि० तिण्णि-संज० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवं तिण्हं संजलणाणं । एवं माण० । णवरि दोण्णि० संजल० णि० जहण्णा ? एवं माय० । णवरि एगसंज० णियमा जहण्णा ।

§ ८६३. अकसा० मिच्छत्तज०वि० सम्मत्त-सम्मामि० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । एवं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं । अपच्चक्खाणकोधज० वि० एक्कारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवमेक्कारसक०-णवणोकसायाणं । एवं सुहुमसांपराय-जहाक्खादाणं । णवरि सुहुम०लोभसंज० जह० वि० सेसं णत्थि । सेस० जह० लोभसंज० णिय० अज० असंखे०गुणा ।

§ ८६४. णाणाणुवादेण मदिसुदअण्णा० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो । सम्मत्त०सम्मामिच्छत्तभंगो । एवमभवसि० मिच्छाइट्ठि०-असण्णी० । णवरि अभवसिद्धिएसु सम्मत्त०-सम्मामि० णत्थि । विहंग० मिच्छत्त ज० वि० सोलसक०-

---

§ ८६२. कषाय मार्गणाके अनुवादसे क्रोधी जीवका पंचेन्द्रियोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके तीन संज्वलनोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार मान आदि तीन संज्वलनोंकी जघन्य स्थिति विभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार मानी जीवके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके माया आदि दो संज्वलनोंकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार मायी जीवके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके लोभ संज्वलनकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है।

§ ८६३. कषायरहित जीवोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवोंके जानना चाहिये। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके शेष ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार शेष ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार सूक्ष्म सांपरायिक संयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानमें लोभ संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके शेष प्रकृतियाँ नहीं हैं। तथा शेष प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके लोभसंज्वलनकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है।

§ ८६४. ज्ञान मार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी जीवोंमें सामान्य तिर्यंचोंके समान कथन जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है तथा सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्य जीवोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियां नहीं हैं। विभंग ज्ञानियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके

णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । सम्मत्त०-सम्मामि० मदिअण्णाणिभंगो । एवं सोलसक० णवणोकसायाणं । सम्मत्त० जह० विह० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० किं ज० [अज०] ? अज० । तं तु तिट्ठाणपदिदा । सम्मामि० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । एवं सम्मामि० ? णवरि सम्मत्तं णत्थि ।

§ ८६५. आभिणि०-सुद०-ओहि० ओघभंगो । णवरि सम्मामिच्छत्तस्स खवणाए जहण्णट्ठिदी कायव्वा । एवं संजद०-मणपज्ज०-सामाइय-छेदो०-ओहिदंस०-सम्मादिट्ठीणं । णवरि मणपज्ज० इत्थि-णवुंस०सामिणो जाणिदव्वा । सामाइय-छेदो० तिण्णिसंज०-णवणोक०ज० वि० लोभसंज० किं ज० अज० ? णि० अजह० संखे०गुणा ।

§ ८६६. परिहार० मिच्छत्त०ज०वि० सम्मत्तसम्मामि० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा । बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त०ज०वि० बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० वेट्ठाणपदिदा । सम्मामि०ज०वि० सम्मत्त० किं ज० अज० ? णि० अज० असंखे०गुणा० । सेस०

धारक जीवके सोलह कपाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मत्यज्ञानियोंके समान है । इसी प्रकार सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीवके मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकपायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? अजघन्य होती है जो तीन स्थानपतित होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके सम्यक्त्व-प्रकृति नहीं है ।

§ ८६५. आभिनिवोधक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंका भंग ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेपता है कि इनके सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति क्षपणाके समय ही कहनी चाहिये । इसी प्रकार संयत, मनःपर्ययज्ञानी, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, अवधिदर्शनी और सम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनःपर्ययज्ञानियोंमें स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके स्वामीको जानकर कहना चाहिये । सामायिकसंयत और छेदोपस्थापना-संयतोंमें तीन संज्वलन और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके लोभसंज्वलनकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है ।

§ ८६६. परिहार विशुद्धिसंयतोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो दो स्थानपतित होती है । सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या

सम्मत्तभंगो । अणंताणु०कोध० जह० दंसणतिय-तिण्णिकसा० ओघं । सेसं मिच्छत्त-भंगो । एवं तिण्हं कसायाणं । अपच्चक्खाणकोध० ज० वि० एक्कारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा । एवमेक्कारसक० णवणोकसायाणं । एवं संजदासंजदाणं ।

§ ८६७. असंजद० मिच्छत्त० ज० वि० सम्मत्त०-सम्मामि० किं ज० अज० । णि० अज० असंखे०गुणा । बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा । सम्मत्त० ज० वि० बारसक०-णवणोक० किं० ज० अज० ? णियमा अज० संखेज्जगुणा । सम्मामि० ज० वि० सम्मत्त-अणंताणु०चउक्क० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि णि० असंखे०गुणा । बारसक० णवणोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा । जहण्णादो अज० तिट्ठाणपदिदा । सेसं तिरिक्खोघं । णवरि मिच्छत्त० अणंताणु० चउक्क०भंगो ।

§ ८६८. किण्ह-णील-काउ० तिरिक्खोघं । णवरि किण्ह-णीललेस्सासु सम्मत्त०-सम्मामिच्छत्तभंगो । तेउ०-पम्म०परिहार०भंगो । णवरि सम्मामि० ओघं ।

अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। शेष प्रकृतियोंका भंग सम्यक्त्वके समान है। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके तीन दर्शन मोहनीय और अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंका कथन ओघके समान है। तथा शेष प्रकृतियोंका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके शेष ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार शेष ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार संयतासंयतोंके जानना चाहिये।

§ ८६७. असंयतोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो उनकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है, जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिसे तीन स्थान पतित होती है। शेष कथन सामान्य तिर्यंचोके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वका भंग अनन्तानुबन्धी चतुष्कके समान है।

§ ८६८. कृष्ण नील और कापोत लेश्यावालोंके सामान्य तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि कृष्ण और नील लेश्याओंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। पीत और पद्मलेश्यावालोंमें परिहार विशुद्धिसंयतोके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है।

§ ८६९. खइयसम्मा० एक्कवीसपयडीणमोघं। वेदय० मिच्छत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं परिहारभंगो। सम्मत्त०ज०वि० बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? जहण्णा अजहण्णा वा। जहण्णादो अजहण्णा वेट्ठाणपदिदा। अपच्चक्खा० कोधज० वि० सम्मत्त० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। एवमेक्कारसक०-णवणोकसायाणं जहण्णत्तं वत्तव्वं। एवमेक्कारसक०-णवणोकसायाणं। उवसमसम्मा० मिच्छत्त० ज० वि० सम्मत्त०-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। एवं सम्मत्त-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक०। अणंताणु०कोध०ज०वि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० किं ज० अज० ? णि० अज० संखे०गुणा। तिण्णिक० किं ज० अज० ? णि० जहण्णा। एवं तिण्हं कसायाणं। एवं सासणसम्मादिट्ठीणं। णवरि अणंताणु०चउक्क० मिच्छत्तभंगो।

§ ८७०. सम्मामिच्छाइट्ठी० मिच्छत्तजह० सम्म०-सम्मामि० णि० अज० संखे०गुणा। सेसं णियमा जह०। णवरि अणंताणु०चउक्कं णत्थि। एवं बारसक०-

---

§ ८६९. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंका भंग ओघके समान है। वेदक सम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग परिहारविशुद्धिसंयतोंके समान है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? जघन्य भी होती है और अजघन्य भी। उनमेंसे अजघन्य स्थिति जघन्य स्थितिसे दो स्थानपतित होती है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्वकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति जघन्य कहना चाहिये। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान आदि ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये। उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी स्थिति क्या जघन्य होती है या अजघन्य ? नियमसे जघन्य होती है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये। इसी प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है।

§ ८७०. सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है। तथा शेष प्रकृतियोंकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके अनन्तानुबन्धी चतुष्क नहीं है। इसी प्रकार बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य

णवणोक० । अणंताणु० कोध० ज० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० णिय० अज० असंखेज्जगुणा[1] । तिण्णि कसा० णिय० जहण्णा । एवं तिण्णं कसायाणं । सम्म० जह० ट्ठिदिविह० सम्मामि० णिय० जह० । सेससव्व० णिय० अज० संखे०-गुणा । एवं सम्मामि० । अणाहाराणं कम्मइयभंगो ।

एवं सण्णियासो समत्तो ।

❀ [अप्पाबहुअं ।]

§ ८७१. अप्पाबहुअं दुविहं ट्ठिदिअप्पाबहुअं जीवअप्पाबहुअं चेदि । तत्थ ट्ठिदि-अप्पाबहुअं वत्तइस्सामो ।

❀ सव्वत्थोवा णवणोकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती ।

§ ८७२. कुदो ? बंधावलियूणचत्तालीस-सागरोवमकोडाकोडि[2]पमाणत्तादो । किमट्ठं-बंधावलियाए ऊणा ? ण, बद्धसमए चेव कसायुक्कस्सट्ठिदीए णोकसायाणमुवरि संकम-णसत्तिविरोहादो । तं पि कुदो ? साहावियादो । ण च सहावो परपडि[3]जोयणारुहो,

स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके जानना चाहिये । अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है जो अपनी जघन्य स्थितिसे असंख्यातगुणी होती है । तथा तीन कषायोंकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । इसी प्रकार तीन कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके सन्निकर्ष जानना चाहिये । सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति नियमसे जघन्य होती है । तथा शेष सब प्रकृतियोंकी स्थिति नियमसे अजघन्य होती है । जो जघन्य स्थितिसे संख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्तिवाले जीवके सन्निकर्ष जानना चाहिये । अनाहारकोंके कार्मणकाययोगियोंके समान भंग है ।

इस प्रकार सन्निकर्ष समाप्त हुआ ।

* अल्पबहुत्वका अधिकार है ।

§ ८७१. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्थिति अल्पबहुत्व और जीव अल्पबहुत्व । उनमेंसे स्थितिअल्पबहुत्वको बतलाते हैं—

* नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है ।

§ ८७२. क्योंकि नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका प्रमाण बन्धावलि कम चालीस कोड़ा-कोड़ी सागर है ।

शंका—इसे एक बन्धावलिप्रमाण कम किसलिये किया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बन्ध होनेके पहले समयमें ही कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिमें नौ नोकषायरूपसे संक्रमण होनेकी शक्ति माननेमें विरोध आता है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि ऐसा स्वभाव है और स्वभाव दूसरेकी प्रकृतिके अनुरूप होता नहीं,

१. ता० प्रतौ 'संखे०गुणा' इति पाठः । २. ता० प्रतौ 'कोडीओ' इति पाठः । ३. आ० प्रतौ 'परपयडि' इति पाठः ।

अइप्पसंगादो ।

❀ सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया ।

§ ८७३. बंधावलियमेत्तेण ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया ।

§ ८७४. केत्तियमेत्तेण ? अंतोमुहुत्तूणतीससागरोवमकोडाकोडीमेत्तेण ।

❀ सम्मत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसे० ।

§ ८७५. के० मेत्तेण ? एगुदयणिसेगट्ठिदिमेत्तेण । चुण्णिसुत्ते जइवसहाइरियो कम्हि वि कालपहाणं कादूण ट्ठिदिवण्णणं कुणदि मिच्छत्तस्स संपुण्णसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिट्ठिदिपरूवणादो । कम्हि वि णिसेगपहाणं कादूण वण्णणं कुणदि; सम्मत्तुक्कस्सट्ठिदिं पेक्खिदूण सम्मामिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए देसूणत्तपरूवणादो, छण्णोकसायजहण्णट्ठिदीए अंतोमुहुत्तमेत्तावट्ठाणपरूवणादो च । उच्चारणाइरियो वि कम्हि वि कालपहाणं कादूण ट्ठिदिवण्णणं कुणदि; सम्मत्तजहण्णट्ठिदिं पेक्खिदूण मिच्छत्तजहण्णट्ठिदीए संखेज्जगुणत्तपरूवणादो । कम्हि वि णिसेगपहाणं कादूण वण्णणं कुणदि; अणु-

अन्यथा अतिप्रसंग दोष आता है ।

*** नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है ।**

§ ८७३. नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक बन्धावलिकाल प्रमाण अधिक है ।

*** सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है ।**

§ ८७४. **शंका**—कितनी अधिक है ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्त कम तीस कोड़ाकोड़ी सागर अधिक है ।

*** सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है ।**

§ ८७५. **शंका**—कितनी अधिक है ?

समाधान—एक उदय निषेकको स्थितिप्रमाण अधिक है ।

शंका—चूर्णिसूत्रमें यतिवृषभ आचार्य कहीं कालकी प्रधानता करके स्थितिका वर्णन करते हैं, जैसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति जो सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण कही है वह कालकी प्रधानतासे कही है । कहीं निषेकोंका प्रधान करके स्थितिका वर्णन करते हैं, जैसे, सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिको देखते हुए सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति जो देशोन कही है और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिकी जो अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवस्थिति कही है वह निषेकोंकी प्रधानतासे ही कही है । इसी प्रकार उच्चारणाचार्य भी कहीं कालको प्रधान करके स्थितिका वर्णन करते हैं, जैसे सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिको देखते हुए जो मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति संख्यातगुणी कही

दिसासु मिच्छत्तट्ठिदिं पेक्खिदूण सम्मत्तुकस्सट्ठिदीए विसेसाहियत्तपरूवणादो। तदो एदेसिं दोण्हमाइरियाणमहिप्पाओ दुरवगमो त्ति ? ण; णिसेगेहिंतो कालस्स अभेदप्पहाणा परूवणा भेदप्पणाए कालपहाणा त्ति दोसाभावादो। किमट्ठं गुणपहाणभावेण परूवणा कीरदे ? कारणंतरावेक्खाए दुविहणयमस्सिदूणट्ठिदसिस्साणुग्गहट्ठं वा।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया।

§ ८७६. के० मेत्तेण ? अंतोमुहुत्तेण।

❀ णिरयगदीए सव्वत्थोवा इत्थिवेदपुरिसवेदाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती।

§ ८७७. कुदो ? तत्थेदेसिमुदयाभावेणुदयणिसेगस्स णवुंसयवेदसरूवेण त्थिउक्कसंकमेण गमणादो।

❀ सेसाणं णोकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया।

§ ८७८. केत्तिएण ? एगुदयणिसेगेण।

है वह कालकी प्रधानतासे ही कही है। कहीं निषेकोंको प्रधान करके स्थितिका वर्णन करते हैं, जैसे अनुदिश आदिमें मिथ्यात्वकी स्थितिको देखते हुए जो सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति विशेष अधिक कही है वह निषेकोंकी प्रधानतासे ही कही है इससे मालूम होता है कि इन दोनों आचार्यों का अभिप्राय दुरवगम है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जहां निषेकोंकी अपेक्षा प्ररूपणा की है वहां निषेकोंसे कालके अभेदकी प्रधानता करके प्ररूपणा की है और जहां भेदकी विवक्षासे प्ररूपणा की है वहां कालकी प्रधानतासे प्ररूपणा की है, इसलिये कोई दोष नहीं है।

शंका—इस प्रकार गौण मुख्यभावसे प्ररूपणा किसलिये की जाती है ?

समाधान—भिन्न भिन्न कारणोंकी अपेक्षासे अथवा द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयोंका आश्रय लेनेवाले शिष्योंके अनुग्रहके लिये गौण मुख्यभावसे प्ररूपणा की जाती है।

*** सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है ?**

§ ८७६. **शंका**—कितनी अधिक है ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्त अधिक है।

*** नरकगतिमें स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है।**

§ ८७७. **शंका**—नरकगतिमे स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति सबसे थोड़ी क्यो है ?

समाधान—क्योंकि वहां पर इन दो प्रकृतियोंका उदय नहीं होता है अतः इनका उदयनिषेक स्तवुकसंक्रमणके द्वारा नपुंसकवेदरूपसे परिणत हो जाता है।

*** स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिसे शेष नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है।**

§ ८७८. **शंका**—कितनी अधिक है ?

समाधान—एक उदय निषेकप्रमाण अधिक है।

❀ सोलसण्हं कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया।

§ ८७९. केत्तिएण, बंधावलियाए।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया।

§ ८८०. केत्तियमेत्तो विसेसो त्ति ? तीसं सागरोवमकोडाकोडीओ अंतोमुहुत्तूणाओ।

❀ सम्मत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया।

§ ८८१. केत्तिएण; एगुदयणिसेगेण।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसेसाहिया।

§ ८८२. के० ? अंतोमुहुत्तेण।

❀ सेसासु गदीसु णेदव्वो।

§ ८८३. एदेणेदेसिं सुत्ताणं देसामासियत्तं जाणाविदं, तेण चुण्णिसुत्तसूचिदाणमत्थाणमुच्चारणमस्सिदूण परूवणं कस्सामो।

❀ शेष नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है।

§ ८७९. **शंका**—कितनी अधिक है ?

समाधान—एक बन्धावलि कालप्रमाण अधिक है।

❀ सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है।

§ ८८०. **शंका**—विशेषका प्रमाण कितना है।

समाधान—विशेषका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त कम तीस कोड़ाकोड़ी सागर है।

❀ सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है।

§ ८८१. **शंका**—कितनी अधिक है ?

समाधान—एक उदयनिषेकप्रमाण अधिक है।

❀ सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है।

§ ८८२. **शंका**—कितनी अधिक है ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्त अधिक है।

❀ इसी प्रकार शेष गतियोंमें जानना चाहिये।

§ ८८३. पूर्वोक्त सभी सूत्र देशामर्षक हैं यह इस सूत्रसे जता दिया है, अतः चूर्णिसूत्रसे सूचित होनेवाले अर्थोंका उच्चारणाका आश्रय लेकर कथन करते हैं—

§ ८८४. ट्ठिदिअप्पाबहुअं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य ? तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा णवणोक० उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती[1] । सोलसक० उक्क० विहत्ती विसे० । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० विसेसा० । मिच्छत्त० उक्क० विसेसा० । एवं सत्तसु पुढवीसु । तिरिक्खगइचउक्क०-मणुसतिय०-देवगई०-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्वि०-तिण्णिवेद-चत्तारिक०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसिद्धि०-सण्णि०-आहारए त्ति ।

§ ८८५. पंचिं० तिरि० अपज्ज० सव्वत्थोवा सोलसक०-णवणोक० उक्क० ट्ठिदि विहत्ती । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० ट्ठिदिविहत्ती विसे० । मिच्छत्तुक्क० ट्ठिदिविहत्ती विसे० । एवं मणुसअपज्ज०-बादरेइंदिय अपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय अपज्ज०-बादरपुढवि०अपज्ज०-सुहुमपुढवि०-पज्जत्तापज्जत्त-बादरआउ० अपज्ज०-सुहुमआउ०पज्जत्तापज्जत्त-तेउ० बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-वाउ० बादरसुहुम-

§ ८८४. स्थिति अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । पहले यहां उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघनिर्देशकी अपेक्षा नौ नोकषायोकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, तिर्यंचगतिमें सामान्य, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त और योनिमती तिर्यंच, सामान्य मनुष्य, पर्याप्त मनुष्य, मनुष्यनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्ण आदि पांच लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी, और आहारक जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८८५. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमे सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तक, सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तक, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तक, बादर जलकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्तक, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त, निगोदवनस्पति, बादर

१. ता० प्रतौ 'विहत्ती [विसेसाहिया] । सोलसक०' इति पाठः ।

पज्जत्तापज्जत्त - बादरवणप्फदिअपज्ज० - सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त - णिगोदवणप्फदि-बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअपज्ज०-तस, अपज्जत्तेत्ति ।

§ ८८६. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति सव्वत्थोवा सोलसक०-णवणोक० उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती । सम्मामि० उक्कस्सट्ठिदिविहत्ती विसे० । मिच्छत्त-सम्मत्त०उक्क० ट्ठिदिवि० विसे० । एवं सुक्कलेस्साए । णवरि सम्मत्तस्सुवरि मिच्छ० उक्क० विसे० । अणुद्दिसादि जाव० सव्वट्ठसिद्धि त्ति सव्वत्थोवा सोलसक०-णवणोक० उक्क०ट्ठिदिविहत्ती । मिच्छत्त-सम्मामि० उक्क० वि० विसे० । सम्मत्तुक्क० विह० विसे० । एवमाहार-आहारमि०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयच्छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-वेदयसम्मादिट्ठित्ति ।

§ ८८७. इंदियाणु० एइंदियेसु सव्वत्थोवा णवणोक० उक्क०ट्ठिदिविहत्ती । सोलसक० उक्क० वि० विसे० । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० विहत्ती विसे० । मिच्छत्तुक्क० वि० विसे० । एवं बादरेइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्त-पुढवि०-बादरपुढवि०-तप्पज्ज०-आउ०-बादरआउ०-तप्पज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेय-तप्पज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउ०मिस्स-कम्मइय-तिण्णिअण्णाण-मिच्छादिट्ठि-असण्णि०-अणाहारए त्ति । एवमभवसि० । णवरि सम्मत्त०-सम्मामि० णत्थि ।

निगोद और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पति प्रत्येकशरीर अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये ।

§ ८८६. आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक देवोंमें सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। इससे सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यामें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां सम्यक्त्वके अनन्तर मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति विशेष अधिक होती है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। इससे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापना संयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये।

§ ८८७. इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। इससे सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीरपर्याप्त, औदारिक मिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, तीनों अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारकोंके जानना चाहिये। तथा अभव्योंके इसी प्रकार जानना। किन्तु इनके

§ ८८८. अवगद० सव्वत्थोवा बारसक०-णवणोक० उक्क० ट्ठिदिविहत्ती। मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० उक्क०ट्ठिदिवि० विसे० । एवं सुहुम०-जहाक्खाद० अकसायित्ति ।

§ ८८९. खइए णत्थि अप्पाबहुगं; बारसक०-णवणोक०ट्ठिदीणं सरिसत्तादो। उवसमे सव्वत्थोवा सोलसक०-णवणोक०-उक्क० ट्ठिदिविहत्ती। मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० ट्ठिदिविहत्ती विसे० । एवं सासण० । सम्मामि० सव्वत्थोवा सोलसक०-णवणोक० उक्क०ठिदिविहत्ती । सम्मत्त० उक्कट्ठिदिविहत्ती विसे० । सम्मामि० उक्क० ट्ठिदिवि० विसे० । मिच्छत्तउक्क० विसे० ।

एवमुक्कस्सप्पाबहुआणुगमो समत्तो ।

§ ८९०. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसे० । ओघेण सव्वत्थोवा सम्मत्त-इत्थि०-णवुंस०-लोभसंज० जहण्णट्ठिदिविहत्ती । मिच्छत्त-सम्मामि०-बारसक० जहण्णट्ठिदिविहत्ती संखे०गुणा । मायासंज० जह० ट्ठिदिवि० असंखे०गुणा । माण-संजल० जह० ट्ठिदिविह० संखे०गुणा । कोधजह०ट्ठिदिवि० संखे०गुणा । पुरिसजह० ट्ठिदि० विह० संखेज्जगुणा । छण्णोक० जह० ट्ठिदिवि० संखे०गुणा । एवं मणुस०-मणुसपज्ज०-मणुसिणी-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-काय-

---

सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियां नहीं हैं ।

§ ८८८. अपगत वेदियोंमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इसी प्रकार सूक्ष्मसांपरायिक संयत, यथाख्यातसंयत और अकषायी जीवोंमें जानना चाहिये ।

§ ८८९. क्षायिक सम्यग्दृष्टियोमे अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि इनके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थितियां समान हैं। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार सासादन सम्यग्दृष्टियोंके जानना चाहिये । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। इससे सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है।

इस प्रकार उत्कृष्ट अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

§ ८९०. अब जघन्य स्थिति अल्पबहुत्वका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सम्यक्त्व, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। इससे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे मायासंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है। इससे मानसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस, पर्याप्त,

जोगि०-ओरालिय०-लोभक०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजद०-चक्खु०-अचक्खु०-ओहिदंस०-सुक्कले०-भवसि०-सम्मादि०-सण्णि-आहारए त्ति । णवरि मणुसपज्ज० छण्णोकसायाणमुवरि इत्थिवेद० जह० असंखे०गुणा । मणुसिणी० कोधसंजलणस्सुवरि पुरिस०-छण्णोक० जह० ट्ठिदिवि० संखे०गुणा । णवुंस० जह० ट्ठिदिवि० असंखे०गुणा ।

§ ८९१. ओदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा सम्मत्त० जह० ट्ठिदिवि० । सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० जह० ट्ठिदिवि० संखेगुणा । पुरिस० जह० ट्ठिदिवि० असंखे०गुणा । इत्थिज० ट्ठि० विसेसा० । के० मेत्तेण ? पुरिसवेदबंधगद्धूणित्थिवेदबंधगद्धामेत्तेण । हस्स-रदि० जह० ट्ठि० वि० विसे० । के० मेत्तेण ? अरदि-सोगबंधगद्धूण पुरिसणवुंसयवेदबंधगद्धागेत्तेण । अरदि-सोग० जहण्ण० ट्ठिदिवि० विसे० । के० मेत्तेण ? हस्सरइबंधगद्धापरिहीणसगबंधगद्धामेत्तेण । णवुंस० जह० ट्ठिदिवि० विसे० । के० मेत्तेण ? इत्थि-पुरिसबंधगद्धूणहस्स-रदिबंधगद्धामेत्तेण । बारसक०-भय-दुगुंछाणं जह० ट्ठिदिवि० विसे० । मिच्छत्तज० ट्ठिदिवि० विसे० ।

§ ८९२. एत्थुवउज्जंतमद्धप्पाबहुअं वत्तइस्सामो । तं जहा—सव्वत्थोवा पुरिसबंधगद्धा २ । इत्थिवेदबंधयद्धा संखे०गुणा ४ । हस्स-रदि-बंधगद्धा संखे०गुणा १६ ।

पांचो मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, लोभ कषायवाले, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, शुक्ललेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमे छह नोकषायोंके ऊपर स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी होती है। मनुष्यनियोंमे क्रोधसंज्वलनके ऊपर पुरुषवेद और छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी होती है। इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी होती है।

§ ८९१. आदेशनिर्देशकी अपेक्षा नारकियोंमे सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है? इससे सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। कितनी अधिक है? पुरुषवेदके वन्धककालसे कम स्त्रीवेदके बन्धक कालप्रमाण अधिक है। इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। कितनी अधिक है? अरति और शोकके बन्धक कालसे कम पुरुषवेद और नपुंसकवेदके बन्धक कालप्रमाण अधिक है। इससे अरति और शोककी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। कितनी अधिक है? हास्य और रतिके बन्धक कालसे कम अपने बन्धक कालप्रमाण अधिक है। इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। कितनी अधिक है? स्त्रीवेद और पुरुषवेदके बन्धकालसे कम हास्य और रतिके बन्धकाल प्रमाण अधिक है। इससे बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है।

§ ८९२. अब यहाँ प्रकृतमें उपयोगी अल्पबहुत्वको बतलाते हैं। जो इस प्रकार है—

पुरुषवेदका बन्धकाल सबसे थोड़ा है जिसकी सहनानी २ है। इससे स्त्रीवेदका बन्ध॰ काल संख्यातगुणा है जिसकी सहनानी ४ है। इससे हास्य और रतिका बन्धकाल संख्यात

अरदि-सोगबंधगद्धा संखे०गुणा ३२। णवुंसयवेदबंधगद्धा विसे० ४२। सगसगपडिवक्खबंधगद्धाओ कसायजहण्णद्विदीदो २०० सोहिदे सत्तणोकसायाणं जहण्णद्विदीओ होंति। तासिं पमाणमेदं—पुरिस० जहण्णद्विदी एसा १५४। इत्थि० जहण्ण०द्विदी १५६। हस्स-रदिज० द्विदी १६८। अरदि-सोगजहण्णद्विदी १८४। णवुंस०जह० द्विदी १९४। एसा उच्चारणप्पाबहुअस्स संदिट्ठी।

§ ८९३. संपहि चिरंतणवक्खाणाइरियाणमप्पाबहुअं वत्तइस्सामो। सव्वत्थोवा सम्मत्त० जह० द्विदिविहत्ती। सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० ज० विहत्ति० संखे० गुणा। पुरिस० ज० विहत्ती असंखे०गुणा। इत्थि० जह० विहत्ती विसे०। हस्स-रदि० ज० द्वि० विह० विसे०। णवुंस० जह० वि० विसे०। अरदि-सोग० ज० वि० विसे०। भय-दुगुंछाणं ज० द्विदि० विसे०। बारसण्हं कसायाणं ज० द्वि० वि० विसे०। मिच्छत्त ज० द्वि० वि० विसे०। एदस्स अप्पाबहुअस्स साहणट्ठमद्धप्पाबहुअं वत्तइस्सामो। तं जहा—सव्वत्थोवा पुरिस० बंधगद्धा ३। इत्थि० बंधगद्धा संखे० गुणा ९। हस्स-रदिबंधगद्धा विसे० ११। णवुंस० बंधगद्धा संखे०गुणा २२। अरदि-सोग बंधगद्धा विसेसा० २३। अप्पप्पणो पडिवक्खबंधगद्धाओ कसायजहण्णद्विदीए २००

गुणा है जिसकी सहनानी १६ है। इससे अरति और शोकका बन्धकाल संख्यातगुणा है जिसकी सहनानी ३२ है। इससे नपुंसकवेदका बन्धकाल विशेष अधिक है इसकी सहनानी ४२ है। ऊपर जो अंक संदृष्टि दी है उसके अनुसार अपने-अपने प्रतिपक्ष बन्धकालोंको कषायकी जघन्य स्थिति २०० मेंसे घटा देनेपर सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितियाँ होती हैं। उनका प्रमाण निम्न प्रकार है—पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति १५४ होती है। स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति १५६ होती है। हास्य और रतिकी जघन्य स्थिति १६८ होती है। अरति और शोककी जघन्य स्थिति १८४ होती है। नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति १९४ होती है। यह उच्चारणाचार्यके द्वारा कहे गये अल्पबहुत्वकी संदृष्टि है।

§ ८९३. अब चिरन्तन व्याख्यानाचार्यके अल्पबहुत्वको बतलाते हैं। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। इससे सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कको जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है। इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे अरति और शोककी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। अब इस अल्पबहुत्वकी सिद्धि करनेके लिये अल्पबहुत्वको बतलाते हैं, जो इस प्रकार है—पुरुषवेदका बन्धकाल सबसे थोड़ा है जिसकी सहनानी ३ है। इससे स्त्रीवेदका बन्धकाल संख्यातगुणा है जिसकी सहनानी ९ है। इससे हास्य रतिका बन्धकाल विशेष अधिक है जिसकी सहनानी ११ है। इससे नपुंसकवेदका बन्धकाल संख्यातगुणा है जिसकी सहनानी २२ है। इससे अरति और शोकका बन्धकाल विशेष अधिक है जिसकी सहनानी २३ है। इस प्रकार ऊपर जो अंकसंदृष्टि दी है उसके अनुसार अपने

सोहिय सत्तणोकसायजहण्णट्ठिदीओ उप्पपादेदव्वाओ । पुरिस० जहण्णट्ठिदी १६९ । इत्थि० जह०ट्ठिदी १७५ । हस्स-रदिजहण्णट्ठिदी १७७ । णवुंस० जह० ट्ठिदी १८८ । अरदि-सोग जहण्णट्ठिदी १८९ ।

§ ८९४. एत्थ दोसु वि वक्खाणेसु एक्केणेव सच्चेण होदव्वं, ण दोण्हं, विरोहादो । किंतु भय-दुगुंछाणमुवरि कसायाणं जह० ट्ठिदिविसेसाहिया त्ति जं भणिदं तण्ण घडदे ; णेरइयविदियसमए जादकसायट्ठिदिं भयदुगुंछासु संकामिय संकामणावलियमेत्तट्ठिदीणं गालणोवायाभावादो । कुदो ? गहिदसरीरणेरइयस्स पढमसमए कसाएहि सह भय-दुगुंछाणमंतोकोडाकोडिमेत्तट्ठिदिबंधुवलंभादो । णेरइयविदियसमयादो हेट्ठा ण भयदुगुंछाणं जहण्णट्ठिदी होदि तत्थ भय-दुगुंछाहि पडिच्छिज्जमाणकसायजहण्णट्ठिदीए अभावादो । तं पि कुदो णव्वदे ? णेरइयविदियसमए चेव जहण्णसामित्तदाणादो । तम्हा बारसकसायदुगुंछाणं जहण्णट्ठिदीओ सरिसाओ त्ति जमुच्चारणाए भणिदं तं चेव घेत्तव्वं णिरवज्जत्तादो । जइ पुण असण्णिचरिमसमए कसायजहण्णट्ठिदीदो भयदुगुंछ-जहण्णट्ठिदिविहत्तीए आवलियूणत्तं लब्भइ तो कसायाणं विसेहियत्तं घडदे । णवरि एदं जाणिय वत्तव्वं । उच्चारणाहिप्पाओ पुण तहा ण लब्भइ त्ति ।

अपने प्रतिपक्ष बन्धकालोंको कषायकी जघन्य स्थिति २०० मेंसे घटानेपर सात नोकषायोंकी जघन्य स्थितियां उत्पन्न करना चाहिये । उनमेसे पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति १६९ होती है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति १७५ होती है । हास्य और रतिकी जघन्य स्थिति १७७ होती है । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति १८८ होती है । अरति और शोककी जघन्य स्थिति १८९ होती है ।

§ ८९४. यहां इन दोनों व्याख्यानोंमेंसे कोई एक व्याख्यान ही सत्य होना चाहिये, दोनों नहीं, क्योंकि दोनोंको सत्य माननेमें विरोध आता है । किन्तु भय और जुगुप्साके ऊपर कषायोंकी जघन्य स्थितिको जो विशेष अधिक कहा है वह नहीं बनता है, क्योंकि नारकियोंके उत्पन्न होनेके दूसरे समयमें प्राप्त हुई कषायकी स्थितिके भय और जुगुप्सामें संक्रमित कर देने पर संक्रमणावलिप्रमाण स्थितियोंके गलानेका कोई उपाय नहीं पाया जाता है । इसका कारण यह है कि नारकीके शरीर ग्रहण करनेके पहले समयमें कषायोंके साथ भय और जुगुप्साका अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितिबन्ध पाया जाता है । और नारकियोंके दूसरे समयसे नीचे भय और जुगुप्सा प्रकृतियोंकी जघन्य स्थिति नहीं होती है, क्योंकि वहां भय और जुगुप्सारूपसे छीजनेवाली कषायोंकी जघन्य स्थिति नहीं पायी जाती है ।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि नारकियोंके उत्पन्न होनेके दूसरे समयमें ही कषायोंका जघन्य स्वामित्व दिया है ।

अतः बारह कषाय और जुगुप्सा इनकी जघन्य स्थितियां समान होती हैं ऐसा जो उच्चारणामें कहा है वही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि वह कथन निर्दोष है । और यदि असंज्ञियोंके अन्तिम समयमें रहने वाली कषायोंकी जघन्य स्थितिसे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिमें एक आवली काल कम प्राप्त होता है । तो कषायोंकी जघन्य स्थिति भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिसे विशेष अधिक बन जाती है । किन्तु जानकर इसका कथन करना चाहिये । परन्तु उच्चारणाचार्यका

§ ८९५. एवं पढमाए पुढवीए। विदियादि जाव छट्ठ त्ति सव्वत्थोवा सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०-चउक्काणं जह० विहत्ती। बारसक०-णवणोकसायाणं ज० विह० असंखेज्जगुणा। मिच्छत्तज० वि० विसेसा०।

§ ८९६. सत्तमाए पुढवीए सव्वत्थोवा सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं ज० ट्ठिदिविहत्ती। पुरिस० ज० ट्ठिदी असंखे०गुणा। इत्थि० ज० ट्ठिदिविहत्ती विसेसा०। हस्स-रदिज० वि० विसेसा०। अरदि-सोग० ज० ट्ठिदिवि० विसे०। णवुंस० ज० ट्ठि० वि० विसेसा०। भय-दुगुंछ० जह० ट्ठिदिवि० विसे०। बारसक० ज० वि० विसेसा०। केत्तियमेत्तेण? एगावलियामेत्तेण। कुदो? कसायाणं जहण्ण-ट्ठिदीए जादाए पुणो आवलियमेत्तमद्धाणमुवरि गंतूण भय-दुगुंछाणं जहण्णट्ठिदिसमुप्पत्तीदो। कसायाणमेत्थ जहण्णट्ठिदिसंतसमबंधस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालसंभवादो। जहण्ण-ट्ठिदिसंतादो कसायट्ठिदिबंधे अहिए जादे वि भयदुगुंछाणं सगजहण्णट्ठिदिसंतादो हेट्ठा बंधसंभवादो। मिच्छत्तज० वि० विसे०। एत्थ अद्धप्पाबहुअं णवणोकसायाणं जहण्ण-ट्ठिदिउप्पायणविहाणं च[1] पढमपुढविभंगो; भेदा[2]भावादो चिरंतणाइरियवक्खाणं पि एत्थ

अभिप्राय वैसा नहीं है।

§ ८९५. इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। इससे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है। इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति-विभक्ति विशेष अधिक है।

§ ८९६. सातवीं पृथिवीमे सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है। इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे अरति और शोककी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। कितनी अधिक है? एक आवली अधिक है।

शंका—भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिसे बारह कषायोंकी जघन्य स्थिति एक आवलि अधिक क्यों है?

समाधान—क्योंकि कषायोंकी जघन्य स्थिति हो जानेपर तदनन्तर एक आवलिप्रमाण काल आगे जाकर भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थित उत्पन्न होती है। इसका कारण यह है कि यहां पर अन्तर्मुहूर्त कालतक कषायोंकी सत्तामें स्थित जघन्य स्थितिके समान कषायोंका बन्ध संभव है। और जघन्य स्थिति सत्त्वसे कषायका स्थितिबन्ध अधिक होनेपर भी भय और जुगुप्साका अपने जघन्य स्थितिसत्त्वसे नीचे बन्ध संभव है। बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिसे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। यहां पर काल सम्बन्धी अल्पबहुत्वको और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिके उत्पन्न करनेकी विधिको पहली पृथिवीके समान जानना चाहिये,

१. ता० प्रतौ 'च [समाणं] पढम' इति पाठः। २. ता० आ० प्रत्योः '-भंगभेदा-' इति पाठः।

अप्पणो पढमपुढविवक्खाणसमाणं।

§ ८९७. तिरिक्खगईए सव्वत्थोवा सम्मत्त०जह० ट्ठिदिविहत्ती। जत्तिया ट्ठिदिविहत्ती तत्तिया चेव सम्मामि०। अणंताणु०चउक्क० ज० ट्ठिदि० तत्तिया चेव। ज०ट्ठिदिविह० संखे०गुणा णिसेगसमयग्गहणादो। पुरिस० ज० ट्ठिदिवि० असंखेज्जगुणा। इत्थिजह० ट्ठिदिवि० विसे०। हस्सरदि० ज० विह० विसेसा०। अरदि-सोगज० वि० विसे०। णवुंस० ज० ट्ठिदिविह० विसे०। भय-दुगुंछ० ज०वि० विसे०। बारसक० जह० विहत्ती विसेसा०। कारणमेत्थ जहा सत्तमपुढवीए उत्तं तहा वत्तव्वं। मिच्छत्तजह० ट्ठिदिवि० विसे०। एत्थ उच्चारणाइरियस्स सत्तणोकसायबंधगद्धाओ पुव्वं व वत्तव्वाओ; चदुगदीसु तासिं विसेसाभावादो। वक्खाणाइरियाणमेत्थ सत्तणोकसायद्धप्पाबहुअमुच्चारणद्धप्पाबहुएण सरिसंतेण तिरिक्खगईए णत्थि दोण्हमप्पाबहुआणं भेदो। एवं पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं० तिरि०पज्जत्ताणं। णवरि णवुंस० जहण्णट्ठिदीए उवरि भय-दुगुंछाजहण्णट्ठिदी संखे०गुणा। कुदो? णवुंसयवेदजहण्णट्ठिदी णाम सागरोवमचत्तारि सत्तभागा पलिदो० असंखे०भागेण पडिवक्खबंधगद्धाए च ऊणा; पंचिंदिएसु उप्पज्जिय बंधाभावेण एइंदियट्ठिदिसंतस्सेव तत्थंतोमुहुत्तकालुवलंभादो। भय-

क्योंकि उससे इसमें कोई भेद नहीं है। चिरन्तनाचार्यका व्याख्यान भी यहां अपने पहली पृथिवीके व्याख्यानके समान है।

§ ८९७. तिर्यंचगतिमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। सम्यक्त्वकी जितनी स्थितिविभक्ति है उतनी ही सम्यग्मिथ्यात्वकी और उतनी ही अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थिति है। पर यह स्थिति विभक्ति संख्यातगुणी है, क्योंकि इसमें निषेकोंके समयोंका ग्रहण किया है। इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है। इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे अरति और शोककी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इसका कारण जिस प्रकार सातवीं पृथिवीमें कह आये हैं उस प्रकार यहां कहना चाहिये। बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिसे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। यहां उच्चारणाचार्यके द्वारा कहे गये सात नोकषायोंके बन्धकालोंका पहलेके समान व्याख्यान करना चाहिये; क्योंकि चारों गतियोंमें उनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है। परन्तु यहां तिर्यंचगतिमें व्याख्यानाचार्यके द्वारा कहा गया सात नोकषायों सम्बन्धी अल्पबहुत्व उच्चारणाचार्यके अल्पबहुत्वके समान है, अतः तिर्यंचगतिमें दोनों अल्पबहुत्वोंमें कोई भेद नहीं है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिके ऊपर भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति संख्यातगुणी है; क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंमें नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग और प्रतिपक्ष प्रकृतिके बन्धकालसे कम चार भागप्रमाण होती है, क्योंकि कोई एक एकेन्द्रिय पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ और उसने नपुंसकवेदका बन्ध नहीं किया तो उसके

दुगुंछाणं पुण सागरोवमसहस्सस्स वे सत्तभागा पलिदोवमस्स संखे० भागेणूणा, भयदुगुंछाणं धुवबंधित्तणेण पंचिंदिएसुप्पण्णपढमसमए वि बंधसंभवादो। तेण णवुंस० जहण्णट्ठिदीदो भयदुगुंछजहण्णट्ठिदी संखेज्जगुणा त्ति सिद्धं। बारसक० जहण्णट्ठिदी संखे०गुणा। कुदो? पलिदो० संखे०भागेणूणं सागरोवमसहस्सचत्तारिसत्तभागत्तादो। मिच्छत्त-जहण्णट्ठिदी विसे०; पलिदो० संखे०भागेणूणसागरोवमसहस्सस्स सत्त सत्त भागत्तादो। जोणिणीसु एवं चेव, णवरि सव्वत्थोवा सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्क० ज० ट्ठिदिविहत्ती।

§ ८९८. पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु सव्वत्थोवा सम्मत्त०-सम्मामि० ज० ट्ठिदिवि०। पुरिस० ज० ट्ठिदिवि० असंखे०गुणा। सेस० पंचिं०तिरिक्खभंगो। णवरि अणंताणु०चउक्काणं बारसक०भंगो। एवं मणुसअपज्ज०-पंचिं०अपज्ज०-तस-अपज्जत्ताणं।

§ ८९९. एइंदिय-बादरेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं तिरिक्खोघभंगो। णवरि सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तेण सह वत्तव्वं, अणंताणु०चउक्कं च बारस-

---

अन्तर्मुहूर्त कालतक एकेन्द्रियोंका स्थितिसत्त्व ही पाया जाता है। परन्तु भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमका संख्यातवां भाग कम दो भागप्रमाण पाई जाती है; क्योंकि भय और जुगुप्सा ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियां होनेसे पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके पहले समयमें भी उनका बन्ध संभव है, इसलिये नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिसे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थिति संख्यातगुणी होती है यह सिद्ध हुआ। भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिसे बारह कषायोंकी जघन्य स्थिति संख्यातगुणी है, क्योंकि बारह कषायोंकी जघन्य स्थिति हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमके संख्यातवें भाग कम चार भागप्रमाण है। इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति विशेष अधिक है, क्योंकि इसका प्रमाण हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्योपमका संख्यातवां भाग कम सात भागप्रमाण है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है।

§ ८९८. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है। शेष प्रकृतियोंका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग बारह कषायोंके समान है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिये।

§ ८९९. एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके सामान्य तिर्यंचोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वका कथन सम्यग्मिथ्यात्वके साथ करना चाहिये।

---

१ आ. प्रतौ '—भागेणूणा' इति पाठः। २ आ. ता. प्रत्योः 'ट्ठिदिवि० संखे०गुणा। पुरिस०' इति पाठः।

कसाएहिं सह भाणिदव्वं । सव्वविगलिंदियाणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो ।

§ ६००. कायाणुवादेण सव्वपुढवि०-सव्वआउ०-सव्वतेउ०-सव्ववाउ०-सव्ववण-प्फदि०-सव्वणिगोद०-बादरवणप्फदिपत्तेय०-पज्जत्तापज्जत्ताणं एइंदियभंगो । वे अण्णाण०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णीणं च एइंदियभंगो । णवरि अभव्वेसु सम्मत्त-सम्मामि० णत्थि ।

§ ६०१. देवगईए देवाणं णारगभंगो । एवं भवण०-वाणवेंतर० । णवरि सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तेण सह भाणिदव्वं । जोइसियेसु सव्वत्थोवा सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त०-अणंताणु० चउक्काणं ज० विहत्ती । बारसक० णवणोक० ज० विह० असंखे०गुणा । ज० ट्ठिदि० संखे०गुणा । मिच्छत्त० ज० विहत्ती विसेसा० ।

§ ६०२. सोहम्मादि जाव णवगेवज्जात्ति सव्वत्थोवा सम्मत्तज० विहत्ती । सम्मामि० अणंताणु० चउक्क० ज० विहत्ती तत्तिया चेव । ज० ट्ठिदी० संखेज्जगुणा । बारसक०-णवणोक० जहण्णविहत्ती असंखे०गुणा; कालपहाणत्तावलंबणादो । णिसेय-पहाणत्ते पुण बारसक०-अट्ठणोकसायाणमुवरि पुरिसवेदज० ट्ठिदिवि० विसे० । एसो अत्थो अण्णत्थ वि वत्तव्वो । मिच्छत्तज० विह० संखे०गुणा । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सव्वत्थोवा सम्मत्तज० विहत्ती । अणंता० चउक्क० ज० ट्ठिदिविहत्ती

और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका कथन बारह कषायोंके साथ करना चाहिये । सब विकलेन्द्रियोंका भंग पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है ।

§ ६००. कायमार्गणाके अनुवादसे सब पृथिवीकायिक, सब जलकायिक, सब अग्निकायिक, सब वायुकायिक, सब वनस्पतिकायिक, सब निगोद, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान भंग है । मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, अभव्य, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञियोंके एकेन्द्रियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियां नहीं हैं ।

§ ६०१. देवगतिमें देवोंका भंग नारकियोंके समान है । इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वका सम्यग्मिथ्यात्वके साथ अल्पबहुत्व कहना चाहिये । ज्योतिषियोंमें सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है इससे बारह कषाय, नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे यत्स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है ।

§ ६०२. सौधर्म स्वर्गसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति उतनी ही है । पर यत्स्थिति संख्यातगुणी है । इससे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थिति-विभक्ति असंख्यातगुणी है क्योंकि यहां पर कालकी प्रधानता स्वीकार की गई है । निषेकोंकी प्रधानता रहनेपर तो बारह कषाय और आठ नोकषायोंके ऊपर पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । यह अर्थ अन्यत्र भी कहना चाहिये । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति

तत्तिया चेव । ज०ट्ठि०वि संखे०गुणा । बारसक० णवणोक० जह० विहत्ती असंखे० गुणा । मिच्छत्त-सम्मामि० ज० ट्ठिदि वि० संखे०गुणा ।

§ ६०३. ओरालियमिस्स०तिरिक्खोघभंगो । णवरि अणंताणु० चउक्क० बारस-कसायभंगो । एवं वेउव्वियमिस्स० । णवरि णवुंसयवेदस्सुवरि बारसक०-भय-दुगुंछ० जह० संखे०गुणा । मिच्छ० संखे०गुणा । अणंताणु० चउक्क० संखे०गुणा । वेउव्वि-यकाय० सोहम्मभंगो । णवरि सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तेण सह वत्तव्वं । कम्मइय० सव्व-त्थोवा सम्मत्त० ज० ट्ठिदिवि० । सम्मामि० ज० वि० संखे०गुणा । पुरिस० ज० ट्ठिदिवि० असंखे०गुणा । इत्थिज० वि० विसे० । हस्स-रदि० ज० वि० विसे० । अरदि-सोग० ज० वि० विसे० । णवुंस० ज० वि० विसे० । भय-दुगुंछ० ज० वि विसे० । सोलसक० ज० वि० विसे० । मिच्छ० ज० वि० विसेसाहिया । एवमणा-हारीणं । आहार० आहारमिस्स० सव्वत्थोवा बारसक०-णवणोक० ज० ट्ठिदिवि० । मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० ज० ट्ठिदिवि० संखेज्जगुणा । अणंताणु०चउक्क० ज० ट्ठि० वि० संखे०गुणा ।

§ ६०४. वेदाणुवादेण इत्थिवेदे सव्वत्थोवा सम्मत्त-इत्थि० जह० ट्ठि० विहत्ती ।

सबसे थोड़ी है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति उतनी ही है । पर यत्स्थिति-विभक्ति संख्यातगुणी है । इससे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असं-ख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है ।

§ ६०३. औदारिकमिश्रकाययोगियोंका भंग सामान्य तिर्यंचोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग बारह कषायोंके समान है । इसी प्रकार वैक्रियिक-मिश्रकाययोगियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें नपुंसकवेदके ऊपर बारह कषाय, भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यात-गुणी है । वैक्रियिककाययोगियोंका भंग सौधर्म कल्पके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्वको सम्यग्मिथ्यात्वके साथ कहना चाहिये । कार्मणकाययोगियोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति-विभक्ति विशेष अधिक है । इससे हास्य और रतिकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसमे अरति और शोककी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे सोलह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इसी प्रकार अनाहारकोंके जानना चाहिये । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है ।

§ ६०४ वेद मार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदमें सम्यक्त्व और स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति

मिच्छत्त०-सम्मामि०-बारसक० ज० ट्ठि० वि० संखे०गुणा। सत्तणोक०-चदुसंज० ज० ट्ठि० वि० असंखे०गुणा। णवुंसयवेद० ज० ट्ठि० वि० असंखे०गुणा। एवं णवुंस०। णवरि जम्हि इत्थिवेदो सम्मत्तेण सह वुत्तो तम्हि णवुंसयवेदो वत्तव्वो। जम्हि णवुंसयवेदो तम्हि इत्थिवेदो वत्तव्वो। पुरिसवेदे सव्वत्थोवा सम्मत्त० ज० विहत्ती। मिच्छत्त-सम्मामि०-बारसक० जह० ट्ठिदि० विहत्ती संखे०गुणा। पुरिसवेदजह० असंखे० गुणा। चदुसंजल० जह० संखे०गुणा। छण्णोक० जह० संखे०गुणा। इत्थिवेदज० विहत्ती असंखे०गुणा। णवुंस० ज० वि० असंखे०गुणा। अवगदवेदे सव्वत्थोवा लोभसंजलणज० ट्ठि० विह०। मायासंज० ज० विहत्ती असंखे०गुणा। माणसंज० ज० संखे०गुणा। कोधसंज० ज० वि० संखे०गुणा। पुरिस० ज० वि० संखे०गुणा। छण्णोक० ज० वि० संखे०गुणा। अट्ठकसा०-इत्थि०-णवुंस० ज० वि० असंखे०गुणा। मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० ज० वि० संखे०गुणा।

§ ६०५. कसायाणुवादेण कोधकसाईसु सव्वत्थोवा सम्मत्त०-इत्थि०-णवुंस० ज० ट्ठि० वि०। मिच्छ०-सम्मामि०[1]-बारसक० ज० ट्ठि० वि० संखे०गुणा। चदुसंज० ज० ट्ठि० वि० असंखे०गुणा। पुरिस० ज० ट्ठि० वि० संखे०गुणा। छण्णोक० ज०

सबसे थोड़ी है। इससे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे सात नोकषाय और चार सञ्ज्वलनोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है। इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है। इसी प्रकार नपुंसकवेद वाले जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु जहां पर सम्यक्त्वके साथ स्त्रीवेद कहा है वहां नपुंसकवेद कहना चाहिये और जहां नपुंसकवेद कहा है वहां स्त्रीवेद कहना चाहिये। पुरुषवेदमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। इससे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है। इससे चार सञ्ज्वलनाकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है। इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है। अपगतवेदमें लोभसञ्ज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। इससे माया संज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है। इससे मानसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे क्रोधसञ्ज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे आठ कषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है। इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है।

§ ६०५. कषाय मार्गणाके अनुवादसे क्रोध कषायवाले जीवोंमें सम्यक्त्व, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है। इससे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे चार संज्वलनोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है। इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे छह

१. आ० प्रतौ 'मिच्छ० सम्म० सम्मामि०' इति पाठः।

वि० संखे०गुणा । एवं माणकसाईसु, णवरि बारसक० ज० ट्ठिदीदो तिण्णिसंज० ज० ट्ठिदी असंखे०गुणा । कोधसंज० ज० ट्ठि० संखे०गुणा । पुरिस० ज० ट्ठिदी संखे० गुणा । छण्णोक० ज० ट्ठि० संखे०गुणा । एवं मायक०, णवरि बारसक० जह० ट्ठिदीदो उवरि माया-लोभसंजलणाणं ज० ट्ठिदीओ असंखे०गुणाओ । माणसंज० ज० संखे० गुणा । कोधसंज० ज० वि० संखे०गुणा । पुरिसज० वि० संखे०गुणा । छण्णोक० ज० वि० संखे०गुणा ।

§ ६०६. अकसाईसु सव्वत्थोवा बारसक०-णवणोक० ज० ट्ठि० विहत्ती । सम्मत्त-मिच्छत्त-सम्मामि० ज० वि० संखे० गुणा । एवं जहाक्खाद० । सुहुमसांपरा० एवं चेव । णवरि सव्वत्थोवा लोभसंजल० ज० ट्ठि० विह० । एक्कारसक०-णवणोक० ज० ट्ठि० वि० असंखे० गुणा ।

§ ६०७. विहंगणाणीणं जोदिसियभंगो । णवरि अणंताणु० चउक्कस्स बारसक-सायभंगो । मणपज्ज० आभिणि०भंगो । णवरि छण्णोकसायाणमुवरि इत्थिवेद० जह० असंखे० गुणा । णवुंस० जह० असंखे० गुणा । सामाइयछेदो० मायकसायभंगो । णवरि बारसकसायाणमुवरि लोभसंज० ज० वि० असंखे० गुणा । माय० ज० वि०

नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इसी प्रकार मान कषायवाले जीवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिसे तीन संज्वलनोंकी जघन्य स्थिति असंख्यातगुणी है । इससे क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थिति संख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति संख्यातगुणी है । इससे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इसी प्रकार मायाकषायवाले जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिसे ऊपर माया और लोभसंज्वलनोंकी जघन्य स्थितियां असंख्यातगुणी हैं । इससे मानसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे पुरुषवेदकी जघन्य स्थिति-विभक्ति संख्यातगुणी है । इससे छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है ।

§ ६०६. कषाय रहित जीवोंमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इसी प्रकार यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिये । सूक्ष्म सांपरायिकसंयत जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है इससे ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है ।

§ ६०७. विभंगज्ञानियोंके ज्योतिषियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग बारह कषायोंके समान है । मनःपर्ययज्ञानियोंके मतिज्ञानियोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके छह नोकषायोंके ऊपर स्त्रीवेदकी जघन्य स्थिति-विभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनासंयत जीवोंके मायाकषायवाले जीवोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषायोंके ऊपर लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है ।

संखे० गुणा । उवरि णत्थि विसेसो ।

§ ९०८. परिहारसुद्ध० सव्वत्थोवा सम्मत्तज० ट्ठि० वि० । मिच्छत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० ज० वि० संखे० गुणा । बारसक०-णवणोक० ज० ट्ठि० वि० असंखे० गुणा । एवं संजदासंजद-तेउ-पम्मलेस्साणं । असंजद० सव्वत्थोवा सम्मत्त० ज० ट्ठि० वि० । मिच्छत्त०-सम्मामि०-अणताणु०चउक्क० ज० ट्ठि० वि० संखे०गुणा । सेस० तिरिक्खोघं ।

§ ९०९. किण्ह-णीललेस्साणं तिरिक्खभंगो । णवरि सम्मत्त०-सम्मामिच्छत्तेण सह वत्तव्वं । काउ० तिरिक्खोघं ।

§ ९१०. खइय० सव्वत्थोवा लोभसंज० इत्थि-णवुंस० ज० विह० । अट्ठक-साय ज० ट्ठि० वि० संखे० गुणा । मायासंज० ज० ट्ठि० वि० असंखे० गुणा । सेसमोघं । वेदगसम्मादिट्ठी० परिहारभंगो । उवसम० सव्वत्थोवा अणंताणु० चउक्क० ज० ट्ठि० वि० । बारसक०-णवणोक० ज० ट्ठि० वि० असंखे० गुणा । मिच्छत्त-सम्मामि० ज० ट्ठिदि० वि० विसेसा० । सासण० सव्वत्थोवा सोलसक०-णवणोक० ज० ट्ठि० वि० । मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि० ज० ट्ठि० वि० विसे० । सम्मामि० सव्वत्थोवा सम्मत्त० ज० ट्ठि० वि० । सम्मामि० ज० ट्ठि० वि० विसे० । बारसक०-

इससे मायासंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । ऊपर और कोई विशेषता नहीं है ।

§ ९०८. परिहारविशुद्धिसंयतोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इसी प्रकार संयतासंयत, पीतलेश्यावाले और पद्मलेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये । असंयतोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । शेष कथन सामान्य तिर्यंचोंके समान है ।

§ ९०९. कृष्ण और नीललेश्यावाले जीवोंके तिर्यंचोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सम्यक्त्वका कथन सम्यग्मिथ्यात्वके साथ करना चाहिये । कापोतलेश्यावाले जीवोंके सामान्य तिर्यंचोंके समान जानना चाहिये ।

§ ९१०. क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें लोभसंज्वलन, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थिति-विभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे आठ कषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है । इससे मायासंज्वलनकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । शेष कथन ओघके समान है । वेदक-सम्यग्दृष्टियोंके परिहारविशुद्धिसंयतोंके समान भंग है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति असंख्यातगुणी है । इससे मिथ्यात्व सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंमें सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति सबसे थोड़ी है । इससे सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है । इससे बारह कषाय

णवणोक० ज० हि० वि० संखेज्जगुणा । मिच्छ० जह० विसे० । अणंताणु० चउक० ज० हि० वि० संखे० गुणा ।

एवं द्विदिअप्पाबहुगाणुगमो समत्तो ।

§ ९११. संपहि जीव अप्पाबहुगाणुगमं वत्तइस्सामो । सो दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ चेदि । तत्थ उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण छव्वीसं पयडीणं सव्वत्थोवा उक्कस्सद्विदिविहत्तिया जीवा । अणुक० द्विदिविहत्तिया जीवा अणंतगुणा । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा उक० द्विदि० जीवा । अणुक० द्विदि० जीवा असंखे०गुणा । एवं तिरिक्ख०-एइंदिय-वणप्फदि०-णिगोद०-बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-कायजोगि-ओरालिय०-ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-णवुंस०-चत्तारिक०-मदिसुदअण्णाण-असंजद०-अचक्खुदंस०-तिण्णिले०-भवसि०-अभव०-मिच्छादि०-असण्णी०-आहारि०-अणाहारि त्ति । णवरि अभव० सम्म०-सम्मामि० णत्थि ।

§ ९१२. आदेसेण णेरइएसु सव्वत्थोवा अट्ठावीस० उक० द्विदि० जीवा । अणुक० द्विदि० जीवा असंखे० गुणा । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख०-मणुस मणुसअपज्ज०-देव-भवणादि जाव अवराइद त्ति सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-सव्व-चत्तारिकाय-सव्वतस-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउ० मिस्स-इत्थि-पुरिस०-विहं-

---

और नौ नोकषायोंकी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है। इससे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिविभक्ति विशेष अधिक है। इससे अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी जघन्य स्थितिविभक्ति संख्यातगुणी है।

इस प्रकार स्थिति अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ।

§ ९११. अब जीव विषयक अल्पबहुत्वानुगमको बतलाते हैं। वह दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमेंसे पहले उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा छब्बीस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार तिर्यंचो, तथा एकेन्द्रिय, वनस्पति और निगोद जीव तथा इन तीनोंके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त जीव तथा काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी कार्मणकाययोगी, नपुंसकवेदवाले, चारों कषायवाले, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य, अभव्य, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी, आहारक और अनाहारक जीवोंके जानना। किन्तु इतनी विशेषता है कि अभव्योंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियां नहीं है।

§ ९१२. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर अपराजित तकके देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, सब पृथिवीकायिक आदि चार कायवाले,

ग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिण्णिले०-सम्मादि० खइयसम्मा०-वेदयसम्मादि०-उवसम०-सासण०-सम्मामि०-सण्णि त्ति ।

§ ९१३. मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु सव्वपयडीणं सव्वत्थोवा उक० ट्ठिदि० जीवा। अणुक० ट्ठिदि जीवा संखे० गुणा । एवं सव्वट्ठ०—आहार०-आहारमिस्स-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज०णाणी—संजद०—सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुमसांप०-जहाक्खाद० संजदे त्ति ।

एवमुक्कस्सओ जीव अप्पाबहुगाणुगमो समत्तो ।

§ ९१४. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा सव्वपयडीणं ज० ट्ठिदि० जीवा । अज० उक्कस्सभंगो । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-चत्तारि[1]काय-सव्वतस-पंचमण-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालि०-वेउव्वि०-वेउव्वियमिस्स०-आहार०-आहार०मिस्स०-तिण्णिवेद०-अवगद०-चत्तारिक० अकसा०-विहंग०-आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइयछेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस०-तिण्णिले०-भवसि०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०—उवसम०-सासण०

सब त्रस, पांचों मनोयोगी, पाचो वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदवाले. पुरुषवेदवाले, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीत दि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञा जीवोंके जानना।

§ ९१३. मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिवाले जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायवाले. मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिए।

इस प्रकार उत्कृष्ट जीव अल्पबहुत्वानुगम समाप्त हुआ।

§ ९१४. अब जीव विषयक जघन्य अल्पबहुत्वका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिके धारक जीव सबसे थोड़े हैं। अजघन्यका भंग उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सब मनुष्य, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, पृथिवी आदि चार स्थावर काय. सब त्रस, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, तीनों वेदवाले, अपगतवेदवाले, क्रोधादि चारो कषायवाले, अकषायी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी. संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीतादि तीन लेश्यावाले, भव्य, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशम-

१. ता० प्रतौ 'सव्वविगलिंदिय चत्तारि' इति पाठः ।

सम्मामि०-सण्णि-आहारि त्ति ।

§ ९१५. तिरिक्खेसु मिच्छत्त-बारसक०-भय-दुगुंछ० णारगभंगो । सेसमोघं । एवमसंजद० तिण्णिलेस्साणं । णवरि असंज०-मिच्छ० ओघं ।

§ ९१६. एइंदिएसु मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक०-सम्मत्त०-सम्मामि० णारयभंगो । एवं वणप्फदि-णिगोद०-बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-कम्मइय-अणाहारि त्ति । ओरालियमिस्स० तिरिक्खोघं । णवरि अणंताणु०चउक्क० अपज्जत्तभंगो । एवं मदि-सुदअण्णा०-मिच्छादि०-असण्णि त्ति । अभव० छव्वीसपयडी० ओरालियमिस्सभंगो ।

एवं चउवीस अणियोगद्दाराणि समत्ताणि ।

सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना ।

§ ९१५. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका भंग नारकियोंके समान है । शेष कथन ओघके समान है । इसी प्रकार असंयत और कृष्णादि तीन लेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंयतोंके मिथ्यात्वका कथन ओघके समान है ।

§ ९१६. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, सम्यक्त्व, और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग नारकियोंके समान है । इसी प्रकार वनस्पतिकायिक और निगोद तथा इनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, तथा कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । औदारिकमिश्रकाययोगियोंके सामान्य तिर्यंचोके समान जानना । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग अपर्याप्तकोंके समान है । इसी प्रकार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना । अभव्योमें छब्बीस प्रकृतियोंका भंग औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ।

इस प्रकार चौबीस अनुयोगद्वार समाप्त हुए ।
